बी.ए./बी.एस.सी/बी.कॉम, प्रथम वर्ष
आधार पाठ्यक्रम, प्रथम प्रश्नपत्र

हिन्दी भाषा और नैतिक मूल्य

मध्यप्रदेश भोज (मुक्त) विश्वविद्यालय – भोपाल
MADHYA PRADESH BHOJ (OPEN) UNIVERSITY - BHOPAL

Reviewer Committee

1. Dr Dharmendra Pare
   Professor
   Govt Hamidia College, Bhopal
2. Dr Anjali Singh
   Professor
   Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal
3. Dr Rachna Tailang
   Professor
   Govt Hamidia College. Bhopal

Advisory Committee

1. Dr Jayant Sonwalkar
   Hon'ble Vice Chancellor
   Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal
2. Dr L.S.Solanki
   Registrar
   Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal
3. Dr Anjali Singh
   Professor
   Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal
4. Dr Dharmendra Pare
   Professor
   Govt Hamidia College. Bhopal
5. Dr Rachna Tailang
   Professor
   Govt Hamidia College, Bhopal

COURSE WRITERS

Dr Snehlata Gupta, Associate Professor, Ginni Devi Modi Girls PG College, Modinagar (UP)
Units (2.0-2.1, 2.2-2.2.1, 2.3.1, 2.4.3-2.4.5, 2.5-2.9, 3.0-3.1, 3.2.1, 3.3.1, 3.4.1, 3.6-3.10, 4.0-4.1, 4.2.1, 4.3.1, 4.5-4.9, 5.0-5.1, 5.2.1, 5.3.1, 5.4.1, 5.5.1, 5.6-5.10, 2.2.2-2.2.4, 2.3, 2.3.2-2.3.4, 3.2, 3.2.2-3.2.4, 3.3, 3.3.2-3.3.4, 3.4, 3.4.2-2.4.3, 4.2, 4.2.2-4.2.4, 4.3, 4.3.2-4.3.4, 5.2, 5.2.2-5.2.4, 5.3, 5.3.2-5.3.4, 5.4, 5.4.2-5.4.4, 5.5, 5.5.2-5.5.4)

Dr. Ashutosh Kumar Mishra, Assistant Professor, Department of Hindi, Dr. Hari Singh Gaur Vishwavidhyalaya, Sagar, (MP)
Dr. Amrendra Tripathi, Associate Professor, Department of Hindi, Mahatma Gandhi Central University, Bihar
Units (1.0-1.1, 1.2, 1.3, 1.4.3, 1.5-1.9, 2.4-2.4.2)

Dr Urvija Sharma, Associate Professor, Department of Hindi, SD PG College, Ghaziabad
Units (1.4-1.4.2, 3.5, 4.4)

Copyright © Reserved, Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal

All rights reserved. No part of this publication which is material protected by this copyright notice may be reproduced or transmitted or utilized or stored in any form or by any means now known or hereinafter invented, electronic, digital or mechanical, including photocopying, scanning, recording or by any information storage or retrieval system, without prior written permission from the Registrar, Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal.

Information contained in this book has been published by VIKAS® Publishing House Pvt. Ltd. and has been obtained by its Authors from sources believed to be reliable and are correct to the best of their knowledge. However, the Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal, Publisher and its Authors shall in no event be liable for any errors, omissions or damages arising out of use of this information and specifically disclaim any implied warranties or merchantability or fitness for any particular use.

Published by Registrar, MP Bhoj (Open) University, Bhopal in 2020

VIKAS®

Vikas® is the registered trademark of Vikas® Publishing House Pvt. Ltd.

VIKAS® PUBLISHING HOUSE PVT. LTD.
E-28, Sector-8, Noida - 201301 (UP)
Phone: 0120-4078900 • Fax: 0120-4078999
Regd. Office: A-27, 2nd Floor, Mohan Co-operative Industrial Estate, New Delhi 1100 44
• Website: www.vikaspublishing.com • Email: helpline@vikaspublishing.com

SYLLABI-BOOK MAPPING TABLE

हिन्दी भाषा और नैतिक मूल्य

Syllabi	Mapping in Book
इकाई–1 हिन्दी भाषा 1. स्वतंत्रता पुकारती (कविता) – जयशंकर प्रसाद 2. पुष्प की अभिलाषा (कविता) – माखनलाल चतुर्वेदी 3. वाक्य संरचना और अशुद्धियाँ (संकलित)	**इकाई 1** : हिन्दी भाषा **(पृष्ठ 3–74)**
इकाई–2 हिन्दी भाषा 1. नमक का दारोगा (कहानी) – प्रेमचंद 2. एक थे राजा भोज (निबंध) – डॉ. त्रिभुवननाथ शुक्ल 3. पर्यायवाची, विलोम, एकार्थी, अनेकार्थी, एक शब्दयुग्म शब्द (संकलित)	**इकाई 2** : हिन्दी भाषा **(पृष्ठ 75–140)**
इकाई–3 हिन्दी भाषा 1. भगवान बुद्ध (निबंध) – स्वामी विवेकानंद 2. लोकतंत्र एक धर्म है (निबंध) – डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन 3. नहीं रुकती है नदी – हीरालाल बाछोतिया 4. पल्लवन	**इकाई 3** : हिन्दी भाषा **(पृष्ठ 141–200)**
इकाई–4 हिन्दी भाषा 1. अफसर (निबंध) – शरद जोशी 2. हमारी सांस्कृतिक एकता (निबंध) – रामधारी सिंह दिनकर (एक भारत श्रेष्ठ भारत के अंतर्गत) 3. संक्षेपण (संकलित)	**इकाई 4** : हिन्दी भाषा **(पृष्ठ 201–246)**
इकाई–5 नैतिक मूल्य 1. नैतिक मूल्य परिचय एवं वर्गीकरण (आलेख) – डॉ. शशि राय 2. आचरण की सभ्यता (निबंध) – सरदार पूर्णसिंह 3. अंतर्ज्ञान और नैतिक जीवन (लेख) – डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन 4. अप्प दीपो भव (लेख) – स्वामी श्रद्धानंद	**इकाई 5** : नैतिक मूल्य **(पृष्ठ 247–320)**

विषय–सूची

परिचय 1

इकाई 1 हिन्दी भाषा 3–74

1.0 परिचय
1.1 उद्देश्य
1.2 स्वतंत्रता पुकारती (कविता) : जयशंकर प्रसाद
  1.2.1 स्वतंत्रता पुकारती : व्याख्या
  1.2.2 काव्यगत विशेषताएँ एवं जागरण के स्वर
1.3 पुष्प की अभिलाषा (कविता) : माखनलाल चतुर्वेदी
  1.3.1 पुष्प की अभिलाषा : व्याख्या
  1.3.2 काव्यगत विशेषताएँ एवं राष्ट्रीय चेतना
1.4 वाक्य संरचना और अशुद्धियाँ
  1.4.1 वाक्य के अंग
  1.4.2 वाक्य के प्रमुख तत्व एवं प्रकार
  1.4.3 वाक्य अशुद्धियाँ
1.5 अपनी प्रगति जाँचिए प्रश्नों के उत्तर
1.6 सारांश
1.7 मुख्य शब्दावली
1.8 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
1.9 सहायक पाठ्य सामग्री

इकाई 2 हिन्दी भाषा 75–140

2.0 परिचय
2.1 उद्देश्य
2.2 नमक का दारोगा (कहानी) : प्रेमचंद
  2.2.1 'नमक का दारोगा' कहानी का मूल पाठ
  2.2.2 'नमक का दारोगा' कहानी का सार
  2.2.3 व्याख्यांश
  2.2.4 'नमक का दारोगा' कहानी का समीक्षात्मक अध्ययन
2.3 एक थे राजा भोज (निबन्ध) : डॉ. त्रिभुवननाथ शुक्ल
  2.3.1 'एक थे राजा भोज' निबन्ध का मूल पाठ
  2.3.2 'एक थे राजा भोज' निबन्ध का सार
  2.3.3 व्याख्यांश
  2.3.4 'एक थे राजा भोज' निबन्ध का समीक्षात्मक अध्ययन
2.4 पर्यायवाची, विलोम, एकार्थी, अनेकार्थी शब्द एवं शब्दयुग्म
  2.4.1 पर्यायवाची शब्द
  2.4.2 विलोम शब्द
  2.4.3 एकार्थी शब्द
  2.4.4 अनेकार्थी शब्द
  2.4.5 शब्दयुग्म
2.5 अपनी प्रगति जाँचिए प्रश्नों के उत्तर
2.6 सारांश
2.7 मुख्य शब्दावली

2.8 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
2.9 सहायक पाठ्य सामग्री

इकाई 3 हिन्दी भाषा **141–200**

3.0 परिचय
3.1 उद्देश्य
3.2 भगवान बुद्ध (निबन्ध) : स्वामी विवेकानंद
3.2.1 भगवान बुद्ध निबन्ध का मूल पाठ
3.2.2 'भगवान बुद्ध' निबन्ध का सार
3.2.3 व्याख्यांश
3.2.4 'भगवान बुद्ध' निबन्ध का समीक्षात्मक अध्ययन
3.3 लोकतंत्र एक धर्म है (निबन्ध) : डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन
3.3.1 'लोकतंत्र एक धर्म है' निबन्ध का मूल पाठ
3.3.2 'लोकतंत्र एक धर्म है' निबन्ध का सार
3.3.3 व्याख्यांश
3.3.4 'लोकतंत्र एक धर्म है' निबन्ध का समीक्षात्मक अध्ययन
3.4 नहीं रुकती है नदी : हीरालाल बाछोतिया
3.4.1 'नहीं रुकती है नदी' का मूल पाठ
3.4.2 यात्रा वृत्तान्त की लेखन शैली
3.4.3 'नहीं रुकती है नदी' यात्रा वृत्तान्त के मूल बिन्दुओं का महत्व और विश्लेषण
3.5 पल्लवन
3.6 अपनी प्रगति जाँचिए प्रश्नों के उत्तर
3.7 सारांश
3.8 मुख्य शब्दावली
3.9 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
3.10 सहायक पाठ्य सामग्री

इकाई 4 हिन्दी भाषा **201–246**

4.0 परिचय
4.1 उद्देश्य
4.2 अफसर (निबन्ध) : शरद जोशी
4.2.1 'अफसर' निबन्ध का मूल पाठ
4.2.2 'अफसर' निबन्ध का सार
4.2.3 व्याख्यांश
4.2.4 'अफसर' निबन्ध का समीक्षात्मक अध्ययन
4.3 हमारी सांस्कृतिक एकता : भारत एक है (निबन्ध) : रामधारी सिंह दिनकर (एक भारत श्रेष्ठ भारत के अंतर्गत)
4.3.1 'भारत एक है' निबन्ध का मूल पाठ
4.3.2 'भारत एक है' निबन्ध का सार
4.3.3 व्याख्यांश
4.3.4 'भारत एक है' निबन्ध का समीक्षात्मक अध्ययन
4.4 संक्षेपण
4.5 अपनी प्रगति जाँचिए प्रश्नों के उत्तर
4.6 सारांश
4.7 मुख्य शब्दावली
4.8 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
4.9 सहायक पाठ्य सामग्री

इकाई 5 नैतिक मूल्य 247–320

5.0 परिचय

5.1 उद्देश्य

5.2 नैतिक मूल्य : परिचय एवं वर्गीकरण (आलेख) : डॉ. शशि राय

- 5.2.1 'नैतिक मूल्य : परिचय एवं वर्गीकरण' का मूल पाठ
- 5.2.2 'नैतिक मूल्य : परिचय एवं वर्गीकरण' का सार
- 5.2.3 व्याख्यांश
- 5.2.4 'नैतिक मूल्य : परिचय एवं वर्गीकरण' की समीक्षात्मक अध्ययन

5.3 आचरण की सभ्यता (निबन्ध) : सरदार पूर्णसिंह

- 5.3.1 आचरण की सभ्यता (निबन्ध) का मूल पाठ
- 5.3.2 'आचरण की सभ्यता' निबन्ध का सार
- 5.3.3 व्याख्यांश
- 5.3.4 'आचरण की सभ्यता' निबन्ध का समीक्षात्मक अध्ययन

5.4 अंतर्ज्ञान और नैतिक जीवन (लेख) : डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन

- 5.4.1 'अंतर्ज्ञान और नैतिक जीवन' का मूल पाठ
- 5.4.2 'अंतर्ज्ञान और नैतिक जीवन' का सार
- 5.4.3 व्याख्यांश
- 5.4.4 'अंतर्ज्ञान और नैतिक जीवन' का समीक्षात्मक अध्ययन

5.5 अप्प दीपो भव (लेख) : स्वामी श्रद्धानंद

- 5.5.1 'अप्प दीपो भव' का मूल पाठ
- 5.5.2 'अप्प दीपो भव' लेख का सार
- 5.5.3 व्याख्यांश
- 5.5.4 'अप्प दीपो भव' लेख का समीक्षात्मक अध्ययन

5.6 अपनी प्रगति जाँचिए प्रश्नों के उत्तर

5.7 सारांश

5.8 मुख्य शब्दावली

5.9 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास

5.10 सहायक पाठ्य सामग्री

परिचय

टिप्पणी

प्रस्तुत पुस्तक 'हिंदी भाषा और नैतिक मूल्य' का लेखन विश्वविद्यालय द्वारा निर्धारित आधार पाठ्यक्रम के अनुरूप प्रथम वर्ष के लिए किया गया है। साहित्य एक ऐसा प्रवाह है जो अनवरत चलता रहता है। इसकी गतिशीलता ही इसकी नूतनता है। हिंदी भाषा साहित्य भी इसका अपवाद नहीं है। साहित्य निरंतर परिवर्तनशील सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक आदि परिस्थितियों के साथ आकार लेता चला गया। हिंदी भाषा साहित्य ने जहाँ समयानुकूल बदलती परिस्थितियों को विचार प्रदान किया वहीं समाज में नैतिक मूल्यों को भी स्थापित किया। अनेक रचनाकारों ने अपनी लेखनी के द्वारा साहित्य जगत को गौरवान्वित किया।

प्रस्तुत पुस्तक में हिंदी भाषा और नैतिक मूल्यों के विभिन्न पक्षों का सांगोपांग विवेचन किया गया है। प्रत्येक इकाई के प्रारंभ में विषय का विश्लेषण करने से पहले उसके निहित उद्देश्यों को स्पष्ट कर दिया गया है। इकाई के बीच–बीच में 'अपनी प्रगति जाँचिए' के माध्यम से विद्यार्थियों की योग्यता को परखने के लिए प्रश्न दिए गए हैं। अध्ययन की सुविधा के लिए संपूर्ण पुस्तक को पाँच इकाइयों में वर्गीकृत किया गया है, जिनका विवरण इस प्रकार है–

पहली इकाई में हिंदी भाषा के प्रतिष्ठित कवि जयशंकर प्रसाद रचित कविता 'स्वतंत्रता पुकारती' और माखनलाल चतुर्वेदी की कविता 'पुष्प की अभिलाषा' का व्याख्यात्मक अध्ययन किया गया है, साथ ही वाक्य संरचना एवं अशुद्धियों का परिचय भी दिया गया है।

दूसरी इकाई के अंतर्गत प्रेमचंद की प्रसिद्ध कहानी 'नमक का दारोगा', डॉ. त्रिभुवननाथ शुक्ल रचित निबंध 'एक थे राजा भोज' तथा पर्यायवाची, विलोम, एकार्थी, अनेकार्थी आदि शब्दों का अध्ययन किया गया है।

तीसरी इकाई में स्वामी विवेकानंद की निबंध रचना 'भगवान बुद्ध', डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन के निबंध 'लोकतंत्र एक धर्म है', हीरालाल बाछोतिया के यात्रा वृत्तांत 'नहीं रुकती है नदी' एवं विस्तृतीकरण की प्रक्रिया 'पल्लवन 'को विश्लेषित किया गया है।

चौथी इकाई शरद जोशी के व्यंग्यात्मक निबंध 'अफसर', रामधारी सिंह दिनकर के निबंध संग्रह 'हमारी सांस्कृतिक एकता' से संकलित निबंध 'भारत एक है' का समीक्षात्मक अध्ययन एवं संक्षिप्तीकरण के कार्यालयी स्वरूप 'संक्षेपण' का परिचय दिया गया है।

पाँचवीं इकाई नैतिक मूल्य के अंतर्गत नैतिक मूल्यों पर आधारित लेख, सरदार पूर्णसिंह के निबंध 'आचरण की सभ्यता', डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्ण के लेख 'अंतर्ज्ञान और नैतिक जीवन' और स्वामी श्रद्धानन्द के लेख 'अप्प दीपो भव' पर विचार किया गया है।

प्रस्तुत पुस्तक 'हिंदी भाषा और नैतिक मूल्य' में पाठ्य–सामग्री का वर्णन सरल भाषा में रुचिकर ढंग से किया गया है। हमें पूर्ण विश्वास है कि यह पुस्तक छात्रों की जिज्ञासा को शांत कर, हिंदी भाषा और नैतिक मूल्यों को समझने में सहायक सिद्ध होगी।

इकाई 1 हिन्दी भाषा

टिप्पणी

संरचना

1.0 परिचय
1.1 उद्देश्य
1.2 स्वतंत्रता पुकारती (कविता) : जयशंकर प्रसाद
  1.2.1 स्वतंत्रता पुकारती : व्याख्या
  1.2.2 काव्यगत विशेषताएँ एवं जागरण के स्वर
1.3 पुष्प की अभिलाषा (कविता) : माखनलाल चतुर्वेदी
  1.3.1 पुष्प की अभिलाषा : व्याख्या
  1.3.2 काव्यगत विशेषताएँ एवं राष्ट्रीय चेतना
1.4 वाक्य संरचना और अशुद्धियाँ
  1.4.1 वाक्य के अंग
  1.4.2 वाक्य के प्रमुख तत्व एवं प्रकार
  1.4.3 वाक्य अशुद्धियाँ
1.5 अपनी प्रगति जाँचिए प्रश्नों के उत्तर
1.6 सारांश
1.7 मुख्य शब्दावली
1.8 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
1.9 सहायक पाठ्य सामग्री

1.0 परिचय

जयशंकर प्रसाद हिन्दी कवि, नाटककार, कहानीकार, उपन्यासकार तथा निबन्धकार हैं। वे हिन्दी के छायावादी युग के चार प्रमुख स्तंभों में से एक हैं। उन्होंने हिंदी काव्य में एक तरह से छायावाद की स्थापना की, जिसके द्वारा खड़ी बोली के काव्य में न केवल कमनीय माधुर्य की रससिद्ध धारा प्रवाहित हुई, बल्कि जीवन के सूक्ष्म एवं व्यापक आयामों के चित्रण की शक्ति भी संचित हुई और कामायनी तक पहुँचकर वह काव्य प्रेरक शक्तिकाव्य के रूप में भी प्रतिष्ठित हो गया। बाद के प्रगतिशील एवं नयी कविता दोनों धाराओं के प्रमुख आलोचकों ने उसकी इस शक्तिमत्ता को स्वीकृति दी। इसका एक अतिरिक्त प्रभाव यह भी हुआ कि खड़ी बोली हिन्दी काव्य की निर्विवाद सिद्ध भाषा बन गयी। छायावादी कवियों ने अपनी रचनाओं के माध्यम से अपने राष्ट्रप्रेम को अभिव्यक्त किया है। इस युग में वीरों को उत्साहित करने वाली कविताएँ लिखी गयीं। वास्तव में छायावाद युग उस सांस्कृतिक और साहित्यिक जागरण का सार्वभौम विकास–काल था, जिसका आरंभ राष्ट्रीय परिधि में भारतेंदु–युग से हुआ था। 'स्वतंत्रता पुकारती' जयशंकर प्रसाद की देशभक्ति की भावना से ओतप्रोत कविता है। इस कविता में कवि देश के सैनिकों और नौजवानों का उत्साह बढ़ाते हुए कहते हैं कि तुमको प्रतिज्ञा करनी है और हर मुश्किल का सामना करके आगे बढ़ते जाना है।

माखनलाल चतुर्वेदी भारत के ख्यातिप्राप्त कवि, लेखक और पत्रकार थे, जिनकी रचनाएँ अत्यंत लोकप्रिय हुईं। सरल भाषा और ओजपूर्ण भावनाओं के वे अनूठे हिंदी रचनाकार थे। प्रभा और कर्मवीर जैसे प्रतिष्ठित पत्रों के संपादक के रूप में उन्होंने

टिप्पणी

ब्रिटिश शासन के खिलाफ जोरदार प्रचार किया और नयी पीढ़ी का आह्वान किया कि वह गुलामी की जंज़ीरों को तोड़ कर बाहर आये। इसके लिये उन्हें अनेक बार ब्रिटिश साम्राज्य का कोपभाजन बनना पड़ा। वे सच्चे देशप्रमी थे और 1921–22 के असहयोग आंदोलन में सक्रिय रूप से भाग लेते हुए जेल भी गये। आपकी कविताओं में देशप्रेम के साथ–साथ प्रकृति और प्रेम का भी चित्रण हुआ है। माखनलाल जी के समग्र जीवन से यह भासित होता है कि उनकी आंतरिक प्रेरणा शुद्ध कवित्व की प्रेरणा थी, किन्तु कर्मवीर गांधी पर कविता लिखकर वे सोद्देश्य काव्य की ओर चले गये। 'पुष्प की अभिलाषा' कविता में उनका पुष्प भी देवता या प्रेयसी का हृदयहार नहीं बनना चाहता। उसकी कामना यह है कि वह बलिदानियों के रास्ते पर बिखर जाये अर्थात् वह सौन्दर्य के कारण काम्य नहीं है, बल्कि इस कारण कि वह बलिदान की भावना जगाता है।

इस इकाई में जयशंकर प्रसाद तथा माखनलाल चतुर्वेदी के साहित्यिक अवदानों की संक्षिप्त चर्चा करते हुए उनकी क्रमशः 'स्वतंत्रता पुकारती' एवं 'पुष्प की अभिलाषा' कविताओं की व्याख्या तथा प्रमुख काव्यगत विशेषताओं का अध्ययन किया गया है।

1.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- जयशंकर प्रसाद के जीवन, व्यक्तित्व एवं साहित्यिक योगदानों से परिचित हो पाएँगे;
- जयशंकर प्रसाद की कविता 'स्वतंत्रता पुकारती' के अंशों की व्याख्या कर पाएँगे;
- 'स्वतंत्रता पुकारती' कविता की काव्यगत एवं शिल्पगत विशेषताओं से अवगत हो पाएँगे;
- माखनलाल चतुर्वेदी के जीवन, व्यक्तित्व एवं साहित्यिक योगदानों की जानकारी प्राप्त कर पाएँगे;
- माखनलाल चतुर्वेदी की कविता 'पुष्प की अभिलाषा' की व्याख्या कर पाएँगे;
- 'पुष्प की अभिलाषा' कविता की काव्यगत एवं शिल्पगत विशेषताएँ समझ पाएँगे;
- वाक्य की संरचना तथा अशुद्धियों के बारे में जान पाएँगे।

1.2 स्वतंत्रता पुकारती (कविता) : जयशंकर प्रसाद

जयशंकर प्रसाद छायावाद के प्रमुख कवियों में से एक हैं। प्रसाद का जन्म 30 जनवरी, सन् 1889 को वाराणसी (उ.प्र.) में हुआ था। जयशंकर प्रसाद का परिवार वाराणसी में प्रसिद्ध था। मान्यता है कि उनके पूर्वज कन्नौज के थे। यह परिवार व्यापारिक कारणों से पहले जौनपुर और 18वीं शताब्दी के आसपास वाराणसी में आया। समय के साथ प्रसाद के पूर्वजों के लिए वाराणसी ही घर–द्वार बन गया। वाराणसी में तम्बाकू के व्यापार में इस परिवार को अभूतपूर्व सफलता मिली। धीरे–धीरे यह परिवार 'सुंघनी साहू' के रूप में ख्यात हो गया। जयशंकर प्रसाद के पितामह शिवरत्न साहू काशी के बहुत ही प्रसिद्ध और लोकप्रिय व्यक्ति थे। सुंघनी साहू परिवार की प्रसिद्धि का आधार इनके तम्बाकू के व्यापार की समृद्धि के साथ–साथ इनकी धर्मपरायणता और सेवा–भाव

टिप्पणी

भी था। सुंघनी साहू का कुल अपने अन्य सरोकारों के साथ ही साहित्य, संगीत, धर्म, दर्शन एवं संस्कृति के प्रति लगावों के लिए भी प्रसिद्ध था। इन सभी क्षेत्रों के महत्वपूर्ण लोगों का आना–जाना हमेशा सुंघनी साहू परिवार में लगा रहता था। जयशंकर प्रसाद के पिता देवीप्रसाद साहू ने भी अपने कुल की परम्परा के अनुसार ही व्यापार और व्यवहार दोनों क्षेत्रों में ही अपार सफलता प्राप्त की। देवीप्रसाद साहू विद्वानों का आदर करते थे। आये दिन साहू परिवार में विभिन्न विचारों के विद्वानों की महफिल जमी रहती, जिसका प्रभाव बालक जयशंकर प्रसाद पर भी पड़ रहा था।

समय के साथ सुंघनी साहू परिवार की स्थिति भी बदली। धीरे–धीरे व्यापार की गति कम होने लगी। प्रसाद के पिता देवीप्रसाद साहू किसी तरह कुल–परम्परा का निर्वाह करते रहे। जब पिता का निधन हुआ तब प्रसाद की उम्र मात्र ग्यारह वर्ष थी। परिवार की जिम्मेदारी प्रसाद के बड़े भाई शंभुरत्न ने सँभाली, किन्तु व्यापार में लगातार घाटा बढ़ता रहा। परिवार की आर्थिक स्थिति खराब हो गई। प्रसाद जब सोलह वर्ष के हुए तब बड़े भाई का निधन हो गया। परिवार का दायित्व जयशंकर प्रसाद पर आ गया। घर–परिवार, व्यापार की बिगड़ती स्थिति और कठोर यथार्थ ने जयशंकर प्रसाद के कोमल, भावुक एवं कवि मन को अत्यधिक प्रभावित किया, जिसकी अनुगूँज उनकी रचनाओं में उपलब्ध है।

जयशंकर प्रसाद ने संस्कृत, फारसी, हिन्दी और उर्दू का विधिवत् अध्ययन किया था। उनके लिए इन विषयों के श्रेष्ठ शिक्षक लगाये गये थे। पुराने संस्कृत ग्रंथों के साथ ही भारतीय धर्म–दर्शन में भी प्रसाद की गहरी रुचि थी।

जयशंकर प्रसाद ने कविता, नाटक, उपन्यास, कहानी और निबन्ध जैसी विधाओं में महत्वपूर्ण लेखन कार्य किया है। वे हिन्दी साहित्य के एक ऐसे रचनाकार हैं जिन्होंने गद्य और पद्य दोनों में बराबर सफलता और प्रसिद्धि अर्जित की है। कई प्रकार के आर्थिक, शारीरिक एवं भावनात्मक संकटों के बीच 15 नवम्बर, 1937 को काशी में जयशंकर प्रसाद का निधन हुआ।

जयशंकर प्रसाद की रचनाएँ

काव्य संग्रह

- प्रेम पथिक – 1910
- कानन कुसुम – 1912
- चित्राधार – 1918
- झरना – 1918
- आँसू – 1926
- लहर – 1935
- कामायनी – 1936

नाटक

- करुणालय – 1912
- राज्यश्री – 1915

टिप्पणी

- विशाख – 1921
- अजातशत्रु – 1922
- जन्मेजय का नागयज्ञ – 1926
- कामना – 1927
- स्कन्दगुप्त – 1928
- एक घूँट – 1930
- चन्द्रगुप्त – 1931
- ध्रुवस्वामिनी – 1933

कहानी संग्रह

- छाया – 1912
- प्रतिध्वनि – 1926
- आकाशदीप – 1929
- आँधी – 1931
- इन्द्रजाल – 1936

उपन्यास

- कंकाल – 1929
- तितली – 1934
- इरावती – 1938

निबन्ध

- काव्यकला तथा अन्य निबन्ध – 1938

स्वतंत्रता पुकारती : मूल पाठ

हिमाद्रि तुंग श्रृंग से प्रबुद्ध शुद्ध भारती
स्वयंप्रभा समुज्ज्वला स्वतंत्रता पुकारती
'अमर्त्य वीर पुत्र हो, दृढ़–प्रतिज्ञ सोच लो,
प्रशस्त पुण्य पंथ है, बढ़े चलो, बढ़े चलो!'

असंख्य कीर्ति–रश्मियाँ विकीर्ण दिव्य दाह–सी
सपूत मातृभूमि के– रुको न शूर साहसी!
अराति सैन्य सिंधु में, सुवाड़वाग्नि से जलो,
प्रवीर हो जयी बनो – बढ़े चलो, बढ़े चलो!

1.2.1 स्वतंत्रता पुकारती : व्याख्या

- हिमाद्रि तुंग श्रृंग से प्रबुद्ध शुद्ध भारती
  स्वयंप्रभा समुज्ज्वला स्वतंत्रता पुकारती

टिप्पणी

अमर्त्य वीर पुत्र हो, दृढ़–प्रतिज्ञ सोच लो
प्रशस्त पुण्य पंथ है – बढ़े चलो बढ़े चलो

सन्दर्भ : प्रस्तुत पंक्तियाँ छायावाद के महान कवि जयशंकर प्रसाद के प्रसिद्ध नाटक 'चंद्रगुप्त' से ली गई हैं। 'चंद्रगुप्त' नाटक का प्रकाशन सन् 1931 में हुआ था। इन पंक्तियों के माध्यम से जयशंकर प्रसाद आजादी के लिए संघर्ष कर रहे युवाओं का उत्साहवर्धन करते हैं।

प्रसंग : 'चंद्रगुप्त' की अलका तक्षशिला की राजकुमारी राष्ट्र–सेविका है। वह भारतीय नारी की प्रतीक है, जो देश के लिए आत्मोत्सर्ग करने हेतु तत्पर रहती है। जब यवन सेनापति सेल्यूकस की विशाल सेना भारत पर आक्रमण करने के उद्देश्य से पश्चिमोत्तर सीमा पर पड़ाव डालती है, तो राजकुमारी अलका अपने देश के सैनिकों में उत्साहवर्द्धन तथा कर्तव्यबोध का भाव भरने के लिए उत्साह भरे गीतों से न केवल अपने सैनिकों में प्राण फूँकती है, अपितु वह राष्ट्र में भी प्राण फूँकती है।

व्याख्या : कवि भारत के लोगों को जाग्रत करने का प्रयास इस कविता में करते हैं। कवि कहता है कि हिमालय की सबसे ऊँची चोटी से आज जागी हुई और अत्यंत पवित्र मनोभावों वाली भारतमाता अपने बेटों को पुकार रही हैं। गुलामी के लंबे दौर की यातना से दुःखी भारतमाता को अपने युवा बेटों से आजादी की उम्मीद है। वे हिमालय की सबसे ऊँची चोटी पर चढ़कर उन्हें पुकार रही हैं ताकि उनकी पुकार सब तक पहुँच सके। स्वयं से प्रकाशित होने वाली, समग्र प्रकाश या चैतन्यता से भरी हुई स्वतंत्रता की मूर्ति भारतमाता अपने युवा बेटों को पुकार रही है। आज भारतमाता अपने युवाओं से कह रही हैं कि तुम कभी न मरने वाले वीरों के बेटे हो इसलिए तुम्हें किसी भी प्रकार का भय अपने भीतर नहीं रखना है। तुम अपने मन में विचार कर यह दृढ़ प्रतिज्ञा कर लो कि तुम्हें स्वाधीनता के अपने लक्ष्य को प्राप्त करना है। स्वाधीनता प्राप्ति की तुम्हारी राह अत्यंत उत्तम और पवित्र है, इसको लेकर मन में किसी प्रकार की दुविधा मत रखो। इस उदात्त विचार के साथ ऐ मेरे भारत के वीरो! तुम अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए बस आगे की ओर बढ़ते चलो, बढ़ते चलो।

- असंख्य कीर्ति–रश्मियाँ विकीर्ण दिव्य दाह–सी
  सपूत मातृभूमि के रुको न शूर साहसी
  अराति सैन्य सिंधु में, सुवाड़्वाग्नि से जलो
  प्रवीर हो जयी बनो बढ़े चलो बढ़े चलो

सन्दर्भ : प्रस्तुत पंक्तियाँ छायावाद के महान कवि जयशंकर प्रसाद के प्रसिद्ध नाटक 'चंद्रगुप्त' से ली गई हैं। 'चंद्रगुप्त' नाटक का प्रकाशन सन् 1931 में हुआ था। इन पंक्तियों के माध्यम से जयशंकर प्रसाद आजादी के लिए संघर्ष कर रहे युवाओं का उत्साहवर्धन करते हैं।

प्रसंग : इन पंक्तियों में कवि स्वाधीनता आन्दोलन में संघर्ष कर रहे युवाओं का उत्साहवर्द्धन करते हुए उनके विजयी होने की कामना कर रहे हैं।

व्याख्या : कवि कहता है कि वीरो! मातृभूमि की आजादी के रास्ते पर तुम आगे बढ़ो। जिस पथ पर तुम आगे बढ़ रहे हो, उस पर यशरूपी अनेक किरणें अग्नि की

टिप्पणी

विशिष्ट ज्वाला की तरह फैली हुई हैं। तात्पर्य यह है कि देश की आजादी की लड़ाई में शामिल होने पर तुम्हारे यश की गाथा दूर–दूर तक गाई जाएगी। ये तुम्हारे मन के उत्साह को और बढ़ा देगी; इसलिए हे भारतमाता के श्रेष्ठ पुत्रों! तुम कभी घबराकर रुकना मत। तुम भारतमाता के वीर और साहसी पुत्र हो। तुम्हें दुश्मनों के सागर रूपी सेना में बड़वाग्नि की तरह जलते हुए प्रवेश करना है अर्थात जैसे समुद्री आग बड़वाग्नि विशाल समुद्र के भीतर जलकर उसे जला देती है, वैसे ही तुम्हें दुश्मनों की सेना के भीतर प्रवेश कर उन्हें समाप्त कर देना है। कविता की अंतिम पंक्तियों में अलका के माध्यम से भारत के वीर युवकों को संबोधित करते हुए कहते हैं कि तुम एक श्रेष्ठ योद्धा बनकर आजादी के इस युद्ध में विजयी होने के लिए आगे की ओर बढ़ते चलो, बढ़ते चलो।

विशेष

1. देशभक्ति के लिए आह्वान की गूँज।
2. संपूर्ण कविता में अनुप्रास अलंकार की आवृत्ति।
3. 'सुवाड्वाग्नि से जलो' में रूपक अलंकार।
4. वीर रस की प्रधानता।
5. ओज गुण।
6. भाषा–संस्कृतनिष्ठ एवं ओजमयी।

1.2.2 काव्यगत विशेषताएँ एवं जागरण के स्वर

जयशंकर प्रसाद छायावाद के प्रमुख कवि हैं। उनकी कविता में समूची भारतीय परम्परा और संस्कृति के उज्ज्वल पक्ष अपने पूरे वैभव के साथ आये हैं। प्रसाद मुख्यतः सांस्कृतिक चेतना के रचनाकार हैं। वे अपनी कविताओं के माध्यम से आधुनिक मनुष्य की विडम्बना, भटकाव और विचलन की पहचान करते हैं तथा एक प्रखर चेतना से युक्त मानव एवं समरस समाज के निर्माण में अपना योगदान देते हैं। प्रसाद का रचना संसार उनके जीवन–दर्शन की साहित्यिक अभिव्यक्ति है। प्रसाद पर सबसे अधिक प्रभाव 'शैव दर्शन' के 'प्रत्यभिज्ञा दर्शन' का है, किन्तु यह प्रसाद के रचना–कर्म की विशेषता है कि वे दार्शनिक विचारों को अपनी अनुभूति में इस कदर समाहित कर लेते हैं कि वह सहज और सुबोध बन जाते हैं। प्रसाद के साहित्य की काव्यगत विशेषताओं को निम्नलिखित बिन्दुओं के आधार पर समझ सकते हैं–

आत्म–अभिव्यक्ति : प्रसाद के काव्य में आत्म की अभिव्यक्ति प्रमुख विशेषता है। आत्म की अभिव्यक्ति को प्रसाद स्वानुभूति की अभिव्यक्ति कहते हैं। प्रसाद मूलतः आत्मनिष्ठ कवि हैं, किन्तु उनकी आत्मनिष्ठता में कहीं भी समाज का विरोध नहीं है। प्रसाद की आत्मनिष्ठता का अर्थ यह है कि वे अक्सर निजी अनुभूतियों और विचारों को कलात्मक ढंग से अपने काव्य में प्रस्तुत करते हैं। वे अपनी अनुभूतियों को आत्मकथात्मक ढंग से प्रत्यक्ष तौर या दूसरे पात्रों या माध्यमों के द्वारा अप्रत्यक्ष तौर पर व्यक्त करते हैं। उनकी कविता में उनके ही जीवन के सुख–दुःख, जय–पराजय, जीवन–जगत के अनेक चित्र और स्थितियों की भावपूर्ण अभिव्यजंना हुई है, किन्तु यह प्रसाद की काव्यात्मक सफलता ही है कि कवि का 'स्व' सबके 'स्व' में रूपान्तरित हो गया है–

उज्ज्वल गाथा कैसे गाऊँ मधुर चाँदनी रातों की,
अरे खिलखिलाकर हँसते होने वाली उन बातों की। (लहर कविता से)

या

टिप्पणी

जो घनीभूत पीड़ा थी, मस्तक में स्मृति सी छाई,
दुर्दिन में आँसू बनकर, वह आज बरसने आई। (आँसू कविता से)

वेदना का विस्तार : जयशंकर प्रसाद ने अपनी कविता में अपनी वेदना का अत्यंत साहित्यिक चित्रण किया है। वेदना प्रेम जनित भी है और जीवन के कठोर एवं कटु यथार्थ से उपजी हुई भी। प्रेम जनित वेदना के चित्र प्रसाद के काव्य में खूब मिलते हैं। प्रसाद जैसे बड़े कवि की यह विशेषता है कि वे निज वेदना का विस्तार उसके उदात्त स्वरूप में करते हैं जिससे वह सकल विश्व की वेदना के रूप में अभिव्यक्त होने लगती है–

वेदना विकल फिर आई,
मेरी चौदहो भुवन में।
सुख कहीं न दिया दिखाई,
विश्राम कहाँ जीवन में।

सहज प्रेम की स्वाभाविक स्वीकृति : प्रेम की अभिव्यक्ति हिन्दी साहित्य के लगभग सभी प्रमुख कालखण्डों में होती रही है, किन्तु छायावादी कविता में प्रेम के जिस रूप की स्वीकृति और महत्व मिला है, वह सहज प्रेम का उदात्त स्वरूप है। प्रसाद के काव्य में भी प्रेम अपने इसी सहज रूप में स्वीकृत और प्रतिष्ठित हुआ है। प्रसाद के काव्य में जो प्रेम है वह स्त्री–पुरुष के बीच का स्वाभाविक प्रेम है। उसमें कहीं से भी किसी प्रकार का आवरण या ओट नहीं ली गई है, जबकि वीरगाथा काल में प्रेम का अर्थ पुरुष द्वारा अपनी वीरता के प्रदर्शन में और स्त्री पर अधिकार दर्शाना था। भक्तिकाल में प्रेम का अर्थ अध्यात्म था। रीतिकालीन कविता का प्रेम मांसल और स्थूल था, द्विवेदी युग का प्रेम आदर्शवादी था किन्तु प्रसाद के काव्य में चित्रित प्रेम आत्मा के आत्मविश्वास की तरह है। उसमें किसी प्रकार की कोई कुंठा नहीं है। प्रसाद का प्रेम सहज और स्वाभाविक है। वह बांधता नहीं मुक्त करता है। प्रेम की स्मृतियाँ भी प्रेम ही की तरह प्रिय हैं–

प्रत्यावर्तन के पथ में
पद चिन्ह न शेष रहा है,
डूबा है हृदय–मरुस्थल,
आँसू नद उमड़ रहा है।

सौन्दर्याभिव्यक्ति : प्रसाद का काव्य, सौन्दर्य की अभिव्यक्ति का विशिष्ट काव्य है। उनकी कविता में जीवन के सत्य, शिव और सुन्दर अपने पूरे वैभव के साथ अभिव्यक्त हुए हैं। वे अखिल विश्व में, प्रकृति में, जड़–चेतन में एक अनंत और व्यापक सौन्दर्य को देखते हैं। जहाँ स्त्री सौन्दर्य के प्रसंग आते हैं वहाँ भी उनकी दृष्टि केवल स्त्री के बाह्य सौन्दर्य पर नहीं, बल्कि अंतर्बाह्य के संतुलन पर होती है। प्रसाद का सौन्दर्य–बोध उदात्त और गरिमापूर्ण है। अपनी प्रसिद्ध कृति 'कामायनी' में वे श्रद्धा के सौन्दर्य का चित्रण करते हैं, जिसमें श्रद्धा के शारीरिक सौन्दर्य के साथ ही उनके भावों का भी पता चलता है–

नील परिधान बीच सुकुमार खुल रहा मृदुल अधखिला अंग,
खिला हो ज्यों बिजली का फूल मेघ वन बीच गुलाबी रंग।

टिप्पणी

आह! वह मुख! पश्चिम के व्योम बीच जब घिरते हों घनश्याम,
अरुण रविमंडल उनको भेद दिखाई देता हो छविराम।
या कि नव इंद्रनील लघुश्रृंग फोड़कर धधक रही हो कांत,
एक लघु ज्वालामुखी अचेत माधवी रजनी में अश्रांत।

प्रसाद के लिए सौन्दर्य परमात्मा के सात्विक वरदान की तरह है। उन्होंने 'कामायनी' में इस आशय की पंक्तियाँ लिखी हैं–

उज्ज्वल वरदान चेतना का,
सौन्दर्य जिसे सब कहते हैं।
जिसमें अनन्त अभिलाषा के,
सपने सब जगते रहते हैं।

स्त्री की स्वायत्त छवि : प्रसाद के काव्य में स्त्री का स्वायत्त और गरिमापूर्ण चित्रण हुआ है। प्रसाद के काव्य में चित्रित स्त्री शक्ति, शील और सौन्दर्य की प्रतिमूर्ति है। वह बाह्य रूप में आकर्षक है तो आन्तरिक रूप से वह प्रेम, दया, करुणा, ममता, क्षमा और माधुर्य की स्रोत भी है। प्रसाद स्त्री के उस रूप का चित्रण करते हैं जहाँ वह पुरुष के अधिकार से अलग अपनी स्वायत्त छवि के साथ खड़ी होती है और पुरुष को श्रेष्ठ एवं सुन्दर मार्ग दिखाती है। इसीलिए प्रसाद पूरे विश्वास के साथ 'कामायनी' में कहते हैं कि–

नारी तुम केवल श्रद्धा हो,
विश्वास रजत नग पगतल में।
पीयूष स्रोत–सी बहा करो,
जीवन के सुन्दर समतल में।

प्रकृति का जाग्रत बोध : प्रसाद के मन में प्रकृति की जीवंत सत्ता का जाग्रत बोध था। सामान्य भाषा में कहें तो प्रसाद प्रकृति के प्रेमी थे। अपने काव्य में उन्होंने भी दूसरे छायावादी कवियों की तरह प्रकृति का मानवीकरण किया है। प्रसाद की कविता में व्यक्त प्रकृति के मानवीकरण और लगाव के दार्शनिक कारण भी हैं। प्रसाद पर प्रत्यभिज्ञादर्शन का प्रभाव है। प्रत्यभिज्ञादर्शन में प्रकृति को महाचिति का शरीर और चेतन से युक्त माना जाता है। अतः जब प्रसाद प्रकृति का मानवीकरण करते हैं तब उनके चित्रण में गहरी आस्था और प्रेम देखने को मिलता है–

बीती विभावरी जाग री।
अम्बर पनघट में डुबो रही–
तारा–घट ऊषा नागरी।
खगकुल कुलकुल–सा बोल रहा,
किसलय का अंचल डोल रहा,
ले यह लतिका भी भर लाई,
मधु–मुकुल नवल रस–गागरी।

लाक्षणिक, प्रतीकात्मक और चित्रात्मक भाषा : प्रसाद ने अपने काव्य में भावों की अभिव्यक्ति के लिए लाक्षणिकता का प्रयोग किया है। लाक्षणिकता के प्रयोग से वे शब्द

के मुख्य अर्थ की जगह उसी से सम्बद्ध किसी अन्य अर्थ की सृष्टि करते हैं, जो शब्द की लक्षणा शक्ति का स्वभाव भी है। उदाहरण के लिए देखा जा सकता है कि–

इस करुणा–कलित हृदय में,
अब विकल रागिनी बजती,
क्यों हाहाकार स्वरों में
वेदना असीम गरजती।

टिप्पणी

इसी तरह प्रसाद अपनी कविता में प्रतीक–योजना का भी श्रेष्ठ प्रयोग करते हैं। उनके प्रतीक प्रायः प्रकृति से लिए गये हैं। जैसे वे 'मधु' का प्रयोग प्रेम के लिए करते हैं, उसी प्रकार 'उषा' या 'प्रभात' का प्रयोग प्रसन्नता अथवा आनंद के लिए करते हैं। प्रसाद के काव्य की एक और विशेषता उनकी चित्रात्मक एवं ध्वन्यात्मक भाषा है–

हाहाकार हुआ क्रंदनमय,
कठिन कुलिश होते थे चूर;
हुए दिगंध बधिर, भीषण रव,
बार–बार होता था क्रूर।

इस तरह देखा जाय तो प्रसाद का काव्य अपनी इन विशेषताओं के साथ हिन्दी साहित्य में अपना एक विशिष्ट स्थान और महत्व रखता है।

प्रसाद काव्य में जागरण के स्वर

हिन्दी साहित्य में छायावादी काव्य एक नयी दिशा, पहचान और स्वर के लिए जाना जाता है। यह ऐसे समय की कविता है जब प्रथम विश्वयुद्ध की घटना हो चुकी थी तथा भारत में स्वतंत्रता आन्दोलन निरंतर जोर पकड़ रहा था। अतः छायावादी कवि भी अपने युग से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सका। इस काल के प्रमुख लेखकों प्रसाद, पन्त, निराला तथा महादेवी वर्मा ने आम आदमी के साथ अपनी काव्य यात्रा को शुरू किया।

छायावादी कविता का मूल्यांकन करते हुए आलोचक नामवर सिंह ने लिखा है कि–"छायावाद इस राष्ट्रीय चेतना की काव्यात्मक अभिव्यक्ति है जो एक ओर पुरानी पीढ़ी से मुक्ति चाहता है और दूसरी ओर विदेशी पराधीनता से।" प्रसाद भी भावी पीढ़ी के लिए एक आदर्श समाज प्रस्तुत करना चाहते थे इसीलिए उनकी कविता में जागरण के विविध स्वर उपस्थित हैं। जयशंकर प्रसाद की कविता में व्यक्ति का महत्व स्वीकार किया गया है। इस आधार पर उनकी कविता में चेतना के प्रमुख बिंदु निम्नलिखित हैं–

लोक जागरण : प्रसाद की कविता में मनुष्य को जाग्रत करने का प्रयास हुआ है। अब तक ईश्वर और मनुष्य को अलग–अलग परिभाषित किया गया था। प्रसाद ऐसा नहीं मानते हैं। उनके विचार में ईश्वर के सम्मुख मनुष्य की भी विशिष्ट सत्ता है। प्रसाद जी पर 'शैव" मत का प्रभाव था अतः वे 'नियतिवाद' के पक्षधर नहीं थे बल्कि 'कर्म' को प्रमुख मानते थे। मनुष्य के द्वारा किया गया कर्म ही उसके भाग्य का निर्माण करता है। प्रसाद जी ने स्वयं लिखा है–

हृदय ही तुम्हें दान कर दिया।
क्षुद्र था उसने गर्व किया।
तुम्हें पाया अगाध गंभीर।
कहाँ जल बिंदु कहाँ निधि क्षीर।

टिप्पणी

राष्ट्रीय जागरण : छायावादी कविता का मूल स्वर राष्ट्रीय चेतना का रहा है। समाज की खराब स्थिति को देखकर प्रसाद का हृदय भी करुणा से भर उठा। उनका मानना था कि कवि की लेखनी समाज के उपकार के लिए होनी चाहिए तभी वह अपने उद्देश्य में सफल माना जाएगा। उनकी कविता 'प्रथम प्रभात', 'अब जागो जीवन के प्रभात', 'बीती विभावरी जाग री' आदि मानव को राष्ट्र प्रेम की भावना से ओतप्रोत करती हैं। अब तक की निराशा को भूलकर कवि ने आम आदमी में सुप्त चेतना को जाग्रत करने का प्रयास किया है–

फिर मधुर भावनाओं का,
कलरव हो इस जीवन में।
मेरी आहो में जागो,
सुस्मित में सोने वाले।

सांस्कृतिक जागरण : जयशंकर प्रसाद मनुष्य के बिखराव के कारणों की खोज अपनी कविता में करते हैं। उनका चिंतन था कि जीवन का पुनः मूल्यांकन जरूरी है। वैभव, समृद्धि तथा तमाम भौतिक सुविधाओं के होते हुए भी मनुष्य अशांत है। हमारी सांस्कृतिक विरासत दूसरी संस्कृतियों के दबाव में नष्ट होती जा रही है तथा नई संस्कृति मनुष्य को आक्रांत किये हुए है। अतः ऐसे समय में हमें अपनी खोई हुई संस्कृति को फिर से प्राप्त करना होगा। प्रसाद ने मानवीय संस्कृति को महत्वपूर्ण बताया और इसे देव संस्कृति से श्रेष्ठ कहा है। इस प्रकार प्रसाद ने आम आदमी के निराश मन में आशा का संचार किया।

बनो संस्कृति के मूल रहस्य,
तुम्हीं से फैलेगी यह बेल।
विश्व भर सौरभ से भर जाएगा,
सुमन के खेलो सुंदर खेल।

सामाजिक जागरण : किसी भी बड़े बदलाव में समाज की प्रमुख भूमिका होती है। स्वतंत्रता आन्दोलन की प्रमुख बाधा थी भारत के लोगों के मध्य परस्पर संघर्ष। प्रसाद ने इस स्थिति को महसूस किया और आम आदमी को लोकतंत्र की दिशा में प्रेरित किया। उनकी कविता अहं भावना को त्यागकर मनुष्य को कर्तव्य पथ पर साथ–साथ बढ़ने की प्रेरणा देती है। टकराहट को सामंजस्य में बदलने का आह्वान प्रसाद ने कुछ इस प्रकार किया है–

औरों को हँसते देखो मनु हँसो और सुख पाओ,
अपने सुख को विस्तृत कर लो सबको सुखी बनाओ।

स्त्री के प्रति नवीन दृष्टिकोण : छायावादी कवियों ने स्त्री के प्रति अपनी विराट दृष्टि का परिचय दिया है। प्रसाद ने नारी को उसकी स्वतंत्र सत्ता के साथ महत्व दिया। आधुनिक मनुष्य स्त्री को अपना सेवक मानता है। प्रसाद स्त्री को मानवीय गरिमा और गौरव के साथ प्रस्तुत करते हैं। कामायनी में प्रसाद ने दिखाया है कि मनु श्रद्धा के शरीर पर नहीं बल्कि उसके मन में विशिष्ट स्थान बनाना चाहते थे। स्त्री की परंपरागत स्थिति से अलग वे उसे श्रद्धा की दृष्टि से देखते हैं और देवी माँ, जैसे संबोधन से पुकारते हैं–

नारी तुम केवल श्रद्धा हो,
विश्वास रजत नग पग तल में,

पीयूष स्रोत सी बहा करो,
जीवन के सुंदर समतल में।

टिप्पणी

मशीनीकरण पर चिंता : कामायनी में प्रसाद ने चिंता व्यक्त की है कि भौतिक जीवन में मशीनों के बढ़ते प्रभाव ने उसके आनंद को समाप्त कर दिया है। विज्ञान के चमत्कारों ने प्रेम, परिवार, करुणा, शांति और मनुष्यता के भावों को नष्ट कर दिया है। इस स्थिति में मनुष्य अजनबीपन के विष को पीने पर मजबूर है। प्रसाद ने समाज में बढ़ते अविश्वास, असंतोष तथा पाखंड को अपनी कविताओं के माध्यम से व्यक्त किया है और समाज को "वसुधैव कुटुम्बकम्' की शिक्षा दी है–

आज शक्ति का खेल खेलने में आतुर नर,
प्रकृति संग संघर्ष निरंतर अब कैसा डर।

निष्कर्षतः छायावाद के प्रमुख कवि जयशंकर प्रसाद सही मायने में जाग्रत पुरुष थे। उनकी काव्य यात्रा बताती है कि वास्तव में ये सिर्फ शरीर को नहीं बल्कि अपने पूरे इतिहास को जीना चाहते थे। इसीलिए अनुभूतियों का तीव्र वेग इनकी रचनाओं में मौजूद है। लेखक के पास समाज को देखने का एक विशिष्ट नजरिया होता है। प्रसाद की प्रमुख रचनाओं आँसू, चित्राधार, प्रेमपथिक, कानन कुसुम, झरना, लहर, कामायनी आदि के माध्यम से संसार के प्रति उनके चिंतन को समझा जा सकता है।

अपनी प्रगति जाँचिए

1. 'स्वतंत्रता पुकारती' कविता कहाँ से ली गई है?
   (क) चित्राधार (ख) चंद्रगुप्त
   (ग) अजातशत्रु (घ) कामायनी
2. चंद्रगुप्त नाटक में किस नारी पात्र के मुख से 'स्वतंत्रता पुकारती' गीत का गायन कराया गया है?
   (क) कार्नेलिया (ख) मालविका
   (ग) अलका (घ) कल्याणी

1.3 पुष्प की अभिलाषा (कविता) : माखनलाल चतुर्वेदी

राष्ट्रीय चेतना के स्वर को बुलंदियों तक पहुँचाने में हिन्दी कवियों में माखनलाल चतुर्वेदी का नाम शीर्ष पर है। अपनी रचनाओं के माध्यम से जन–मानस में राष्ट्रीय चेतना का मंत्र फूँकने और उसे जगाने में माखनलाल चतुर्वेदी की भूमिका सर्वाग्रणी है। लम्बे समय तक साहित्य सेवा करने वाले चतुर्वेदी जी अछूतोद्धार, जन जागरण और नारी चेतना के क्षेत्र में अपनी पहचान बनाते हुए द्विवेदी युगीन हिन्दी कविता में अपना स्थान बना चुके थे। उनके काव्य की कोमलता और कल्पनाशीलता का सहज रूप ही आगे चलकर छायावादी कवियों की अभिव्यंजना का सशक्त आधार बना। इसी आधार पर डॉ. विमल कुमार ने अपने हिन्दी साहित्य के वृहत् इतिहास में माखनलाल चतुर्वेदी को छायावाद के जनक कवियों में स्वीकार किया है।

टिप्पणी

माखनलाल चतुर्वेदी का जन्म मध्य प्रदेश के जिला होशंगाबाद के बाबई नामक गाँव में सन् 1889 में हुआ था। इनके पिता गाँव के स्कूल में अध्यापक थे इसलिए इनकी प्रारंभिक शिक्षा गाँव में ही हुई। चतुर्वेदी जी स्निग्ध और ओजस्वी वाणी के धनी, एक सजग, संवेदनशील एवं उत्साही व्यक्ति थे और आरम्भ से ही देश की दशा के प्रति चिंतित थे। इन पर स्वामी रामतीर्थ और माधवराव सप्रे का विशेष प्रभाव था। सैयद अमीर अली 'मीर' से भी वे बहुत प्रभावित थे। इनको वैष्णव संस्कार परिवार से जन्मजात मिले थे। इन्होंने अपने जीवन–यापन की शुरुआत अध्यापन से की थी, किन्तु इनका रुझान पत्रकारिता की ओर भी रहा। ये शिक्षण काल से ही पत्रकारिता के क्षेत्र में कार्यशील रहे और इन्होंने 'प्रभा', 'प्रताप' तथा 'कर्मवीर' का सम्पादन किया। इनका एक उपनाम 'भारतीय आत्मा' भी था। इनके उपनाम से ही स्पष्ट हो जाता है कि इनके पत्र में अपने देश के प्रति कितनी निष्ठा रही होगी। शुरू के दिनों में ये क्रांति के सिद्धान्तों के कायल रहे किन्तु बाद में इनकी आस्था गाँधीवाद में दृढ़ हो गयी। गाँधीजी के असहयोग और अहिंसात्मक आन्दोलनों के दौरान ये कई बार जेल गये। जेल यात्रा के दौरान ही इन्होंने अनेक कविताओं की रचना की। चतुर्वेदी जी में नैतिकता का अक्खड़पन और ओजस्विता फूट–फूट कर भरी हुई थी।

रचनाएँ– सन् 1918 में रचित 'कृष्णार्जुन युद्ध' नामक नाटक के साथ हिन्दी साहित्यकारों की सूची में अंकित होने वाले माखनलाल चतुर्वेदी ने हिन्दी साहित्य को अपनी निम्नलिखित रचनाएँ अर्पित कीं–

काव्य– छायावाद युग के प्रमुख कविता संग्रह 'हिमकिरीटिनी' और 'हिमतरंगिणी' हैं। इनके अतिरिक्त 'माल', 'युवाचरण', 'गूँजेधरा', 'मरण ज्वार' और 'समर्पण' रचनाएँ हैं।

गद्य– इन्होंने गद्य में भी रचनाएँ की हैं जैसे–अमीर इरादे–गरीब इरादे (निबंध), 'कला का अनुवाद', 'वनवासी' एवं 'शिशुपाल वध'।

गद्य–पद्य मिश्रित काव्य (चम्पू काव्य)– साहित्य देवता।

माखनलाल चतुर्वेदी पर मुख्य रूप से उस समय के स्वतंत्रता आन्दोलन के नेता लोकमान्य तिलक और महात्मा गाँधी का सर्वाधिक प्रभाव पड़ा। उन्होंने पत्रकारिता के क्षेत्र में तिलकजी से अनेक बातें ग्रहण कर उनका सही प्रयोग किया। उन्हीं के प्रभाव से माखनलाल ने खूब अध्ययन कर देश की आर्थिक, सामाजिक और राजनैतिक घटनाओं पर जोरदार टिप्पणियाँ लिखीं। भारत के मुख्य धार्मिक और आध्यात्मिक आदर्शों को छोड़े बिना तर्क के आश्रय से कार्य सँभालना, बड़ी से बड़ी साम्राज्यवादी ताकत को ललकार कर अपनी बातों को उनके सामने निर्भयतापूर्वक रखना, सरल भाषा में बातें कहकर युवकों में जागृति का मंत्र फूँककर तथा भारत के आत्मगौरव या गौरवमय इतिहास के प्रति पत्रों के द्वारा पाठकों को आकर्षित करना आदि माखनलाल ने लोकमान्य बालगंगाधर तिलक से सीख लिया था। यथार्थतः तिलक उनके प्रथम आकर्षण के बिन्दु थे।

जेल–यात्राओं में भी उन्होंने समय व्यर्थ नहीं किया। जेल में रहते हुए जनता को अपनी कविता की अजस्रधारा के द्वारा वे राष्ट्रसेवा का सन्देश देते रहे। उनका नारा था–

'इन्हें गुलामी वर रहे / उन्हें रहे षड्यन्त्र
मरना इनका वर रहे / भार रहे स्वतंत्र।'

'कैदी और कोकिला' नामक प्रसिद्ध कविता में जेल की कठिन जिन्दगी का चित्र उन्होंने खींचा। कोकिला से कैदी की तुलना करके कोयल की आजादी और कैदी की गुलामी का रूप कवि अपनी कविता के अंत में अंकित करते हैं–

'तुझे मिली हरियाली डाली / मुझे नसीब कोठरी काली।'
तेरा नभ भर में संचार / मेरा दस–फुट का संसार।
तेरे गीत कहावें वाह / रोना भी है मुझे गुनाह!'

टिप्पणी

अज्ञेय ने माखनलालजी के बारे में ठीक ही कहा था– 'मेरे जेल में रहते हुए ही एक भारतीय आत्मा की कविताओं से मेरा परिचय हुआ, ऐसी कविताओं से जो स्वयं कवि ने अपने जेल–जीवन में लिखी थीं और जिनके साथ अनुभव का एक साहचर्य स्थापित हो जाता था। वे भारतीयता की एक पौराणिक छवि थे, जो भारतीय चेतना को बहुत गहरे में छूती थी। आज भारतमाता का उल्लेख होने पर सबसे पहले हम चौंककर देखते हैं कि कोई व्यंग्य तो नहीं किया जा रहा है। भारतमाता और गाँधी टोपी लगभग एक ही स्वर पर लाए गये हैं। लेकिन उस समय इस नाम से जो छवि उभरती थी, उसमें कई स्रोतों से शक्तिपात होता था। शक्तिपात भी रहस्य के क्षेत्र का शब्द है और उसका मैं जानबूझकर इस्तेमाल कर रहा हूँ, क्योंकि स्वाधीनता संग्राम को बल देने वाली भारतमाता रहस्यरूपा और शक्तिरूपा, दोनों थी।

भारत की स्वतंत्रता के लिए उन्होंने कई कष्ट सहन किये, लेकिन स्वातंत्र्योत्तर भारत से वे संतुष्ट नहीं थे।

चतुर्वेदी का मानस पराधीन भारत की दुर्दशा से व्यथित रहा है। यही कारण है कि उनकी रचनाओं में देश के प्रति गंभीर प्रेम और देश कल्याण के लिए आत्मबलिदान की उत्कट भावना दिखाई देती है। आत्मोत्सर्ग के मार्ग पर अग्रसर होने में सफलता तभी मिल सकती है जब मनुष्य अपने जीवन में वैभव एवं सुख का परित्याग कर दे और संघर्ष एवं साधना का मार्ग स्वीकार करे। उन्होंने अपनी रचनाओं द्वारा देश की जनता को संघर्ष और साधना का मार्ग चुनने का आह्वान किया। इनकी कविताओं में प्रेम, शृंगार और अध्यात्म का ओजस्वी रूप भी प्रकट हुआ है। डॉ. विश्वंभरनाथ ने लिखा है– ''माखनलाल चतुर्वेदी में प्रणय उन्माद नहीं है, राष्ट्र–भाव के नीचे दबा हुआ खिसक–खिसक कर आता हुआ सा प्रेम है, जो वस्तुतः प्रेम रस के संचारी रूप में अनुभूत होता है।'' चतुर्वेदी जी की प्रारंभिक रचनाओं में आध्यात्मिक अनुभूति के भी दर्शन होते हैं। इनकी आध्यात्मिक भावना में निर्गुण भक्ति, सगुण भक्ति और रहस्य भावना का प्रभाव दिखाई देता है, किन्तु इसकी रचनाओं का मुख्य स्वर राष्ट्रप्रेम ही है।

साहित्य–दिग्गज डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी का कथन भी यहाँ विचारणीय है– 'कविवर माखनलाल चतुर्वेदी की नवीन राष्ट्रीय भावना को महान गौरव और पूजा की महिमा देने वाली कविताओं से भी भावी वैयक्तिकतावादी कवियों का मार्ग प्रशस्त हुआ। आजकल लोग इन कविताओं को भूल गये हैं, परंतु सत्य यह है कि इन्होंने और इन्हीं जैसे अनेक कवियों ने उस वैयक्तिकता–प्रधान काव्य की भूमि तैयार की जिसे छायावाद कहा जाता है और जो आज हिन्दी कविता का गौरव स्वीकार किया जाने लगा है।' इस प्रकार राष्ट्रीय भावधारा के छायावादी कवि माखनलाल के भीतर के कवि, योद्धा, विचारक, प्रेमी तथा भक्त सबके सब एक ही लक्ष्य की ओर चलते हैं और साधना की आग में पिघलकर सभी कवि हो जाते हैं। कविता में उनकी अभिव्यक्ति, उनकी कविता, माखन जैसी कोमल, मधुर और पवित्र हो गयी।

टिप्पणी

पुष्प की अभिलाषा : मूल पाठ

चाह नहीं, मैं सुरबाला के
गहनों में गूँथा जाऊँ,
चाह नहीं, प्रेमी–माला में
बिंध प्यारी को ललचाऊँ,

चाह नहीं सम्राटों के शव पर
हे हरि डाला जाऊँ,
चाह नहीं देवों के सिर पर
चढ़ूँ भाग्य पर इठलाऊँ

मुझे तोड़ लेना वनमाली!
उस पथ में देना तुम फेंक!
मातृ भूमि पर शीश चढ़ाने,
जिस पथ जावें वीर अनेक।

1.3.1 पुष्प की अभिलाषा : व्याख्या

1. चाह नहीं, मैं सुरबाला के गहनों में गूँथा जाऊँ,
चाह नहीं, प्रेमी–माला में बिंध प्यारी को ललचाऊँ,
चाह नहीं सम्राटों के शव पर हे हरि डाला जाऊँ,
चाह नहीं देवों के सिर पर चढ़ूँ भाग्य पर इठलाऊँ,

सन्दर्भ : प्रस्तुत पंक्तियाँ माखनलाल चतुर्वेदी द्वारा रचित कविता 'पुष्प की अभिलाषा' से उद्धृत हैं। इनकी यह अमर कविता स्व. गणेशशंकर विद्यार्थी द्वारा कवि के जेल से छूटते समय दिये गये संदेश के रूप में लिखी गयी थी तथा तत्कालीन समय की प्रतिष्ठित हिंदी पत्रिका 'प्रताप' के 10 अप्रैल 1922 के अंक में प्रकाशित हुई थी। इस कविता की रचना चतुर्वेदी जी ने बिलासपुर जेल–यात्रा के दौरान की थी।

प्रसंग : इन पंक्तियों में कवि ने पुष्प को माध्यम बनाकर अपनी राष्ट्र–भक्ति और स्वातंत्र्य–चेतना को वाणी दी है। कवि ने एक 'फूल' की इच्छा को माध्यम बनाकर अपनी अभिव्यक्ति की है।

व्याख्या : कवि कहते हैं कि आमतौर पर फूल देवी–देवताओं के गले का हार बनते हैं, प्रेमी–माला के रूप में प्रयुक्त होते हैं, सम्राटों के शव पर सजाने के काम आते हैं, देवों के शीश पर चढ़ाये जाते रहे हैं और ऐसा करते हुए वे अपने भाग्य पर इठलायें या गर्व करें। ऐसी उनकी चाह नहीं है अर्थात् फूलों के इस्तेमाल की बनी–बनायी धारणा या चलन को स्वयं फूलों के द्वारा ही ख़ारिज किया गया है और उनकी वास्तविक अभिलाषा को आगे की पंक्तियों में बताया गया है।

2. मुझे तोड़ लेना वनमाली!
उस पथ में देना तुम फेंक!
मातृ भूमि पर शीश चढ़ाने,
जिस पथ जावें वीर अनेक।

टिप्पणी

सन्दर्भ : यह माखनलाल चतुर्वेदी द्वारा रचित कविता 'पुष्प की अभिलाषा' से उद्धृत है। इनकी यह अमर कविता स्व. गणेशशंकर विद्यार्थी द्वारा कवि के जेल से छूटते समय दिये गये संदेश के रूप में लिखी गयी थी तथा तत्कालीन समय की प्रतिष्ठित हिंदी पत्रिका 'प्रताप' के 10 अप्रैल 1922 के अंक में प्रकाशित हुई थी। इस कविता की रचना चतुर्वेदी जी ने बिलासपुर जेल के दौरान की थी।

प्रसंग : इन पंक्तियों में पुष्प की अभिलाषा को व्यक्त किया गया है अर्थात् आजादी के संग्राम के दौर में एक लघु–पुष्प भी वीरों और बलिदानियों के लिए अपना सर्वस्व न्योछावर कर सकता है, उसकी प्रबल इच्छा को इन पंक्तियों में व्यक्त किया गया है।

व्याख्या : कवि के अनुसार पुष्प की एकमात्र अभिलाषा यह है कि भारत माता की आजादी की लड़ाई लड़ने वाले वीर जिस रास्ते से गुजरें उसे वहीं फेंक दिया जाये। पुष्प की इस अभिलाषा से स्पष्ट है कि वह गहनों में गूँथने, माला में बँधने सम्राटों के शव पर बिखरने और देवों के सिर पर चढ़ने के बजाय आज वीरों के सम्मान में (जो मातृभूमि पर अपना सिर तक कटाने को तत्पर हैं) लोटने की इच्छा रखता है। इस तरह इन पंक्तियों के माध्यम से कवि ने देश पर मर–मिटने वाले वीरों को तमाम देवी–देवताओं से श्रेष्ठ बताते हुए देश की जनता को आजादी की लड़ाई में शामिल होने का आह्वान किया है।

चतुर्वेदी जी के काव्य का मुख्य स्वर राष्ट्रीयता है। उनकी कविताओं में स्वातंत्र्य प्रेम एवं राष्ट्र प्रेम की धारा बराबर प्रवाहित होती रही है। उन्होंने जहाँ भारतीय स्वतंत्रता संग्राम को अपनी वाणी और लेखनी से गति प्रदान की है वहीं उन्होंने स्वातंत्र्योत्तर काल में राष्ट्र–रक्षा और राष्ट्र–निर्माण का उद्घोष भी किया है। 'पुष्प की अभिलाषा' शीर्षक कविता का मूल प्रतिपाद्य आत्मत्याग और आत्मोत्सर्ग की भावना है। इस कविता में कवि ने 'पुष्प' को माध्यम बनाकर अपनी राष्ट्र–भक्ति और स्वातंत्र्य–चेतना को वाणी दी है। कवि ने एक पुष्प अर्थात् 'फूल' की इच्छा आकांक्षा को माध्यम बनाकर अपनी अभिव्यक्ति की है। कवि कहते हैं कि आज इस आजादी के संग्राम के दौर में एक लघु–पुष्प भी वीरों और बलिदानियों के लिए अपना सर्वस्व न्योछावर करने की इच्छा रखता है।

कवि कहते हैं कि आमतौर पर फूल देवी–देवताओं के गले का हार बनते हैं, प्रेमी–माला के रूप में प्रयुक्त होते हैं, सम्राटों के शव पर सजाने के काम आते हैं, देवों के शीश पर चढ़ाये जाते रहे हैं और ऐसा करते हुए अपने भाग्य पर इठलाते रहे हैं, परन्तु आज आजादी के इस उत्सव में उसकी भी इच्छा बदल गई है। उसकी एकमात्र अभिलाषा यह है कि भारत माता की आजादी की लड़ाई लड़ने वाले वीर जिस रास्ते से गुजरें उसे वहीं फेंक दिया जाय। पुष्प की इस अभिलाषा से जाहिर है कि वह तमाम देवी–देवताओं, प्रेमी–प्रेमिकाओं से बढ़कर आज वीरों के सम्मान में धूल में लोटने की इच्छा रखता है। प्रकारांतर से कवि ने देश पर मर–मिटने वाले वीरों को तमाम देवी–देवताओं से श्रेष्ठ बताते हुए देश की जनता को आजादी की लड़ाई में शामिल होने का आह्वान किया है। देश–प्रेम से सराबोर इस कविता में माखनलाल चतुर्वेदी की अपनी अभिलाषा छिपी है जो देश–पर मर मिटने वालों पर न्योछावार होने का भाव रखते हैं।

टिप्पणी

विशेष

1. पुष्प के माध्यम से देशप्रेम की अभिव्यक्ति।
2. किसी राजनेता की अपेक्षा देश के लिए निःस्वार्थ प्राण–उत्सर्ग करने में गौरव का भाव।
3. भाषा सरल खड़ी बोली।
4. वीर रस।
5. ओज गुण।
6. अनुप्रास एवं पुनरुक्तिप्रकाश अलंकार।

1.3.2 काव्यगत विशेषताएँ एवं राष्ट्रीय चेतना

बहुमुखी प्रतिभावान माखनलाल चतुर्वेदी के व्यक्तित्व का सबसे उज्ज्वल, प्रबल एवं जाज्वल्यमान रूप उनके कवि–व्यक्तित्व में निर्झरित होता है। राष्ट्रीय कवि नाम से विख्यात माखनलाल चतुर्वेदी की कविताओं का मंत्रोच्चार बलिदान का संकल्प और उनका राष्ट्रीय सांस्कृतिक अनुष्ठान है। उनकी रचनाओं में उदात्त राष्ट्रीय भावना है, साथ ही साथ छायावादी काव्य की भावसुषमा भी है।

माखनलाल को राष्ट्रीय भावधारा के सबसे श्रेष्ठ और हिन्दी के प्रथम कवि के रूप में मानने वाले समीक्षक नन्ददुलारे वाजपेई के अनुसार 'जब अनेक कवि जीवन के प्रति निराशाओं को व्यक्त करने लगे थे तब भी चतुर्वेदी जी की मैंने एक भी रचना नहीं देखी जिसमें इस प्रकार के विकल्प आ गये हों। उन्होंने करिश्मा कर दिखाया है। विश्व–साहित्य में देश–प्रेम की रचनाओं का इतना बड़ा ठोस रूप नहीं दिखाई देता। मैंने जो कुछ देखा–सुना है, उसके आधार पर मैं कह सकता हूँ कि इस तरह का राष्ट्रीय काव्य भारत की अपनी विशेषता है और यदि भारतीय काव्य में राष्ट्रीय कविता की एक कोटि बन गयी है, एक संप्रदाय बन गया है, तो उसका श्रेय चतुर्वेदी को ही है। भारत में भी ऐसा कोई कवि नहीं जिसने देश को केन्द्र में रखकर ऐसे विशाल राष्ट्रीय साहित्य का निर्माण किया हो। यहाँ राष्ट्रीयता से मेरा तात्पर्य सामयिक काव्य से नहीं, सांस्कृतिक काव्य से है।' इससे माखनलाल की राष्ट्रीय कविताओं का सामान्य रूप हमारे सम्मुख आता है।

माखनलालजी की राष्ट्रीय काव्यधारा में क्रांतिकारी उत्साह, त्याग और बलिदान की भावना, संघर्ष की उत्कंठा और जनता की विजय में अखंड आत्मविश्वास है। उनके काव्य ने साधारण पाठकों को ही नहीं, तरुण क्रांतिकारियों को भी प्रभावित किया। साम्राज्यवादी दमन से निडर होकर संघर्ष करने वाले नौजवानों की एक पूरी पीढ़ी माखनलाल की कविताएँ गुनगुनाती हुई अपने अनुशासन और आत्मबल को दृढ़ कर चुकी है। ऐसी सफलता विरले ही कवियों को मिलती हैं। उपुर्यक्त सभी गुणों से युक्त समस्त लोगों को प्रभावित करने में समर्थ उनकी विख्यात कविता है 'पुष्प की अभिलाषा', कहा जाता है कि सरदार भगतसिंह को भी इसे गुनगुनाते सुना है। यह देखिए–

चाह नहीं, मैं सुर–बाला के गहनों में गूँथा जाऊँ।
चाह नहीं, प्रेमी–माला में बिंध प्यारी को ललचाऊँ।

चाह नहीं, सम्राटों के शव पर, हे हरि, डाला जाऊँ।
चाह नहीं, देवों के सिर पर चढ़ूँ, भाग्य पर इठलाऊँ।
मुझे तोड़ लेना, वनमाली, उस पथ में तू देना फेंक,
मातृभूमि पर शीश चढ़ाने जिस पथ जावें वीर अनेक।

टिप्पणी

कितना महान और श्रेष्ठतम भावबोध का प्रवाह इसमें है। मातृभूमि के लिए सब कुछ उत्सर्ग करने का विशाल और मानवीय संवेदनाओं से पूर्ण विद्रोही, क्रांतिकारी भावविह्वल मन यहाँ पूर्ण रूप से प्रस्फुटित होता है।

साहित्य–दिग्गज डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी का कथन भी यहाँ विचारणीय है– 'कविवर माखनलाल चतुर्वेदी की नवीन राष्ट्रीय भावना को महान गौरव और पूजा की महिमा देने वाली कविताओं से भी भावी वैयक्तिकतावादी कवियों का मार्ग प्रशस्त हुआ। आजकल लोग इन कविताओं को भूल गये हैं, परंतु सत्य यह है कि इन्होंने और इन्हीं जैसे अनेक कवियों ने उस वैयक्तिकता–प्रधान काव्य की भूमि तैयार की जिसे छायावाद कहा जाता है और जो आज हिन्दी कविता का गौरव स्वीकार किया जाने लगा है।' इस प्रकार राष्ट्रीय भावधारा के छायावादी कवि माखनलाल के भीतर के कवि, योद्धा, विचारक, प्रेमी और भक्त सबके सब एक ही लक्ष्य की ओर चलते हैं और साधना की आग में पिघल सभी कवि हो जाते हैं। कविता में उनकी अभिव्यक्ति, उनकी कविता, माखन जैसी कोमल, मधुर और पवित्र हो गयी।

माखनलाल चतुर्वेदी की राष्ट्रीय चेतना

जहाँ तक कविता में राष्ट्रीयता अथवा राष्ट्रीय कविता का सम्बन्ध है, डॉ. सुधीन्द्र ने लिखा है कि जिस कविता में समग्र 'राष्ट्र' की चेतना प्रस्फुट हो, वह राष्ट्रीय कविता है। इससे स्पष्ट है कि राष्ट्र के रूप पर राष्ट्रीय कविता का स्वरूप अवलंबित है। राष्ट्र के रूप को आपने भूमि, जन और जन–संस्कृति से प्रदर्शित किया है; जिसके अनुसार भौगोलिक एकता, जनगण की राजनैतिक एकता और सांस्कृतिक एकता तीनों का समावेश किन्हीं विशेष परिस्थितियों में आवश्यक–सा हो जाता है। डॉ. सुधीन्द्र के उस विचार के परिप्रेक्ष्य में यदि तनिक विचार करें तो लगता है कि कहीं राष्ट्रीय कविता सीमागत परिधि में बाँधती तो नहीं गई है? क्योंकि कम से कम कविता में तो राष्ट्र भौगोलिक सीमा से बँधा नहीं रहता, वह निरंतर विश्वोन्मुखी होना चाहता है। आलोच्य कवि का भी प्रायः यही मत है– जहाँ राष्ट्र कवि के सामने न रहकर उसके हृदय में अभिहित रहता है। उनके मत में 'राष्ट्र का भूगोल अलग चीज़ है और ख्याल (विचार) अलग चीज़ है। सांस्कृतिक और मानवीय तत्वों की उपस्थिति में राष्ट्र का स्वरूप–निर्धारण कर दे। वे कहते हैं कि 'राष्ट्र के माने उस मिट्टी, आकाश और धन के नहीं होते, जिस पर बसा, छाया और... एकत्रित है; (प्रत्युत) उस वचन और कृति के माने राष्ट्र होते हैं, जो उसके निवासियों के जीवन से निकलती है, उन्मेष बनकर आती है और इतिहास बनकर ठहर जाती है। यही कारण था कि उन्होंने राष्ट्र को आराध्य की भाँति अपने भीतर पाया और उसे व्यक्तिवादी भावना के माध्यम से ही परखा। दिनकर के शब्दों में, "देशभक्ति इनके लिए परोपकार का प्रतिमान नहीं, आत्म–विकास का ही माध्यम है। इसी प्रकार उपासना उनके लिए केवल आत्मा की ही नहीं, शरीर की भी सम्पत्ति है। शरीर और मन एवं अस्तित्व के सारे उपकरणों को उन्होंने एक ही आराध्य के चरणों पर न्योछावर कर दिया है।" वही आराध्य उनके मन की दुनिया में वृन्दावन का गोपेश

टिप्पणी

एवं चर्म चक्षु के सामने 'हिमकिरीटिनी' का मानचित्र बन जाता है।' फिर; जहाँ तक राजनैतिक एकता से कविता, विशेषकर राष्ट्रीय कविता, का सम्बन्ध है, निश्चय ही उस राजत्व अथवा भावी राज्यत्व की सीमा में आने वाली कविता में उसके प्रति गौरव की भावना विद्यमान रहती है। आलोच्य कवि चतुर्वेदीजी भी लिखते हैं कि किसी 'राष्ट्र' के झंडे और विधान से बढ़कर उसके पास और क्या होता है, जिस पर गर्व किया जा सके और इस गर्व की निरन्तर सुरक्षा की भावना से बढ़कर और क्या हो सकता है जिसे हम राष्ट्रीयता कहें। सत्य ही, राष्ट्रीय कविता छोटे–बड़े सभी को साथ लेकर चलती है, ताकि आत्म–गौरव बनाम राष्ट्र–गौरव का एकत्व बिखरने न पाये। राष्ट्रीय कविता का तीसरा अनिवार्य स्वरूप सांस्कृतिक एकता निश्चय ही सामयिक परिस्थितियों से प्रेरित तीव्र राष्ट्र–प्रेम का आश्रय लेती है। आलोच्य कवि की परतन्त्रीय वातावरण से रचित रचनाएँ तत्कालीन सामयिकता और तीव्र राष्ट्र–प्रेम को आश्रय देती सी प्रतीत होती हैं।

सामयिकता का स्वर

चतुर्वेदीजी की राष्ट्रीय कविता, भूमि, जन और जनसंस्कृति को पीछे छोड़ आगे बढ़ गयी है। सामयिकता का जो स्वर उनकी राष्ट्रीय कविता में लसित जान पड़ता है, उसका कारण बताते हुए प्रो. श्रीकांत जोशी कहते हैं कि 'अपने समय की घटनाओं को उन्होंने प्रत्यक्ष रूप में भोगा था, किन्तु उनकी विशेषता यह है कि वे इन सामयिक क्षणों को भी असामयिक अभिव्यक्ति दे सके हैं। यही कारण था कि उनकी अनेकादि राष्ट्रीय कविताओं में ऐसी विशेषताएँ पाई जाती हैं कि वे सार्वभौमिक और सार्वकालिक प्रतीत होती हैं। सामयिकता से परे राष्ट्रीय कविता को ले जाते हुए चतुर्वेदीजी स्पष्टतया कहते हैं कि– 'कविता, राष्ट्रीय कविता, केवल वह नहीं है जिसमें खून, फाँसी, कारागार और काले पानी का वर्णन हो, किन्तु वह भी है जो विभिन्न राष्ट्रों की भाषा–वहनों से ऊँचा उठकर बोल सके।' विश्व–बन्धुत्व, एशिया की गोपियों की रासलीला आदि का वर्णन उनकी राष्ट्रीयता को सार्वभौमिक विकास के पथ पर ला बिठाता है।

व्यक्तिवादिता एवं वैश्विकता का समन्वय

अनेकादि स्थलों पर चतुर्वेदी की राष्ट्रीयता व्यक्तिवादी भावनाओं से प्रश्रित प्रतीत होती है। ऐसा आभास होने लगता है कि समूह विशेष का प्रतिनिधित्व करने वाला कवि एकांकी हो गया है, किन्तु इस संदेह की पृष्ठभूमि में वस्तुस्थिति यह रही होती है कि कवि जन–जन की आकांक्षाओं को युग–दृष्टा की भाँति व्यक्तिवादिता के आध्यानुसार इस अनूठेपन से प्रस्तुत करता है कि पाठक स्वयं रसानुभूति की अवस्था में पहुँचकर नायक बन बैठे और ओजस्वी होकर अपने कर्तव्य, कर्म तथा अवस्था को पहचान सके। इस प्रकार की स्थिति कवि की स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व की रचनाओं में अधिक है। स्वतंत्रता के पश्चात् की रचनाओं में तो कवि स्वभावतः ही सांस्कृतिक अथवा विश्व पथिक हो गया है।

चतुर्वेदी ने कभी भी राष्ट्र और अन्तर्राष्ट्र के बीच भेद–विभेद नहीं माना है। सच यह है कि जिस प्रकार मन्दिर में मूर्ति भगवान की सीमा नहीं बन जाती, बल्कि उस सीमा से उस तक पहुँचा जाता है जो सीमा से परे है; उसी प्रकार राष्ट्र अन्तर्राष्ट्र की सीमा नहीं, किन्तु उस तक पहुँचने का माध्यम है। यही कारण है कि चतुर्वेदीजी की अधिकांश रचनाएँ किसी भी राष्ट्र की राष्ट्रीय चेतना को वहन कर सकने में समर्थ हैं। उनकी 'पुष्प की अभिलाषा' में किसी भी राष्ट्र–पुष्प की अभिलाषा का सार्वभौमिकत्व है।

टिप्पणी

राष्ट्र–प्रेम का सम्बन्ध भौगोलिक ही नहीं है अपितु मूलतः वह एक भावनात्मक सम्बन्ध है। ऐसी अवस्था में राष्ट्रीयता का सृजन, किन्हीं भौगोलिक तत्वों की उपस्थिति में न होकर, मानवीय–मूल्यों के आधार पर होता है। ममत्व देने वाली 'माँ' और पोषण करने वाली 'भू' के प्रति मानव की प्रेम–कहानी सदियों पुरानी है। अन्तर में आश्रित इस 'प्रेम' की मूलक 'माँ' अथवा 'भू' पर यदि कोई दृष्टि डालता है, बलात् अधिकार का प्रयत्न करता है अथवा अनजानी अचैतन्य की स्थिति में उस पर अधिकार कर लेता है, तो एक ओर हृदय में आक्रोश का सृजन होता है और दूसरी ओर उस अनमोल मोह के प्रति 'प्रेम' का स्फुरण होता है, बीते क्षणों के मधुर दृश्यों का परिवर्तन बेबसी के क्षणों में 'करुणा' का सृजन करता है। बेबस 'करुणा' अन्तर्द्वन्द्व के सीखचों के 'समर्पण' कर दिया बताती है। समर्पण की इच्छुक अकुलायी मानवता सर्वस्व 'त्याग' करने को तत्पर हो जाती है। इस पर भी इन भावनाओं के क्रीड़ा–प्रहार से जब उसे अपना अभीष्ट प्राप्त नहीं होता, उसके लिए एकमात्र अवलम्ब रह जाता है अपने अल्प की उस आराध्य के चरणों में उत्सर्ग कर देना, बलिपथ का मार्ग अपनाकर बलिदानी हो जाना। चतुर्वेदीजी ने भी अपने अभीष्ट को प्राप्त करने के लिए इन मानवीय मूल्यों का सहारा लिया था। परिणाम यह हुआ कि संघर्ष की स्थिति में प्रणय का भाव रागात्मक रूप में और प्रलय का भाव समर्पण के रूप में उनकी अप्रतिम सूझों के माध्यम से व्यक्त हुआ है।

कोई भी राष्ट्र अपनी स्वतंत्रता की स्थिति में ही अन्य राष्ट्रों से मैत्री–सम्बन्धों की कल्पना कर सकता है और वह भी उस अवस्था में, जबकि वह सबल हो, परतन्त्र अथवा निर्बल राष्ट्रों को सदैव बड़े अथवा सबल राष्ट्रों से दबकर रहना पड़ता है– उनकी तूती को स्वीकारना पड़ता है। विश्व की राजनीति में साँस लेने के लिए यह आवश्यक है कि राष्ट्र प्रथमतः स्वतंत्र और सबल हो। चतुर्वेदीजी ने यह भली–भाँति जान लिया था, अतः स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद वे पहले सबल होने का मंत्रोच्चार करते हैं, तदन्तर शान्ति की नीति अपनाने का आह्वान। चीन के प्राणघाती आक्रमण पर कवि की वाणी का उमड़ा ज्वार इसी बात का संकेत करता है। सच तो यह है कि स्वतंत्रता प्राप्त करना उतना कठिन नहीं, जितना उसका अस्तित्व बनाये रखना है। इसीलिए चतुर्वेदीजी की राष्ट्रीयता 'राष्ट्र' की स्वतंत्रता के अस्तित्व को खतरा पाने की आशंका मात्र से सचेत हो उठती है।

चतुर्वेदी की राष्ट्रीयता कायरों की राष्ट्रीयता नहीं है। आवश्यकता पड़ने पर वह कालक्रमानुसार बदलती रहती है, किन्तु रहती है हमेशा ही सचेत और जीवन्त। चतुर्वेदीजी की राष्ट्रीयता को अभीष्ट के प्रति समर्पण की महत् प्रेरणा आध्यात्मिक धरातल की उच्चतम सीमा पर ही प्राप्त होती है, जबकि उसका विकास प्रकृति की बलि भावना से प्राप्ति के रूप में होता है। प्राध्या. श्रीकांत जोशी के मतानुसार 'सामान्य धरातल पर वे समस्त राष्ट्र को एक योद्धा के रूप में देखते हैं और आध्यात्मिक धरातल पर वे उसे एक समर्पणशील भक्त के रूप में स्वीकार करते हैं, जो अपना सर्वस्व दे देना चाहता है और कुछ भी शेष रखना नहीं चाहता।' स्पष्ट ही चतुर्वेदीजी की राष्ट्रीयता आध्यात्मिक भाव–भूमि पर साँसे लेती हुई प्रकृति में पल्लवित और विकसित होती है। काल क्रमिक दृष्टिकोण के परिप्रेक्ष्य में चतुर्वेदीजी की राष्ट्रीयता को दो भागों में देखा जाता है– पारतंत्र्यकालीन और स्वातंत्र्योत्तरकालीन राष्ट्रीयता।

टिप्पणी

समय के प्रवाह में परिवर्तन अपनी दिशा बदलता रहता है। उसकी सीमा है। आने वाले क्षण घटना में इतिहास बन जाते हैं। समय की क्रूरता से परिस्थितियाँ रूदन करती हैं, किन्तु आने वाले क्षण चौकन्ने होकर नया इतिहास गढ़ने लगते हैं। भारत–भूमि ने अपनी लम्बी आयु में अनेक परिवर्तन देखे। हर्ष और शोक की तरंगों के बीच अनेकों शासन बने–मिटे। कई–कई बाह्य आक्रमणों से प्रताड़ित भारत भू अतिथि को दुग्ध पिलाते–पिलाते अंततः अंग्रेजों के दुष्चक्र में उलझ ही गई। भारतीय जनता के क्रियाकलापों पर विदेशी–सभ्यता का रंग क्या चढ़ने लगा, वाणी की स्वतंत्रता का अधिकार ही छिन गया। कुछ बोलो तो डर, कुछ करो तो डर, जैसा निर्देश मिले भेड़ गति से चलते रहो।

प्रकृति परिवर्तनशीला है। कब तक अंग्रेजों की तूती बोलती? विद्रोह के अंकुर 'राष्ट्रीयता' की ओट में फूटने लगे। ब्रह्म समाज, आर्य समाज और उनके साथ लोकमान्य तिलक की चिन्तनधारा से प्रवाहित हो युग–दृष्टा कवि का काव्य व्यष्टि से समष्टि की ओर बढ़ने लगा। जिन परिस्थितियों में कवि रहा, जिन कष्टों को उसने अनुभव किया, जिन अत्याचारों से समाज चीत्कार उठा, सहज ही उनसे उसका काव्य घटनाओं को जीवन देने लगा।

राष्ट्र–प्रेम के परिप्रेक्ष्य में संस्कृति के प्रति अनुराग का भाव जाग्रत हुआ, जिससे संस्कृति के विकास तथा सुरक्षा हेतु उत्सर्ग भावना का पोषण आवश्यक था ही। डॉ. सद्गुरुशरण अवस्थी के शब्दों में 'भारत का युगधर्म राष्ट्रीयता है। अनेक युग प्रतिनिधि के रूप में माखनलालजी अद्वितीय रहे।'

राष्ट्र को स्वतंत्रता की सीढ़ियों तक पहुँचाने में सहयोग देने वाली निर्बल उँगलियों से लिखी गई सशक्त कविताओं के सृष्टा माखनलाल चतुर्वेदी जी की कविताओं में कल्पना और भावना के निठल्ले रोजगार से परे कवि का स्वयंगत संघर्षशील कर्मठ व्यक्तित्व ही प्रतिबिम्बित होता रहा है। शरीर से वृद्ध, किन्तु साहित्य में निरंतारुण्य का रूप लेकर पराधीनता के अंधकार में यदि वे 'गाँधीजी' के प्रभाव से अछूते रहे होते तो संभवतः भगतसिंह और चन्द्रशेखर आजाद की तरह आज उनका स्मरण किया जाता। कहने का तात्पर्य यह है कि उनके प्रारम्भिक काव्य में विद्रोही स्वर अत्यधिक विद्यमान था। यही कारण था कि उनकी 'पुष्प की अभिलाषा' शीर्षक कविता को काकोरी के वीर और भगतसिंह जैसे क्रांतिकारी अक्सर गुनगुनाया करते थे। उनके काव्य में छिपी आक्रोश–अग्नि की कुछ तपन प्रस्तुत है–

नगर गड़ गये, महल गड़ गये
गड़ीं किलों की मीनारें;
मन्दिर मसजिद गिरजे सबकी
धसी भूमि में दीवारें;
हीरा मोती धसतें
धसतें जरी और कमरवाव;
धसते देखे राजमुकुट
गढ़ महलों के महराव।
बलिहीन जो हुआ कि

बैठा भू पर आसन मारे;
खा जाते हैं उसको
मिट्टी के ढेले हत्यारे।

(हिमकिरीटिनी, पृ. 53–54)

टिप्पणी

चतुर्वेदीजी का स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व का समूचा काव्य तत्कालीन राजनीतिक, धार्मिक एवं सामाजिक परिस्थितियों से प्रभावित रहा है। कवि अपने युग का दृष्टा रहता है। ठीक इसी के परिप्रेक्ष्य में उन्होंने अपनी मौलिक सूझ से युग को परखकर अपने काव्य में जकड़ा पाया था। अतः कृष्ण को बंधन मुक्त करवाने की दशा से उनका प्रारम्भिक काव्य राष्ट्रगत सीमा में ही बँधा रहा। इस तरह के काव्य में उनकी भावलहरी प्रायः साम्राज्यवाद की प्रबल विरोधी दिखलाई देती है। अंग्रेजों के अत्याचारों, सामाजिक वर्ग–भेद आदि से प्रताड़ित उनकी वाणी में आक्रोश का स्वर प्रबलतम है। सच तो यह है कि वे पराधीनता के क्षणों में राष्ट्र की स्वतंत्रता के अतिरिक्त कुछ सोच ही नहीं सके, किन्तु वह समय व्यतीत हो जाने पर भी उनका यह काव्य अब तक तरोताजा और किसी भी राष्ट्र का प्रतिनिधित्व करने में सक्षम है। इस काल में स्वर सामयिक होते हुए भी समयातीत–सा प्रतीत होता है। यहाँ कविता प्रेरणा और प्रतीकगत आवरण में सतह की गहराई तक पहुँचकर अपना अर्थ बदल देती है।

सन् 1914 में लिखी यह कविता स्पष्ट ही बतलाती है कि कवि देश की दुर्दशा से किस भाँति अकुला उठा था–

क्यों पड़ीं परतन्त्रता की बेड़ियाँ?
दासता की हाय हथकड़ियाँ बड़ीं।
न्याय के 'मुँह बन्द', फाँसी के लिए–,
कंठ पर जंजीर की लड़ियाँ पड़ीं।

(समर्पण, 50)

कवि का परिचय जब महान् क्रान्तिकारी लोकमान्य तिलक से हुआ, तो अकुलाहट के स्वर को आक्रोश का सामीप्य मिला। परिणाम यह हुआ कि आजादी का अभिलाषी पथिक आलोच्य कवि युग–ध्वनि को अपनी वाणी में आत्मसात कर ललकार उठा–

और बेमूछों के बलिपन्थी।
आ इस घर में आग लगा चल
ठोकर दें, कह युग चलता चल;
युग के सर चढ़, तू चलता चल।

(समर्पण, 8)

धीरे–धीरे कवि पर तिलक की गरमहाट का रंग चढ़ने लगा। पराधीनता की अवस्था में कवि बेचैन हो गया। आक्रोश का ज्वार उमड़ा इतना कि पृथ्वी को दबोचने के प्रसंग में खून और पानी को परखने का अवसर आ गया–

द्वार बलिका खोल चल, भूडोल कर दें,
एक हिम गिरि एक सिर का मोल कर दे,
मसलकर, अपने इरादों सी, उठाकर,
दो हथेली हैं कि पृथ्वी गोल कर दे?

रक्त है? या है नसों में शुद्ध पानी।
जाँच कर, तू सीस दे देकर जवानी?

(जवानी, हि. कि., 112)

टिप्पणी

जो मातृभूमि के लिए जी सके, उसके लिए त्याग कर सके, अपने आप को समर्पित कर सके, उसी की मातृभूमि है, मातृभूमि का अधिकार वही रख सकता है–

मातृभूमि है उसकी, जिस
को उठ जीना आता है।

(हि. कि., 54)

प्रबल विरोध की अवस्था में कृष्ण मन्दिर जाने का क्रम चला। जेल की कालीरात में कोकिल की पुकार चतुर्वेदीजी के हृदयमें बसे हुए मधुर कवि और आत्माभिमानी सैनिक दोनों को एक साथ जगाकर यह कहने के लिए बाध्य कर देती है कि–

क्या? देख न सकती जंजीरों का गहना?
हथकड़ियाँ क्यों? यह ब्रिटिश–राज का गहना,
कोल्हू का चर्रक चूँ? जीवन की तान,
गिट्टी पर अंगुलियों ने लिखे गान?
हूँ मोट खींचता लगा पेट पर जूआ,
खाली करता हूँ ब्रिटिश अकड़ का कुआँ।
दिन में करुणा क्यों जगे, रुलाने वाली,
इसलिए रात में गज़ब ढा रही आली?

(हि. कि. 17)

गतिशील समय के प्रहारों में कवि का परिचय गाँधीजी से होता है और अनायास ही कवि कह उठता है–

'भाई–बहन', हाँ कल ही सुना
अहिंसा, आत्मिक बल का नाम।

(हि. कि., 92)

और, परिणाम यह निकलता है कि कवि सशस्त्र क्रान्ति का मार्ग छोड़कर अपने आपको सत्य और अहिंसा के मार्ग पर ला बिठाता है। किन्तु यहाँ भी राष्ट्र–देवता के चरणों में समर्पण का भाव वैसा ही स्थिर और दृढ़ है–

श्री स्वतंत्रता की वेदी पर,
प्राण पुष्प होकर निश्चय,
देख, चढ़ा, पूजा हित लायो,
नयनों की गंगा का जल?

(हि. कि., 109)

स्पष्ट ही, कवि पर गाँधीजी का अत्यधिक प्रभाव है, जिसका सत्यापन निम्नांकित पंक्तियों से सहज ही सम्पन्न है–

ले कृषक–सन्देश, कर बलि वंदना
ध्वज तिरंगे की करो सब अर्चना

घूमता चरखा लिये, गिरि पर चढ़ो
ले अहिंसा–शास्त्र आगे ही बढ़ो।

(हि. कि., 28)

टिप्पणी

कवि परतन्त्रता की स्थिति में भी विश्व की शांति चाहता है। विभिन्न वादों के विवर्तन से, आपसी कलह और मतभेदों से विश्व की शांति भंग होते देख कवि कहता है कि–

शीतल अंगारों से विश्व
जलाने क्यों जाते हो?

(हि. कि., 102)

कवि तत्कालीन सामाजिक और राजनैतिक भेदभाव से अत्यधिक दुःखी है। मेरे–तेरे की भावना पर तीव्र प्रहार करते हुए कवि बलिपंथियों का आह्वान करता है कि वाद–विवादों में क्यों उलझते हो? सबका उद्देश्य तो एक ही है, भारतभूमि को स्वतंत्र कराना। फिर भला यह सब क्यों है?–

जिसके रवि ऊगे जेलों में,
संध्या होवे वीराने में,
उसके कानों में क्यों कहने
आते हो यह घर मेरा है?

(हि. कि., 142)

'मील का पत्थर' कविता में जीवन के वैषम्य का संकेत देते हुए कवि कहता है–

अपनी कोमल अंगुलियों से,
मेरी निष्ठुरतान लजाओ,
मन्दिर की मूरत में गढ़कर
मत मेरा उपहास सजाओ।
फूलों को जो फूल रखो, तो
पत्थर–पत्थर रहने देना।

(हि. कि., 128–29)

बलिपथ के अंगारे ने राष्ट्र के उद्धार हेतु सूली का पथ अपनाया है, जहाँ वह मन्दिर के निर्माण में नींव का पत्थर होने हेतु यत्नशील है–

सूली का पथ ही सीखा हूँ, सुविधा सदा बचाता आया,
बलिपथ का अंगारा हूँ, जीवन–ज्वाल जगाता आया।
मैं पहल पत्थर मन्दिर का, अनजाना पथ जान रहा हूँ,
गढ़ूँ नींव में, अपने कंधों पर मन्दिर अनुमान रहा हूँ।

(अमर राष्ट्र, हि. कि. 116–119)

बलिपंथी कवि एक ओर अबला की कलाइयों पर चूड़ियों की जगह भुजदंड बाँधते और तीरकमान से सिंगार करने की बात कहता है, तो दूसरी ओर पाश्चात्य सभ्यता में अन्धे हुए भारत के भावी विद्वानों पर व्यंग करते हुए कहता है–

बूट चाहिए, सूट चाहिए
काला हेट और नेक टाय

टिप्पणी

केन चाहिए, चेन चाहिए
घड़ी सहित, फिर डेली चाय
देखो इन पर लिखा न होवे
कहीं 'मैड इन हिन्दुस्तान।'
क्योंकि हमीं तो हैं इस बूढ़े
भारत के भावी विद्वान। (माता, पृष्ठ 44)

बलिदानी धर्म और जात–पात से सर्वथा दूर रहते हैं। कवि का अपना मत है कि एक ही रोटी खाने वालों में और पानी पीने वालों से भला भेद कैसा?–

मन्दिर में हो चाँद चमकता; मसजिद में मुरली की तान।
मक्का हो चाहे वृन्दावन होते आपस में कुर्बान।।
सूखी रोटी दोनों खाते, पीते थे रावी का जल।
मानों मल धोने को पाया, उसने अहा उसी दिन बल।
(युग चरण, 55)

कवि का आराध्य कृष्ण (राष्ट्र) सीखचों (पराधीनता) में आबद्ध है, अतः कवि सब कुछ यहीं पाता है–

मैं तो तीर्थ–राज इन सीखचों में पाता हूँ
(युग चरण, 55)

और, कवि प्रथमतः अपने आराध्य को स्वतंत्र करने का प्रयत्न करता है, प्रियतम से मिलने की उत्कट अभिलाषा है–

कंठ भले हों कोटि–कोटि, तेरा स्वर उनमें गूँजा,
हथकड़ियों को पहन राष्ट्र ने पढ़ी क्रांति की पूजा
(हिम. कि., 50)

सिर पर प्रलय, नेत्र में मस्ती
मुट्ठी में मन–चाही,
लक्ष्य मात्र मेरा प्रियतम है,
मैं हूँ एक सिपाही। (हिम. कि., 50)

और अंततः जब कवि को पुष्प, बलि–पथ में बिछाने से भी सन्तोष नहीं होता तब वह 'पर्णत की अभिलाषा' में इस तरह मुखर हो उठता है। यहाँ प्रकृति की समर्पणशीला प्रवृत्ति की सुन्दरता दृष्टव्य है–

जगती तल का मल धोने को
भू हरी–हरी कर देने को
गंगा–जमुनाएँ बहा सकूँ
यह देना, पैर लगाना मत।
(समर्पण, 38)

स्पष्ट ही, चतुर्वेदीजी के पारतंत्र्य–कालीन काव्य में राष्ट्रीयता का रुझान साम्राज्यवाद बनाम अंग्रेजी–शासन के विरोध तथा बलि पथ की ओर ही प्रथमतः रहा है। तदनन्तर वे राजनैतिक दलों के मत वैभिन्य और सामाजिक ऊँच–नीचता के पनप

टिप्पणी

रहे वादों (यथा–पूँजीवाद, साम्यवाद आदि) का भी कहीं–कहीं स्पष्ट विरोध करते से प्रतीत होते हैं। यही भाव स्वातंत्र्य कालीन काव्य में प्रमुख रूप से दृष्टिगोचार होते हैं। चतुर्वेदीजी की इस काल की कविताओं में जेल जीवन और तत्कालीन घटनाओं के प्रकाश में स्वतंत्रता–संग्राम की गतिविधियों का चित्रण, संस्मरण उद्‌बोधन आदि के साथ ही उनके प्रमुख काव्य तत्व बलिदान एवं समर्पण के रूप में राष्ट्र–भक्ति का सुन्दर समन्वित चित्रण प्राप्त होता है। वे प्रथमतः तिलक की विचारधारा से प्रभावित होते हैं, तदन्तर गाँधी के इस तरह शिष्य बन जाते हैं कि स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भी वे गाँधीवाद को अपनाये रखते हैं, किन्तु उनकी वाणी में तिलक–सा आक्रोश और गाँधी–सी शान्ति अहिंसा विद्यमान रहती ही है। उनका काव्य–तिलक, गाँधी, माखनलाल है।

...और, देखते–देखते करोड़ों भारतवासियों की सुखद आशा और बलिपंथियों की साधना का प्रतीक लहराता 'तिरंगा' लाल किले की ऊँची प्राचीर पर सन् '47 की 14 अगस्त की अर्द्धरात्रि के बाद पराधीनता के एक लम्बे साये से हटकर स्वतंत्रता के उन्मुक्त उजियाले में और भी अधिक लहराने लगा। स्वाधीनता–यश की पूर्णाहुति का शंख–नाद हुआ और भारत को स्वाधीन जान, सारा विश्व जैसे बन्धन–मुक्त हो गया मानकर चतुर्वेदी गा उठे–

मुक्त गगन है, मुक्त पवन है, मुक्त साँस गरबीली।
लाँघ सात लाँबी सदियों को हुई शृंखला ढीली।।

पराधीनता के क्षणों में चतुर्वेदीजी के काव्य में हमें एक सैनिक की–सी निर्भीकता, साहस और लगन के साक्षात् दर्शन होते हैं, जबकि स्वाधीनता–प्राप्ति के बाद अपने काव्य में वे एक प्रगतिशील शान्तिवादी भारत के निर्माणकर्ता, अध्यात्मवादी और उदार प्रकृति–प्रेमी के रूप में दिखलाई देते हैं। जहाँ तक राष्ट्रीयता का सम्बन्ध है, उनकी विचारधारा स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद एकदम बदल गई है। 'कवि द्वारा स्वीकृत जीवन–मूल्य जो स्वतंत्रता के पूर्व हमारी बहुत बड़ी आवश्यकता थे, स्वतंत्रता के पश्चात् हमारे अस्तित्व की अनिवार्यता बन गये। बलिदान और आक्रोश के तीव्र स्वर स्वतंत्रता के पश्चात् सुख, शांति और समृद्धि का उद्‌घोष करने लगे। गाँधीवादी–अहिंसा से प्रभावित कवि भारत–राष्ट्र की अखण्डता और स्वतंत्रता के चिर–स्थैर्य को महत्व देने के साथ ही एशिया और विश्व के अन्य पराधीन देशों को भी स्वतंत्रता का उपहार देने की बात सोचने लगा। अवश्य ही इन सबके लिए एक सुदृढ़ शक्ति–संचयन की आवश्यकता कवि के विचारों में स्थान प्राप्त कर चुकी थी। इसीलिए 'स्वतंत्रता के तत्काल पश्चात् अपनी एक विख्यात कविता में उन्होंने स्पष्ट घोषणा की कि यदि भारत को अपनी स्वतंत्रता को सदैव सुरक्षित रखना है तो उसे रणराता होना पड़ेगा, पूरब के प्रलयी–पन्थी के रूप में जीवन–पथ स्वीकार करना होगा और बलि की गौरवमयी परम्पराओं को सतत जीवन देते रहना होगा–

उठ रणराते, वो बलखाते, विजयी भारतवर्ष,
नक्षत्रों पर बैठे पूर्वज, माप रहे उत्कर्ष;
उठ पूरब के प्रहरी, पश्चिम जाँच रहा घर तेरा?
साबित कर, तेरे घर पहले होता विश्व–सबेरा।

विश्व में शान्ति की स्थापना शक्ति के अभाव में हो ही नहीं सकती और फिर, शक्तिशाली राष्ट्रों की कृपा का नाम अन्तर्राष्ट्रीयता तो है नहीं? इसीलिए कवि पहले

शक्ति–संचय और बलि–पथ को महत्व देता है, ताकि संसार के राष्ट्र एक दूसरे से मिल सकें, भारत का शांतिमय–प्रभुत्व संसार पर पुनः छा सके।

टिप्पणी

चलो, पंथी चलो, बलिके द्वारा बोलो।
बन्द है संसार वह संसार तोलो।।

(युगचरण, पृष्ठ 43)

मिले रक्त से रक्त, मने अपना त्यौहार सलौना।
मरा रहे अपनी बलि से माँ की पूजा का दौना।।

(युगचरण, पृष्ठ 49)

सजग विश्व जन–गण सुनता है,
जग के स्वर पर स्वर दो रानी।
छा जाओ भारतीजगत पर
प्रतिभामयी देश की वाणी।

(युगचरण, पृष्ठ 62)

स्वतंत्रता के पश्चात् कवि का बलिदान–वाद केवल राष्ट्र और उसकी शांति तक सीमित नहीं करता। वह नहीं चाहता है कि विश्व में 'महाभारत' की पुनरावृत्ति पुनः हो, अतः वह स्पष्ट घोषणा करता है कि–

आज कोई विश्व–दैत्य तुम्हें चुनौती दे
और महाभारत न हो पाये सखे। सुकुमार
बलवती अक्षौहिणियाँ विश्व–नाश करें
'शास्त्र मैं लूंगा नहीं' की कर सको हुँकार।
किन्तु प्रण की, प्राण की बाजी जगे उसदिन
हो कि इस भू–भाग परही जिस किसी का वार।
तब हथेली गर्विताएँ कौटिशिरगण देख
विजय पर हँसकर मनावें लाड़ला त्यौहार।
आज प्राण वसुन्धरा पर यों बिके से हैं
मरण के संकेत जीवन पर लिखे से है।

(वेणुलो, गूँजेधरा, पृष्ठ 100)

शीश माँगती धरा, शीश माँगता गगन ताकि बलिदान एक सीमा में न बँध जाये। आज बलिदान का औचित्य राष्ट्र विशेष के लिए ही नहीं, अपितु समग्र विश्व के लिए है। चाहे भारत की प्राच्य गरिमा हमें विश्व–हितकारी कार्यों के लिए प्रेरित करे, किन्तु हम इन्हीं सीमाओं में न बँधें। कवि का मत है कि हम जहाँ कहीं भी रहें– शीश हथेली पर उठाकर तत्पर और प्रस्तुत रहें।

वेदों की अर्चना, तपों की धुन, गीता का गान लिये
जी में प्रभु को लिये, शीश पर आजादी का मान लिये।
रणवेदी पर, बलि–वेदी पर, श्रमवेदी पर जहाँ रहें
लेकर शीश हथेली पर उठ आये, बोलो कहाँ रहें?

(वेणुलो, गूँजेधरा, पृष्ठ 100)

टिप्पणी

'राष्ट्र–प्रेम' का महत्व तभी जान पड़ता है, जब हम अपनी जन्मभूमि को छोड़ अन्यत्र जाते हैं, किन्तु देश के लिए यह सीमा–बन्धन आवश्यक है? कवि उत्तर देता है, नहीं। सम्पूर्ण भू–भाग भी तो राष्ट्र हो सकता है जहाँ नभ के मुकुट, गगन के झण्डे, रण–नायक सेनानी हों और सुख, प्रेम तथा समृद्धि स्वच्छन्दता के साथ पानी की तरह ऊपर से नीचे की ओर प्रवाहमान हों–

मैं बाहर विदेश जाता हूँ,
तब मैं विरह जान पाता हूँ।
भीतर–भीतर रो लेता हूँ,
बाहर देश–देश गाता हूँ।

(बीजुरी काजल आंज रही, पृष्ठ 111)

किसका ग्राम, अरे किसका घर
बोल उठा है पत्थर–पत्थर।

(बीजुरी काजल... पृष्ठ, 117)

नभ के मुकुट, गगन के झण्डे, रणनायक सेनानी
पतित न हो, वरदान बाँट तू, ऊगे तेरा पानी।

(बीजुरी काजल,... 17)

इसी बात को यदि स्पष्टतया चतुर्वेदीजी के शब्दों में कहें तो कहना होगा कि 'स्वतंत्रता के पूर्व की बात छोड़ो, स्वतंत्रता के बाद तो हमारी राष्ट्रीयता की कसौटी हमारी अन्तर्राष्ट्रीयता की है।' सचमुच चतुर्वेदीजी ने अपने इस मत का निर्वाह एक बड़ी सीमा तक किया भी है। इसी के परिप्रेक्ष्य में एशिया की गोपियों के प्रसंग को विस्मृत नहीं किया जा सकता। अतः पंक्तियों को यहाँ उद्धृत किया जा रहा है–

आज यमुना के स्वरों फिर वेणु बोली,
एशिया की गोपियों ने वेणि खोली,
हिम–शिखर को लाँघ भू ने बोल बोले,
निपन से पाताल व्याप्त रहस्य खोले।

(युग चरण, 42)

यह रहस्य आगे खुलकर 'विश्व की मिट्टी एक है' पर स्थिर हो जाती है। यहाँ कवि का आध्यात्मिक स्वरूप निखर उठता है। सर्वत्र उसे यशोदानन्दन ही दिखलाई देता है–

मिट्टी में रोटी उगी मिट्टी में से कपड़ा,
मिट्टी से संकल्प उठे हैं, मिट्टी से मानवता,
मिट्टी है निर्माणक तरणी, मिट्टी है बलशाली,
मिट्टी सीस चढ़ाओ, मिट्टी से बलिदान उठेंगे,
मिट्टी से हरियातें, मिट्टी से ईमान उठेंगे।
मिट्टी के वृत पर प्राणाधिक अगणित गान उठेंगे,
'मैया मैं नहीं माटी खाई' कह भगवान उठेंगे।

(समर्पण, पृष्ठ 98–99)

इन उद्धरणों के परिप्रेक्ष्य में यह स्पष्ट ही कहा जा सकता है कि कवि विश्व के समस्त भू–भाग को समान दृष्टि से ही निरखता है और इस भाँति दृष्टि में मिट्टी, रोटी और राष्ट्र में कोई विशेष अन्तर नहीं है।

टिप्पणी

स्वतंत्र भारत का नव–निर्माण

स्वतंत्रता–प्राप्ति के उमंग भरे वातावरण में प्रजातन्त्रीय शासक–वर्ग द्वारा जनता को आश्वस्त किया गया कि वास्तविक शासक तो अपना अमूल्य मत देने वाले जनसाधारण ही हैं। मन्त्री–उपमन्त्री–राष्ट्रपति आदि सभी प्रजा के अनन्य सेवक हैं। यहाँ राजा–रानी का कोई भेद नहीं है। सभी स्वतंत्रता के दावेदार और रक्षक बलिदानी हैं–

देश के 'शूच्यग्र' पर कुरबान हो, उठती जवानी,
देश की मुस्कान पर बलिदान 'राजा' और 'रानी'।

(युगचरण, 34)

फिर, एक ओर बलिपथों में गीता रस बोल रही है, तो दूसरी ओर प्रगतिशीलता की दौड़ में भारत विभिन्न–मार्गों से आगे बढ़ रहा है–

बाँधों, सड़कों, निर्माणों में बोल रहे हैं सपने,
ये संकल्प कारखानों के कुछ उनके कुछ अपने।

(मरण ज्वार, 40)

इन्हीं सुखद आनन्ददायिनी परिस्थितियों में कवि मग्न होकर 'भारत' की वन्दना में गा उठता है–

वेदों से बलिदानों तक जो होड़ लगी
प्रथम प्रभात किरण से हिम में जोत लगी
उतर पड़ी गंगा खेतों खलिहानों तक
मानों आँसू आये बलि–महमानों तक
सुखकर जग के क्लेश
प्यारे भारत देश।

(वेणुलो, गूँजेघरा, 77)

अचानक राष्ट्र के राजनैतिक वातावरण में स्वार्थ मेनका का आगमन होता है, 'कुर्सी' के झगड़ों के मध्य भ्रष्टाचार पनपने लगता है। समाज के बीच बनी अमीर–गरीब की खाई और अधिक विस्तृत होने लगती है। सपनों के महल टूटते देख अनैतिकता का प्रसार परख कवि बेचैन हो उठता है। वर्षों से सोया सिंह जैसे पुनः गरज उठा है–

भुला दी सूलियाँ जैसे जमाने में
सभी कुछ तालियों से पालिया तुमने।
बढ़े रस्ते, बड़े पुल, बाँध क्या कहने
बड़े ही कारखाने हैं, इमारत हैं।
जरा पोंछूँ इन्हें, आँसू उभर आये
बड़ापन यह न छोटों की इबारत है।

(आधुनिक कवि भाग–6, पृष्ठ 148)

कुर्सी की छीनाझपटी पर कवि बेबस है, किन्तु देश की आन्तरिक पृष्ठभूमि में व्याप्त पदलोलुपता, स्वार्थपरता, काला–बाजारी आदि अनैतिक कार्यों पर कवि द्वारा कसे गये व्यंग्य हृदय में ज्वालामुखी फोड़ देने वाले हैं–

टिप्पणी

कुछ वर्षों के शिशु–शासन पर हम बूढ़े चढ़ बैठे ऐसे
अपनी इस अनमोल, मीठे रूपये रूपये, मीठे सपने कैसे–कैसे।

(आधु. कवि भा–6, 144)

मेरा लड़का, तेरा नाती, उसकी भावज, उसकी बेटी
तू सच्चा है, पक्ष रहित है, अन्धे तू परोस दे रोटी।
श्वेत धुले, उजले कपड़ों से आपके पापों को मत ढाँको।

(आधु. कवि भाग–6, 144–145)

इधर कुर्सी की छीना–झपटी, भाई भतीजावाद और भ्रष्टाचार है तो दूसरी ओर समाज में बसे अबोध बेबस–नागरिकों का यथार्थ चित्रण कवि की सूक्ष्म अन्तर्दृष्टि ने किया है–

गले में दरिद्रय नागन, कमर में चिथड़ा नहीं है,
दान 'दानों' की करें निधि पेट में टुकड़ा नहीं है।

(युग चरण, 3)

वादों–प्रतिवादों के फेर में मानव उलझता जा रहा है तो नवीनता के नाम पर भेंट में मिली हड़ताल (और अब तो घेराव भी), तोड़–फोड़ का क्रूरक्रन्दन, तभी तो कवि कहता है–

अन्धड़ था, अंधा नहीं, उसे था दीख रहा,
वह तोड़–फोड़ मनमाना हँस–हँस सीख रहा।

(समर्पण, 74)

परिस्थितियों के प्रभाव से आलोच्य कवि के काव्य में क्रमिक परिवर्तन होता जा रहा है। जहाँ तक उसकी अन्तर्राष्ट्रीयता का सम्बन्ध है, वह सजग है, किन्तु राष्ट्र की आन्तरिक पृष्ठभूमि में हो रही उथल–पुथल से भी वह चिंतित है। इसी बीच भारत की आन्तरिक राजनीति पर परोक्षरूपेण विदेशी प्रभाव अपना प्रभुत्व छोड़ने लगा था। जिस राजनैतिक सीमा संकट को भारतीय राजनीति ने सन् 1962 में प्रत्यक्ष मूर्त होते हुए देखा, उसकी ओर इस दृष्टा कवि ने सन् 1942 से ही संकेत देने शुरू कर दिए थे। उसे लग रहा था कि विदेशी शक्तियाँ शक्ति संचय कर रही हैं और उत्तरी सीमा की हवाएँ बिगड़ती जा रही हैं–

नगाधिप में हवा कुछ छन रही है,
नगाधिप में हवा कुछ बन रही है।
किरन का एक माला कह रहा है,
हिमालय पर ज्वाला हो रहा है।

(समर्पण, 66)

अमेरिका और रूस के बीच लटके हुए भारत की त्रिशंकु स्थिति भी चतुर्वेदी जी की दृष्टि से ओझल नहीं थी। उन्होंने सन् 1953 में यह प्रश्न किया था–

टिप्पणी

केशर के बागों में क्या, अमरीका अंगारे बोवेगा?
क्या–स्वर्गोपम धराधीश काश्मीर पीढ़ियों रोवेगा?
डालर, हँसियाँ और हथौड़ा–दो चक्की के पाटों पिसकर,
क्या एशिया चूर्ण कर देगा, कोटि–कोटि शिर कोटि–कोटि कर।

(समर्पण, पृष्ठ 60)

कवि का संदेह साकार होकर रहा। 1962 के वातावरण में भारत पर आक्रामक चीन का अकल्पनीय आक्रमण हुआ। राष्ट्र के अस्तित्व पर संकट पाकर कवि की ओजस्वी वाणी पुनः प्राणवान हो उठी। कवि की विकासोन्मुख भावनाओं में पल रहा 'राष्ट्र' और उसकी 'राष्ट्रीयता' की भावना पुनः अस्तित्व की परिधि में आ गये। यह आवश्यक इसलिए रहा था (होगा) कि तत्कालीन परिस्थितियों में नागरिक राष्ट्र को एक मूर्त रूप में देख सके और उसी अखण्डता की सुरक्षा हेतु सन्नद्ध हो जाये। इस महत 'हेतु' के परिप्रेक्ष्य में कवि अपनी ओजस्वी वाणी से युगों की तरुणाई के दिन लाता है, शत्रुओं के दाँत खट्टे कराने की बात कहता है, प्रलय रागिनी के स्वर में सीमा से शिरवालों को ढुँढ़वाता है–

बूढ़ों की क्या बात युगों की तरुणाई के दिन आये हैं
चट्टानों, खन्दकों, पहाड़ों की खाई के दिन आये हैं।
चलो सजावो सैन्य, समय की भरपाई की भरपाई के दिन आये हैं।
आज प्राण देने के, युग की तरुणाई के दिन आये हैं।

(मरण ज्वार, 51)

फेंक तराजू रे बलिपंथी, सिर कैसे सौदे सट्टे।
बहुत किये मीठे मुँह जग के अब उठ आज दाँत कर खट्टे।

(मरण ज्वार, 50)

चलो उठो अब प्रलय–रागिनी गादें, सागर को दहला दें,
आज चीन को भारत से भिड़ने का थोड़ा मजा चखा दें।

(मरण ज्वार, 52)

कौन रहा, हिमवान नहीं तो
क्या वैभव यदि दान नहीं तो
मेरी मातृभूमि दुनिया में
क्यों कर सहे कसाले?
बलिपंथी प्रण से मतवाले
सीमा ढूँढ़ रही सिरवाले।।

(मरण ज्वार, 54)

इस प्रकार हम देख रहे हैं कि चतुर्वेदीजी परिस्थितियों का आकलन कर काव्य का निर्माण करते रहे हैं। स्वतंत्रता के पूर्व भारतीयों को आत्मगौरव की प्रेरणा देना आवश्यक था, किन्तु स्वतंत्रता के पश्चात् वे राष्ट्रीयता से अन्तर्राष्ट्रीयता की ओर बढ़े। युगदृष्टा के सदृश्य भारत की आंतरिक राजनैतिक स्थिति को देखते, परखते रहे, किन्तु संकटकालीन स्थिति में जैसे ही उन्होंने देखा कि भारतीय स्वतंत्रता और

टिप्पणी

अखण्डता को खतरा है, वे पुनः अपने धरातल पर आ गये। राष्ट्र–देवता की रक्षा में सन्नद्ध हो गये। वे जानते थे कि 'कौन रहेगा राष्ट्र नहीं तो? 'गाँधीजी के वे कट्टर अनुयायी थे, किन्तु वे मानते थे कि उनकी राष्ट्रीयता बनाम तत्कालीन अहिंसागत नीति कायरों की नहीं है, तभी तो चीन–आक्रमण के समय अपनी रुग्णशैया पर से कहा था– ''इस समय समस्त हिन्दुस्तान का एक ही लक्ष्य है, एक ही महा संकल्प है और वह यह है कि आक्रामकता से एक–एक इन्च जमीन वापस ले ले। जमीन वापस लेना ही पर्याप्त प्रतीत नहीं होता, हमें तो आगे बढ़कर अपनी अ्ट सामर्थ्य का ऐसा मूर्त रूप उपस्थित करना है जिसे देख लेने पर दुनिया की कोई भी नज़र हमारी ओर उद्दण्ड होकर कभी न उठ सके।... आज गाँधीजी की शिक्षाओं को समय की कसौटी पर कस कर दिखा देना है और सिद्ध कर डालना है कि हमारी शान्ति–प्रियता कायरता नहीं है।"

स्पष्ट ही, चतुर्वेदीजी स्वतंत्रता के पूर्व राष्ट्र का स्वतंत्र अस्तित्व बनाने में सन्नद्ध रहे, किन्तु राष्ट्र का अस्तित्व पाने के बाद उसकी सुरक्षा में एक जागरूक सैनिक– से डटे रहे। साथ ही, विश्व के अन्य पराधीन राष्ट्रों को स्वतंत्र देखने की इच्छा लिये वे परस्पर शांति के मार्ग पर चलने के अभिलाषी भी रहे।

अपनी प्रगति जाँचिए

3. माखनलाल चतुर्वेदी ने अपनी किस कविता में जेल की कठिन जिन्दगी का चित्र खींचा है?

   (क) कैदी और कोकिला (ख) हिमतरंगिणी

   (ग) युवा चरण (घ) समर्पण

4. माखनलाल चतुर्वेदी ने इनमें से किसका संपादन नहीं किया?

   (क) प्रभा (ख) प्रताप

   (ग) कर्मवीर (घ) सरस्वती

1.4 वाक्य संरचना और अशुद्धियाँ

शब्दों का समूह मिलकर पद बनता है तथा पदों के समूह को ही हम वाक्य कह सकते हैं। ध्यातव्य है कि पदों का परस्पर ठीक संबंध ही शुद्ध वाक्य–रचना होता है। भाषा के सम्यक ज्ञान के लिए वाक्य का समुचित परिचय आवश्यक है। वाक्य व्यवस्था के अंतर्गत वाक्य के स्वरूप, वाक्य निर्माण की प्रक्रिया, वाक्य के विविध प्रकार और वाक्य–विश्लेषण का अध्ययन किया जाता है।

वाक्य : स्वरूप और परिभाषा (वाक्य–संकल्पना)

वाक्य भाषा की सबसे महत्वपूर्ण सार्थक इकाई है। सामान्यतः ध्वनि को तथा 'शब्द' को भाषा की प्राथमिक इकाई कहते हैं किंतु ये दोनों भाव और विचार को पूर्णतः अभिव्यक्त तथा संप्रेषित नहीं कर पाते। वाक्य द्वारा ही मानवीय मनोभावों और विचारों की सम्यक अभिव्यक्ति होती है तथा वाक्य ही भाषा के संप्रेषण का मूलाधार है। साधारणतः सार्थक

टिप्पणी

शब्द–समूह को 'वाक्य' कहा जाता है किंतु वाक्य सिर्फ सार्थक शब्द–समूह मात्र नहीं होता, वह भाव और विचार की पूर्ण अभिव्यंजना का गठन है। पहले वाक्य को प्रायः अर्थ का बोध कराने वाला शब्द–समूह ही माना जाता था किंतु अब यह धारणा बदल चुकी है।

वाक्य लक्षण

वाक्य के स्वरूप के संबंध में भारतीय एवं पाश्चात्य मनीषियों ने विस्तार से विचार करते हुए उसको परिभाषित भी किया है। भारतीय वैय्याकरण तथा दार्शनिकों ने वाक्य की व्यापक व्याख्या की है।

उदाहरणस्वरूप, पतंजलि ने वाक्य के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि ''आख्यात साव्यकारक विशेषण वाक्यम्''।

(अर्थात् क्रिया {आख्यात}, अव्यय, कारक तथा विशेषण से युक्त {पद} वाक्य होता है।

आचार्य विश्वनाथ के शब्दों के ''वाक्यं स्याद् योग्यताकांक्षा– सक्तियुक्तः पदोच्चयः।''

अर्थात् योग्यता, आकांक्षा तथा आसक्ति से युक्त पदों के समूह को वाक्य कहते हैं। भर्तृहरि ने अपने पूर्ववर्ती मतों का समन्वय करते हुए वाक्य के निम्नलिखित लक्षण माने हैं–

1. क्रियावाचक शब्द को वाक्य कहते हैं।
2. क्रियावाचक कारकादि के समूह को वाक्य कहते हैं।
3. क्रिया, कारक आदि के समूह में रहने वाली जाति वाक्य है।
4. क्रिया आदि के अखंड शब्द–समूह अथवा स्फोट को वाक्य कहते हैं।
5. क्रिया आदि का विशिष्ट क्रम वाक्य है।
6. क्रिया आदि के अखंड बौद्धिक समन्वय को वाक्य कहते हैं।
7. आकांक्षा युक्त प्रथम पद वाक्य कहलाता है।
8. आकांक्षा युक्त पृथक–पृथक संपूर्ण पदों को वाक्य कहते हैं।

भारतीय वैय्याकरणों का एक वर्ग वाक्य को अखंड स्फोट मानता है। इसके अनुसार वाक्य में पद, पद्यांश अथवा वर्ग आदि का विभाजन नहीं किया जा सकता। इस मत को 'स्फोटवाद' कहा जाता है।

दार्शनिकों ने भी वाक्य के स्वरूप पर विस्तार से विचार किया है, उनमें नैय्यायिकों ने स्फोटवाद का विरोध करते हुये वाक्य में वर्णों और पदों के अस्तित्व को स्वीकार किया है। उनका मत है कि वक्ता द्वारा उच्चरित वर्णों या पदों का परस्पर संबंध जोड़ने पर ही श्रोता उनका अर्थ समझता है।

वाक्य के संबंध में मीमांसकों के दो मत अधिक प्रसिद्ध हैं।

(1) अन्विताभिधानवाद तथा (2) अभिहितान्वयवाद।

प्रथम मत के प्रतिपादक प्रभाकर थे। उनके अनुसार पहले पद आकांक्षा, आसक्ति तथा योग्यता के कारण परस्पर अन्वित होते हैं, फिर वे वाक्य बनते हैं। पद की कोई पृथक सत्ता नहीं होती। वाक्य ही सब कुछ होता है।

टिप्पणी

मीमांसकों के दूसरे मत अभिहितान्वयवाद के प्रतिपादक कुमारिल भट्ट थे। वे पदों का पृथक–पृथक अस्तित्व स्वीकार करते थे। उनके अनुसार पदों के योग से ही वाक्य बनता है। पहले पद ही पदार्थों की प्रतीति कराते हैं फिर आकांक्षा, योग्यता एवं सन्निधि से युक्त होकर पद वाक्यार्थ का बोध कराते हैं।

1.4.1 वाक्य के अंग

वाक्य के दो खंड होते हैं– उद्देश्य और विधेय। जिसके संबंध में कुछ कहा जाए उसे उद्देश्य कहते हैं। उद्देश्य के विषय में जो कुछ कहा जाए उसे विधेय कहते हैं।

वाक्य के दो अंग होते हैं– उद्देश्य और विधेय।

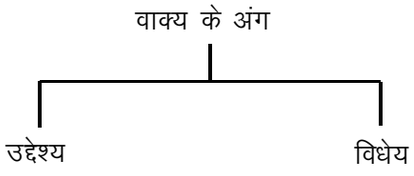

उद्देश्य

उद्देश्य में कर्ता और कर्ता का विस्तार होता है। संज्ञा या संज्ञा के स्थान में प्रयुक्त होने वाले शब्द कर्ता होते हैं– जैसे–

संज्ञा– (1) लक्ष्मण दौड़ता है।

सर्वनाम–(2) वह गाता है।

कर्ता को स्पष्ट करने वाले विशेषण आदि कर्ता–विस्तार कहलाते हैं, जैसे– चंचल बालक गिर पड़ा। इस वाक्य में 'चंचल', वाक्य कर्ता 'बालक' का विस्तार है।

विधेय

वाक्य में क्रिया, पूरक, कर्म, कर्मविस्तार, क्रिया–विशेषण आदि विधेय विस्तारक होते हैं, जैसे–

क्रिया	–	वह 'पढ़ता' है।
कर्म	–	तू 'गोली' चलाता है।
पूरक	–	मैंने उसे 'अपना' समझा।
कर्म–विस्तार	–	राम ने 'तीक्ष्ण' बाण मारे।

निष्कर्ष यह है कि कर्ता तथा कर्ता विस्तार उद्देश्य होता है और शेष विधेय होता है।

अन्वय (अन्विति)

वाक्यगत शब्दों का परस्पर लिंग, वचन, पुरुष आदि के अनुसार जो संबंध होता है, उसे 'अन्वय' या 'मेल' कहते हैं। इसी को अन्विति कहते हैं, जैसे– राधा लिखती है। इस वाक्य में 'लिखना' क्रिया के लिंग, वचन, पुरुष कर्ता के अनुसार है, क्रिया और कर्ता का अन्वय

है। अन्विति या मेल क्रिया और कर्ता का अन्वय है। अन्विति या मेल क्रिया का कर्ता से, सर्वनाम का संज्ञा से, संबंध का संबंधी से और विशेषण का विशेष्य से होता है।

पदक्रम

टिप्पणी

वाक्य द्वारा विवक्षित अर्थ को ठीक–ठीक प्रकट करने के लिए शब्दों को जो यथास्थान रखा जाता है, उसे पद–क्रम कहते हैं, जैसे– वह चावल पका रहा है। इस वाक्य में कर्ता आदि यथास्थान रखे हुए हैं इसलिए इस वाक्य का विवक्षित सामान्य अर्थ ठीक प्रकट हो रहा है।

सामान्य वाक्य में पहले कर्ता, फिर कर्म या पूरक और अंत में क्रिया रखी जाती है, यथा– छात्रा पत्र पढ़ती है।

1.4.2 वाक्य के प्रमुख तत्व एवं प्रकार

उपर्युक्त परिभाषाओं पर विचार करने के उपरांत, वाक्य के चार प्रमुख तत्व निर्धारित किये जा सकते हैं– आकांक्षा, योग्यता, सन्निधि और पदक्रम या व्यवस्था।

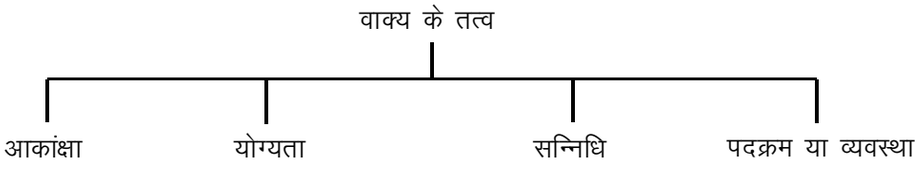

1. आकांक्षा– किसी शब्द को सुनकर उसके पूर्वापर संबंध को जानने की स्वाभाविक उत्सुकता को 'आकांक्षा' कहते हैं, जैसे– 'पक्षी' कहने से इसका पूर्ण अर्थ स्पष्ट नहीं होता। इसको सुनकर श्रोता इस शब्द के संबंध में और अधिक सुनने अथवा जानने का इच्छुक हो जाता है। कैसा पक्षी? कौन सा पक्षी? उसको क्या हुआ? आदि प्रश्न उसके मस्तिष्क में उभरते हैं। इस जिज्ञासा की तृप्ति 'पक्षी उड़ता है' या 'पक्षी खाता है' आदि पूर्ण वाक्यों को सुनकर ही होती है। वास्तव में, भाषा में विभिन्न शब्द अपने अर्थ की पूर्ण अभिव्यक्ति के लिए एक–दूसरे पर निर्भर होते हैं। वाक्य द्वारा ही ये पूर्ण रूप से सार्थक होते हैं अथवा अपने अर्थ को अभिव्यक्त कर पाते हैं।

2. योग्यता– पदों के परस्पर बाधा रहित अन्वय अथवा भाव प्रकट करने की क्षमता योग्यता कहलाती है। यह बाधा प्रायः दो प्रकार की होती है– (1) पदविन्यास की तथा (2) अर्थपरक। पदविन्यास की बाधा के अंतर्गत कर्ता, कर्म, लिंग, वचन और क्रिया आदि असंगतियाँ आती हैं। उदाहरण के लिए वाक्य 'राम जाती है' में 'राम' पुल्लिंग शब्द है अतः उसके साथ 'जाता है' क्रिया का प्रयोग होना चाहिए अन्यथा वाक्य में पदों का परस्पर अबाध अन्वय नहीं हो पाता। अतः अयोग्य पदों का प्रयोग वाक्य में नहीं किया जाना चाहिए।

3. सन्निधि– वाक्य में विभिन्न पदों के पारस्परिक संबंध तथा अर्थ को स्पष्ट करने के लिये उनमें एक सन्निधि या समीपता तथा व्यवस्था का होना अत्यंत आवश्यक है। इसके अभाव में विभिन्न पदों का समुचित अन्वय नहीं हो पायेगा तथा उसका अर्थ भी स्पष्ट नहीं हो सकेगा। उदाहरण के लिये सामान्यतः विशेषण विशेष्य पदों से पहले आते हैं, जैसे– 'वह बहुत अच्छा गाता है।' इस वाक्य में प्रत्येक पद अपने निश्चित क्रम में एक–दूसरे के निकट है, अतएव उसका अन्वय सरलता से हो जाता है। इन पदों के उच्चारण में अधिक समय नहीं लगाना चाहिये।

टिप्पणी

4. पदक्रम की व्यवस्था– प्रत्येक भाषा में, वाक्य–रचना का अपना एक निश्चित नियम होता है। इस नियम के अनुसार वाक्य में प्रयुक्त पदों की व्यवस्था रहती है। इस व्यवस्थित क्रम से वाक्य के अर्थ को समझने में सुविधा रहती है। इसके विपरीत, यदि वाक्य के अंतर्गत विभिन्न पदों में कोई सुनिश्चित क्रम या व्यवस्था नहीं होती तो विभिन्न पद अपने अभीष्ट अर्थ को ठीक प्रकार से व्यक्त नहीं कर पाते, जैसे– 'सुंदर लड़के हैं खेलते बाग में'। इस वाक्य में हिंदी वाक्य–रचना के अनुरूप पदों का क्रम न होने के कारण पदों का परस्पर अन्वय ठीक से नहीं हो पाता इसीलिये उसके अर्थ की भी पूर्ण अभिव्यक्ति अबाध रूप से नहीं हो पाती है।

वाक्य के भेद या प्रकार

प्रत्येक भाषा में वाक्य रचना की अपनी विशिष्टता होती है। संसार के विभिन्न भाषा–भाषी अपने–अपने ढंग से अपने भाव और विचार व्यक्त करते हैं। इसका प्रभाव उनकी वाक्य रचना पर भी पड़ता है। उदाहरण के लिए संस्कृत, हिंदी तथा अंग्रेजी की वाक्य पद्धति पर्याप्त भिन्न है। सामान्यतः वाक्य–भेदों के पाँच आधार माने जाते हैं– रचना, आकृति, अर्थ, क्रिया और रचना शैली।

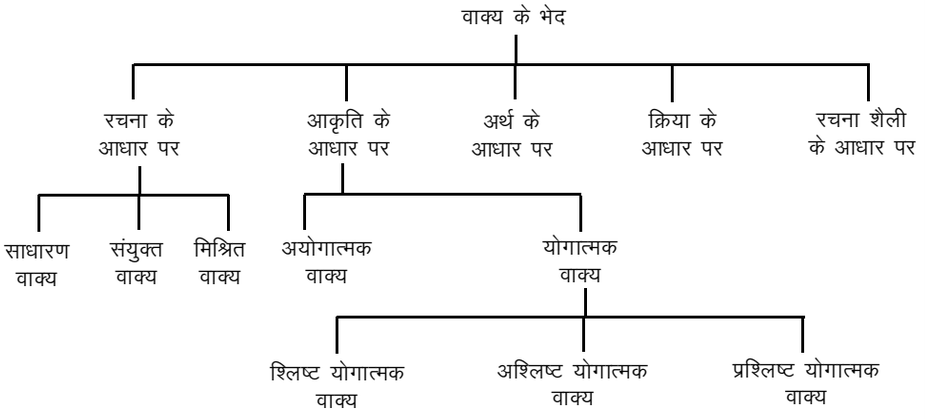

• रचना के आधार पर

व्याकरण संबंधी रचना के आधार पर वाक्य के तीन भेद किये जाते हैं– (क) साधारण वाक्य, (ख) संयुक्त वाक्य, (ग) मिश्रित वाक्य।

(क) **साधारण वाक्य**– जिस वाक्य में एक कर्ता और एक क्रिया अथवा एक उद्देश्य तथा एक विधेय होता है, ऐसे वाक्यों को 'साधारण वाक्य' कहते हैं। उदाहरण के लिये वाक्य 'गीता गाती है' में 'गीता' कर्ता अथवा उद्देश्य तथा 'गाती है' क्रिया अथवा विधेय है।

(ख) **संयुक्त वाक्य**– जिस वाक्य में अर्थ की दृष्टि से स्वतंत्र दो या दो से अधिक वाक्य समुच्चय वाचक अव्ययों से परस्पर जुड़े होते हैं, उनको 'संयुक्त–वाक्य' कहते हैं, जैसे– उषा गाती है, राम सुनता है और मोहन बाजा बजाता है। इस वाक्य में तीनों प्रधान वाक्य हैं जो परस्पर संयुक्त भी हैं।

(ग) **मिश्रित वाक्य**– इस प्रकार के वाक्य में एक प्रधान वाक्य तथा एक या कई आश्रित उपवाक्य होते हैं, जैसे– जो सज्जन हैं, वे किसी की निंदा नहीं करते और न ही किसी की निंदा सुनते हैं।

टिप्पणी

• आकृति के आधार पर

आकृति के वाक्य–विन्यास की दृष्टि से वाक्य के दो भेद किये जाते हैं– (1) अयोगात्मक वाक्य तथा (2) योगात्मक वाक्य।

(1) **अयोगात्मक वाक्य**– जिस वाक्य में प्रत्येक पद अपने में स्वतंत्र होता है अर्थात् उनमें किसी प्रकार की संबंध–तत्व संबंधी निर्भरता नहीं होती हैं, ऐसे वाक्य 'अयोगात्मक वाक्य कहलाते हैं।' इस प्रकार के वाक्य में व्याकरणिक संबंध शब्द या पद के वाक्य स्थान से निश्चित होते हैं। चीन, तिब्बती, बर्मी आदि भाषाएँ इसके प्रमुख उदाहरण हैं; जैसे–

ता लेन – बड़ा आदमी

लेन ता – आदमी बड़ा (है)

(2) **योगात्मक वाक्य**– जिन वाक्यों में संबंध तत्व के योग से विभिन्न पदों का निर्धारण होता है, उनको योगात्मक वाक्य कहते हैं। संबंध तत्व अथवा प्रत्यय आदि के आधार पर योगात्मक वाक्य के भी तीन उपभेद किये जाते हैं–

(क) **श्लिष्ट योगात्मक वाक्य**– इस प्रकार के वाक्य को 'विभक्ति–प्रधान वाक्य' भी कहा जा सकता है। इनमें पदों की रचना मुख्यतः विभक्तियों के योग से ही होती है। यह प्रत्यय अर्थतत्व अथवा प्रकृति के अभिन्न अंग हो जाते हैं। संस्कृत में यह प्रवृत्ति अधिक दृष्टिगत होती है।

(ख) **अश्लिष्ट योगात्मक वाक्य**– इस प्रकार के वाक्य में विभिन्न योजक पद से पूर्व, मध्य या अंत में पृथक से जुड़ते हैं। हिंदी तथा अंग्रेजी वाक्यों में यह प्रवृत्ति स्पष्ट परिलक्षित होती है; जैसे–

वह अपने घर गया।

(He went his home)

(ग) **प्रश्लिष्ट योगात्मक वाक्य**– जिस वाक्य में कई शब्दों के योग से एक सामाजिक पद बन जाता है अर्थात संपूर्ण पद ही वाक्य जैसा बन जाता है, ऐसे वाक्य को 'प्रश्लिष्ट योगात्मक वाक्य' कहते हैं। संस्कृत, लैटिन तथा दक्षिण अमेरिका की चेरोकी भाषा में यही प्रवृत्ति दृष्टिगत होती है; जैसे–

तत्वमसि–तत्+त्वम्+असि (वह तुम हो)

नाघोनिलिन (हमारे पास नाव लाओ)

• अर्थ के आधार पर

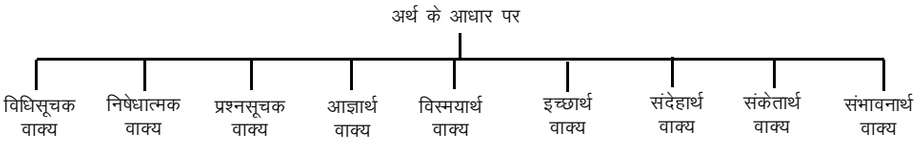

अर्थ, प्रयोजन या भाव के आधार पर वाक्य नौ प्रकार के माने जाते हैं–

(1) विधिसूचक वाक्य– वह जाता है।

(2) निषेधात्मक वाक्य– राम नहीं जाता।

टिप्पणी

(3) प्रश्नसूचक वाक्य– तुम क्यों नहीं जाते हो?

(4) आज्ञार्थ वाक्य– तुम शीघ्र जाओ।

(5) विस्मयार्थ वाक्य– अरे! वह सचमुच गया।

(6) इच्छार्थ वाक्य– तुम दीर्घायु हो।

(7) संदेहार्थ वाक्य– क्या वह यहाँ आयेगा भी?

(8) संकेतार्थ वाक्य– यदि वह आता तो मैं साथ जाता।

(9) संभावनार्थ वाक्य– हम जा सकते हैं।

• क्रिया के आधार पर

क्रिया के आधार पर वाक्य दो प्रकार के होते हैं– सकर्मक/क्रियायुक्त वाक्य और अकर्मक/क्रियारहित वाक्य।

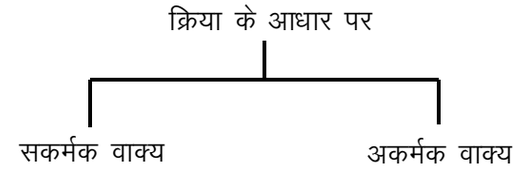

(क) **सकर्मक वाक्य**– इस प्रकार के वाक्यों में कोई क्रिया अवश्य होती है। अधिकांश वाक्य इसी श्रेणी के होते हैं, यथा–

'सीता गाती है', 'वह पढ़ता है', 'तुम सोते हो', आदि।

(ख) **अकर्मक वाक्य**– जिन वाक्यों में क्रिया का सर्वथा अभाव होता है, उनको 'अकर्मक वाक्य' (क्रियारहित वाक्य) कहते हैं। आश्चर्य, संदेह, प्रश्नसूचक वाक्यों में प्रायः क्रिया नहीं रहती। लोकोक्तियों तथा मुहावरों में बहुधा क्रिया का अभाव होता है; जैसे–

'चोर–चोर'! 'आग–आग!'

'जिसकी लाठी उसकी भैंस'

'हाथ कंगन को आरसी क्या'

• रचनाशैली के आधार पर

रचना शैली के अनुसार वाक्यों को तीन श्रेणियों में बांटा जा सकता है– 1. शिथिल वाक्य 2. समीकृत वाक्य 3. आवर्तक वाक्य।

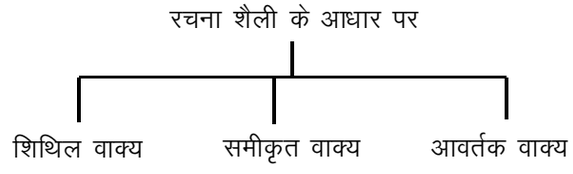

1. **शिथिल वाक्य**– शिथिल वाक्य वे होते हैं जिनमें वक्ता या लेखक एक के बाद दूसरी, दूसरी के बाद तीसरी बात बिना किसी बंधन के उन्मुक्त भाव से बोलता जाता है। ऐसे वाक्य अनलंकृत होते हैं, उदाहरणस्वरूप– 'एक समय जयपुर के

टिप्पणी

राजा जयसिंह थे। हम जिस समय की घटना लिख रहे हैं, उस समय राजपूत राजाओं के पास बड़ी शक्ति थी। जयसिंह ने दुनिया देखी थी और वे धनधान्य से पूर्ण थे, किंतु औलाद का सुख उन्हें नहीं मिल पा रहा था। इसके लिए उन्होंने विधि–विधानपूर्वक अनेक पूजा–पाठ किए और संतान के लिए प्रार्थना की।'

2. **समीकृत वाक्य**–समीकृत वाक्य वे कहलाते हैं जो संगति और संतुलन की स्वाभाविक मानवीय इच्छा की पूर्ति करते हैं, जैसे 'जैसे राजा तथा प्रजा', 'यतोधर्मस्ततोजय', 'विनाश काले विपरीत बुद्धि' और 'होनहार बिरवान के होत चीकने पात' आदि। कतिपय समीकृत वाक्य ऐसे भी होते हैं, जो वैषम्यबोधक होते हैं, जैसे– 'एक तो चोरी, ऊपर से सीना जोरी', 'कहाँ राम कहाँ रावण' और 'कहाँ राजा भोज कहाँ गंगू तेली' आदि। डॉ. देवेंद्रनाथ शर्मा ने समीकृत वाक्यों के संबंध में लिखा है। समीकृत वाक्यों के दो व्यावहारिक लाभ हैं–

   एक तो वाक्यों की रचना एक पद्धति पर होने से उन्हें याद करने में सुगमता रहती है और दूसरे उनसे मन में एक प्रकार का आनंददायक विस्मय होता है, उदाहरणार्थ– विद्वान निंदा करें चाहे स्तुति, चाहे मृत्यु आज हो जाए चाहे सैकड़ों वर्षों बाद, चाहे लक्ष्मी आए चाहे चली जाए किंतु जो धुन के पक्के हैं, वे कर्तव्य से कभी नहीं डिगते हैं।

3. **आवर्तक वाक्य**– आवर्तक वाक्य में आवृत्ति होती है और चरम सीमा अंत में आती है। इन वाक्यों में श्रोता या पाठक उत्सुकतावश लंबी प्रतीक्षा करता रहता है। चिर प्रतीक्षा के पश्चात ऐसे वाक्यों में मूल मंतव्य प्रकट होता है। इस तरह के वाक्य वक्ताओं व नेताओं की भाषा शैली में अधिक मिलते हैं, उदाहरणार्थ– 'यदि हम चाहते हैं कि हम बने रहें, हमारा महत्व कायम रहे, हमारा अस्तित्व और स्वाभिमान कायम रहे, हमारी जिंदगी के बचे–खुचे दिन सुख–चैन से बीत जाएँ, हमारी प्रतिष्ठा बनी रहे और हमारे जीवन में कभी कोई शत्रु न हो तो हमें चाहिए कि हम प्रेम, आत्मीयता और मानवता का संबल लेकर जीवन–यात्रा पर चलें।'

वाक्य विश्लेषण

वाक्य विश्लेषण अथवा विग्रह के अनुसार भी वाक्यों के भेद होते हैं।

वाक्य स्थित शब्द ही 'पद' कहलाते हैं जिनसे मिलकर वाक्य का निर्माण हुआ करता है। रचना की दृष्टि से वाक्य तीन प्रकार के माने गये हैं– सरल, संयुक्त और मिश्रित। इन वाक्यों का रचना के आधार पर प्रकार–निर्धारण करते हुए तथा उसमें वाक्य या वाक्यांश का विग्रह करके उसके विविध पदों के व्याकरणिक संबंध स्पष्ट करना ही वाक्य–विश्लेषण अथवा वाक्य–विग्रह कहलाता है।

इसके अंतर्गत सर्वप्रथम (सरल) वाक्य दो भागों में विभक्त किया जाता है– अग्र और पश्च। इन्हीं को क्रमशः उद्देश्य और विधेय कहते हैं। अग्र अथवा उद्देश्य में कर्ता और उसका विस्तार (अर्थात जिसके विषय में बताया जाये) आता है। पश्च अथवा विधेय में शेष सब (अर्थात जो कुछ बताया जाये) आ जाता है, उदाहरण के लिए–

गायिका प्रेमा जी	एक सुंदर स्त्री हैं।	(सरल वाक्य)
अग्र या उद्देश्य	पश्च या विधेय	

उद्देश्य में कर्ता और कर्ता का विस्तार (अर्थात कर्ता विषयक विशेषणादि) आता है तो विधेय में कर्म, क्रिया, पूरक और इनके विस्तारक आदि आ जाते हैं। दृष्टव्य है दो या अधिक वाक्य 'योजक' (का, की, जो आदि) द्वारा ही जुड़े होते हैं।

टिप्पणी

संयुक्त और मिश्रित वाक्यों में एक वाक्य प्रधान होता है। (कर्ता प्रायः इसी में उल्लिखित होता है), इसी से इसको प्रधान वाक्य कहा जाता है। दृष्टव्य है कि संयुक्त वाक्य में दोनों ही प्रधान रहते हैं किंतु पहले को प्रधान वाक्य और दूसरे को समानाधिकरण उपवाक्य कहा जाता है। दूसरी ओर मिश्रित वाक्य में एक वाक्य प्रधान होता है तो शेष सभी उपवाक्य रहते हैं और प्रधान वाक्य पर आश्रित या निर्भर होने से आश्रित उपवाक्य कहलाते हैं। अपने कार्याधार पर ये तीन प्रकार के होते हैं– संज्ञा, विशेषण और क्रियाविशेषण। अपने नामानुकूल, वाक्य में, ये संज्ञा, विशेषण और क्रियाविशेषण के रूप में प्रयुक्त होकर, क्रमशः इन्हीं की विशेषताएँ बताया करते हैं। सारांशतः वाक्य–विश्लेषण में वाक्य का विग्रह करके, उसका (वाक्यांश या पदानुसार) व्याकरणिक स्थान, कार्य रूप और प्रकाशादि का परिचय दिया जाता है।

वाक्य परिवर्तन के कारण

भाषा के अन्य तत्वों (ध्वनि, शब्द, अर्थ) की भाँति वाक्य के रूप में परिवर्तन होता रहता है। वाक्य में विकार आदि आने से उसके स्वरूप में महत्वपूर्ण अंतर दृष्टिगत होने लगता है। वाक्य परिवर्तन के प्रमुख कारण अग्रलिखित हैं–

(1) **विभक्ति का ह्रास**– विभक्ति प्रधान वाक्यों के प्रयोग में आने से प्रायः विभक्तियों का धीरे–धीरे लोप होता है। विभक्ति या प्रयत्नों के घिस जाने से अर्थ–तत्व पर भी प्रभाव पड़ता है। संयोगात्मक भाषाओं के वियोगावस्था की ओर बढ़ने में यह प्रवृत्ति अधिक दृष्टिगत होती है। इस अवस्था में अर्थ–तत्व में अलग से शब्दों को प्रत्यय के रूप में जोड़ा जाता है।

(2) **नवीनवाचक चिह्नों का विकास**– यह विभक्ति–ह्रास का परिणाम है। विभक्तियों के घिसे जाने से उनके स्थान पर नवीन चिह्न आ जाते हैं, जैसे– हिंदी में ने, को, से, के लिये, का, के, की, में, पे, पर आदि कारक चिह्नों का सहारा लेना पड़ता है। इसी प्रकार सहायक क्रियाओं के रूप में है, हूँ, होंगे, था, थे, रहा, रहे, रही आदि का प्रयोग होने लगा।

(3) **अन्य भाषाओं का प्रभाव**– विभिन्न भाषाओं के परस्पर संपर्क में आने पर एक दूसरे का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है। इस संपर्क से वाक्य रचना में भी अंतर आता है। उदाहरण के लिये अंग्रेजी के संपर्क में आने से हिंदी वाक्य पद्धति का बहुत प्रभाव पड़ा है, जैसे–

मैं चाहता हूँ वहाँ जाना

(I want to go there)

उपर्युक्त वाक्य में अंग्रेजी का स्पष्ट प्रभाव दृष्टिगत हो रहा है। इस प्रकार के वाक्य हिंदी में बहुत बड़ी संख्या में सुनने में आते हैं।

(4) **परिस्थिति का प्रभाव**– सामाजिक, सांस्कृतिक तथा राजनैतिक परिस्थितियाँ भाषा के अन्य अंगों की भाँति वाक्य–रचना को भी प्रभावित करती हैं। सुख–शांति, समृद्धि की अवस्था में वाक्यों का समुचित प्रयोग किया जाता है।

टिप्पणी

इसके विपरीत युद्ध, कलह, संघर्ष तथा अव्यवस्था की दशा में अपूर्ण, शिथिल एवं अव्यवस्थित वाक्यों का प्रायः व्यवहार होने लगा है।

(5) **मनोवैज्ञानिक कारण**– भाषा का मानव मस्तिष्क से सीधा संबंध है। वाक्य–रचना में, मानसिक स्वस्थता तथा अस्वस्थता का महत्वपूर्ण योग होता है। शिक्षित जनों और अशिक्षित जनों के वाक्यों का अंतर उनके मानसिक विकास का ही परिचायक है। इसके अतिरिक्त मानसिक उद्वेग अथवा भावावेश, क्रोध, घृणा, आश्चर्य, अतिशय, प्रेम आदि की दशा में भी वाक्यों का स्वरूप प्रायः विकृत हो जाया करता है।

(6) **प्रयत्न–लाघव**– कम से कम प्रयत्न द्वारा अधिक से अधिक भाव और विचार को व्यक्त करने की प्रवृत्ति के फलस्वरूप वाक्य–रचना का रूप बहुधा बदल जाया करता है। छोटे–छोटे वाक्य का प्रयोग, कर्ता, कर्म, क्रिया आदि को कम करके बोलना, लाक्षणिक शब्दों आदि का प्रयोग इसी प्रवृत्ति के परिणाम हैं। दैनिक वार्तालाप में इस प्रकार की संक्षिप्त वाक्यावली प्रायः सुनने में आती है, उदाहरण के लिये–

'कब आये?'

'कल'

'किस समय'

'प्रातः काल'

उपर्युक्त वाक्यों में कर्ता, क्रिया आदि पदों का अभाव है किंतु मंतव्य स्पष्ट है।

(7) **बलाघात**– किसी भाव और विचार को स्पष्ट करने के लिये प्रायः किसी विशेष शब्द पर बल दिया जाता है या वाक्य के किसी अंश को दोहराना बलाघात है। इससे वाक्य के दूसरे अंश निर्बल या उपेक्षित रह जाते हैं। बल देकर बोलने से कभी–कभी वाक्यों के क्रम में परिवर्तन हो जाता है, जैसे–

'क्या करना ही पड़ेगा यह कार्य?'

'कह तो दिया कुछ नहीं मालूम।'

(8) **नवीनता या प्रदर्शन**– नवीनता का आग्रह वस्तुओं को प्रायः बदल देता है। कवियों, लेखकों, उपदेशकों तथा वक्ताओं में अपने पाण्डित्य का प्रदर्शन करने की प्रवृत्ति होती है। वे वाक्यों को मनमाने ढंग से बदल देते हैं। प्रसिद्ध लेखक राहुल सांकृत्यायन और अज्ञेय के वाक्यों में यह प्रवृत्ति प्रायः अधिक देखने में आती है।

(9) **अज्ञान**– अज्ञान वाक्य विकार का एक महत्वपूर्ण कारण है। अज्ञान अथवा अशिक्षा से 'फिजूल' को 'बेफिजूल' कहना 'मैं' के लिये 'मैंने जाना है' आदि कहना इसी प्रकार के उदाहरण हैं। अहिंदी भाषा–भाषियों के वाक्य तो निश्चय ही अत्यंत रोचक होते हैं यथा 'चाय चलेगी', 'पिक्चर खूब चलेगा' आदि।

(10) **परंपरा**– संसार की प्रत्येक भाषा की अपनी परंपरा होती है जिसका प्रभाव उसकी वाक्य रचना पर भी अवश्य पड़ता है। बहुत सी भाषाओं पर अपनी पूर्ववर्ती

टिप्पणी

भाषाओं की परंपरा का स्पष्ट प्रभाव है। हिंदी संस्कृत की अपेक्षा वियोगात्मक है किंतु उसमें संयोगात्मकता के भी अनेक उदाहरण मिलते हैं। यही तथ्य लिंग और वचन के संबंध में हैं। संस्कृत में आदरणीय व्यक्तियों के लिये बहुवचन का प्रयोग होता है। यही परंपरा हिंदी में भी ज्यों की त्यों बनी हुई है।

वाक्य परिवर्तन की दिशाएँ

वाक्य–परिवर्तन के उपर्युक्त कारणों का प्रभाव अनेक दिशाओं में पड़ता है। इन कारणों से वाक्यों के स्वरूप में निम्नलिखित परिवर्तन दृष्टिगत होते हैं–

(1) **अन्वय–संबंधी परिवर्तन**– वाक्य में अव्यय का विशेष महत्व होता है। संस्कृत वाक्य रचना के अंतर्गत कर्ता–क्रिया, विशेष्य, विशेषण आदि की अनुरूपता होती है, उदाहरण के लिये यदि कर्ता उत्तम पुरुष एकवचन का होगा तो क्रिया भी उत्तम पुरुष एकवचन की ही होगी। हिंदी में इसका प्रायः उल्लंघन होता है। इसी प्रकार विशेषण में तथा कर्ता–क्रिया में हिंदी में कोई निश्चित नियम नहीं रह गया है। संस्कृत में लिंग का प्रभाव क्रिया पर नहीं पड़ता। इसके विपरीत हिंदी–वाक्यों में लिंग के अनुसार क्रिया बदल जाती है; जैसे–

बालकः गच्छति। (लड़का जाता है)

बालिका गच्छति। (लड़की जाती है)

(2) **पदों के क्रम में परिवर्तन**– संस्कृत वाक्यों में पद के क्रम से वाक्य के अर्थ में कोई अंतर नहीं पड़ता किंतु हिंदी के वाक्यों में पदक्रम का एक निश्चित नियम है। उसमें पदक्रम बदलने से उसके आशय अथवा अर्थ में अंतर आ जाता है; जैसे–

'तुम जा रहे हो'

'जा रहे हो तुम'

इन दोनों वाक्यों में पहला वाक्य साधारण वाक्य है किंतु दूसरे वाक्य में 'तुम' की अपेक्षा 'जा रहे हो' क्रिया पर बल दिया गया है। इसमें कर्ता के जाने में संदेह की गंध भी आती है।

(3) **विभिन्न अव्ययों के रूप में परिवर्तन**– प्रयत्न–लाघव, नवीनता एवं अज्ञान के कारण वाक्य के विभिन्न अव्ययों के रूप में भी परिवर्तन होता रहता है। उद्देश्य और विधेय के समुचित प्रयोग में प्रायः स्वच्छंदता देखने में आती है। कर्ता, कर्म, विशेषण और क्रिया–विशेषण के परस्पर संबंध को ठीक प्रकार से न समझने के कारण वाक्य में उनको इधर–उधर कर दिया जाता है। भावावेश की दशा, क्रोध, आश्चर्य, घबराहट आदि में अनेक अव्ययों के क्रम का उलट–फेर बहुधा सुनने में आता है।

(4) **उपवाक्यों में परिवर्तन**– अन्य भाषाओं का प्रभाव, भाषा के अन्य तत्वों की भाँति, वाक्य–रचना को भी अछूता नहीं छोड़ता। अंग्रेजी गद्य का प्रभाव हिंदी वाक्य–गठन पर बहुत अधिक पड़ा है, उदाहरण के लिये–

प्रसिद्ध समाजवादी नेता डॉ. राममनोहर लोहिया ने इस विषय पर भी पुस्तक लिखी है।

टिप्पणी

सामान्यतः हिंदी वाक्य में कर्ता के बाद कर्म और अंत में क्रिया आती है किंतु अब प्रायः कर्ता के बाद क्रिया और बाद में कर्म का प्रयोग भी किया जाता है–

'मुझे जाना है वहाँ'

'तुम्हारा क्या विचार है इस विषय में' आदि।

1.4.3 वाक्य अशुद्धियाँ

किसी शब्द को लिखने में प्रयुक्त वर्णों के क्रम को वर्तनी या अक्षरी कहते हैं। अंग्रेजी में वर्तनी को Spelling तथा उर्दू में 'हिज्जे' कहते हैं। किसी भाषा की समस्त ध्वनियों को सही ढंग से उच्चारित करने हेतु वर्तनी की एकरूपता स्थापित की जाती है। जिस भाषा की वर्तनी में अपनी भाषा के साथ अन्य भाषाओं की ध्वनियों को ग्रहण करने की जितनी अधिक शक्ति होगी, उस भाषा की वर्तनी उतनी ही समर्थ होगी। अतः वर्तनी का सीधा सम्बन्ध भाषागत ध्वनियों के उच्चारण से है।

वर्तनी एवं वाक्य शुद्धीकरण

शुद्ध वर्तनी लिखने के प्रमुख नियम निम्न हैं–

- हिन्दी में विभक्ति चिह्न सर्वनामों के अलावा शेष सभी शब्दों से अलग लिखे जाते हैं, जैसे–
  - – मोहन ने पुत्र को कहा।
  - – श्याम को रुपये दे दो।

  परन्तु सर्वनाम के साथ विभक्ति चिह्न हो तो उसे सर्वनाम में मिलाकर लिखा जाना चाहिए, जैसे– हमने, उसने, मुझसे, आपको, उसको, तुमसे, हमको, किससे, किसको, किसने, किसलिए आदि।
- सर्वनाम के साथ दो विभक्ति चिह्न होने पर पहला विभक्ति चिह्न सर्वनाम में मिलाकर लिखा जाएगा एवं दूसरा अलग लिखा जाएगा, जैसे–

  आपके लिए, उसके लिए, इनमें से, आपमें से, हममें से आदि।

  सर्वनाम और उसकी विभक्ति के बीच 'ही' अथवा 'तक' आदि अव्यय हों तो विभक्ति सर्वनाम से अलग लिखी जायेगी, जैसे–

  आप ही के लिए, आप तक को, मुझ तक को, उस ही के लिए।
- संयुक्त क्रियाओं में सभी अंगभूत क्रियाओं को अलग–अलग लिखा जाना चाहिए, जैसे– जाया करता है, पढ़ा करता है, जा सकते हो, खा सकते हो, आदि।
- पूर्वकालिक प्रत्यय 'कर' को क्रिया से मिलाकर लिखा जाता है, जैसे– सोकर, उठकर, गाकर, धोकर, मिलाकर, अपनाकर, खाकर, पीकर, आदि।
- द्वन्द्व समास में पदों के बीच योजन चिह्न (–) हाइफन लगाया जाना चाहिए, जैसे– माता–पिता, राधा–कृष्ण, शिव–पार्वती, बाप–बेटा, रात–दिन आदि।
- 'तक', 'साथ' आदि अव्ययों को पृथक लिखा जाना चाहिए, जैसे– मेरे साथ, हमारे साथ, यहाँ तक, अब तक आदि।

टिप्पणी

- 'जैसा' तथा 'सा' आदि सारूप्य वाचकों के पहले योजक चिह्न (–) का प्रयोग किया जाना चाहिए, जैसे– चाकू–सा, तीखा–सा, आप–सा, प्यारा–सा, कन्हैया–सा आदि।
- जब वर्णमाला के किसी वर्ग के पंचम अक्षर के बाद उसी वर्ग के प्रथम चारों वर्णों में से कोई वर्ण हो तो पंचम वर्ण के स्थान पर अनुस्वार (·) का प्रयोग होना चाहिए, जैसे–कंकर, गंगा, चंचल, ठंड, नंदन, संपन्न, अंत, संपादक आदि, परंतु जब नासिक्य व्यंजन (वर्ग का पंचम वर्ण) उसी वर्ग के प्रथम चार वर्णों के अलावा अन्य किसी वर्ण के पहले आता है तो उसके साथ उस पंचम वर्ण का आधा रूप ही लिखा जाना चाहिए, जैसे– पन्ना, सम्राट, पुण्य, अन्य, सन्मार्ग, रम्य, जन्म, अन्वय, अन्वेषण, गन्ना, निम्न, सम्मान आदि परन्तु घन्टा, ठन्डा, हिण्दी आदि लिखना अशुद्ध है।
- अ, ऊ एवं आ मात्रा वाले वर्णों के साथ अनुनासिक चिह्न (ँ) को इसी चन्द्रबिन्दु (ँ) के रूप में लिखा जाना चाहिए, जैसे– आँख, हँस, जाँच, काँच, अँगना, साँस, ढाँचा, ताँत, दायाँ, बायाँ, ऊँट, हूँ, जूँ आदि, परन्तु अन्य मात्राओं के साथ अनुनासिक चिह्न को अनुस्वार (ं) के रूप में लिखा जाता है, जैसे– मैंने, नहीं, ढेंचा, खींचना, दायें, बायें, सिंचाई, ईंट आदि।
- संस्कृत मूल के तत्सम शब्दों की वर्तनी में संस्कृत वाला रूप ही रखा जाना चाहिए, परन्तु कुछ शब्दों के नीचे हलन्त (्) लगाने का प्रचलन हिन्दी में समाप्त हो चुका है। अतः उनके नीचे हलन्त न लगाया जाये, जैसे– महान, जगत, विद्वान आदि परन्तु संधि या छन्द को समझाने हेतु नीचे हलन्त लगाया जाएगा।
- अंग्रेजी से हिन्दी में आये जिन शब्दों में आधे 'ओ' (आ एवं ओ के बीच की ध्वनि 'ऑ') की ध्वनि का प्रयोग होता है, उनके ऊपर अर्द्ध चन्द्रबिन्दु लगाना चाहिए, जैसे– बॉल, कॉलेज, डॉक्टर, कॉफी, हॉल, हॉस्पिटल आदि।
- संस्कृत भाषा के ऐसे शब्दों, जिनके आगे विसर्ग (:) लगता है, यदि हिन्दी में वे तत्सम रूप में प्रयुक्त किये जाएँ तो उनमें विसर्ग लगाना चाहिए, जैसे– दुःख, स्वान्तः, फलतः, प्रातः, अतः, मूलतः, प्रायः आदि परन्तु दुःखद, अतएव आदि में विसर्ग का लोप हो गया है।
- विसर्ग के पश्चात् श, ष, या स आये तो या तो विसर्ग को यथावत लिखा जाता है या उसके स्थान पर अगला वर्ण अपना रूप ग्रहण कर लेता है, जैसे–
  - दुः + शासन = दुःशासन या दुश्शासन
  - निः + सन्देह = निःसन्देह या निस्सन्देह ।
- वर्तनी संबंधी अशुद्धियाँ एवं उनमें सुधार :

  उच्चारण दोष अथवा शब्द रचना और संधि के नियमों की जानकारी की अपर्याप्तता के कारण सामान्यतः वर्तनी संबंधी अशुद्धि हो जाती है।

  वर्तनी की अशुद्धियों के प्रमुख कारण निम्न हैं–
- उच्चारण दोष : कई क्षेत्रों व भाषाओं में, स–श, व–ब, न–ण आदि वर्णों में अर्थभेद नहीं किया जाता तथा इनके स्थान पर एक ही वर्ण स, ब या न बोला

टिप्पणी

जाता है जबकि हिन्दी में इन वर्णों की अलग–अलग अर्थ–भेदक ध्वनियाँ हैं। अतः उच्चारण दोष के कारण इनके लेखन में अशुद्धि हो जाती है, जैसे–

अशुद्ध	–	**शुद्ध**
कोसिस	–	कोशिश
सीदा	–	सीधा
सबी	–	सभी
सोर	–	शोर
अराम	–	आराम
पाणी	–	पानी
बबाल	–	बवाल
पाठसाला	–	पाठशाला
शब	–	शव
निपुन	–	निपुण
प्रान	–	प्राण
बचन	–	वचन
ब्यवहार	–	व्यवहार
रामायन	–	रामायण
गुन	–	गुण

- जहाँ 'श' एवं 'स' एक साथ प्रयुक्त होते हैं वहाँ 'श' पहले आयेगा एवं 'स' उसके बाद, जैसे– शासन, प्रशंसा, नृशंस, शासक ।

  इसी प्रकार 'श' एवं 'ष' एक साथ आने पर पहले 'श' आयेगा फिर 'ष', जैसे– शोषण, शीर्षक, विशेष, शेष, वेशभूषा, विशेषण आदि।

- 'स्' के स्थान पर पूरा 'स' लिखने पर या 'स्' के पहले किसी अक्षर का मेल करने पर अशुद्धि हो जाती है, जैसे– इस्त्री (शुद्ध होगा– स्त्री), अस्नान (शुद्ध होगा– स्नान), परसपर अशुद्ध है जबकि शुद्ध है परस्पर।

- **अक्षर रचना की जानकारी का अभाव** : देवनागरी लिपि में संयुक्त व्यंजनों में दो व्यंजन मिलाकर लिखे जाते हैं, परन्तु इनके लिखने में त्रुटि हो जाती है, जैसे–

अशुद्ध	–	**शुद्ध**
आर्शीवाद	–	आशीर्वाद
निमार्ण	–	निर्माण
पुर्नस्थापना	–	पुनर्स्थापना

बहुधा 'र्' के प्रयोग में अशुद्धि होती है। जब 'र्' (रेफ) किसी अक्षर के ऊपर लगा हो तो वह उस अक्षर से पहले पढ़ा जाएगा। यदि हम सही उच्चारण करेंगे

तो अशुद्धि का ज्ञान हो जाता है। आशीर्वाद में 'र्', 'वा' से पहले बोला जायेगा– आशीर् वाद। इसी प्रकार निर्माण में 'र्' का उच्चारण 'मा' से पहले होता है, अतः 'र्' मा के ऊपर आयेगा।

टिप्पणी

- जिन शब्दों में व्यंजन के साथ स्वर, 'र्' एवं अनुनासिक का मेल हो उनमें उस अक्षर को लिखने की विधि है–

  अक्षर स्वर र् अनुस्वार (ं)।

  जैसे– त् ए र् अनुस्वार = शर्तें

  म् ओ र् अनुस्वार = कर्मों।

  इसी प्रकार औरों, धर्मों, पराक्रमों आदि को लिखा जाता है।

- कोई, भाई, मिठाई, कई, ताई आदि शब्दों को कोयी, भायी, मिठायी, तायी आदि लिखना अशुद्ध है। इसी प्रकार अनुयायी, स्थायी, वाजपेयी शब्दों को अनुयाई, स्थाई, वाजपेई आदि रूप में लिखना भी अशुद्ध होता है।

- सम् उपसर्ग के बाद य, र, ल, व, श, स, ह आदि ध्वनि हो तो 'म्' को हमेशा अनुस्वार (ं) के रूप में लिखते हैं, जैसे– संयम, संवाद, संलग्न, संसर्ग, संहार, संरचना, संरक्षण आदि। इन्हें सम्शय, सम्हार, सम्वाद, सम्रचना, सम्लग्न, सम्रक्षण आदि रूप में लिखना सदैव अशुद्ध होता है।

- अनुनासिक शब्दों में यदि 'अ' या 'आ' या 'ऊ' की मात्रा वाले वर्णों में अनुनासिक ध्वनि (ँ) आती है तो उसे हमेशा (ँ) के रूप में ही लिखा जाना चाहिए, जैसे– दाँत, पूँछ, ऊँट, हूँ, पाँच, हाँ, चाँद, हँसी, ढाँचा आदि परन्तु जब वर्ण के साथ अन्य मात्रा हो तो (ँ) के स्थान पर अनुस्वार (ं) का प्रयोग किया जाता है, जैसे– फेंक, नहीं, खींचना, गोंद आदि।

- विराम चिह्नों का प्रयोग न होने पर भी अशुद्धि हो जाती है और अर्थ का अनर्थ हो जाता है, जैसे–

  – रोको, मत जाने दो।

  – रोको मत, जाने दो।

  इन दोनों वाक्यों में अल्प विराम के स्थान परिवर्तन से अर्थ बिल्कुल उल्टा हो गया है।

- 'ष' वर्ण केवल षट् (छह) से बने कुछ शब्दों, यथा– षट्कोण, षड़यंत्र आदि के प्रारंभ में ही आता है। अन्य शब्दों के शुरू में 'श' लिखा जाता है, जैसे– शोषण, शासन, शेषनाग आदि।

- संयुक्ताक्षरों में 'ट्' वर्ग से पूर्व में हमेशा 'ष' का प्रयोग किया जाता है, चाहे मूल शब्द 'श' से बना हो, जैसे– सृष्टि, षष्ट, नष्ट, कष्ट, अष्ट, ओष्ठ, कृष्ण, विष्णु आदि।

- 'क्श' का प्रयोग सामान्यतः नक्शा, रिक्शा, नक्श आदि शब्दों में ही किया जाता है, शेष सभी शब्दों में 'क्ष' का प्रयोग किया जाता है, जैसे– रक्षा, कक्षा, क्षमता, सक्षम, शिक्षा, दक्ष आदि।

टिप्पणी

- 'ज्ञ' ध्वनि के उच्चारण हेतु 'ग्य' लिखित रूप में निम्न शब्दों में ही प्रयुक्त होता है– ग्यारह, योग्य, अयोग्य, भाग्य, रोग से बने शब्द जैसे–आरोग्य आदि में। इनके अलावा अन्य शब्दों में 'ज्ञ' का प्रयोग करना सही होता है, जैसे– ज्ञान, अज्ञात, यज्ञ, विशेषज्ञ, विज्ञान, वैज्ञानिक आदि।
- हिन्दी भाषा सीखने के चार मुख्य सोपान हैं– सुनना, बोलना, पढ़ना व लिखना। हिन्दी भाषा की लिपि देवनागरी है जिसकी प्रधान विशेषता है कि जैसे बोली जाती है वैसे ही लिखी जाती है। अतः शब्द को लिखने से पहले उसकी स्वर–ध्वनि को समझकर लिखना समीचीन होगा। यदि 'ए' की ध्वनि आ रही है तो उसकी मात्रा का प्रयोग करें। यदि 'उ' की ध्वनि आ रही है तो 'उ' की मात्रा का प्रयोग करें।

हिन्दी में अशुद्धियों के विविध प्रकार

शब्द–संरचना तथा वाक्य प्रयोग में वर्तनीगत अशुद्धियों के कारण भाषा दोषपूर्ण हो जाती है। प्रमुख अशुद्धियाँ निम्नलिखित हैं–

1. भाषा (अक्षर या मात्रा) सम्बन्धी अशुद्धियाँ :

अशुद्ध	–	**शुद्ध**
बृटिश	–	ब्रिटिश
त्रगुण	–	त्रिगुण
रिषी	–	ऋषि
बृह्मा	–	ब्रह्मा
बन्ध	–	बंध
पैत्रिक	–	पैतृक
जाग्रती	–	जागृति
स्त्रीयाँ	–	स्त्रियाँ
स्रष्टि	–	सृष्टि
अती	–	अति
तैय्यार	–	तैयार
आवश्यकीय	–	आवश्यक
उपरोक्त	–	उपर्युक्त
श्रोत	–	स्रोत
जाइये	–	जाइए
लाइये	–	लाइए
लिये	–	लिए
अनुगृह	–	अनुग्रह
अकाश	–	आकाश

टिप्पणी

असीस	–	आशीष
देहिक	–	दैहिक
कवियत्रि	–	कवयित्री
द्रष्टि	–	दृष्टि
घनिष्ट	–	घनिष्ठ
व्यवहारिक	–	व्यावहारिक
रात्री	–	रात्रि
प्राप्ती	–	प्राप्ति
सामर्थ	–	सामर्थ्य
एकत्रित	–	एकत्र
ईर्षा	–	ईर्ष्या
पुन्य	–	पुण्य
कृतघ्नी	–	कृतघ्न
बनिता	–	वनिता
निरिक्षण	–	निरीक्षण
पती	–	पति
आक्रष्ट	–	आकृष्ट
सामिल	–	शामिल
मष्तिस्क	–	मस्तिष्क
निसार	–	निःसार
सन्मान	–	सम्मान
हिन्दु	–	हिन्दू
गुरू	–	गुरु
दान्त	–	दाँत
चहिए	–	चाहिए
प्रथक	–	पृथक
परिक्षा	–	परीक्षा
षोडषी	–	षोडशी
परीवार	–	परिवार
परीचय	–	परिचय
सौन्दर्यता	–	सौन्दर्य
अज्ञानता	–	अज्ञान
गरीमा	–	गरिमा
समाधी	–	समाधि

टिप्पणी

बूड़ा	–	बूढ़ा
ऐक्यता	–	एक्य, एकता
पूज्यनीय	–	पूजनीय
पत्नि	–	पत्नी
अतीशय	–	अतिशय
संसारिक	–	सांसारिक
शताब्दि	–	शताब्दी
नीरोग	–	निरोग
दूकान	–	दुकान
दम्पति	–	दम्पती
अन्तर्चेतना	–	अन्तश्चेतना

2. लिंग सम्बन्धी अशुद्धियाँ :

हिन्दी में लिंग सम्बन्धी अशुद्धियाँ प्रायः दिखाई देती हैं। इस दृष्टि से निम्न बातों का ध्यान रखना चाहिए–

(1) विशेषण शब्दों का लिंग सदैव विशेष्य के समान होता है।

(2) दिनों, महीनों, ग्रहों, पहाड़ों आदि के नाम पुल्लिंग में प्रयुक्त होते हैं, किन्तु तिथियों, भाषाओं और नदियों के नाम स्त्रीलिंग में प्रयोग किये जाते हैं।

(3) प्राणिवाचक शब्दों का लिंग अर्थ के अनुसार तथा अप्राणिवाचक शब्दों का लिंग व्यवहार के अनुसार होता है।

(4) अनेक तत्सम शब्द हिन्दी में स्त्रीलिंग में प्रयुक्त होते हैं।

उदाहरण–

- दही बड़ी अच्छी है। (बड़ा अच्छा)
- आपने बड़ी अनुग्रह की। (बड़ा, किया)
- मेरा कमीज उतार लाओ। (मेरी)
- लड़के और लड़कियाँ चिल्ला रहे हैं। (रही)
- कटोरे में दही जम गई। (गया)
- मेरा ससुराल जयपुर में है। (मेरी)
- महादेवी विदुषी कवि हैं। (कवयित्री)
- आत्मा अमर होता है। (होती)
- उसने एक हाथी जाती हुई देखी। (जाता हुआ देखा)
- मन की मैल काटती है। (का, काटता)
- हाथी का सूंड केले के समान होता है। (की, होती)
- सीताजी वन को गए। (गयीं)

टिप्पणी

- विद्वान स्त्री (विदुषी स्त्री)
- गुणवान महिला (गुणवती महिला)
- माघ की महीना (माघ का महीना)
- मूर्तिमान् करुणा (मूर्तिमयी करुणा)
- आग का लपट (आग की लपट)
- मेरा शपथ (मेरी शपथ)
- गंगा का धारा (गंगा की धारा)
- चन्द्रमा की मण्डल (चन्द्रमा का मण्डल)।

3. समास सम्बन्धी अशुद्धियाँ :

दो या दो से अधिक पदों का समास करने पर प्रत्ययों का उचित प्रयोग न करने से जो शब्द बनता है, उसमें कभी–कभी अशुद्धि रह जाती है, जैसे–

अशुद्ध	–	**शुद्ध**
दिवारात्रि	–	दिवारात्र
निरपराधी	–	निरपराध
ऋषीजन	–	ऋषिजन
प्रणीमात्र	–	प्राणिमात्र
स्वामीभक्त	–	स्वामिभक्त
पिताभक्ति	–	पितृभक्ति
महाराजा	–	महाराज
भ्राताजन	–	भ्रातृजन
दुरावस्था	–	दुरवस्था
स्वामीहित	–	स्वामिहित
नवरात्रा	–	नवरात्र

4. संधि सम्बन्धी अशुद्धियाँ :

अशुद्ध	–	**शुद्ध**
उपरोक्त	–	उपर्युक्त
सदोपदेश	–	सदुपदेश
वयवृद्ध	–	वयोवृद्ध
सदेव	–	सदैव
अत्याधिक	–	अत्यधिक
सन्मुख	–	सम्मुख
उधृत	–	उद्धृत
मनहर	–	मनोहर

टिप्पणी

अधतल	–	अधस्तल
आर्शीवाद	–	आशीर्वाद
दुरावस्था	–	दुरवस्था

5. विशेष्य–विशेषण सम्बन्धी अशुद्धियाँ:

अशुद्ध	–	**शुद्ध**
पूज्यनीय व्यक्ति	–	पूजनीय व्यक्ति
लाचारवश	–	लाचारीवश
महान् कृपा	–	महती कृपा
गोपन कथा	–	गोपनीय कथा
विद्वान् नारी	–	विदुषी नारी
मान्यनीय मन्त्रीजी	–	माननीय मन्त्रीजी
सन्तोष–चित्त	–	सन्तुष्ट–चित्त
सुखमय शान्ति	–	सुखमयी शान्ति
सुन्दर वनिताएँ	–	सुन्दरी वनिताएँ
महान् कार्य	–	महत्कार्य

6. प्रत्यय–उपसर्ग सम्बन्धी अशुद्धियाँ :

अशुद्ध	–	**शुद्ध**
सौन्दर्यता	–	सौन्दर्य
लाघवता	–	लाघव
गौरवता	–	गौरव
चातुर्यता	–	चातुर्य
ऐक्यता	–	ऐक्य
सामर्थ्यता	–	सामर्थ्य
सौजन्यता	–	सौजन्य
औदार्यता	–	औदार्य
मनुष्यत्वता	–	मनुष्यत्व
अभिष्ट	–	अभीष्ट
बेफिजूल	–	फिजूल
मिठासता	–	मिठास
अज्ञानता	–	अज्ञान
भूगौलिक	–	भौगोलिक
इतिहासिक	–	ऐतिहासिक
निरस	–	नीरस

7. वचन सम्बन्धी अशुद्धियाँ :

1. हिन्दी में बहुत–से शब्दों का प्रयोग सदैव बहुवचन में होता है, ऐसे शब्द हैं– हस्ताक्षर, प्राण, दर्शन, आँसू, होश आदि।
2. वाक्य में 'या', 'अथवा' का प्रयोग करने पर क्रिया एकवचन में होती है, लेकिन 'और', 'एवं', 'तथा' का प्रयोग करने पर क्रिया बहुवचन होती है।
3. आदरसूचक शब्दों का प्रयोग सदैव बहुवचन में होता है।

टिप्पणी

उदाहरणार्थ–

1. दो चादर खरीद लाया। (चादरें)
2. एक चटाइयाँ बिछा दो। (चटाई)
3. मेरा प्राण संकट में है। (मेरे, हैं)
4. आज मैंने महात्मा का दर्शन किया। (के, किये)
5. आज मेरा मामा आये। (मेरे)
6. फूल की माला गूँथो। (फूलों)
7. यह हस्ताक्षर किसका है? (ये, किसके, हैं)
8. विनोद, रमेश और रहीम पढ़ रहा है। (रहे हैं)

अन्य उदाहरण :

अशुद्ध	–	**शुद्ध**
स्त्रीयाँ	–	स्त्रियाँ
मातायों	–	माताओं
नारिओं	–	नारियों
अनेकों	–	अनेक
बहुतों	–	बहुत
मुनिओं	–	मुनियों
सबों	–	सब
विद्यार्थीयों	–	विद्यार्थियों
बन्धुएँ	–	बन्धुओं
दादों	–	दादाओं
सभीओं	–	सभी
नदीओं	–	नदियों

8. कारक सम्बन्धी अशुद्धियाँ :

अ. – राम घर नहीं है।

शु. – राम घर पर नहीं है।

अ. – अपने घर साफ रखो।

टिप्पणी

शु. – अपने घर को साफ रखो।

अ. – उसको काम को करने दो।

शु. – उसे काम करने दो।

अ. – आठ बजने को पन्द्रह मिनट हैं।

शु. – आठ बजने में पन्द्रह मिनट हैं।

अ. – मुझे अपने काम को करना है।

शु. – मुझे अपना काम करना है।

अ. – यहाँ बहुत से लोग रहते हैं।

शु. – यहाँ बहुत लोग रहते हैं।

9. शब्द–क्रम सम्बन्धी अशुद्धियाँ :

अ. – वह पुस्तक है पढ़ता।

शु. – वह पुस्तक पढ़ता है।

अ. – आजाद हुआ था यह देश सन् 1947 में।

शु. – यह देश सन् 1947 में आजाद हुआ था।

अ. – 'पृथ्वीराज रासो' रचना चन्द्रवरदाई की है।

शु. – 'पृथ्वीराज रासो' चन्द्रवरदाई की रचना है।

10. वाक्य–रचना सम्बन्धी अशुद्धियाँ एवं सुधार :

1. वाक्य–रचना में कभी विशेषण का विशेष्य के अनुसार उचित लिंग एवं वचन में प्रयोग न करने से या गलत कारक–चिह्न का प्रयोग करने से अशुद्धि रह जाती है।
2. उचित विराम–चिह्न का प्रयोग न करने से अथवा शब्दों को उचित क्रम में न रखने पर भी अशुद्धियाँ रह जाती हैं।
3. अनर्थक शब्दों का अथवा एक अर्थ के लिए दो शब्दों का और व्यर्थ के अव्यय शब्दों का प्रयोग करने से भी अशुद्धि रह जाती है।

उदाहरणार्थ :

(अ.– अशुद्ध, शु. – शुद्ध)

अ. – सीता राम की स्त्री थी।

शु. – सीता राम की पत्नी थी।

अ. – मंत्रीजी को एक फूलों की माला पहनाई।

शु. – मंत्रीजी को फूलों की एक माला पहनाई।

अ. – महादेवी वर्मा श्रेष्ठ कवि थीं।

शु. – महादेवी वर्मा श्रेष्ठ कवयित्री थीं।

अ. – शत्रु मैदान से दौड़ खड़ा हुआ था।

शु. – शत्रु मैदान से भाग खड़ा हुआ।

अ. – मेरे भाई को मैंने रुपये दिए।

टिप्पणी

शु. – अपने भाई को मैंने रुपये दिये।

अ. – यह किताब बड़ी छोटी है।

शु. – यह किताब बहुत छोटी है।

अ. – उपरोक्त बात पर मनन कीजिए।

शु. – उपर्युक्त बात पर मनन करिये।

अ. – सभी छात्रों में रमेश चतुरतर है।

शु. – सभी छात्रों में रमेश चतुरतम है।

अ. – मेरा सिर चक्कर काटता है।

शु. – मेरा सिर चकरा रहा है।

अ. – शायद आज सुरेश जरूर आयेगा।

शु. – शायद आज सुरेश आयेगा।

अ. – कृपया हमारे घर पधारने की कृपा करें।

शु. – हमारे घर पधारने की कृपा करें।

अ. – उसके पास अमूल्य अँगूठी है।

शु. – उसके पास बहुमूल्य अँगूठी है।

अ. – गाँव में कुत्ते रात भर चिल्लाते हैं।

शु. – गाँव में कुत्ते रात भर भौंकते हैं।

अ. – पेड़ों पर कोयल बोल रही है।

शु. – पेड़ पर कोयल कूक रही है।

अ. – वह प्रातःकाल के समय घूमने जाता है।

शु. – वह प्रातःकाल घूमने जाता है।

अ. – जज ने हत्यारे को मृत्यु दण्ड की सजा दी।

शु. – जज ने हत्यारे को मृत्यु दण्ड दिया।

अ. – वह विख्यात डाकू था।

शु. – वह कुख्यात डाकू था।

अ. – वह निरपराधी था।

शु. – वह निरपराध था।

अ. – आप चाहो तो काम बन जायेगा।

शु. – आप चाहें तो काम बन जायेगा।

अ. – माँ–बच्चा दोनों बीमार पड़ गयीं।

शु. – माँ–बच्चा दोनों बीमार पड़ गए।

अ. – बेटी पराये घर का धन होता है।

टिप्पणी

शु. – बेटी पराये घर का धन होती है।

अ. – भक्तियुग का काल स्वर्णयुग माना जाता है।

शु. – भक्ति–काल स्वर्ण युग माना गया है।

अ. – बचपन से मैं हिन्दी बोली हूँ।

शु. – बचपन से मैं हिन्दी बोलती हूँ।

अ. – वह मुझे देखा तो घबरा गया।

शु. – उसने मुझे देखा तो घबरा गया।

अ. – अस्तबल में घोड़ा चिंघाड़ रहा है।

शु. – अस्तबल में घोड़ा हिनहिना रहा है।

अ. – पिंजरे में शेर बोल रहा है।

शु. – पिंजरे में शेर दहाड़ रहा है।

अ. – जंगल में हाथी दहाड़ रहा है।

शु. – जंगल में हाथी चिंघाड़ रहा है।

अ. – कृपया यह पुस्तक मेरे को दीजिए।

शु. – यह पुस्तक मुझे दीजिए।

अ. – बाजार में एक दिन का अवकाश उपेक्षित है।

शु. – बाजार में एक दिन का अवकाश अपेक्षित है।

अ. – छात्र ने कक्षा में पुस्तक को पढ़ा।

शु. – छात्र ने कक्षा में पुस्तक पढ़ी।

अ. – आपसे सदा अनुग्रहित रहा हूँ।

शु. – आपसे सदा अनुगृहीत हूँ।

अ. – घर में केवल मात्र एक चारपाई है।

शु. – घर में एक चारपाई है।

अ. – माली ने एक फूलों की माला बनाई।

शु. – माली ने फूलों की एक माला बनाई।

अ. – वह चित्र सुन्दरतापूर्ण है।

शु. – वह चित्र सुन्दर है।

अ. – कुत्ता एक स्वामी भक्त जानवर है।

शु. – कुत्ता स्वामिभक्त पशु है।

अ. – शायद आज आँधी अवश्य आयेगी।

शु. – शायद आज आँधी आये।

अ. – दिनेश सांयकाल के समय घूमने जाता है।

टिप्पणी

शु. – दिनेश सायंकाल घूमने जाता है।

अ. – यह विषय बड़ा छोटा है।

शु. – यह विषय बहुत छोटा है।

अ. – अनेकों विद्यार्थी खेल रहे हैं।

शु. – अनेक विद्यार्थी खेल रहे हैं।

अ. – वह चलता–चलता थक गया।

शु. – वह चलते–चलते थक गया।

अ. – मैंने हस्ताक्षर कर दिया है।

शु. – मैंने हस्ताक्षर कर दिये हैं।

अ. – लता मधुर गायक है।

शु. – लता मधुर गायिका है।

अ. – महात्माओं के सदोपदेश सुनने योग्य होते हैं।

शु. – महात्माओं के सदुपदेश सुनने योग्य होते हैं।

अ. – उसने न्यायाधीश को निवेदन किया।

शु. – उसने न्यायाधीश से निवेदन किया।

अ. – हम ऐसा ही हूँ।

शु. – मैं ऐसा ही हूँ।

अ. – पेड़ों पर पक्षी बैठा है।

शु. – पेड़ पर पक्षी बैठा है या पेड़ों पर पक्षी बैठे हैं।

अ. – हम हमारी कक्षा में गए।

शु. – हम अपनी कक्षा में गए।

अ. – आप खाये कि नहीं?।

शु. – आपने खाया कि नहीं?।

अ. – वह गया।

शु. – वह चला गया।

अ. – हम चाय अभी–अभी पिया है।

शु. – हमने चाय अभी–अभी पी है।

अ. – इसका अन्तःकरण अच्छा है।

शु. – इसका अन्तःकरण शुद्ध है।

अ. – शेर को देखते ही उसका होश उड़ गया।

शु. – शेर को देखते ही उसके होश उड़ गये।

अ. – वह साहित्यिक पुरुष है।

टिप्पणी

शु. – वह साहित्यकार है।

अ. – रामायण सभी हिन्दू मानते हैं।

शु. – रामायण सभी हिन्दुओं को मान्य है।

अ. – आज ठण्डी बर्फ मँगवानी चाहिए।

शु. – आज बर्फ मँगवानी चाहिए।

अ. – मैच को देखने चलो।

शु. – मैच देखने चलो।

अ. – मेरा पिताजी आया है।

शु. – मेरे पिताजी आये हैं।

सामान्यतः अशुद्धि किए जाने वाले प्रमुख शब्द :

अशुद्ध	–	**शुद्ध**
अतिथी	–	अतिथि
अतिश्योक्ति	–	अतिशयोक्ति
अमावश्या	–	अमावस्या
अनुगृह	–	अनुग्रह
अन्तर्ध्यान	–	अन्तर्धान
अन्ताक्षरी	–	अन्त्याक्षरी
अनूजा	–	अनुजा
अन्धेरा	–	अँधेरा
अनेकों	–	अनेक
अनाधिकार	–	अनधिकार
अधिशाषी	–	अधिशासी
अन्तरगत	–	अन्तर्गत
अलोकिक	–	अलौकिक
अगम	–	अगम्य
अहार	–	आहार
अजीविका	–	आजीविका
अहिल्या	–	अहल्या
अपरान्ह	–	अपराह्न
अत्याधिक	–	अत्यधिक
अभिशापित	–	अभिशप्त
अंतेष्टि	–	अंत्येष्टि
अकस्मात	–	अकस्मात्

टिप्पणी

अर्थात	—	अर्थात्
अनूपम	—	अनुपम
अंतर्रात्मा	—	अंतरात्मा
अन्विती	—	अन्विति
अध्यावसाय	—	अध्यवसाय
आभ्यंतर	—	अभ्यंतर
अन्वीष्ट	—	अन्विष्ट
आखर	—	अक्षर
आवाहन	—	आह्वान
आयू	—	आयु
आदेस	—	आदेश
अभ्यारण्य	—	अभयारण्य
अनुग्रहीत	—	अनुगृहीत
अहोरात्रि	—	अहोरात्र
अक्षुण्य	—	अक्षुण्ण
अनुसूया	—	अनुसूर्या
अक्षोहिणी	—	अक्षौहिणी
अँकुर	—	अंकुर
आहूति	—	आहुति
आधीन	—	अधीन
आशिर्वाद	—	आशीर्वाद
आद्र	—	आर्द्र
आरोग	—	आरोग्य
आक्रषक	—	आकर्षक
इष्ठ	—	इष्ट
इर्ष्या	—	ईर्ष्या
इस्कूल	—	स्कूल
इतिहासिक	—	ऐतिहासिक
इक्षा	—	ईक्षा
इप्सित	—	ईप्सित
इकठ्ठा	—	इकट्ठा
इन्दू	—	इन्दु
ईमारत	—	इमारत

टिप्पणी

एच्छिक	—	ऐच्छिक
उज्वल	—	उज्ज्वल
उतरदाई	—	उत्तरदायी
उतरोत्तर	—	उत्तरोत्तर
उध्यान	—	उद्यान
उपरोक्त	—	उपर्युक्त
उपवाश	—	उपवास
उदहारण	—	उदाहरण
उलंघन	—	उल्लंघन
उपलक्ष	—	उपलक्ष्य
उन्नतिशाली	—	उन्नतिशील
उच्छवास	—	उच्छ्वास
उज्जयनी	—	उज्जयिनी
उदीप्त	—	उद्दीप्त
ऊधम	—	उद्यम
उछिष्ट	—	उच्छिष्ट
ऊषा	—	उषा
ऊखली	—	ओखली
उष्मा	—	ऊष्मा
उर्मि	—	ऊर्मि
उरु	—	उरू
उहापोह	—	ऊहापोह
ऊंचाई	—	ऊँचाई
ऊख	—	ईख
रिधि	—	ऋद्धि
एक्य	—	ऐक्य
एतरेय	—	ऐतरेय
एकत्रित	—	एकत्र
एश्वर्य	—	ऐश्वर्य
ओषध	—	औषध
ओचित्य	—	औचित्य
औधोगिक	—	औद्योगिक
कनिष्ट	—	कनिष्ठ

टिप्पणी

कलिन्दी	—	कालिन्दी
करूणा	—	करुणा
कविन्द्र	—	कवीन्द्र
कवियत्री	—	कवयित्री
कलीदास	—	कालिदास
कार्रवाई	—	कार्यवाही
केन्द्रिय	—	केन्द्रीय
कैलास	—	कैलाश
किरन	—	किरण
किर्या	—	क्रिया
किँचित	—	किंचित्
कीर्ती	—	कीर्ति
कुआ	—	कुआँ
कुटम्ब	—	कुटुम्ब
कुतुहल	—	कौतूहल
कुशाण	—	कुषाण
कुरूति	—	कुरीति
कुसूर	—	कसूर
केकयी	—	कैकेयी
कोतुक	—	कौतुक
कोमुदी	—	कौमुदी
कोशल्या	—	कौशल्या
कोशल	—	कौशल
क्रति	—	कृति
क्रतार्थ	—	कृतार्थ
क्रतज्ञ	—	कृतज्ञ
कृत्घन	—	कृतघ्न
क्रत्रिम	—	कृत्रिम
खेतीहर	—	खेतिहर
गरिष्ट	—	गरिष्ठ
गणमान्य	—	गण्यमान्य
गत्यार्थ	—	गत्यर्थ
गुरू	—	गुरु

टिप्पणी

गूंगा	—	गूँगा
गोप्यनीय	—	गोपनीय
गूंज	—	गूँज
गौरवता	—	गौरव
गृहणी	—	गृहिणी
ग्रसित	—	ग्रस्त
गृहता	—	ग्रहीता
गीतांजली	—	गीतांजलि
गत्यावरोध	—	गत्यवरोध
गृहस्थि	—	गृहस्थी
गर्भिनी	—	गर्भिणी
घन्टा	—	घण्टा, घंटा
घबड़ाना	—	घबराना
चन्चल	—	चंचल, चञ्चल
चातुर्यता	—	चातुर्य, चतुराई
चाहरदीवारी	—	चहारदीवारी, चारदीवारी
चेत्र	—	चैत्र
तदानुकूल	—	तदनुकूल
तत्त्वाधान	—	तत्त्वावधान
तनखा	—	तनख्वाह
तरिका	—	तरीका
तखत	—	तख्त
तड़िज्योति	—	तड़िज्ज्योति
तिलांजली	—	तिलांजलि
तीर्थकंर	—	तीर्थंकर
त्रसित	—	त्रस्त
तत्व	—	तत्त्व
दंपति	—	दंपती
दारिद्रयता	—	दारिद्रय, दरिद्रता
दुख	—	दुःख
दृष्टा	—	द्रष्टा
देहिक	—	दैहिक
दोगुना	—	दुगुना

धनाड्य	—	धनाढ्य
धुरंदर	—	धुरंधर
धैर्यता	—	धैर्य
ध्रष्ट	—	धृष्ट
झौंका	—	झोंका
तदन्तर	—	तदनन्तर
जरुरत	—	जरूरत
दयालू	—	दयालु
धुम्र	—	धूम्र
दुरुह	—	दुरूह
धोका	—	धोखा
नैसृगिक	—	नैसर्गिक
नाइका	—	नायिका
नर्क	—	नरक
संगृह	—	संग्रह
गोतम	—	गौतम
झुंपड़ी	—	झोंपड़ी
तस्तरी	—	तश्तरी
छुद्र	—	क्षुद्र
छमा, समा	—	क्षमा
तोल	—	तौल
जजर्र	—	जर्जर
जागृत	—	जाग्रत
श्रृगाल	—	शृगाल
श्रृंगार	—	शृंगार
गिध	—	गिद्ध
चाहिये	—	चाहिए
तदोपरान्त	—	तदुपरान्त
क्षुदा	—	क्षुधा
चिन्ह	—	चिह्न
तिथी	—	तिथि
तैय्यार	—	तैयार
धेनू	—	धेनु

टिप्पणी

टिप्पणी

नटिनी	—	नटनी
बन्धू	—	बन्धु
द्वन्द	—	द्वन्द्व
निरोग	—	नीरोग
निश्कलंक	—	निष्कलंक
निरव	—	नीरव
नैपथ्य	—	नेपथ्य
परिस्थिती	—	परिस्थिति
परलोकिक	—	पारलौकिक
नीतीज्ञ	—	नीतिज्ञ
नृसंस	—	नृशंस
न्यायधीश	—	न्यायाधीश
परसुराम	—	परशुराम
बढ़ाई	—	बड़ाई
प्रहलाद	—	प्रह्लाद
बुद्धवार	—	बुधवार
पुन्य	—	पुण्य
बृज	—	ब्रज
पिपिलिका	—	पिपीलिका
बैदेही	—	वैदेही
पुर्नविवाह	—	पुनर्विवाह
भीमसैन	—	भीमसेन
मच्छिका	—	मक्षिका
लखनउ	—	लखनऊ
मुहुर्त	—	मुहूर्त
निरसता	—	नीरसता
बुड़ा	—	बूढ़ा
परमेस्वर	—	परमेश्वर
बहुब्रीह	—	बहुब्रीहि
नेत्रत्व	—	नेतृत्व
भीत्ति	—	भित्ति
प्रथक	—	पृथक
मंत्रि	—	मन्त्री

टिप्पणी

पर्गल्भ	—	प्रगल्भ
ब्रहमान्ड	—	ब्रह्माण्ड
महात्म्य	—	माहात्म्य
ब्राम्हण	—	ब्राह्मण
मैथलीशरण	—	मैथिलीशरण
बरात	—	बारात
व्यावहार	—	व्यवहार
भेरव	—	भैरव
भगीरथी	—	भागीरथी
भेषज	—	भैषज
मंत्रीमंडल	—	मन्त्रिमण्डल
मध्यस्त	—	मध्यस्थ
यसोदा	—	यशोदा
विरहणी	—	विरहिणी
यायाबर	—	यायावर
मृत्यूलोक	—	मृत्युलोक
राज्यभिषेक	—	राज्याभिषेक
युधिष्ठर	—	युधिष्ठिर
रितीकाल	—	रीतिकाल
यौवनावस्था	—	युवावस्था
रचियता	—	रचयिता
लघूत्तर	—	लघुत्तर
रोहीताश्व	—	रोहिताश्व
वनोषध	—	वनौषध
वधु	—	वधू
व्याभिचारी	—	व्यभिचारी
सूश्रुषा	—	शुश्रूषा
सौजन्यता	—	सौजन्य
संक्षिप्तिकरण	—	संक्षिप्तीकरण
संसदसदस्य	—	संसत्सदस्य
सतगुण	—	सद्‌गुण
सम्मती	—	सम्मति
संघठन	—	संगठन

टिप्पणी

संतती	–	संतति
समिक्षा	–	समीक्षा
सौंदर्यता	–	सौंदर्य / सुन्दरता
सौहार्द्र	–	सौहार्द
सहश्र	–	सहस्र
संगृह	–	संग्रह
संसारिक	–	सांसारिक
सत्मार्ग	–	सन्मार्ग
सदृश्य	–	सदृश
सदोपदेश	–	सदुपदेश
समरथ	–	समर्थ
स्वस्थ्य	–	स्वास्थ्य / स्वस्थ
स्वास्तिक	–	स्वस्तिक
समबंध	–	संबंध
सन्यासी	–	संन्यासी
सरोजनी	–	सरोजिनी
संपति	–	संपत्ति
समुंदर	–	समुद्र
साधू	–	साधु
समाधी	–	समाधि
सुहागन	–	सुहागिन
सप्ताहिक	–	साप्ताहिक
सानंदपूर्वक	–	आनंदपूर्वक, सानंद
समाजिक	–	सामाजिक
स्त्राव	–	स्राव
स्त्रोत	–	स्रोत
सारथी	–	सारथि
सुई	–	सूई
सुसुप्ति	–	सुषुप्ति
नयी	–	नई
नही	–	नहीं
निरुत्साहित	–	निरुत्साह
निस्वार्थ	–	निःस्वार्थ

टिप्पणी

निराभिमान	—	निरभिमान
निरानुनासिक	—	निरनुनासिक
निरूत्तर	—	निरुत्तर
नींबू	—	नीबू
न्यौछावर	—	न्योछावर
नबाब	—	नवाब
निहारिका	—	नीहारिका
निशंग	—	निषंग
नुपुर	—	नूपुर
परिणित	—	परिणति, परिणीत
परिप्रेक्ष	—	परिप्रेक्ष्य
पश्चात्ताप	—	पश्चाताप
परिषद	—	परिषद्
पुनरवलोकन	—	पुनरावलोकन
पुनरोक्ति	—	पुनरुक्ति
पुनरोत्थान	—	पुनरुत्थान
पितावत्	—	पितृवत
पक्षि	—	पक्षी
पूर्वान्ह	—	पूर्वाह्न
पुज्य	—	पूज्य
पूज्यनीय	—	पूजनीय
प्रगती	—	प्रगति
प्रज्वलित	—	प्रज्ज्वलित
प्रकृती	—	प्रकृति
प्रतीलिपि	—	प्रतिलिपि
प्रतिछाया	—	प्रतिच्छाया
प्रमाणिक	—	प्रामाणिक
प्रसंगिक	—	प्रासंगिक
प्रदर्शिनी	—	प्रदर्शनी
प्रियदर्शनी	—	प्रियदर्शिनी
प्रत्योपकार	—	प्रत्युपकार
प्रविष्ठ	—	प्रविष्ट
पृष्ट	—	पृष्ठ

टिप्पणी

प्रगट	—	प्रकट
प्राणीविज्ञान	—	प्राणिविज्ञान
पातंजली	—	पतंजलि
पौरुषत्व	—	पौरुष
पौर्वात्य	—	पौरस्त्य
बजार	—	बाजार
वाल्मीक	—	वाल्मीकि
बेइमान	—	बेईमान
ब्रहस्पति	—	बृहस्पति
भरतरी	—	भर्तृहरि
भर्तसना	—	भर्त्सना
भागवान	—	भाग्यवान
भानू	—	भानु
भारवी	—	भारवि
भाषाई	—	भाषायी
भिज्ञ	—	अभिज्ञ
भैय्या	—	भैया
मनुषत्व	—	मनुष्यत्व
मरीचका	—	मरीचिका
महत्व	—	महत्त्व
मँहगाई	—	महँगाई
महत्त्वाकांक्षा	—	महत्वाकांक्षा
मालुम	—	मालूम
मान्यनीय	—	माननीय
मुकंद	—	मुकुंद
मुनी	—	मुनि
मुहल्ला	—	मोहल्ला
माताहीन	—	मातृहीन
मूलतयः	—	मूलतः
मोहर	—	मुहर
योगीराज	—	योगिराज
यशगान	—	यशोगान
रविन्द्र	—	रवीन्द्र

टिप्पणी

रागनी	—	रागिनी
रुठना	—	रूठना
रोहीत	—	रोहित
लोकिक	—	लौकिक
वस्तुयें	—	वस्तुएँ
वाँछनीय	—	वांछनीय
वित्तेषणा	—	वित्तैषणा
व्रतांत	—	वृतांत
वापिस	—	वापस
वासुकी	—	वासुकि
विधार्थी	—	विद्यार्थी
विदेशिक	—	वैदेशिक
विधी	—	विधि
वांगमय	—	वाङ्मय
वरीष्ठ	—	वरिष्ठ
विस्वास	—	विश्वास
विषेश	—	विशेष
विछिन्न	—	विच्छिन्न
विशिष्ठ	—	विशिष्ट
वशिष्ट	—	वशिष्ठ, वसिष्ठ
वैश्या	—	वेश्या
वेषभूषा	—	वेशभूषा
व्यंग	—	व्यंग्य
व्यवहरित	—	व्यवहृत
शारीरीक	—	शारीरिक
विसराम	—	विश्राम
शांती	—	शांति
शारांस	—	सारांश
शाषकीय	—	शासकीय
श्रोत	—	स्रोत
श्राप	—	शाप
शाबास	—	शाबाश
शर्बत	—	शरबत

टिप्पणी

शंशय	—	संशय
सिरीष	—	शिरीष
शक्तिशील	—	शक्तिशाली
शार्दुल	—	शार्दूल
शौचनीय	—	शोचनीय
शुरूआत	—	शुरुआत
शुरु	—	शुरू
श्राद	—	श्राद्ध
श्रृंग	—	शृंग
श्रृंखला	—	शृंखला
श्रृद्धा	—	श्रद्धा
शुद्धी	—	शुद्धि
श्रीमति	—	श्रीमती
षटानन	—	षडानन
सरीता	—	सरिता
सन्सार	—	संसार
संश्लिष्ठ	—	संश्लिष्ट
हरितिमा	—	हरीतिमा
ह्रदय	—	हृदय
हिरन	—	हरिण
हितेषी	—	हितैषी
हिंदु	—	हिंदू
ऋषिकेश	—	हृषिकेश
हेतू	—	हेतु।

अपनी प्रगति जाँचिए

5. भाषा की सबसे महत्वपूर्ण सार्थक इकाई क्या है?

(क) ध्वनि (ख) अक्षर

(ग) शब्द (घ) वाक्य

6. वाक्यगत शब्दों का परस्पर लिंग, वचन, पुरुष आदि के अनुसार जो संबंध होता है, उसे क्या कहा जाता है?

(क) अन्वय (ख) विधेय

(ग) उद्देश्य (घ) पद–क्रम

1.5 अपनी प्रगति जाँचिए प्रश्नों के उत्तर

टिप्पणी

1. (ख)
2. (ग)
3. (क)
4. (घ)
5. (घ)
6. (क)

1.6 सारांश

जयशंकर प्रसाद छायावाद के प्रमुख कवि हैं। उनकी कविता में समूची भारतीय परम्परा और संस्कृति के उज्ज्वल पक्ष अपने पूरे वैभव के साथ आये हैं। प्रसाद मुख्यतः सांस्कृतिक चेतना के रचनाकार हैं। वे अपनी कविताओं के माध्यम से आधुनिक मनुष्य की विडम्बना, भटकाव और विचलन की पहचान करते हैं तथा एक प्रखर चेतना से युक्त मानव एवं समरस समाज के निर्माण में अपना योगदान देते हैं। प्रसाद का रचना संसार उनके जीवन–दर्शन की साहित्यिक अभिव्यक्ति है। प्रसाद पर सबसे अधिक प्रभाव 'शैव दर्शन' के 'प्रत्यभिज्ञा दर्शन' का है, किन्तु यह प्रसाद के रचना–कर्म की विशेषता है कि वे दार्शनिक विचारों को अपनी अनुभूति में इस कदर समाहित कर लेते हैं कि वह सहज और सुबोध बन जाते हैं।

जयशंकर प्रसाद ने अपनी कविता में अपनी वेदना का अत्यंत साहित्यिक चित्रण किया है। वेदना प्रेम जनित भी है और जीवन के कठोर एवं कटु यथार्थ से उपजी हुई भी। प्रेम जनित वेदना के चित्र प्रसाद के काव्य में खूब मिलते हैं। प्रसाद जैसे बड़े कवि की यह विशेषता है कि वे निज वेदना का विस्तार उसके उदात्त स्वरूप में करते हैं जिससे वह सकल विश्व की वेदना के रूप में अभिव्यक्त होने लगती है। प्रसाद मनुष्य के बिखराव के कारणों की खोज अपनी कविता में करते हैं। उनका चिंतन था कि जीवन का पुनः मूल्यांकन जरूरी है। वैभव, समृद्धि तथा तमाम भौतिक सुविधाओं के होते हुए भी मनुष्य अशांत है।

हमारी सांस्कृतिक विरासत दूसरी संस्कृतियों के दबाव में नष्ट होती जा रही है तथा नई संस्कृति मनुष्य को आक्रांत किये हुए है। अतः ऐसे समय में हमें अपनी खोई हुई संस्कृति को फिर से प्राप्त करना होगा। प्रसाद ने मानवीय संस्कृति को महत्वपूर्ण बताया और इसे देव संस्कृति से श्रेष्ठ कहा है। इस प्रकार प्रसाद ने आम आदमी के निराश मन में आशा का संचार किया।

राष्ट्रीय चेतना के स्वर को बुलंदियों तक पहुँचाने में हिन्दी कवियों में माखनलाल चतुर्वेदी का नाम शीर्ष पर है। अपनी रचनाओं के माध्यम से जन–मानस में राष्ट्रीय चेतना का मंत्र फूँकने और उसे जगाने में माखनलाल चतुर्वेदी की भूमिका सर्वाग्रणी है। लम्बे समय तक साहित्य सेवा करने वाले चतुर्वेदी जी अछूतोद्धार, जन जागरण और नारी चेतना के क्षेत्र में अपनी पहचान बनाते हुए द्विवेदी युगीन हिन्दी कविता

में अपना स्थान बना चुके थे। उनके काव्य की कोमलता और कल्पनाशीलता का सहज रूप ही आगे चलकर छायावादी कवियों की अभिव्यंजना का सशक्त आधार बना।

टिप्पणी

चतुर्वेदी जी के काव्य का मुख्य स्वर राष्ट्रीयता है। उनकी कविताओं में स्वातंत्र्य प्रेम एवं राष्ट्र प्रेम की धारा बराबर प्रवाहित होती रही है। उन्होंने जहाँ भारतीय स्वतंत्रता संग्राम को अपनी वाणी और लेखनी से गति प्रदान की है वहीं उन्होंने स्वातंत्र्योत्तर काल में राष्ट्र–रक्षा और राष्ट्र–निर्माण का उद्घोष भी किया है। 'पुष्प की अभिलाषा' शीर्षक कविता का मूल प्रतिपाद्य आत्मत्याग और आत्मोत्सर्ग की भावना है। इस कविता में कवि ने 'पुष्प' को माध्यम बनाकर अपनी राष्ट्र–भक्ति और स्वातंत्र्य–चेतना को वाणी दी है।

चतुर्वेदीजी परिस्थितियों का आकलन कर काव्य का निर्माण करते रहे हैं। स्वतंत्रता के पूर्व भारतीयों को आत्मगौरव की प्रेरणा देना आवश्यक था, किन्तु स्वतंत्रता के पश्चात् वे राष्ट्रीयता से अन्तर्राष्ट्रीयता की ओर बढ़े। युगदृष्टा के सदृश्य भारत की आंतरिक राजनैतिक स्थिति को देखते, परखते रहे, किन्तु संकटकालीन स्थिति में जैसे ही उन्होंने देखा कि भारतीय स्वतंत्रता और अखण्डता को खतरा है, वे पुनः अपने धरातल पर आ गये।

वाक्य भाषा की सबसे महत्वपूर्ण सार्थक इकाई है। सामान्यतः ध्वनि को तथा 'शब्द' को भाषा की प्राथमिक इकाई कहते हैं किंतु ये दोनों भाव और विचार को पूर्णतः अभिव्यक्त तथा संप्रेषित नहीं कर पाते। वाक्य द्वारा ही मानवीय मनोभावों और विचारों की सम्यक अभिव्यक्ति होती है तथा वाक्य ही भाषा के संप्रेषण का मूलाधार है। साधारणतः सार्थक शब्द–समूह को 'वाक्य' कहा जाता है किंतु वाक्य सिर्फ सार्थक शब्द–समूह मात्र नहीं होता, वह भाव और विचार की पूर्ण अभिव्यंजना का गठन है। पहले वाक्य को प्रायः अर्थ का बोध कराने वाला शब्द–समूह ही माना जाता था किंतु अब यह धारणा बदल चुकी है।

प्रत्येक भाषा में, वाक्य–रचना का अपना एक निश्चित नियम होता है। इस नियम के अनुसार वाक्य में प्रयुक्त पदों की व्यवस्था रहती है। इस व्यवस्थित क्रम से वाक्य के अर्थ को समझने में सुविधा रहती है। इसके विपरीत, यदि वाक्य के अंतर्गत विभिन्न पदों में कोई सुनिश्चित क्रम या व्यवस्था नहीं होती तो विभिन्न पद अपने अभीष्ट अर्थ को ठीक प्रकार से व्यक्त नहीं कर पाते, जैसे– 'सुंदर लड़के हैं खेलते बाग में'। इस वाक्य में हिंदी वाक्य–रचना के अनुरूप पदों का क्रम न होने के कारण पदों का परस्पर अन्वय ठीक से नहीं हो पाता इसीलिये उसके अर्थ की भी पूर्ण अभिव्यक्ति अबाध रूप से नहीं हो पाती है।

प्रत्येक भाषा में वाक्य रचना की अपनी विशिष्टता होती है। संसार के विभिन्न भाषा–भाषी अपने–अपने ढंग से अपने भाव और विचार व्यक्त करते हैं। इसका प्रभाव उनकी वाक्य रचना पर भी पड़ता है। उदाहरण के लिए संस्कृत, हिंदी तथा अंग्रेजी की वाक्य पद्धति पर्याप्त भिन्न है। सामान्यतः वाक्य–भेदों के पाँच आधार माने जाते हैं– (1) रचना, (2) आकृति, (3) अर्थ, (4) क्रिया और (5) रचना शैली।

वाक्य स्थित शब्द ही 'पद' कहलाते हैं जिनसे मिलकर वाक्य का निर्माण हुआ करता है। रचना की दृष्टि से, वाक्य भी तीन प्रकार के माने गये हैं– सरल, संयुक्त और मिश्रित। इन वाक्यों का रचना के आधार पर प्रकार–निर्धारण करते हुए तथा उसमें वाक्य या वाक्यांश का विग्रह करके उसके विविध पदों के व्याकरणिक संबंध स्पष्ट करना ही वाक्य–विश्लेषण अथवा वाक्य–विग्रह कहलाता है।

टिप्पणी

किसी शब्द को लिखने में प्रयुक्त वर्णों के क्रम को वर्तनी या अक्षरी कहते हैं। अंग्रेजी में वर्तनी को Spelling तथा उर्दू में 'हिज्जे' कहते हैं। किसी भाषा की समस्त ध्वनियों को सही ढंग से उच्चारित करने हेतु वर्तनी की एकरूपता स्थापित की जाती है। जिस भाषा की वर्तनी में अपनी भाषा के साथ अन्य भाषाओं की ध्वनियों को ग्रहण करने की जितनी अधिक शक्ति होगी, उस भाषा की वर्तनी उतनी ही समर्थ होगी। अतः वर्तनी का सीधा सम्बन्ध भाषागत ध्वनियों के उच्चारण से है।

1.7 मुख्य शब्दावली

- **पीयूष** : अमृत।
- **घनीभूत** : सघन।
- **विभावरी** : रात, निशा।
- **सन्निधि** : समीपता, निकटता।

1.8 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास

लघु–उत्तरीय प्रश्न

1. जयशंकर प्रसाद की कृतियों की विधागत सूची बनाइए।
2. 'असंख्य कीर्ति–रश्मियाँ विकीर्ण दिव्य दाह–सी' में 'असंख्य कीर्ति रश्मियाँ' का उल्लेख किसके संदर्भ में हुआ है?
3. अर्थ के आधार पर वाक्य के दो भेदों को सोदाहरण समझाइए।
4. वाक्य में लिंग संबंधी अशुद्धियों का अभिप्राय स्पष्ट कीजिए।

दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न

1. जयशंकर प्रसाद के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का परिचय दीजिए।
2. जयशंकर प्रसाद की कविता 'स्वतंत्रता पुकारती' का भावार्थ लिखिए।
3. 'स्वतंत्रता पुकारती' कविता की काव्यगत व शिल्पगत विशेषताएँ बताइए।
4. जयशंकर प्रसाद की कविता में स्त्री की कैसी छवि अंकित हुई है? उदाहरण सहित उत्तर दीजिए।
5. माखनलाल चतुर्वेदी का परिचय देते हुए उनके साहित्यिक योगदान की समीक्षा कीजिए।

6. 'पुष्प की अभिलाषा' कविता के माध्यम से कवि क्या कहना चाहता है?
7. 'पुष्प की अभिलाषा कविता की काव्यगत और शिल्पगत विशेषताओं का परिचय दीजिए।

टिप्पणी

1.9 सहायक पाठ्य सामग्री

1. 'प्रतिनिधि कविताएं', जयशंकर प्रसाद, राजकमल प्रकाशन, 2015
2. 'माखनलाल चतुर्वेदी रचना संचयन', चयन एवं संपादन– कृष्णदत्त पालीवाल, 2014.
3. 'आधुनिक हिन्दी व्याकरण और रचना', डॉ. वासुदेवनंदन प्रसाद, भारती भवन पब्लिशर एवं डिस्ट्रीब्यूटर, 2017
4. 'हिन्दी व्याकरण', कामता प्रसाद गुरु, वाणी प्रकाशन, 2014
5. 'प्रेमचंद का व्यक्तित्व', लक्ष्मण राव, भारतीय साहित्य कला प्रकाशन, 2019
6. 'भाषीय औदात्तय', डॉ. त्रिभुवन शुक्ल, वाणी प्रकाशन, 2016
7. 'व्यक्तित्व का संपूर्ण विकास', स्वामी विवेकानंद, प्रभात प्रकाशन, 2017
8. 'भगवान बुद्ध तथा उनके संदेश', स्वामी विवेकानंद, रामकृष्ण मठ, नागपुर, 2011
9. 'विवेकानंद साहित्य' (10 वाल्यूम), स्वामी विवेकानंद, अद्वैत आश्रम, 2017
10. 'हिन्दी भाषा प्रकृति, प्रयोग और शिक्षा', हीरालाल बाछोतिया, आर्यप्रकाशन मंडल, दिल्ली, 2012
11. 'डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन', आर.पी.एच. एडिटोरियल बोर्ड, रमेश पब्लिशिंग हाउस, 2016
12. 'डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन', बृजकिशोर, प्रभात प्रकाशन, 2018
13. 'व्यंग्य समय', शरद जोशी, किताब घर प्रकाशन, 2017
14. 'व्यंगर्षि शरद जोशी', वागीश सारस्वत, शिल्पायान, 2013
15. 'व्यक्तिगत निबन्ध और डायरी', रामधारी सिंह दिनकर, नेहा पब्लिशिंग एंड डिस्ट्रीब्यूटर, 2012
16. 'हमारी सांस्कृतिक एकता' (वाल्यूम 3 ऑफ 29), दिनकर ग्रंथालय, लोकभारती प्रकाशन, 2019
17. 'हिन्दी के प्रमुख निबन्धकार और उनका निबन्ध साहित्य', डॉ. जीवनभाई आर. डांगर, शांति प्रकाशन, 2016

इकाई 2 हिन्दी भाषा

टिप्पणी

संरचना

2.0 परिचय
2.1 उद्देश्य
2.2 नमक का दारोगा (कहानी) : प्रेमचंद
  2.2.1 'नमक का दारोगा' कहानी का मूल पाठ
  2.2.2 'नमक का दारोगा' कहानी का सार
  2.2.3 व्याख्यांश
  2.2.4 'नमक का दारोगा' कहानी का समीक्षात्मक अध्ययन
2.3 एक थे राजा भोज (निबन्ध) : डॉ. त्रिभुवननाथ शुक्ल
  2.3.1 'एक थे राजा भोज' निबन्ध का मूल पाठ
  2.3.2 'एक थे राजा भोज' निबन्ध का सार
  2.3.3 व्याख्यांश
  2.3.4 'एक थे राजा भोज' निबन्ध का समीक्षात्मक अध्ययन
2.4 पर्यायवाची, विलोम, एकार्थी, अनेकार्थी शब्द एवं शब्दयुग्म
  2.4.1 पर्यायवाची शब्द
  2.4.2 विलोम शब्द
  2.4.3 एकार्थी शब्द
  2.4.4 अनेकार्थी शब्द
  2.4.5 शब्दयुग्म
2.5 अपनी प्रगति जाँचिए प्रश्नों के उत्तर
2.6 सारांश
2.7 मुख्य शब्दावली
2.8 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
2.9 सहायक पाठ्य सामग्री

2.0 परिचय

हिन्दी कथा साहित्य के महानतम कथाकार व उपन्यासकार हैं मुंशी प्रेमचंद। उन्होंने 300 से ज्यादा कहानियाँ लिखीं जो मानसरोवर के 8 खंडों में संगृहीत हैं। गोदान उपन्यास उनकी सर्वोत्कृष्ट कृति मानी जाती है। शुरुआत में मुंशी जी उर्दू में लिखते थे किंतु बाद में वे हिन्दी में लिखने लगे। हिन्दी कथा साहित्य में प्रेमचंद एक युग हैं जिनसे प्रेरणा पाकर व जिनके पद–चिह्नों पर चलकर हिन्दी कथा साहित्य का रथ दौड़ता हुआ आधुनिक धारा तक आ गया है।

बहुमुखी प्रतिभा के धनी त्रिभुवननाथ शुक्ल ने साहित्य की हर विधा में अपनी छाप छोड़ी है किंतु कविता, कहानी, नाटक एवं ललित निबन्ध में इनकी विशेष रुचि रही है। अनेकानेक पुस्तकों के संपादन के साथ त्रिभुवननाथ शुक्ल जी हिन्दी साहित्य के एक प्रमुख हस्ताक्षर बन चुके हैं।

भाषा शब्दों का ताना–बाना है। शब्द अपने आप में कई अर्थों को समेटे हुए रहते हैं। किन्हीं दो शब्दों, जिनमें अर्थ के आधार पर थोड़ी–बहुत या कतिपय समानता होती

है, परस्पर पर्यायवाची शब्द कहलाते हैं। इसके उलट जिन शब्दों में अर्थ के आधार पर विरोध उत्पन्न होता है, विलोम शब्द कहलाते हैं।

टिप्पणी

इस इकाई में मुंशी प्रेमचंद का साहित्यिक परिचय देते हुए उनकी कहानी 'नमक का दारोगा' की व्याख्या एवं समीक्षा की गई है साथ ही निबन्ध विषयक ज्ञान कराने के लिए त्रिभुवननाथ शुक्ल के निबन्ध 'एक थे राजा भोज' की व्याख्या सहित समीक्षात्मक विवेचन किया गया है। इस क्रम को आगे बढ़ाते हुए शब्दों का ज्ञान कराने हेतु पर्यायवाची एवं विलोम शब्दों का अर्थ, उनमें अंतर व कुछ उदाहरण आदि प्रस्तुत किए गए हैं।

2.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- प्रेमचंद रचित 'नमक का दारोगा' कहानी का विश्लेषणात्मक अध्ययन कर पाएँगे;
- डॉ. त्रिभुवननाथ शुक्ल द्वारा रचित निबन्ध 'एक थे राजा भोज' की समीक्षा कर पाएँगे;
- 'नमक का दारोगा' कहानी एवं 'एक थे राजा भोज' निबन्ध के प्रमुख अंशों की व्याख्या कर पाएँगे;
- पर्यायवाची, विलोम, एकार्थी, अनेकार्थी आदि शब्दों से परिचित हो पाएँगे।

2.2 नमक का दारोगा (कहानी) : प्रेमचंद

हिन्दी के महानतम उपन्यासकारों में गिने जाने वाले मुंशी प्रेमचंद का जन्म शनिवार 31 जुलाई, 1880 ई. में बनारस के समीपवर्ती लमही नामक गाँव में एक निम्न मध्य–वित्त श्रेणी के कायस्थ परिवार में हुआ था। प्रेमचंद का बचपन का नाम धनपतराय था, हालाँकि उनके चाचा–ताऊ स्नेहवश उन्हें नवाबराय के नाम से भी सम्बोधित करते थे। अपने साहित्यिक जीवन का शुभारंभ उन्होंने नवाबराय के नाम से ही किया था किन्तु पत्राचार में वे आजीवन अपना नाम धनपतराय ही लिखते रहे। मुंशी प्रेमचंद के पिता अजायबराय डाकखाने में मुंशी पद पर कार्यरत थे। पारिवारिक उथल–पुथल एवं बड़े भाई एवं उनके पुत्र की असामयिक मृत्यु से उनके ऊपर भारी आर्थिक संकट आ पड़ा। परिवार बड़ा होने के कारण उनकी आमदनी से घर का खर्च बमुश्किल चल पाता था। इसी कारण प्रेमचंद को अपने जीवन के शुरुआती दिनों में गहरी आर्थिक विपन्नता का सामना करना पड़ा।

प्रेमचंद की माता आनन्दी देवी बड़े सरल स्वभाव की महिला थीं, किन्तु संग्रहणी की मरीज होने के कारण उन्हें अधिक दिनों तक माता का दुलार न दे सकीं और जब प्रेमचंद की अवस्था मात्र सात–आठ वर्ष थी, उनका निधन हो गया। प्रेमचंद का बाल्यकाल पिता के तबादलों एवं पारिवारिक समस्याओं के कारण अभावग्रस्त तो था ही, पिता द्वारा दूसरा विवाह कर लेने पर उनकी परेशानियाँ और बढ़ गई थीं। विमाता के साथ पारस्परिक सम्बन्ध अच्छे न होने के कारण उनके जीवन में मातृत्व स्नेह, करुणा एवं प्रेम का भी अभाव रहा।

टिप्पणी

प्रेमचंद की पढ़ाई में बचपन से ही बहुत रुचि थी, परंतु आर्थिक अभाव के कारण उनकी शिक्षा में बहुत रुकावटें आईं। प्रेमचंद ने लिखा है– ''पैसों की दिक्कत तो मुझे हमेशा रहती थी। मुझे बारह आने महीने फीस देनी पड़ती थी। (तब वे कदाचित् छठी कक्षा के छात्र थे)। उन बारह आनों में से एकाध आने हर महीने खा जाता था। जिस मुहल्ले में मैं था, उसमें छोटी जाति के लोग थे। वे लोग मुझसे लेकर दो–चार पैसे खा लेते थे। इसलिए फीस देने में मुझे बड़ी दिक्कत होती थी।''

ऐसे ही एक और वाकया है, जब वे हाई स्कूल में प्रवेश लेने के लिए बनारस आए। आपने अपने पिता की आर्थिक दशा को देखते हुए स्वेच्छा से माँग की थी कि मुझे पाँच रुपये मासिक दे दिया कीजिए, किन्तु इन पाँच रुपयों में से दो रुपये तो स्कूल–फीस के ही चले जाते थे, अतः शेष तीन रुपयों में खर्च चलाना बड़ा कठिन होता था। उन्होंने लिखा है–''पाँव में जूते न थे। देह पर कपड़े न थे। महँगाई अलग। दस सेर का जौ था। स्कूल से साढ़े तीन बजे छुट्टी मिलती थी। काशी के क्वीन्स कॉलेज में पढ़ता था। हैडमास्टर ने फीस माफ कर दी थी (फीस माफी कदाचित् पिता का निधन हो जाने पर हुई थी)। इम्तहान सिर पर थे और मैं बाँस के फाटक पर एक लड़के को पढ़ाने जाता था। जाड़ों के दिन थे, चार बजे पहुँचता था। पढ़ाकर छः बजे छुट्टी पाता। वहाँ से मेरा घर देहात में पाँच मील पर था। तेज चलने पर भी आठ बजे से पहले घर न पहुँच सकता और प्रातःकाल आठ ही बजे फिर से घर से चलना पड़ता था। वक्त पर स्कूल न पहुँच पाता था। रात को भोजन करके कुप्पी के सामने बैठता, और न जाने कब सो जाता। फिर भी हिम्मत बाँधे हुआ था।'' धनाभाव और पारिवारिक क्लेशों में जैसे–तैसे अपने अध्ययन पठन को आगे बढ़ाने वाले विद्यार्थी प्रेमचन्द को 1896 ई. में दुर्भाग्य के हाथों एक अन्य भयंकर वज्रपात सहना पड़ा। इनके पिता असमय ही अपने पीछे दो बच्चे और युवती पत्नी छोड़कर चल बसे। घर की सारी पूँजी पिता की बीमारी और क्रियाकर्म में खर्च हो चुकी थी। ऐसे अभाव में आगे की शिक्षा उनके लिए असाध्य हो गई थी। परंतु उनकी दृढ़ता एवं लगन ने उन्हें सदैव शिक्षा के मार्ग पर अग्रसर रखा। मैट्रिकुलेशन की परीक्षा द्वितीय श्रेणी से उत्तीर्ण करने के पश्चात् उन्होंने 1902 में जे. सी.टी. का शिक्षण–प्रशिक्षण लेने के लिए इलाहाबाद के ट्रेनिंग कॉलेज में प्रवेश लिया और 1904 में यह परीक्षा प्रथम श्रेणी से उत्तीर्ण की। इसके बाद उन्होंने सन् 1914 में इण्टर की परीक्षा पास की और 1919 में बी.ए. की परीक्षा भी उत्तीर्ण कर ली। इस दौरान वे बस्ती जिले के सरकारी विद्यालय में अध्यापक के रूप में कार्यरत रहे।

प्रेमचंद जी का निजी जीवन भी कम उतार–चढ़ावों से नहीं गुजरा। मात्र आठ वर्ष की उम्र में उनकी माता का देहान्त हो गया। पिता ने दूसरी शादी की परन्तु विमाता का व्यवहार उनके लिए अच्छा न था। और वे सदैव मातृत्व स्नेह की कमी महसूस करते रहे। सन् 1895 ई. में उनके विद्यार्थी काल में ही उनका विवाह कर दिया गया, जो बड़ा असफल सिद्ध हुआ। शिवरानी देवी के रूप में उन्हें उपयुक्त सहधर्मिणी की उपलब्धि हुई। इनके कारण उन्हें अपनी साहित्य साधना के उपयुक्त पारिवारिक–शान्ति और सत्प्रेरणा तो मिली ही, उन्होंने किन्हीं अंशों में स्वपति के क्रियात्मक जीवन का भी प्रतिनिधित्व किया। प्रेमचंद और शिवरानी देवी से तीन पुत्र और तीन पुत्रियाँ उत्पन्न हुईं। प्रेमचंद की इच्छानुसार उनकी मृत्यु के उपरांत भी शिवरानी देवी एवं उनके बच्चों ने उनके द्वारा शुरू हंस पत्रिका का प्रकाशन जारी रखा। मूल रूप से यह कहना उचित होगा कि उनका दूसरा विवाह पूर्णतया सफल रहा।

टिप्पणी

साहित्यिक दृष्टि से प्रेमचंद यथार्थवादी लेखक रहे हैं। बचपन से ही उन्हें उर्दू उपन्यासों को पढ़ने का बड़ा चाव रहा। 13 वर्ष की उम्र में उन्होंने उस समय के प्रख्यात उर्दू लेखकों मौलाना शरर, पंडित रतननाथ शरशार, मिर्जा हादी रुसवा, मौलवी मुहम्मद अली हरदोई निवासी आदि की प्रमुख रचनाओं का अध्ययन किया। वे लिखते हैं–''इन लेखकों की रचनाएँ जहाँ मिल जाती थीं, स्कूल की याद भूल जाती थी और पुस्तक समाप्त करके ही दम लेता था।'' इनका एक साथी किसी ऐसे तम्बाकू–विक्रेता का पुत्र था जिसके यहाँ 'तिलिस्मे होशरूबा' उपलब्ध थी। प्रेमचंद लगभग एक साल तक रोजाना उसके यहाँ उस विशालकाय ग्रंथ को पढ़ने–सुनने जाते रहे थे। उन्होंने दो–तीन वर्षों तक अनेक तिलिस्मी–जासूसी रचनाएँ पढ़ीं और इससे उनकी भाव कल्पना जागृत हुई और उन्होंने मिडिल कक्षाओं में पढ़ते हुए कहानियाँ लिखने का प्रयास आरंभ किया।

सन् 1905 में जब वे मॉडल स्कूल के हेडमास्टर के रूप में कानपुर में नियुक्त हुए तब उनकी मुलाकात 'जमाना' पत्र के सम्पादक मुंशी दयानारायण निगम से हुई और इस पत्र में उनकी कहानियाँ और आलोचनाएँ छपने लगीं। सन् 1907 में उन्होंने नवाबराय के नाम से पाँच कहानियों का प्रथम कहानी संग्रह 'सोज़े–वतन' के नाम से छपवाया, जिसमें स्वदेश–प्रेम की महिमा पर बल दिया गया था। यद्यपि इन कहानियों में कोई आपत्तिजनक बात न थी, फिर भी सब–जिलाधीश को उसमें 'सेडीशन' की गंध प्राप्त हुई और उसने उनके कहानी संग्रह की सभी प्रतियाँ जब्त कर लीं। साथ ही उन्हें जिलाधीश का यह आदेश भी मिला कि वे आगे से अपनी कोई भी रचना छपवाने से पूर्व उन्हें अवश्य दिखा लिया करें। इस घटना ने उनके जीवन पर गहरा असर डाला। दयानारायण निगम के सुझाव पर उन्होंने नवाबराय नाम छोड़कर प्रेमचंद नाम से लिखना आरंभ किया। हालाँकि नवाबराय नाम छोड़ने के सवाल पर उनका अकाट्य तर्क होता– 'चार पैसे पास नहीं और नाम नवाबराय। इस नवाबी से प्रेम भला, जिसमें ठंडक भी है, सन्तोष भी।' प्रेमचंद के नाम से उनकी लिखी पहली कहानी पर द्विमत हैं, श्री सुदर्शन जी के अनुसार, उनकी पहली कहानी 'ममता' थी जबकि मदन गोहाल के अनुसार, 'बड़े घर की बेटी' उनकी पहली कहानी थी। उनकी सर्वप्रथम कहानी 'संसार का सबसे अनमोल रत्न' है जो उन्होंने नवाबराय नाम से लिखी थी, और 'जमाना' पत्र में छपी थी।

प्रेमचंद शुरू में उर्दू भाषा में अपनी रचनाएँ लिखते थे। डिप्टी इंस्पेक्टर पद पर कार्य करते हुए उनकी मुलाकात गोरखपुर के हनुमान प्रसाद पोद्दार और बस्ती के मन्नन द्विवेदी से हुई। इन सज्जनों की प्रेरणा और प्रोत्साहन से उन्होंने हिन्दी का अधिक ज्ञान प्राप्त किया और हिन्दी में लेखन आरंभ किया। आरम्भिक दिनों में वे अपनी रचनाएँ पहले उर्दू में लिख लेते और फिर उनका हिन्दी में अनुवाद कर देते थे। उनका प्रथम हिन्दी उपन्यास 'सेवासदन' उर्दू लिपि में ही लिखा गया है, जिसका बाद में हिन्दी अनुवाद उन्होंने स्वयं किया था। इसी क्रम में शनैः शनैः उनका हिन्दी भाषा पर भी पूर्ण आधिपत्य ही नहीं हुआ वरन् उसे उन्होंने ऐसी उत्कृष्ट शैली से समृद्ध किया, जिसके लिए हिन्दी–भाषा उनकी चिर ऋणी रहेगी।

महात्मा गाँधी से प्रभावित होने के कारण उन्होंने सरकारी नौकरी से इस्तीफा दे दिया था और उन्होंने बनारस लौटकर 'मर्यादा' नामक पत्र का डेढ़ वर्ष तक सम्पादन किया। फिर कुछ दिन काशी विद्यापीठ में अध्यापक के रूप में कार्य करने के पश्चात्

टिप्पणी

पुनः अपने गाँव लमही लौट गए। सन् 1923 ई. में उन्होंने कुछ साथियों को मिलाकर बनारस में सरस्वती प्रेस की स्थापना की। सन् 1928 से 1931 तक 'माधुरी' पत्रिका के सम्पादन का कार्य भी किया और इसी कालावधि में सन् 1930 में सरस्वती प्रेस से कविवर जयशंकर प्रसाद और अन्य मित्रों के प्रोत्साहन से मासिक पत्रिका 'हंस' का प्रकाशन आरंभ किया। राष्ट्र प्रेम और जन–जागरण संबंधी रचनाएँ छपने के कारण आए दिन 'हंस' की जमानतें जब्त होती रहती थीं। इस सिलसिले के क्रमबद्ध चलने के कारण यह पत्रिका घाटे में चलने लगी। इस घाटे को पूरा करने के लिए उन्होंने 'जागरण' नामक साप्ताहिक पत्र भी निकाला, किन्तु दुर्भाग्यवश उसने घाटे की राशि को और भी बढ़ा दिया जिससे उन्हें यह पत्र अंततः बन्द करने के लिए विवश होना पड़ा।

अपनी मासिक पत्रिका 'हंस' में उन्होंने ऐसी सामग्री देने की भी योजना आरंभ की थी जिससे प्रांतीयता के स्थान पर राष्ट्रीयता की भावना को बल मिले तथा भारत की सभी भाषाओं की उत्कृष्ट कृतियों का हिन्दी भाषियों को परिज्ञान मिल सके। पत्र संचालन में सतत् घाटे और अत्यधिक प्रिय हंस के प्रकाशन को किसी प्रकार जीवित रखने के लिए उन्होंने उसे 'भारतीय साहित्य परिषद्' को सौंप दिया था, किन्तु पत्रिका में छपे किसी लेख पर जमानत देने से इनकार की दशा में हंस का संचालन भार फिर उन्हीं के कन्धों पर आ गया। हंस पत्रिका से पुत्रवत् प्रेम हो जाने की दशा में उन्हें अंतिम क्षणों में भी उसे चलाते रहने की चिन्ता व्यग्र करती रही थी। उन्होंने अपनी पत्नी से कहा था–''रानी, हंस जरूर निकलेगा, मैं चाहे रहूँ ना रहूँ।''

उनका स्वास्थ्य पूर्ण रूप से ठीक तो प्रायः रहता ही नहीं था। निरंतर लेखन कार्य के चलते उनका स्वास्थ्य और क्षीण होता रहा। उन्हें जलोदर रोग हो गया था। उन्होंने इसका लखनऊ और बनारस में हकीमी, ऐलोपैथी और होम्योपैथी इलाज भी कराया किन्तु कोई लाभ नहीं हुआ। अन्ततः मानवता का यह अनन्त पक्षधर साधक आठ अक्टूबर, 1936 को प्रातःकाल इस संसार से विदा हो गया।

आधुनिक हिन्दी के कथा–सम्राट मुंशी प्रेमचंद का मानना था कि साहित्य देशभक्ति और राजनीति के पीछे चलने वाली सच्चाई ही नहीं बल्कि उसके आगे मशाल दिखाती हुई चलने वाली सच्चाई है। सही मायने में इस युग निर्माता ने अपनी कलम के जरिए भी इस मान्यता को पुष्ट करके दिखाया। वे आधुनिक हिन्दी के ऐसे निर्माता हैं जिन्होंने साहित्य को कल्पना जगत से उतारकर जीवन के खारेपन से जोड़ा है। प्रेमचंद से पूर्व हिन्दी कथा साहित्य के पाठक तिलस्मी, ऐय्यारी, जासूसी व काल्पनिक कथाओं के आकर्षण में बँधे हुए थे। ऐसे समय में प्रेमचंद ने अपनी रचनाओं के माध्यम से यह बताया कि साहित्य मात्र मनोरंजन का साधन नहीं अपितु जीवन और समाज का दर्पण है। उन्होंने कथा साहित्य को कौतूहल भरी गलियों से निकालकर, देश की जनता से सीधा सम्पर्क कराकर यथार्थ से सम्पृक्त किया।

प्रेमचंद की प्रमुख कृतियाँ इस प्रकार हैं–

1. **उपन्यास**– 'इसरारे मुहब्बत', 'प्रताप चन्द्र', 'श्यामा', 'प्रेमा', 'कृष्णा', 'वरदान', 'प्रतिज्ञा', 'सेवासदन', 'प्रेमाश्रम', 'निर्मला', 'रंगभूमि', 'कायाकल्प', 'गबन', 'कर्मभूमि', 'गोदान' इत्यादि।
2. **कहानियाँ**– 'सोजे वतन', 'सप्तसरोज', 'नवनिधि हिन्दी', 'प्रेम पूर्णिमा', 'प्रेम पचीसी', 'प्रेमतीर्थ', 'प्रेम द्वादशी', 'प्रेम प्रतिमा', 'प्रेम पंचमी', 'प्रेम चतुर्थी', 'पाँच

फूल', 'कफन', 'समरयात्रा', 'मानसरोवर' (आठ भाग), 'प्रेम पीयूष', 'प्रेमकुंज', 'सप्त सुमन', 'प्रेरणा', 'प्रेम सरोवर', 'अग्नि समाधि', 'प्रेम राग'।

3. **नाटक**– 'कर्बला', 'संग्राम', 'प्रेम की वेदी'।

टिप्पणी

4. **जीवनियाँ**– 'महात्मा शेख सादी', 'दुर्गादास'।
5. **बाल साहित्य**– 'कुत्ते की कहानी', 'जंगल की कहानियाँ', 'राम चर्चा'।
6. **अनूदित**– 'टॉलस्टाय की कहानियाँ', 'सुखदास', 'अहंकार', 'चाँदी की डिबिया', 'न्याय', 'हड़ताल', 'आजाद कथा', 'पिता का पत्र पुत्री के नाम', 'शबेतार', 'सृष्टि का आरम्भ'।

प्रेमचंद के साहित्य में आम नागरिकों और सामान्य जनजीवन पर प्रकाश डाला गया है। उस समय की गरीबी और सामान्य लोगों की जीवन समस्याओं का विस्तृत वर्णन किया गया है। समाज में फैली बुराइयों को जिस ढंग से उन्होंने कथा–शिल्प में गढ़ा, वह अद्वितीय है। सत्य और असत्य का संघर्ष ही मूलतः उनके कथा साहित्य का आधार है। उनमें एक ओर भारतीय आदर्शवादी सोच है और दूसरी ओर यथार्थवादी दृष्टि भी, जो सामयिक जीवन की विषमताओं और विसंगतियों को पूर्णतया उजागर कर देना चाहती है। अपने कथा साहित्य के क्रम में वे आदर्श और यथार्थवादी शक्तियों के तनावों और अन्तर्विरोधों से गुजरते हुए उसी आदर्शवादी ढांचे को स्वयं ही तोड़ डालते हैं। उनकी कहानियों के मुख्य पात्र भी उन्हीं बुराइयों से दूषित हैं जो किसी अन्य व्यक्ति में हो सकती हैं। दरअसल पुराने युग की विचारधारा से प्रभावित होते हुए भी वे नये युग के साथ खड़े हैं। इसलिए उनमें सामयिकता का आग्रह प्रबल है। जातीय जीवन व राष्ट्रीय जीवन की समग्र सच्चाई उनमें मौजूद है।

प्रेमचंद ने पददलित शोषितों, मजदूरों, किसानों व गरीबों के दुःख–दर्द को अपने साहित्य में सच्ची अभिव्यक्ति दी है। इस संदर्भ में हजारीप्रसाद द्विवेदी का मानना सही है कि इतने कौशलपूर्ण और प्रामाणिक भाव से वहाँ ले जाने वाला परिदर्शक हिन्दी–उर्दू की दुनिया में नहीं है। उनके उपन्यासों में विचारों का वह समागम मिलता है जो एक दार्शनिक व्यक्ति ही लिख सकता है। उनकी कथाएँ व्यक्ति की मानसिकता पर भी गहरा प्रभाव डालती हैं।

हिन्दी की भावी पीढ़ी के लिए नई सोच का विस्तृत आयाम खोल देने वाले इस महान रचनाकार का साहित्य समकालीन सन्दर्भों की कसौटी पर आज भी खरा उतरता है।

2.2.1 'नमक का दारोगा' कहानी का मूल पाठ

जब नमक का नया विभाग बना और ईश्वरप्रदत्त वस्तु के व्यवहार करने का निषेध हो गया तो लोग चोरी–छिपे इसका व्यापार करने लगे। अनेक प्रकार के छल–प्रपंचों का सूत्रपात हुआ, कोई घूस से काम निकालता था, कोई चालाकी से। अधिकारियों के पौ–बारह थे। पटवारीगिरी का सर्वसम्मानित पद छोड़–छोड़कर लोग इस विभाग की बरकंदाजी करते थे। इसके दारोगा पद के लिए तो वकीलों का भी जी ललचाता था।

यह वह समय था जब अंगरेजी शिक्षा और ईसाई मत को लोग एक ही वस्तु समझते थे। फारसी का प्राबल्य था। प्रेम की कथाएँ और शृंगार रस के काव्य पढ़कर फारसीदाँ लोग सर्वोच्च पदों पर नियुक्त हो जाया करते थे।

मुंशी वंशीधर भी जुलेखा की विरह–कथा समाप्त करके शीरीं और फरहाद के प्रेम–वृत्तांत को नल और नील की लड़ाई और अमेरिका के आविष्कार से अधिक महत्व की बातें समझते हुए रोजगार की खोज में निकले।

टिप्पणी

उनके पिता एक अनुभवी पुरुष थे। समझाने लगे, 'बेटा! घर की दुर्दशा देख रहे हो। ऋण के बोझ से दबे हुए हैं। लड़कियाँ हैं, वे घास–फूस की तरह बढ़ती चली जाती हैं। मैं कगारे पर का वृक्ष हो रहा हूँ, न मालूम कब गिर पड़ूँ! अब तुम्हीं घर के मालिक–मुख्तार हो।

'नौकरी में ओहदे की ओर ध्यान मत देना, यह तो पीर का मजार है। निगाह चढ़ावे और चादर पर रखनी चाहिए। ऐसा काम ढूँढ़ना जहाँ कुछ ऊपरी आय हो। मासिक वेतन तो पूर्णमासी का चाँद है, जो एक दिन दिखाई देता है और घटते–घटते लुप्त हो जाता है। ऊपरी आय बहता हुआ स्रोत है जिससे सदैव प्यास बुझती है। वेतन मनुष्य देता है, इसी से उसमें वृद्धि नहीं होती। ऊपरी आमदनी ईश्वर देता है, इसी से उसकी बरकत होती है, तुम स्वयं विद्वान हो, तुम्हें क्या समझाऊँ।

'इस विषय में विवेक की बड़ी आवश्यकता है। मनुष्य को देखो, उसकी आवश्यकता को देखो और अवसर को देखो, उसके उपरांत जो उचित समझो, करो। गरजवाले आदमी के साथ कठोरता करने में लाभ ही लाभ है। लेकिन बेगरज को दाँव पर पाना जरा कठिन है। इन बातों को निगाह में बाँध लो यह मेरी जन्म भर की कमाई है।'

इस उपदेश के बाद पिताजी ने आशीर्वाद दिया। वंशीधर आज्ञाकारी पुत्र थे। ये बातें ध्यान से सुनीं और तब घर से चल खड़े हुए। इस विस्तृत संसार में उनके लिए धैर्य अपना मित्र, बुद्धि अपनी पथप्रदर्शक और आत्मावलम्बन ही अपना सहायक था। लेकिन अच्छे शकुन से चले थे, जाते ही जाते नमक विभाग के दारोगा पद पर प्रतिष्ठित हो गए। वेतन अच्छा और ऊपरी आय का तो ठिकाना ही न था। वृद्ध मुंशीजी को सुख–संवाद मिला तो फूले न समाए। महाजन कुछ नरम पड़े, कलवार की आशालता लहलहाई। पड़ोसियों के हृदय में शूल उठने लगे।

जाड़े के दिन थे और रात का समय। नमक के सिपाही, चौकीदार नशे में मस्त थे। मुंशी वंशीधर को यहाँ आए अभी छह महीनों से अधिक न हुए थे, लेकिन इस थोड़े समय में ही उन्होंने अपनी कार्यकुशलता और उत्तम आचार से अफसरों को मोहित कर लिया था। अफसर लोग उन पर बहुत विश्वास करने लगे।

नमक के दफ्तर से एक मील पूर्व की ओर जमुना बहती थी, उस पर नावों का एक पुल बना हुआ था। दारोगाजी किवाड़ बंद किए मीठी नींद सो रहे थे। अचानक आँख खुली तो नदी के प्रवाह की जगह गाड़ियों की गड़गड़ाहट तथा मल्लाहों का कोलाहल सुनाई दिया। उठ बैठे।

इतनी रात गए गाड़ियाँ क्यों नदी के पार जाती हैं? अवश्य कुछ न कुछ गोलमाल है। तर्क ने भ्रम को पुष्ट किया। वरदी पहनी, तमंचा जेब में रखा और बात की बात में घोड़ा बढ़ाए हुए पुल पर आ पहुँचे। गाड़ियों की एक लम्बी कतार पुल के पार जाती देखी। डाँटकर पूछा, 'किसकी गाड़ियाँ हैं?'

थोड़ी देर तक सन्नाटा रहा। आदमियों में कुछ कानाफूसी हुई तब आगे वाले ने कहा–'पंडित अलोपीदीन की।'

'कौन पंडित अलोपीदीन?'

'दातागंज के।'

टिप्पणी

मुंशी वंशीधर चौंके। पंडित अलोपीदीन इस इलाके के सबसे प्रतिष्ठित जमींदार थे। लाखों रुपए का लेन–देन करते थे, इधर छोटे से बड़े कौन ऐसे थे जो उनके ऋणी न हों। व्यापार भी बड़ा लम्बा–चौड़ा था। बड़े चलते–पुरजे आदमी थे। अंग्रेज अफसर उनके इलाके में शिकार खेलने आते और उनके मेहमान होते। बारहों मास सदाव्रत चलता था।

मुंशी ने पूछा, 'गाड़ियाँ कहाँ जाएँगी?' उत्तर मिला, 'कानपुर।' लेकिन इस प्रश्न पर कि इनमें क्या है, सन्नाटा छा गया। दारोगा साहब का संदेह और भी बढ़ा। कुछ देर तक उत्तर की बाट देखकर वह जोर से बोले, 'क्या तुम सब गूँगे हो गए हो? हम पूछते हैं इनमें क्या लदा है?'

जब इस बार भी कोई उत्तर न मिला तो उन्होंने घोड़े को एक गाड़ी से मिलाकर बोरे को टटोला। भ्रम दूर हो गया। यह नमक के डेले थे।

पंडित अलोपीदीन अपने सजीले रथ पर सवार, कुछ सोते, कुछ जागते चले आते थे। अचानक कई गाड़ीवानों ने घबराए हुए आकर जगाया और बोले–'महाराज! दारोगा ने गाड़ियाँ रोक दी हैं और घाट पर खड़े आपको बुलाते हैं।'

पंडित अलोपीदीन का लक्ष्मीजी पर अखंड विश्वास था। वे कहा करते थे कि संसार का तो कहना ही क्या, स्वर्ग में भी लक्ष्मी का ही राज्य है। उनका यह कहना यथार्थ ही था। न्याय और नीति सब लक्ष्मी के ही खिलौने हैं, इन्हें वह जैसे चाहती हैं नचाती हैं। लेटे ही लेटे गर्व से बोले, चलो हम आते हैं। यह कहकर पंडितजी ने बड़ी निश्चिंतता से पान के बीड़े लगाकर खाए। फिर लिहाफ ओढ़े हुए दारोगा के पास आकर बोले, 'बाबूजी आशीर्वाद! कहिए, हमसे ऐसा कौन सा अपराध हुआ कि गाड़ियाँ रोक दी गईं। हम ब्राह्मणों पर तो आपकी कृपा–दृष्टि रहनी चाहिए।'

वंशीधर रुखाई से बोले, 'सरकारी हुक्म।'

पंडित अलोपीदीन ने हँसकर कहा, 'हम सरकारी हुक्म को नहीं जानते और न सरकार को। हमारे सरकार तो आप ही हैं। हमारा और आपका तो घर का मामला है, हम कभी आपसे बाहर हो सकते हैं? आपने व्यर्थ का कष्ट उठाया। यह हो नहीं सकता कि इधर से जाएँ और इस घाट के देवता को भेंट न चढ़ावें। मैं तो आपकी सेवा में स्वयं ही आ रहा था।' वंशीधर पर ऐश्वर्य की मोहिनी वंशी का कुछ प्रभाव न पड़ा। ईमानदारी की नई उमंग थी। कड़ककर बोले, 'हम उन नमकहरामों में नहीं है जो कौड़ियों पर अपना ईमान बेचते फिरते हैं। आप इस समय हिरासत में हैं। आपका कायदे के अनुसार चालान होगा। बस, मुझे अधिक बातों की फुर्सत नहीं है। जमादार बदलूसिंह! तुम इन्हें हिरासत में ले चलो, मैं हुक्म देता हूँ।'

पंडित अलोपीदीन स्तम्भित हो गए। गाड़ीवानों में हलचल मच गई। पंडितजी के जीवन में कदाचित यह पहला ही अवसर था कि पंडितजी को ऐसी कठोर बातें सुननी पड़ीं। बदलूसिंह आगे बढ़ा, किन्तु रोब के मारे यह साहस न हुआ कि उनका हाथ पकड़ सके। पंडितजी ने धर्म को धन का ऐसा निरादर करते कभी न देखा था। विचार किया कि यह अभी उद्दंड लड़का है। माया–मोह के जाल में अभी नहीं पड़ा। अल्हड़ है,

झिझकता है। बहुत दीनभाव से बोले, 'बाबू साहब, ऐसा न कीजिए, हम मिट जाएँगे। इज्जत धूल में मिल जाएगी। हमारा अपमान करने से आपके हाथ क्या आएगा। हम किसी तरह आपसे बाहर थोड़े ही हैं।'

टिप्पणी

वंशीधर ने कठोर स्वर में कहा, 'हम ऐसी बातें नहीं सुनना चाहते।'

अलोपीदीन ने जिस सहारे को चट्टान समझ रखा था, वह पैरों के नीचे खिसकता हुआ मालूम हुआ। स्वाभिमान और धन–ऐश्वर्य की कड़ी चोट लगी। किन्तु अभी तक धन की सांख्यिक शक्ति का पूरा भरोसा था। अपने मुख्तार से बोले, 'लालाजी, एक हजार के नोट बाबू साहब की भेंट करो, आप इस समय भूखे सिंह हो रहे हैं।'

वंशीधर ने गरम होकर कहा, 'एक हजार नहीं, एक लाख भी मुझे सच्चे मार्ग से नहीं हटा सकते।'

धर्म की इस बुद्धिहीन दृढ़ता और देव–दुर्लभ त्याग पर मन बहुत झुँझलाया। अब दोनों शक्तियों में संग्राम होने लगा। धन ने उछल–उछलकर आक्रमण करने शुरू किए। एक से पाँच, पाँच से दस, दस से पंद्रह और पंद्रह से बीस हजार तक नौबत पहुँची, किन्तु धर्म अलौकिक वीरता के साथ बहुसंख्यक सेना के सम्मुख अकेला पर्वत की भाँति अटल, अविचलित खड़ा था।

अलोपीदीन निराश होकर बोले, 'अब इससे अधिक मेरा साहस नहीं। आगे आपको अधिकार है।'

वंशीधर ने अपने जमादार को ललकारा। बदलूसिंह मन में दारोगाजी को गालियाँ देता हुआ पंडित अलोपीदीन की ओर बढ़ा। पंडितजी घबड़ाकर दो–तीन कदम पीछे हट गए। अत्यंत दीनता से बोले, 'बाबू साहब, ईश्वर के लिए मुझ पर दया कीजिए, मैं पच्चीस हजार पर निपटारा करने को तैयार हूँ।'

'असम्भव बात है।'

'तीस हजार पर?'

'किसी तरह भी सम्भव नहीं।'

'क्या चालीस हजार पर भी नहीं।'

'चालीस हजार नहीं, चालीस लाख पर भी असम्भव है। बदलूसिंह, इस आदमी को हिरासत में ले लो। अब मैं एक शब्द भी नहीं सुनना चाहता।'

धर्म ने धन को पैरों तले कुचल डाला। अलोपीदीन ने एक हृष्ट–पुष्ट मनुष्य को हथकड़ियाँ लिए हुए अपनी तरफ आते देखा। चारों ओर निराश और कातर दृष्टि से देखने लगे। इसके बाद मूर्च्छित होकर गिर पड़े।

दुनिया सोती थी पर दुनिया की जीभ जागती थी। सवेरे देखिए तो बालक–वृद्ध सबके मुँह से यही बात सुनाई देती थी। जिसे देखिए वही पंडितजी के इस व्यवहार पर टीका–टिप्पणी कर रहा था, निंदा की बौछारें हो रही थीं, मानो संसार से अब पापी का पाप कट गया।

पानी को दूध के नाम से बेचने वाला ग्वाला, कल्पित रोजनामचे भरने वाले अधिकारी वर्ग, रेल में बिना टिकट सफर करने वाले बाबू लोग, जाली दस्तावेज बनाने वाले सेठ और साहूकार यह सब के सब देवताओं की भाँति गर्दनें चला रहे थे।

टिप्पणी

जब दूसरे दिन पंडित अलोपीदीन अभियुक्त होकर कांस्टेबलों के साथ, हाथों में हथकड़ियाँ, हृदय में ग्लानि और क्षोभ भरे, लज्जा से गर्दन झुकाए अदालत की तरफ चले तो सारे शहर में हलचल मच गई। मेलों में कदाचित आँखें इतनी व्यग्र न होती होंगी। भीड़ के मारे छत और दीवार में कोई भेद न रहा।

किंतु अदालत में पहुँचने की देर थी। पंडित अलोपीदीन इस अगाध वन के सिंह थे। अधिकारी वर्ग उनके भक्त, अमले उनके सेवक, वकील–मुख्तार उनके आज्ञापालक और अरदली, चपरासी तथा चौकीदार तो उनके बिना मोल के गुलाम थे।

उन्हें देखते ही लोग चारों तरफ से दौड़े। सभी लोग विस्मित हो रहे थे। इसलिए नहीं कि अलोपीदीन ने यह कर्म किया, बल्कि इसलिए कि वह कानून के पंजे में कैसे आए? ऐसा मनुष्य जिसके पास असाध्य साधन करने वाला धन और अनन्य वाचालता हो, वह क्यों कानून के पंजे में आए? प्रत्येक मनुष्य उनसे सहानुभूति प्रकट करता था।

बड़ी तत्परता से इस आक्रमण को रोकने के निमित्त वकीलों की एक सेना तैयार की गई। न्याय के मैदान में धर्म और धन में युद्ध ठन गया। वंशीधर चुपचाप खड़े थे। उनके पास सत्य के सिवा न कोई बल था, न स्पष्ट भाषण के अतिरिक्त कोई शस्त्र। गवाह थे, किंतु लोभ से डाँवाँडोल।

यहाँ तक कि मुंशीजी को न्याय भी अपनी ओर कुछ खिंचा हुआ दीख पड़ता था। वह न्याय का दरबार था, परंतु उसके कर्मचारियों पर पक्षपात का नशा छाया हुआ था। किंतु पक्षपात और न्याय का क्या मेल? जहाँ पक्षपात हो, वहाँ न्याय की कल्पना नहीं की जा सकती। मुकदमा शीघ्र ही समाप्त हो गया।

डिप्टी मजिस्ट्रेट ने अपनी तजवीज में लिखा, पंडित अलोपीदीन के विरुद्ध दिए गए प्रमाण निर्मूल और भ्रमात्मक हैं। वह एक बड़े भारी आदमी हैं। यह बात कल्पना के बाहर है कि उन्होंने थोड़े लाभ के लिए ऐसा दुस्साहस किया हो। यद्यपि नमक के दारोगा मुंशी वंशीधर का अधिक दोष नहीं है, लेकिन यह बड़े खेद की बात है कि उसकी उद्दंडता और विचारहीनता के कारण एक भलेमानुस को कष्ट झेलना पड़ा। हम प्रसन्न हैं कि वह अपने काम में सजग और सचेत रहता है, किंतु नमक के मुकदमे की बढ़ी हुई नमक से हलाली ने उसके विवेक और बुद्धि को भ्रष्ट कर दिया। भविष्य में उसे होशियार रहना चाहिए।

वकीलों ने यह फैसला सुना और उछल पड़े। पंडित अलोपीदीन मुस्कुराते हुए बाहर निकले। स्वजन बाँधवों ने रुपए की लूट की। उदारता का सागर उमड़ पडा। उसकी लहरों ने अदालत की नींव तक हिला दी।

जब वंशीधर बाहर निकले तो चारों ओर उनके ऊपर व्यंग्यबाणों की वर्षा होने लगी। चपरासियों ने झुक–झुककर सलाम किए। किंतु इस समय एक कटु वाक्य, एक–एक संकेत उनकी गर्वाग्नि को प्रज्वलित कर रहा था।

कदाचित इस मुकदमे में सफल होकर वह इस तरह अकड़ते हुए न चलते। आज उन्हें संसार का एक खेदजनक विचित्र अनुभव हुआ। न्याय और विद्वत्ता, लंबी–चौड़ी उपाधियाँ, बड़ी–बड़ी दाढ़ियाँ, ढीले चोगे एक भी सच्चे आदर का पात्र नहीं है।

वंशीधर ने धन से बैर मोल लिया था, उसका मूल्य चुकाना अनिवार्य था। कठिनता से एक सप्ताह बीता होगा कि मुअत्तली का परवाना आ पहुँचा। कार्य–परायणता

टिप्पणी

का दंड मिला। बेचारे भग्न हृदय, शोक और खेद से व्यथित घर को चले। बूढे मुंशीजी तो पहले ही से कुड़बुड़ा रहे थे कि चलते–चलते इस लड़के को समझाया था, लेकिन इसने एक न सुनी। सब मनमानी करता है। हम तो कलवार और कसाई के तगादे सहें, बुढ़ापे में भगत बनकर बैठें और वहाँ बस वही सूखी तनख्वाह! हमने भी तो नौकरी की है और कोई ओहदेदार नहीं थे। लेकिन काम किया, दिल खोलकर किया और आप ईमानदार बनने चले हैं। घर में चाहे अंधेरा हो, मस्जिद में अवश्य दिया जलाएँगे। खेद ऐसी समझ पर! पढ़ना–लिखना सब अकारथ गया।

इसके थोड़े ही दिनों बाद, जब मुंशी वंशीधर इस दुरावस्था में घर पहुँचे और बूढ़े पिताजी ने समाचार सुना तो सिर पीट लिया। बोले– 'जी चाहता है कि तुम्हारा और अपना सिर फोड़ लूँ।' बहुत देर तक पछता–पछताकर हाथ मलते रहे। क्रोध में कुछ कठोर बातें भी कहीं और यदि वंशीधर वहाँ से टल न जाता तो अवश्य ही यह क्रोध विकट रूप धारण करता। वृद्ध माता को भी दुख हुआ। जगन्नाथ और रामेश्वर यात्रा की कामनाएँ मिट्टी में मिल गईं। पत्नी ने कई दिनों तक सीधे मुँह बात तक नहीं की।

इसी प्रकार एक सप्ताह बीत गया। संध्या का समय था। बूढ़े मुंशीजी बैठे–बैठे राम नाम की माला जप रहे थे। इसी समय उनके द्वार पर सजा हुआ रथ आकर रुका। हरे और गुलाबी परदे, पछहिए बैलों की जोड़ी, उनकी गर्दन में नीले धागे, सींग पीतल से जड़े हुए। कई नौकर लाठियाँ कंधों पर रखे साथ थे।

मुंशीजी अगवानी को दौड़े देखा तो पंडित अलोपीदीन हैं। झुककर दंडवत् की और लल्लो–चप्पो की बातें करने लगे– 'हमारा भाग्य उदय हुआ, जो आपके चरण इस द्वार पर आए। आप हमारे पूज्य देवता हैं, आपको कौन सा मुँह दिखावें, मुँह में तो कालिख लगी हुई है। किंतु क्या करें, लड़का अभागा कपूत है, नहीं तो आपसे क्या मुँह छिपाना पड़ता? ईश्वर निस्संतान चाहे रक्खे पर ऐसी संतान न दे।'

अलोपीदीन ने कहा– 'नहीं भाई साहब, ऐसा न कहिए।'

मुंशीजी ने चकित होकर कहा– 'ऐसी संतान को और क्या कहूँ?'

अलोपीदीन ने वात्सल्यपूर्ण स्वर में कहा– 'कुलतिलक और पुरुषों की कीर्ति उज्ज्वल करने वाले संसार में ऐसे कितने धर्मपरायण मनुष्य हैं जो धर्म पर अपना सब कुछ अर्पण कर सकें!'

पंडित अलोपीदीन ने वंशीधर से कहा– 'दरोगाजी, इसे खुशामद न समझिए, खुशामद करने के लिए मुझे इतना कष्ट उठाने की जरूरत न थी। उस रात को आपने अपने अधिकार–बल से अपनी हिरासत में लिया था, किंतु आज मैं स्वेच्छा से आपकी हिरासत में आया हूँ। मैंने हजारों रईस और अमीर देखे, हजारों उच्च पदाधिकारियों से काम पड़ा किंतु परास्त किया तो आपने। मैंने सबको अपना और अपने धन का गुलाम बनाकर छोड़ दिया। मुझे आज्ञा दीजिए कि आपसे कुछ विनय करूँ।'

वंशीधर ने अलोपीदीन को आते देखा तो उठकर सत्कार किया, किंतु स्वाभिमान सहित। समझ गए कि यह महाशय मुझे लज्जित करने और जलाने आए हैं। क्षमा–प्रार्थना की चेष्टा नहीं की, वरन् उन्हें अपने पिता की यह ठकुरसुहाती की बात असह्य सी प्रतीत हुई। पर पंडितजी की बातें सुनीं तो मन की मैल मिट गई।

पंडितजी की ओर उड़ती हुई दृष्टि से देखा। सद्भाव झलक रहा था। गर्व ने अब लज्जा के सामने सिर झुका दिया। शर्माते हुए बोले– 'यह आपकी उदारता है जो ऐसा

टिप्पणी

कहते हैं। मुझसे जो कुछ अविनय हुई है, उसे क्षमा कीजिए। मैं धर्म की बेड़ी में जकड़ा हुआ था, नहीं तो वैसे मैं आपका दास हूँ। जो आज्ञा होगी वह मेरे सिर–माथे पर।'

अलोपीदीन ने विनीत भाव से कहा– 'नदी तट पर आपने मेरी प्रार्थना नहीं स्वीकार की थी, किंतु आज स्वीकार करनी पड़ेगी।'

वंशीधर बोले– 'मैं किस योग्य हूँ, किंतु जो कुछ सेवा मुझसे हो सकती है, उसमें त्रुटि न होगी।'

अलोपीदीन ने एक स्टाम्प लगा हुआ पत्र निकाला और उसे वंशीधर के सामने रखकर बोले– 'इस पद को स्वीकार कीजिए और अपने हस्ताक्षर कर दीजिए। मैं ब्राह्मण हूँ, जब तक यह सवाल पूरा न कीजिएगा, द्वार से न हटूँगा।'

मुंशी वंशीधर ने उस कागज को पढ़ा तो कृतज्ञता से आँखों में आँसू भर आए। पंडित अलोपीदीन ने उनको अपनी सारी जायदाद का स्थायी मैनेजर नियत किया था। छह हजार वार्षिक वेतन के अतिरिक्त रोजाना खर्च अलग, सवारी के लिए घोड़ा, रहने को बँगला, नौकर–चाकर मुफ्त। कम्पित स्वर में बोले– 'पंडितजी मुझमें इतनी सामर्थ्य नहीं है कि आपकी उदारता की प्रशंसा कर सकूँ! किंतु ऐसे उच्च पद के योग्य नहीं हूँ।'

अलोपीदीन हँसकर बोले– 'मुझे इस समय एक अयोग्य मनुष्य की ही जरूरत है।'

वंशीधर ने गंभीर भाव से कहा– 'यों मैं आपका दास हूँ। आप जैसे कीर्तिवान, सज्जन पुरुष की सेवा करना मेरे लिए सौभाग्य की बात है। किंतु मुझमें न विद्या है, न बुद्धि, न वह स्वभाव जो इन त्रुटियों की पूर्ति कर देता है। ऐसे महान कार्य के लिए एक बड़े मर्मज्ञ अनुभवी मनुष्य की जरूरत है।'

अलोपीदीन ने कलमदान से कलम निकाली और उसे वंशीधर के हाथ में देकर बोले– 'न मुझे विद्वत्ता की चाह है, न अनुभव की, न मर्मज्ञता की, न कार्यकुशलता की। इन गुणों के महत्व को खूब पा चुका हूँ। अब सौभाग्य और सुअवसर ने मुझे वह मोती दे दिया जिसके सामने योग्यता और विद्वत्ता की चमक फीकी पड़ जाती है। यह कलम लीजिए, अधिक सोच–विचार न कीजिए, दस्तखत कर दीजिए। परमात्मा से यही प्रार्थना है कि वह आपको सदैव वही नदी के किनारे वाला, बेमुरौवत, उद्दंड, कठोर परंतु धर्मनिष्ठ दारोगा बनाए रखे।'

वंशीधर की आँखें डबडबा आईं। हृदय के संकुचित पात्र में इतना एहसान न समा सका। एक बार फिर पंडितजी की ओर भक्ति और श्रद्धा की दृष्टि से देखा और काँपते हुए हाथ से मैनेजरी के कागज पर हस्ताक्षर कर दिए।

अलोपीदीन ने प्रफुल्लित होकर उन्हें गले लगा लिया।

2.2.2 'नमक का दारोगा' कहानी का सार

अंग्रेजी शासन–काल में जब नमक का नया विभाग बना और ईश्वर प्रदत्त वस्तु के व्यवहार का निषेध हो गया तो लोग चोरी–छिपे इसका व्यापार करने लगे। अनेक प्रकार के छल–प्रपंचों का सूत्रपात हुआ। कोई घूस से काम निकालता, तो कोई चालाकी अथवा चोरी से। रिश्वत के लोभ में अन्य शासकीय विभागों के लोग भी इस विभाग में आने के लिए लालायित होने लगे।

मुंशी वंशीधर अपनी शिक्षा समाप्त कर जब नौकरी की खोज में निकले, तो उनके अनुभवी पिता ने उन्हें घर की दुर्दशा, अपने बुढ़ापे, कर्ज का बोझ और लड़कियों के ब्याह

टिप्पणी

की जिम्मेदारी का अहसास कराते हुए ऊपर की आमदनी वाले विभाग में नौकरी ढूँढ़ने की सलाह देते हुए कहा कि 'ऊपरी आमदनी बहता हुआ स्रोत है, जिससे सदैव प्यास बुझती है। उन्होंने बेटे को रिश्वत लेने के गुर भी समझा दिए। सौभाग्यवश उसी दिन वंशीधर को नमक विभाग के दारोगा पद पर नियुक्ति मिल गई, जिससे सारे समाज में उनकी प्रतिष्ठा बनी।

थोड़े ही समय में वंशीधर ने अपनी कार्यकुशलता, उत्तम आचार तथा विश्वसनीयता से विभाग में अपने अधिकारियों का दिल जीत लिया। अपनी नौकरी के छह महीने के उपरांत एक दिन आधी रात को उन्होंने जमुना के पुल पर गाड़ियों की गड़गड़ाहट और मल्लाहों का कोलाहल सुना। वे तुरंत वर्दी पहनकर निकले और मौके पर गाड़ियों की लंबी कतार पुल के पार जाती देखी। जाँच–पड़ताल में पता चला कि गाड़ियाँ इलाके के सबसे धनी और प्रतिष्ठित जमींदार पंडित अलोपीदीन की थीं। अलोपीदीन ने अपनी व्यावहारिक बुद्धि से काम लेते हुए मीठी बातों, खुशामद और रिश्वत की पेशकश से वंशीधर को मोहना चाहा, परंतु अप्रभावित वंशीधर ने भारी रिश्वत को ठुकराते हुए अलोपीदीन को गिरफ्तार कर लिया।

यह घटना रातोंरात पवनवेग से सब जगह व्याप्त हो गई और सब जगह, सबके मुख पर चर्चा का विषय बन गई। अगले दिन अदालत में हाथों में हथकड़ियाँ पहने कांस्टेबलों के साथ अलोपीदीन की पेशी हुई। अपार साधन–संपन्न और दुनियादारी में निपुण पंडित अलोपीदीन ने वकीलों की एक फौज खड़ी करके गवाहों को अपने पक्ष में कर लिया और अपने साम–दाम से न्याय का पलड़ा अपनी ओर झुका लिया। वंशीध ार के पास अपने सत्य और स्पष्ट भाषण के अतिरिक्त कुछ नहीं था। डिप्टी मजिस्ट्रेट द्वारा आरोपी को बाइज्जत बरी कर दिया गया और मुंशी वंशीधर को भविष्य में विवेक और बुद्धि से काम लेने की हिदायत दे दी गई।

इससे भी बड़ी बात यह हुई कि एक सप्ताह बाद उन्हें उनकी नौकरी से भी मुअत्तल कर दिया गया। परिवार की आशाओं पर तुषारापात हो गया। पत्नी और माँ ने तो अपने–अपने ढंग से नाराजगी व्यक्त की ही, बूढ़े पिता ने तो उन्हें खूब खरी खोटी सुनाकर हाल बेहाल कर दिया।

एक सप्ताह बाद अचानक एक दिन सन्ध्या समय पंडित अलोपीदीन अपने पूरे ठाठ–बाट के साथ सजे हुए रथ पर मुंशी वंशीधर के घर पधारे। बूढ़े पिता ने बेटे की धृष्टता पर क्षमायाचना की तो पंडित अलोपीदीन ने पंडित वंशीधर को धर्मपरायण और कुलतिलक बताकर उनकी भरपूर प्रशंसा की और एक आकर्षक वेतन तथा समस्त सुविधाओं के साथ उन्हें अपनी विशाल सम्पत्ति का स्थायी मैनेजर बना दिया और कहा– 'चरित्र के मोती के सामने विद्वता, अनुभव तथा कार्यकुशलता जैसे गुणों की चमक भी फीकी पड़ जाती है।' अदालत में धर्म धन से हार गया था लेकिन आज हार की जीत हो गई।

2.2.3 व्याख्यांश

- इस उपदेश के बाद ..... पड़ोसियों के हृदय में शूल उठने लगे।

संदर्भ : प्रस्तुत गद्यावतरण विश्वविख्यात कहानीकार मुंशी प्रेमचंद द्वारा विरचित लोकप्रिय कहानी 'नमक का दारोगा' से व्याख्यार्थ उद्धृत है। यह कहानी नमक विभाग के दारोगा पंडित वंशीधर के आदर्श चरित्र को आधार बनाकर लिखी गई है।

टिप्पणी

प्रसंग : अंग्रेजी राज में जब नमक का नया विभाग बना और ईश्वर प्रदत्त वस्तु के व्यवहार का निषेध हो गया तो लोग चोरी–छिपे इसका व्यापार करने लगे, जिससे अनेक प्रकार के छल–प्रपंचों और रिश्वतखोरी का सूत्रपात हुआ। मुंशी वंशीधर जब अपनी शिक्षा समाप्त कर रोजगार की खोज में निकले तो उनके अनुभवी पिता ने उन्हें ऋण के बोझ, लड़कियों की शादी की जिम्मेदारी और अपने बुढ़ापे का हवाला देकर ऊपरी आमदनी वाली नौकरी ढूँढ़ने का उपदेश दिया। उन्होंने कहा कि मासिक वेतन तो पूर्णमासी का चाँद है, जो एक दिन दिखाई देता है और घटते–घटते लुप्त हो जाता है। ऊपरी आय बहता हुआ स्रोत है, जिससे सदैव प्यास बुझती है। वेतन मनुष्य देता है, इसी से उसमें वृद्धि नहीं होती। ऊपरी आमदनी ईश्वर देता है, इसी से उसकी बरकत होती है।

व्याख्या : बूढ़े पिता ने वेतन और ऊपरी आमदनी पर अपने निजी विचार तार्किक ढंग से प्रस्तुत कर वंशीधर को ऊपरी आमदनी वाली नौकरी ढूँढ़ने का सुझाव दिया और साथ ही सफलता का आशीर्वाद दिया। वंशीधर एक आज्ञाकारी व विनीत पुत्र थे। उन्होंने पिता की किसी भी बात पर तर्क–वितर्क नहीं किया और न ही उनकी किसी बात का विरोध किया। उन्होंने ध्यान से उनकी सभी बातें सुनीं और घर से नौकरी की खोज में निकल पड़े।

वंशीधर एक विवेकशील तथा धैर्यवान पुरुष थे। उन्हें सही–गलत की पहचान थी। उन्हें अपने सामर्थ्य और प्रतिभा पर भी भरोसा था। वे सबकी सुनने लेकिन अपनी अंतरात्मा की गुनने में विश्वास रखते थे। धैर्य उनका मित्र था और बुद्धि पथप्रदर्शक। आज भाग्य उनका साथ दे रहा था। इसीलिए अनायास ही उन्हें नमक विभाग के दारोगा पद पर नियुक्ति मिल गई। इस नौकरी में वेतन तो अच्छा था ही, ऊपरी आमदनी की भी अपार संभावनाएँ थीं। बूढ़े पिता को जब वंशीधर की दारोगा वाली नौकरी का समाचार मिला तो उनकी खुशी का कोई पारावार न रहा। उन्हें निश्चिंतता हुई कि अब तो परिवार के सारे आर्थिक संकट दूर हो जाएँगे। ऋण का बोझ उतरेगा, लड़कियों की शादियाँ अच्छी तरह से हो जाएँगी और समाज में मान–प्रतिष्ठा बढ़ेगी। और सामाजिक मान–सम्मान में निस्संदेह तुरंत ही इजाफा हो गया। कर्ज देने वाले महाजनों ने अपना तकाजा कुछ कम कर दिया। परिवार की खुशियों की आशालता लहलहाने लगीं। लेकिन यह खुशियाँ पड़ोसियों को रास नहीं आईं। पड़ोसी ईर्ष्या के वशीभूत हो गए। उनके हृदय में प्रसन्नता के स्थान पर ईर्ष्या के काँटे चुभने लगे।

विशेष

(i) युग परिवेश का सुंदर चित्रण है।

(ii) मानवीय भावों का सुंदर व मनोरम चित्रांकन है। युवावस्था में व्यक्ति आदर्शोन्मुख रहता है, जबकि बुढ़ापे में वह माया और दुनियादारी के वशीभूत हो जाता है। सामाजिक प्रतिष्ठा और ईर्ष्या के भाव का भी यथार्थ अंकन है। आज मनुष्य अपने दुख से इतना दुखी नहीं, जितना कि दूसरों के सुख से दुखी है। यह मानव स्वभाव की दुर्बलता है।

(iii) भाषा बड़ी सजीव, मुहावरेदार (फूले न समाना) तथा अलंकृत (आशालता लहलहाई) है।

• पंडित अलोपीदीन का लक्ष्मी पर ..... कृपा दृष्टि रहनी चाहिए।

सन्दर्भ–पूर्ववत्।

प्रसंग–मुंशी वंशीधर छह माह पूर्व नमक विभाग में दारोगा के पद पर नियुक्त हुए हैं। अंग्रेजी शासन काल में जब नमक का नया विभाग बना और ईश्वरप्रदत्त इस वस्तु के व्यवहार का निषेध हो गया तो लोग चोरी–छिपे इसका व्यापार करने लगे। एक रात दारोगा जी किवाड़ बन्द किए मीठी नींद सो रहे थे कि अचानक उनकी आँख खुल गई। उन्हें नदी के प्रवाह की जगह गाड़ियों की गड़गड़ाहट और मल्लाहों का कोलाहल सुनाई दिया। वंशीधर दारोगा जी सजधज के साथ तुरन्त मौके पर पहुँचे। जाँच–पड़ताल में पता चला कि गाड़ियों में नमक भरा है और गाड़ियाँ इलाके के सबसे प्रतिष्ठित पंडित अलोपीदीन की हैं। दारोगा ने अपने अधिकार का प्रयोग करते हुए गाड़ियाँ रोक दीं। गाड़ीवानों ने अपने सजीले रथ पर सोते–जागते चले आ रहे अलोपीदीन को दारोगा द्वारा गाड़ियाँ रोके जाने का किस्सा कह सुनाया।

टिप्पणी

व्याख्या–मुंशी प्रेमचन्द का कथन है कि गाड़ीवानों की बात सुनकर अलोपीदीन को कोई विशेष चिन्ता नहीं हुई क्योंकि वे ऐसे मामले रिश्वत द्वारा हल करने के अभ्यस्थ थे। लक्ष्मी अर्थात् धन की शक्ति पर उनका अटल विश्वास था। उनका मानना था कि लक्ष्मी का इस भूतल पर तो क्या स्वर्ग में भी सिक्का चलता है। उनकी ऐसी मान्यता उनके अब तक के अनुभवों के आधार पर ही बनी थी। वे गैरकानूनी धंधा करते थे क्योंकि ऐसे कामों में मुनाफा ज्यादा होता है। हजारों उच्च पदाधिकारियों से उनका काम पड़ा था, किन्तु उन्होंने रिश्वत देकर सबको अपना गुलाम बना लिया था। रईसों और अमीरों के ईमान को भी उन्होंने धन पर बिकते देखा। ऐसे अनुभवों से उनके मन में यह धारणा बन गई थी कि न्याय और नीति तो सब लक्ष्मी के ही खिलौने हैं अर्थात् पैसे की पेशकश से न्याय और नीति को आसानी से अपनी तरफ मोड़ा जा सकता है।

अतः अलोपीदीन के मन में गाड़ियाँ रोके जाने को लेकर किसी तरह की चिन्ता या आशंका ने जन्म नहीं लिया। उन्होंने शांति से लेटे ही लेटे गाड़ीवानों से जाने को कहा। इसके उपरान्त उन्होंने तसल्ली से पान के बीड़े भी लगाकर खाये। सर्दी के कारण उन्होंने लिहाफ ओढ़ा हुआ था और इसी रूप में दारोगा के सामने आकर खड़े हो गए और अपनी उम्र और पंडित होने के गुमान में उन्होंने वंशीधर को बिना माँगे ही आशीर्वाद दे डाला। इसके बाद उन्होंने व्यवहार–बुद्धि से काम लेते हुए विनम्रतापूर्वक अपने ब्राह्मण होने का हवाला दिया। ब्राह्मणों पर तो अधिकारियों को कृपा–दृष्टि ही रखनी चाहिए। अलोपीदीन ने गाड़ियाँ रोके जाने का कारण बड़े सलीके से पूछ लिया।

विशेष

(i) उपर्युक्त अवतरण कथानक और चरित्र–चित्रण की दृष्टि से अत्यधिक महत्वपूर्ण है। यहाँ पर कथानक चरमोत्कर्ष पर पहुँच जाता है। पाठक के मन में जिज्ञासा उत्पन्न होने लगती है कि आगे क्या होगा? कौन किसे हटायेगा? इस अवतरण के माध्यम से नायक वंशीधर और उपनायक पंडित अलोपीदीन के चरित्र पर भी प्रकाश पड़ता है। किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व एवं सोच पर उसकी जीवन–शैली और अनुभवों का बहुत गहरा प्रभाव पड़ता है। जिसके जैसे अनुभव होते हैं, उसकी सोच वैसी ही बन जाती है। अलोपीदीन अपने व्यापार के मार्ग में आने वाली बाधाओं को रिश्वत देकर दूर करते आये थे, इसलिए इस बार भी उनके मन में यह निश्चित धारणा थी कि दारोगा ने रिश्वत के लोभ में ही उनकी

गाड़ियों को रोका है। अलोपीदीन की वाक्पटुता और व्यावहारिक बुद्धि देखते ही बनती है।

टिप्पणी

(ii) भाषा–शैली बहुत प्रभावपूर्ण है। 'न्याय और नीति सब आदमी के ही खिलौने हैं' वाक्य बहुत सारगर्भित बन पड़ा है।

- धर्म की इस बुद्धिहीन ..... अविचलित खड़ा था।

संदर्भ : पूर्ववत।

प्रसंग : मुंशी वंशीधर नमक विभाग में एक कर्तव्यनिष्ठ, युवा, ईमानदार दारोगा है। यह पद सँभाले उन्हें छह मास ही हुए हैं कि एक दिन आधी रात को यमुना के पुल पर गाड़ियों की गड़गड़ाहट और मल्लाहों का कोलाहल सुनाई पड़ता है। मौका मुआइना करने पर पता चलता है कि ये गाड़ियाँ उनके इलाके के प्रतिष्ठित जमींदार पंडित अलोपीदीन की हैं। गाड़ियों में नमक भरा हुआ है। तत्कालीन कानून के हिसाब से नमक का चोरी–छिपे व्यापार करना गैरकानूनी था। अलोपीदीन ने वंशीधर को तुरंत एक हजार रु. की रिश्वत पेश की। यद्यपि वंशीधर के घर में बहुत–सी आर्थिक समस्याएँ थीं, फिर भी वे अपने पथ पर अविचलित रहे।

व्याख्या : पंडित अलोपीदीन और वंशीधर में वाचिक द्वन्द्व होता रहा। पंडित अलोपीदीन ने आज तक किसी से हार नहीं मानी थी। हर किसी को पैसे से खरीद लिया था। इसलिए वे वंशीधर को भी अपने धन के सम्मुख झुकाने में लगे थे। उधर वंशीधर भी झुकने को तैयार नहीं थे। रिश्वत की इतनी बड़ी पेशकश को ठुकरा देना सामान्य मनुष्य के वश की बात नहीं थी। इसे देवदुर्लभ त्याग ही कहा जाएगा। यह संघर्ष अब दो व्यक्तियों के बीच न होकर दो शक्तियों के बीच हो गया था। ये दो शक्तियाँ थीं धर्म और धन की। पंडित अलोपीदीन वंशीधर को झुकाने के लिए अपनी पेशकश को 1 हजार से पाँच हजार, पाँच हजार से बढ़ाकर दस और दस से बढ़ाकर पंद्रह और पन्द्रह से बढ़ाकर बीस हजार तक ले गए। पर वंशीधर इतनी बड़ी धनराशि से भी अविचलित ही रहे। उनका ईमान जरा भी नहीं डगमगाया। यह बीस हजार सैनिकों वाली धन की सेना थी, जिसका सामना वंशीधर अकेले ही कर रहे थे। इस सेना के सम्मुख वे पर्वत की भांति अविचलित खड़े थे। सेना के प्रहार व्यर्थ हो रहे थे। धन का दलबल उन्हें डिगाने में असमर्थ होकर अंततः परास्त होकर, थक–हार कर बैठ गया।

विशेष

(i) मुंशी वंशीधर की अविचलित ईमानदारी पर प्रकाश डाला गया है।

(ii) धर्म और धन वास्तव में प्रबल शक्तियाँ हैं। 'धन ने उछल–उछलकर आक्रमण करने शुरू कर दिये' पंक्ति में मानवीकरण अलंकार है।

(iii) भाषा अत्यंत सजीव, सशक्त व अलंकृत है। 'पर्वत की भांति' में उपमा अलंकार है।

- ऐसा मनुष्य जिसके पास ..... लोभ से डाँवाँडोल

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग : वंशीधर की नमक के दारोगा पद पर तैनाती अभी छह माह पूर्व ही हुई है। उनके बूढ़े पिता ने उनकी नौकरी से पूर्व ही उन्हें घर की आर्थिक दुरावस्था का स्मरण

टिप्पणी

कराते हुए रिश्वत की महिमा का गुणगान किया था, किन्तु वंशीधर ने उस सीख पर अमल न करते हुए अपने ईमान को रिश्वत से कभी डिगने नहीं दिया। एक रात उन्होंने पंडित अलोपीदीन को यमुना के पुल से अवैध रूप से नमक की गाड़ियाँ ले जाते हुए पकड़ लिया। अलोपीदीन द्वारा चालीस हजार रु. की रिश्वत की पेशकश को भी उन्होंने ठोकर मारते हुए इलाके के सबसे प्रतिष्ठित जमींदार को हिरासत में लेकर अदालत में पेश कर दिया।

व्याख्या : इलाके के बहुत प्रतिष्ठित व्यापारी और जमींदार को नमक के अवैध कारोबार के जुर्म में अदालत में देखकर लोग बहुत विस्मित हो गए। ये इसलिए नहीं कि अलोपीदीन ने ऐसा कर्म क्यों किया, अपितु इसलिए कि वह कानून के पंजे में कैसे आए। लोग यही सोच रहे थे कि ऐसा साधन–सम्पन्न और व्यवहार–बुद्धि वाला आदमी कानून के पंजे में फँस कैसे गया? वह तो अपनी वाक्पटुता और धन–सम्पदा के बल पर इस मामले को प्रथम स्तर पर ही रफा–दफा कर सकते थे, लेकिन वह कानून के पंजे में आ ही कैसे गए? सब उनके काले कारनामों को जानते भी थे, किन्तु उनके प्रताप और सामाजिक प्रतिष्ठा से सम्मोहित भी थे। बहुत से लोग उनके अहसानों तले भी दबे रहते थे। इसलिए अदालत में हर व्यक्ति उनसे सहानुभूति प्रकट कर रहा था। उनके शुभचिन्तकों ने उनकी कृपा–दृष्टि पाने के लिए कई वकील कर डाले। वकीलों ने आरोपित के पक्ष में बढ़िया से बढ़िया दलीलें प्रस्तुत कीं। अदालत को न्यायालय कहा जाता है। न्यायालय का अर्थ है न्याय का घर। लेकिन प्रायः देखा जाता है कि वकील अपने छल–प्रपंच से सच को झूठ और झूठ को सच सिद्ध करने में कामयाब हो जाते हैं। अलोपीदीन के वकील उन्हें निपराध सिद्ध करने के भरसक प्रयास कर रहे थे। वंशीधर के घर की आर्थिक स्थिति तो बहुत कमजोर थी। वे अलोपीदीन के वकीलों से बहस करने के लिए वकीलों को मोटी फीस नहीं दे सकते थे। उनके पास सत्य का ही आश्रय था। धर्म उनके साथ था और धन अलोपीदीन के पास। इस समय अदालत में धर्म और धन में संघर्ष की स्थिति चल रही थी। वकीलों के कुतर्कों ने वंशीधर को निरुत्तर कर दिया। उनके पास अपना स्पष्ट कथन या भाषण था, गवाह भी थे लेकिन गवाह पर्याप्त मजबूती के साथ उनके पक्ष में बयान नहीं दे रहे थे क्योंकि दूसरे पक्ष की ओर से उन्हें धन का प्रलोभन दिया जा रहा था। इस प्रलोभन ने उनके मन को विचलित कर रखा था। इसलिए वंशीधर के गवाह भी उनके पक्ष में मजबूती से बयान भी नहीं दे सके।

विशेष

(i) वर्तमान समाज की वास्तविक स्थिति का यथार्थ चित्रण है। आज समाज में धर्म के स्थान पर धन का ही वर्चस्व है। अधर्म पर चलकर भी धनी व्यक्ति समाज में प्रतिष्ठित है और धर्म पर चलकर निर्धन व्यक्ति सामाजिक उपेक्षा का शिकार हो जाता है। धर्म के मुकाबले धन की प्रतिष्ठा अधिक होना चिन्ता का विषय है। न्यायालय कही जाने वाली अदालतें भी धन की असीम प्रतिष्ठा और प्रभाव से अछूती नहीं हैं। जिधर धन होता है, न्याय उधर ही झुक जाता है। इस मामले में भी अलोपीदीन को बाइज्जत बरी कर दिया गया और नमक के दारोगा को चेतावनी दे दी गई कि वह भविष्य में विवेक और बुद्धि से काम लें।

टिप्पणी

(ii) भाषा सरल–सुबोध और प्रवाहपूर्ण है। वाक्यों का काम शब्दों से लिया गया है यथा 'गवाह थे, किन्तु लोभ से डाँवाँडोल। 'न्याय के मैदान में धर्म और धन में युद्ध ठन गया' वाक्य बहुत ही अर्थगर्भित व प्रभावी है। 'पंजे में आना, युद्ध ठनना' आदि मुहावरों का यथास्थान सार्थक प्रयोग द्रष्टव्य है।

2.2.4 'नमक का दारोगा' कहानी का समीक्षात्मक अध्ययन

अभिव्यक्ति मानव हृदय का स्वाभाविक गुण है। कहानियों का जन्म तो उसी समय से हुआ, जब आदमी ने बोलना सीखा। पुरानी कथा–कहानियों में घटना–वैचित्र्य की प्रधानता होती थी, किन्तु वर्तमान युग में कहानी का आधार घटना नहीं, अनुभूति है। वर्तमान कहानी मनोवैज्ञानिक विश्लेषण और जीवन के यथार्थ एवं स्वाभाविक चित्रण को अपना ध्येय मानती है। कथा–सम्राट प्रेमचन्द हिन्दी कथा–साहित्य में एक दुर्निवार आकर्षण का केन्द्र है। आज भी प्रेमचन्द की कहानियाँ उतनी ही लोकप्रिय हैं, जितनी कभी पहले रही होंगी, बल्कि आज उनकी ख्याति देश की सीमाएँ पार कर अन्तर्राष्ट्रीय स्तर प्राप्त कर चुकी हैं। 'नमक का दारोगा' प्रेमचन्द की एक लोकप्रिय कहानी है, जो उनके प्रायः सभी कहानी–संग्रहों में प्रकाशित रहती है। यह उनकी प्रतिनिधि कहानियों में सम्मिलित की जाती रही है। भीष्म साहनी द्वारा सम्पादित 'प्रतिनिधि कहानियाँ' (प्रेमचन्द) में भी यह कहानी संगृहीत है। कहानी–तत्वों के आधार पर इस कहानी की समीक्षा इस प्रकार है–

कथानक

यह किसी भी कहानी का सर्वप्रथम तत्व है। इसे कहानी का मेरुदण्ड भी कहा जा सकता है। कथानक के अभाव में पाठक को कथा–रस प्राप्त नहीं हो सकता है और पाठक मुख्यतः कथा रस के लिए ही कहानी पढ़ता है। कथानक में नवीनता, रोचकता व स्वाभाविकता का होना बहुत जरूरी है। कहानीकार के लिए आवश्यक है कि वह कथानक को शनैः शनैः विकसित करते हुए समुचित बिन्दु पर पहुँचाकर सम्पन्न करें। इससे कहानी पढ़ने में पाठक की जिज्ञासा बराबर बनी रहती है। 'नमक का दारोगा' कहानी कथानक की दृष्टि से अत्यन्त सफल है क्योंकि इसमें कथानक के समस्त तत्व–रोचकता, स्वाभाविकता, उद्देश्यपरकता आदि पर्याप्त मात्रा में मौजूद हैं। कथानक का कलेवर भी संक्षिप्त ही कहा जायेगा? इसमें अप्रासंगिक घटनाओं को कोई स्थान नहीं दिया गया है। कहानी धीरे–धीरे अपनी चरम सीमा की ओर बढ़ती जाती है। पाठक इसे एक बार में पूरा पढ़े बिना नहीं रह पाता। इसका कथानक संक्षेप में इस प्रकार है–

अंग्रेजी शासन–काल में जब नमक का नया विभाग बना और ईश्वर प्रदत्त वस्तु के व्यवहार का निषेध हो गया तो लोग चोरी–छिपे इसका व्यापार करने लगे और रिश्वत आदि के रूप में अनेक प्रकार के छल–प्रपंचों का सूत्रपात हुआ। रिश्वत के लोभ से अन्य शासकीय विभागों के लोग भी इस विभाग में आने के लिए लालायित होने लगे। मुंशी वंशीधर अपनी शिक्षा समाप्त कर जब नौकरी की खोज में निकले तो उनके अनुभवी पिता ने उन्हें घर की दुर्दशा, अपने बुढ़ापे, कर्ज का बोझ और लड़कियों के ब्याह की जिम्मेदारी का अहसास कराते हुए ऊपर की आमदनी वाले विभाग में नौकरी ढूँढ़ने की सलाह देते हुए कहा कि 'ऊपरी आमदनी बहता हुआ स्रोत है, जिससे सदैव प्यास

बुझती है। इसके साथ ही उन्होंने अपने बेटे को रिश्वत लेने के गुर भी समझा दिये। सौभाग्यवश उसी दिन नौकरी की खोज में जाने पर वंशीधर को नमक विभाग के दारोगा पद पर नियुक्ति मिल गई, जिससे समाज में उनकी प्रतिष्ठा में चार चाँद लग गए।

टिप्पणी

थोड़े ही समय में वंशीधर ने अपनी कार्यकुशलता व ईमानदारी से विभाग में अपने अधिकारियों का दिल जीत लिया। अपनी नौकरी के छह महीने के उपरान्त एक दिन आधी रात को उन्होंने जमुना के पुल पर गाड़ियों की गड़गड़ाहट और मल्लाहों का कोलाहल सुना। वे तुरन्त वर्दी पहनकर निकले और मौके पर गाड़ियों की लम्बी कतार पुल के पार जाती देखी। जाँच–पड़ताल में पता चला कि गाड़ियाँ इलाके के सबसे धनी और प्रतिष्ठित जमींदार पंडित अलोपीदीन की थीं। अलोपीदीन ने अपनी व्यावहारिक बुद्धि से काम लेते हुए मीठी बातों, खुशामद और भारी रिश्वत की पेशकश से वंशीधर को अपने पक्ष में करना चाहा किन्तु कर्तव्यनिष्ठ वंशीधर ने सारे प्रलोभन ठुकराते हुए अलोपीदीन को गिरफ्तार कर लिया। अगले दिन अदालत में हाथों में हथकड़ियाँ पहने कांस्टेबलों के साथ अलोपीदीन की पेशी तो हुई किन्तु अपार साधन–सम्पन्न और दुनियादारी में निपुण पंडित अलोपीदीन ने अपने पैसे और प्रभाव के बलबूते पर न्याय का पलड़ा अपनी ओर झुका लिया और बाइज्जत बरी भी हो गया। दूसरी ओर वंशीधर को एक सप्ताह बाद उनकी नौकरी से भी मुअत्तल कर दिया गया। यह प्रसंग कथानक का चरमोत्कर्ष कहा जा सकता है। प्रेमचन्द यदि अति यथार्थवादी होते तो कहानी को इस बिन्दु पर भी समाप्त कर सकते थे, किन्तु इस प्रकार के दुखान्त से समाज में गलत सन्देश जाता है। प्रेमचन्द की दृष्टि सुधारवादी होने के कारण उन्होंने आदर्शोन्मुख यथार्थवाद से काम लिया और कहानी को एक सुखद अन्त की ओर मोड़ा। एक सप्ताह बाद अचानक एक दिन सन्ध्या समय पंडित अलोपीदीन अपने पूरे ठाठ–बाट के साथ मुंशी वंशीधर के घर पधारे और हताश बूढ़े पिता के सामने वंशीधर को कुलतिलक बताकर उनकी भरपूर प्रशंसा की और एक आकर्षक वेतन और समस्त सुविधाओं के साथ उन्हें अपनी विशाल सम्पत्ति का मैनेजर बना दिया। अदालत में धर्म धन से हार गया था लेकिन आज हार की जीत हो गई। इस प्रकार कथाकार प्रेमचन्द ने इस कहानी में समाज में व्याप्त रिश्वतखोरी और न्यायव्यवस्था में भ्रष्टाचार को दर्शाता कथानक बुना लेकिन अलोपीदीन के हृदय परिवर्तन को दर्शाकर कहानी को सुखान्त कर दिया।

पात्र एवं चरित्र–चित्रण

कथानक का भवन पात्रों के स्तम्भों पर ही खड़ा होता है। कहानी में पात्र कथानक के अनुरूप ही होते हैं। कथानक की विषयवस्तु के हिसाब से पात्र अति मानवीय, ऐतिहासिक, पौराणिक, समकालीन मानव यहाँ तक कि मानवेतर प्राणी भी हो सकते हैं। प्रेमचन्द की इस चर्चित कहानी में तत्कालीन समाज के जीते–जागते मानव हैं। ऐसे पात्र हमें आधुनिक युग में भी सहजता से दृष्टिगत हो जाते हैं। कहानी के कलेवर के हिसाब से पात्र संख्या कम ही है। मुख्य पात्र तीन हैं–वंशीधर, उनके बूढ़े पिता तथा पंडित अलोपीदीन।

तीनों पात्रों के चरित्र–चित्रण में पर्याप्त विभिन्नता दृष्टिगत होती है। वंशीधर कहानी के नायक हैं। वंशीधर मितभाषी, विनम्र, कर्तव्यनिष्ठ व ईमानदार अफसर थे। रिश्वत के पक्ष में पिता का लम्बा–चौड़ा उपदेश सुनकर वे उससे अप्रभावित ही रहते हैं किन्तु इस सम्बन्ध में वे अपने पिता से कोई बहस नहीं करते और न ही उनसे अपनी

टिप्पणी

असहमति अथवा नाराजगी व्यक्त करते हैं। वे अपने पिता का सम्मान करते हुए शान्त बने रहते हैं। उनकी बातें ध्यान से सुनकर भी वे उन पर अपनी कोई तीखी प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं करते। वंशीधर आज्ञाकारी पुत्र थे। उन्होंने अपने पिता की बातें ध्यान से सुनीं और तब घर से चल खड़े हुए। इस विस्तृत संसार में उनके लिए धैर्य अपना मित्र, बुद्धि अपनी पथ प्रदर्शक और आत्मावलंबन ही अपना सहायक था। पुत्र के रूप में जहाँ वे अत्यन्त विनीत हैं वहीं अधिकारी के रूप में अत्यधिक सतर्क व कड़क। जाड़ों की आधी रात में सोते हुए भी उन्हें जमुना के पुल पर गाड़ियों की गड़गड़ाहट सुनाई पड़ जाती है और वे अविलम्ब दारोगा की सजधज के साथ मौके पर पहुँचकर साधिकार डाँटकर पूछते हैं कि किसकी गाड़ियाँ हैं? घर की आर्थिक दशा खराब होने भी वे अलोपीदीन द्वारा दी गई चालीस हजार की रिश्वत की पेशकश को भी दृढ़तापूर्वक ठुकरा देते हैं। वंशीधर के चरित्र में हमें सकारात्मकता देखने को मिलती है। अलोपीदीन का हृदय परिवर्तन होने पर वे उन्हें न केवल माफ कर देते हैं बल्कि उनके प्रति श्रद्धा और भक्ति से परिपूर्ण भी हो जाते हैं और बिना किसी पूर्वाग्रह और मनोमालिन्य के अलोपीदीन द्वारा प्रस्तावित मैनेजरी के कागज पर हस्ताक्षर भी कर देते हैं। इस प्रकार पूरी कहानी में उनका चरित्र बहुत आदर्शवादी, अनुकरणीय व सकारात्मक बना रहता है। अलोपीदीन उनके चरित्र की प्रशंसा में ठीक ही कहते हैं। ''कुलतिलक और पुरुषों की कीर्ति उज्ज्वल करने वाले संसार में ऐसे कितने धर्मपरायण मनुष्य हैं जो धर्म पर अपना सब कुछ अर्पण कर सकें?''

वंशीधर के बूढ़े पिता व्यावहारिक बुद्धि के पुरुष हैं। वे घर में ब्याह लायक बेटियों और ऋण के बोझ की चिन्ता से ग्रस्त हैं। अपनी आर्थिक समस्याओं को दूर करने के लिए वे पूर्णतया बेटे पर ही आश्रित हैं। अपने आर्थिक संकट की वजह से वे अपने बेटे को रिश्वत वाली नौकरी की ओर उन्मुख करते हुए कहते हैं–''मैं कगारे का वृक्ष हो रहा हूँ, न मालूम कब गिर पड़ूँ। अब तुम्हीं घर के मालिक मुख्तार हो। नौकरी में ओहदे की ओर ध्यान मत देना, यह तो पीर का मजार है। निगाह चढ़ावे और चादर पर रखनी चाहिए। ऐसा काम ढूँढ़ना जहाँ कुछ ऊपरी आय हो।" बूढ़े पिता वंशीधर को रिश्वत की महिमा ही नहीं समझाते, अपितु रिश्वत के कुछ गूढ़ गुर भी समझाते हुए कहते हैं– "मनुष्य को देखो, उसकी आवश्यकता को देखो और अवसर देखो, उसके उपरान्त जो उचित समझो, करो। गरज वाले आदमी के साथ कठोरता करने में लाभ ही लाभ है लेकिन बेगरज को दाँव पर लगाना जरा कठिन है। इन बातों को निगाह में बाँध लो। यह मेरी जन्म भर की कमाई है।"

पंडित अलोपीदीन कहानी में खलनायक के रूप में आता है लेकिन वंशीधर की सच्चरित्रता से उसका हृदय–परिवर्तन हो जाता है। अपने छल–प्रपंच और पैसों के बलबूते पर जेल से छूटने और वंशीधर को नौकरी से निकलवाने वाला पुरुष अन्ततः सत्यनिष्ठा और सच्चरित्रता के आगे झुक जाता है और अन्ततः वह वंशीधर को अपनी सारी स्थायी सम्पत्ति का स्थायी मैनेजर बनाकर ही अपने पाप का प्रायश्चित करता है। वंशीधर का उज्ज्वल चरित्र उनका हृदय परिवर्तन कर देता है और वे स्वयं वंशीधर के घर जाकर उनकी प्रशंसा करने में कोई कमी नहीं छोड़ते–'अब सौभाग्य और सुअवसर ने मुझे वह मोती दे दिया है जिसके सामने योग्यता और विद्वता की चमक फीकी पड़ जाती है। यह कलम लीजिए, अधिक सोच–विचार न कीजिए, दस्तखत कर दीजिए।

टिप्पणी

परमात्मा से यही प्रार्थना है कि वह आपको वही नदी के किनारे वाला, बेमुरौवत, उद्दंड, कठोर परन्तु धर्मनिष्ठ दारोगा बनाए रखे।' अलोपीदीन एक व्यावहारिक, व्यवहार–कुशल व कार्यपटु जमींदार है। नमक की गाड़ियाँ पकड़े जाने पर वे बहुत वाक्पटुता के साथ वंशीधर को प्रभावित करने की कोशिश करते हैं लेकिन अन्त में स्वयं ही उनसे प्रभावित हो जाते हैं। अलोपीदीन इस कहानी का बहुत सशक्त व प्रमुख पात्र है। उनके अस्तित्व की रोशनी में ही वंशीधर का उज्ज्वल चरित्र प्रकाशित होता है। अलोपीदीन का चरित्र स्थिर नहीं है। समय और परिस्थिति के अनुसार उसमें उतार–चढ़ाव होता रहता है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि कहानीकार प्रेमचन्द ने तीनों ही पात्रों का चरित्र–चित्रण बहुत मनोयोगपूर्वक किया है। कहानी पढ़ते समय पाठक के सम्मुख पात्रों का व्यक्तित्व उनके अन्तर्मन के सम्मुख हो उठता है। इस प्रकार चरित्र–चित्रण की दृष्टि से भी कहानी सफल बन पड़ी है।

संवाद–योजना

पात्रों की पारस्परिक बातचीत को संवाद अथवा कथोपकथन कहा जाता है। कहानी में जीवन्तता व स्वाभाविकता बनाए रखने के लिए संवाद योजना परम आवश्यक है। संवाद पात्रों के चरित्र को भी उद्घाटित करते हैं तथा कथानक को भी आगे बढ़ाते हैं। पात्रों एवं संवादों के अभाव में कहानी ललित निबन्ध जैसी हो जायेगी। संवाद संक्षिप्त, रोचक व पात्रानुकूल होने चाहिए। 'नमक का दारोगा' कहानी में संवाद योजना अत्यन्त प्रभावी बन पड़ी है। बूढ़े पिता के संवाद जहाँ उनके घर–परिवार और सामाजिक परिवेश पर प्रकाश डालते हैं, वहीं उनके लोभग्रस्त व्यक्तित्व को भी उद्घाटित करते हैं। पंडित अलोपीदीन और वंशीधर के मध्य हुए संवाद अत्यन्त प्रभावी व कथानक के विकास में सहायक बन पड़े हैं–

'बाबू साहब, ईश्वर के लिए मुझ पर दया कीजिए, मैं पच्चीस हजार पर निपटारा करने को तैयार हूँ।'

'असंभव बात है।'

'तीस हजार पर।'

'किसी तरह भी सम्भव नहीं।'

'क्या चालीस हजार पर भी नहीं?'

'चालीस हजार नहीं, चालीस लाख पर भी असंभव है। बदलू सिंह इस आदमी को अभी हिरासत में ले लो। अब मैं एक शब्द भी नहीं सुनना चाहता।'

घर पर पधारे पंडित अलोपीदीन और पिता के मध्य के संवाद भी बहुत मार्मिक व प्रभावोत्पादक हैं। इनसे पात्रों का व्यक्तित्व पर भी सम्यक् प्रकाश पड़ता है।

पिता–आप हमारे पूज्य देवता हैं, आपको कौन–सा मुँह दिखावे, मुँह में तो कालिख लगी हुई है। किन्तु क्या करें, लड़का अभागा कपूत है, नहीं तो आपसे क्यों मुँह छिपाना? ईश्वर निस्संतान चाहे रक्खे पर ऐसी सन्तान न दे।'

अलोपीदीन ने कहा–नहीं भाई साहब, ऐसा न कहिये।

मुंशी जी ने चकित होकर कहा–ऐसी सन्तान को और क्या कहूँ।

अलोपीदीन ने वात्सल्यपूर्ण स्वर में कहा–कुलतिलक और पुरुषों की कीर्ति उज्ज्वल करने वाले संसार में ऐसे कितने धर्मपरायण मनुष्य हैं जो धर्म पर अपना सबकुछ अर्पण कर सकें।''

टिप्पणी

देशकाल एवं वातावरण

देशकाल कहानी का एक सूक्ष्म व आन्तरिक तत्व होता है जो कथानक में ही निहित रहता है। कहानीकार देशकाल के हिसाब से ही कथानक का ताना–बाना बुनता है। इस कहानी में भी प्रेमचन्द ने कहानी के प्रारम्भ में ही देशकाल का चित्रण जरूरी समझा–'जब नमक का नया विभाग बना और ईश्वर प्रदत्त वस्तु के व्यवहार करने का निषेध हो गया तो लोग चोरी–छिपे इसका व्यापार करने लगे। अनेक प्रकार के छल–प्रपंचों का सूत्रपात हुआ, कोई घूस से काम निकालता था, कोई चालाकी से। अधिकारियों के पौ बारह थे। पटवारीगिरी का सर्वसम्मानित पद छोड़ छोड़कर लोग इस विभाग की बरकंदाजी करते थे। इसके दारोगा पद के लिए तो वकीलों का भी जी ललचाता था। यह वह समय था जब अंग्रेजी शिक्षा और ईसाई मत को लोग एक ही वस्तु समझते थे। फारसी का प्राबल्य था। प्रेम की कथाएँ और श्रृंगार रस के काव्य पढ़कर फारसी दाँ लोग सर्वोच्च पदों पर नियुक्त हो जाया करते थे। कहना न होगा कि देशकाल का यह सटीक चित्रण कहानी के लिए आधारभूमि का काम करता है। आरोपी अलोपीदीन के अदालत जाने पर भी युग परिवेश का बड़ा रोचक वर्णन है–जिसे देखिये वही पंडित जी के इस व्यवहार पर टीका–टिप्पणी कर रहा था, निन्दा की बौछारें हो रही थीं, मानो संसार से अब पापी का पाप कट गया। पानी को दूध के नाम से बेचने वाला, कल्पित रोजनामचे भरने वाले अधिकारी वर्ग, रेल में बिना टिकट सफर करने वाले बाबू लोग, जाली दस्तावेज बनाने वाले सेठ और साहूकार यह सब देवताओं की भाँति गर्दनें चला रहे थे। जब दूसरे दिन पंडित अलोपीदीन अभियुक्त होकर कांस्टेबलों के साथ, हाथों में हथकड़ियाँ, हृदय में ग्लानि और क्षोभ भरे, लज्जा से गर्दन झुकाये अदालत की तरफ चले तो सारे शहर में हलचल मच गई। मेलों में कदाचित् आँखें इतनी व्यग्र न होती होंगी। भीड़ के मारे छत और दीवार में भेद न रहा।' इस प्रकार हम देखते हैं कि इस युग परिवेश के चित्रण से कहानी में सजीवता व चित्रात्मकता के साथ–साथ स्वाभाविकता का भी समावेश हुआ है।

भाषा–शैली

भाषा–शैली को कहानी क्या किसी भी साहित्यिक विधा का सर्वप्रमुख तत्व कहा जाये तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। भाषा पर ही किसी भी रचना का अस्तित्व टिका रहता है। भाषा के बिना तो साहित्य की किसी विधा की कल्पना ही नहीं की जा सकती। कहानी की प्रभावोत्पादकता के लिए भाषा का सशक्त, सजीव व चित्रात्मक होना आवश्यक है। भाषा–शैली की दृष्टि से 'नमक का दारोगा' कहानी की समीक्षा करने पर हम पाते हैं कि इस कहानी की भाषा–शैली पर पाठक का मन मंत्रमुग्ध हो उठता है। भाषा–शैली इतनी प्रभावी है कि कहानी पढ़ने के उपरान्त इसके कई वाक्य मानस पर अंकित हो जाते हैं। वाक्यों में कहीं जटिलता नहीं, शब्दों में कहीं दुर्बोधता नहीं। झरने की भाँति भाषा सहज रूप से प्रवाहमान रहती है। आवश्यकतानुसार कहीं साधारण बोलचाल की भाषा में वर्णनात्मक शैली अपनाई गई है तो कहीं चित्रात्मक शैली। वर्णनात्मक शैली का एक उदाहरण द्रष्टव्य है–'पंडित अलोपीदीन इस इलाके के

टिप्पणी

सबसे प्रतिष्ठित जमींदार थे। लाखों रुपये का लेन–देन करते थे। इधर छोटे से बड़े कौन ऐसे थे जो उनके ऋणी न हो। व्यापार भी लम्बा चौड़ा था। बड़े चलते पुरजे आदमी थे। अंगरेज अफसर उनके इलाके में शिकार खेलने आते और उनके मेहमान होते। बारहोमास सदाव्रत चलता था। यहाँ चित्रात्मक भाषा–शैली बड़ी रोचक बन पड़ी है। इसी समय उनके द्वार पर एक सजा हुआ रथ आकर रुका। हरे और गुलाबी परदे, पछहिये बैलों की जोड़ी, उनकी गर्दनों में नीले धागे, सींगें पीतल से जड़ी हुईं। कई नौकर लाठियाँ कंधों पर रखे साथ थे। मुंशी जी अगवानी को दौड़े। मुहावरों के प्रयोग से भाषा–शैली बड़ी प्राणवान हो उठी है। पौ बारह होना, फूले न समाना, हृदय में शूल उठना, गोलमाल होना, हाथ मलना, मिट्टी में मिलना, सीधे मुँह बात न करना, सिर पीट लेना। सिर माथे पर होना।

उपमा–रूपक से सजे कुछ वाक्य बड़े चित्राकर्षक हैं–

(i) लड़कियाँ हैं कि घास–फूस की तरह बढ़ती चली जाती हैं।

(ii) मासिक वेतन तो पूर्णमासी का चाँद है जो एक दिन दिखाई देता है और घटते घटते लुप्त हो जाता है।

(iii) ऊपरी आय बहता हुआ स्रोत है जिससे सदैव प्यास बुझती है।

(iv) वंशीधर पर ऐश्वर्य की मोहिनी वंशी का कुछ प्रभाव न पड़ा।

मानवीकरण से पुष्ट कुछ साहित्यिक प्रयोग अत्यन्त ही सुन्दर हैं–

(i) तर्क ने भ्रम को पुष्ट किया।

(ii) धन ने उछल–उछलकर आक्रमण करने शुरू कर दिये...किन्तु धर्म अलौकिक वीरता के साथ इस बहुसंख्यक सेना के सम्मुख अकेला पर्वत की भाँति अटल, अविचलित खड़ा था।

(iii) धर्म ने धन को पैरों तले कुचल डाला।

(iv) दुनिया सोती थी पर दुनिया की जीभ जागती थी।

(v) न्याय के मैदान में धर्म और धन में ठन गई।

(vi) सौभाग्य और सुअवसर ने मुझे वह मोती दिया है जिसके सामने योग्यता और विद्वता की चमक फीकी पड़ जाती है।

उद्देश्य

उद्देश्य कहानी का प्राण तत्व है। यह कहानी में ऐसे समाहित रहता है जैसे फूलों में सुगन्ध। उद्देश्य कहानी के किसी एक शब्द या वाक्य में निहित नहीं रहता है, अपितु यह पूरी कहानी में ही आन्तरिक रूप से समाया रहता है। हर रचना का कोई न कोई उद्देश्य होता है। मनोरंजन तो प्राथमिक उद्देश्य है ही, लेकिन उसके अतिरिक्त भी कहानी का कुछ सन्देश या उद्देश्य होता है जो पाठक के हृदय पर संस्कारित हो जाता है। 'नमक का दारोगा' कहानी का उद्देश्य ईमानदारी का सुफल बताना है। ईमानदारी को खरीदने की भरपूर कोशिश की जाती है। अलोपीदीन बहुत से ईमानदारों को डिगाते आये हैं जैसाकि उन्होंने वंशीधर से स्वयं कहा–'मैंने हजारों रईस और अमीर देखें, हजारों उच्च पदाधिकारियों से काम पड़ा, किन्तु मुझे परास्त किया तो आपने। मैंने

टिप्पणी

सबको अपना और अपने धन का गुलाम बनाकर छोड़ दिया।' किन्तु उनके द्वारा भारी रिश्वत की पेशकश भी दारोगा वंशीधर को उनके ईमान से डिगा नहीं सकी। ईमानदारी को कठिन परीक्षा भी झेलनी पड़ती है, यहाँ तक कि कई बार दण्डित भी होना पड़ता है। अदालत में वंशीधर की ईमानदारी परास्त हो गई। 'न्याय और विद्वता, लम्बी–चौड़ी उपाधियाँ, बड़ी–बड़ी दाढ़ियाँ और ढीले चोंगे एक भी सच्चे आदर के पात्र नहीं हैं।' लेकिन अन्तरात्मा की अदालत में वंशीधर बाजी मार ले जाते हैं। अन्ततः अलोपीदीन की आत्मा धिक्कारती है। उनका हृदय–परिवर्तन होता है और वे वंशीधर को अपनी स्थायी सम्पत्ति का मैनेजर बनाकर उन्हें समुचित पुरस्कार देते हैं। इस प्रकार इस कहानी के माध्यम से प्रेमचन्द 'सत्यमेव जयते' का ही सन्देश देते हैं। वे यह सिद्ध करना चाहते हैं कि सत्य कुछ समय के लिए पराजित हो सकता है, किन्तु अन्ततः वह विजयी होकर ही रहता है। यह उद्देश्य अत्यन्त वांछनीय व प्रेरक है।

उपर्युक्त तत्वों के अतिरिक्त यदि हम शीर्षक की दृष्टि से भी विचार करें तो शीर्षक अत्यन्त सार्थक है। यह कहानी के केन्द्रीय भाव को स्वयं में समाये हुए है। सारी कहानी का ताना–बाना इसी के इर्द–गिर्द बुना गया है। बहुत सोच–विचार के बाद भी कहानी का इससे अच्छा शीर्षक नहीं सूझता। कुल मिलाकर कहानी के समस्त तत्वों के आधार पर 'नमक का दारोगा' कहानी बिल्कुल खरी उतरती है। यह बड़ी देर तक अपना प्रभाव छोड़ती है।

अपनी प्रगति जाँचिए

1. टॉलस्टाय की कहानियाँ, अहंकार, शबेतार आदि प्रेमचंद की किन रचनाओं के अंतर्गत शामिल हैं?

   (क) उपन्यास (ख) अनूदित

   (ग) जीवनियाँ (घ) बाल साहित्य

2. नमक का दारोगा कहानी में किसका चरित्र बहुत आदर्शवादी, अनुकरणीय व सकारात्मक बना रहता है?

   (क) डिप्टी मजिस्ट्रेट (ख) अलोपीदीन

   (ग) वंशीधर (घ) बदलू सिंह

2.3 एक थे राजा भोज (निबन्ध) : डॉ. त्रिभुवननाथ शुक्ल

त्रिभुवननाथ शुक्ल का जन्म 13 जुलाई, 1953 को इलाहाबाद जिले के मधूकापुर (बरांव) तहसील करछना में हुआ था। इनके पिता पंडित रामचन्द्र शुक्ल और माँ श्रीमती सुखराजी देवी गाँव में ही निवास करते थे। इनकी प्रारम्भिक शिक्षा गाँव के प्राइमरी स्कूल में हुई थी। तत्पश्चात् इन्होंने स्नातक, स्नातकोत्तर, पी.एचडी और डी. लिट् की उपाधि रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय, जबलपुर से प्राप्त की। शुक्ल जी पढ़ाई में अत्यन्त मेधावी थे। स्नातक और स्नातकोत्तर की परीक्षाओं में प्रथम श्रेणी में प्रथम स्थान प्राप्त कर उन्होंने दो स्वर्णपदक प्राप्त किए। इतना ही नहीं उन्होंने संस्कृत में शास्त्रीय एवं साहित्याचार्य की उपाधि भी प्राप्त की है।

टिप्पणी

डॉ. त्रिभुवननाथ शुक्ल ने विभिन्न विभागों में उच्च पदों पर काम करके अपनी प्रतिभा का लोहा मनवाया। 1980 से 2010 तक रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय, जबलपुर में प्रवक्ता, उपप्राचार्य, आचार्य एवं कला संकाय के अध्यक्ष एवं केन्द्रीय पुस्तकालय के निदेशक के रूप में कार्य किया। सन् 2009 से 2015 तक उन्होंने साहित्य अकादमी, मध्य प्रदेश संस्कृति परिषद् भोपाल में निदेशक के रूप में अपनी सेवाएँ प्रदान कीं। वर्तमान में पुनः आचार्य एवं विभागाध्यक्ष हिन्दी विभाग, रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय जबलपुर में कार्यरत हैं।

बहुमुखी प्रतिभा के धनी त्रिभुवननाथ शुक्ल ने साहित्य की अनेक विधाओं में सिद्धहस्त लेखन किया है। कविता, कहानी, नाटक एवं ललित निबन्ध आपकी प्रिय विधाएँ रही हैं। माध्यमिक शिक्षा से लेकर उच्च शिक्षा तक के पाठ्यक्रम के लिए उन्होंने अनेक पुस्तकों का लेखन एवं सम्पादन किया है। आपकी प्रकाशित पुस्तकों की संख्या बहुत अधिक है। कुछ प्रमुख कृतियाँ निम्नांकित हैं–

(i) रामचरित मानस के शब्दों का अर्थतात्विक अध्ययन

(ii) अवधी का स्वनिमिक अध्ययन

(iii) मध्यकालीन कविता का पाठ

(iv) कोश निर्माण प्रविधि एवं प्रयोग

(v) भाषिक औदात्य

(vi) विद्यापति

(vii) अनुबन्ध

(viii) रंगसप्तक

(ix) अवधी साहित्य की भूमिका

(x) अवधी साहित्य के आधार स्तम्भ

(xi) अवधी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास

(xii) हिन्दी भाषा का आधुनिकीकरण एवं मानवीकरण

(xiii) हिन्दी कम्प्यूटिंग शब्दानुशासन

(xiv) समीक्षक आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी

(xv) भारतीय बाल साहित्य की भूमिका

(xvi) साहित्य शास्त्र के सौ वर्ष

(xvii) कालिदास पर्याय कोश

(xviii) हिन्दी भाषा संरचना

सम्मान एवं पुरस्कार–आपकी साहित्यिक सेवाओं को देखते हुए भागलपुर विश्वविद्यालय ने डी. लिट् की मानद उपाधि से विभूषित किया। मध्य प्रदेश लेखक संघ द्वारा 2011 में आलोचना सम्मान, अखिल भारतीय परिषद द्वारा 2012 में यास्क सम्मान, 2013 में लखनऊ द्वारा मिश्रबन्धु सम्मान, रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय द्वारा सर्वश्रेष्ठ प्राध्यापक सम्मान, अन्तर्राष्ट्रीय तुलसी शोध संस्थान, चित्रकूट द्वारा 2003 में तुलसी भारती

समलंकरण सम्मान प्रदान किया। इतना ही नहीं संयुक्त राज्य अमेरिका द्वारा भी शुक्ल जी को विश्व तुलसी सम्मान से विभूषित किया जा चुका है।

टिप्पणी

2.3.1 'एक थे राजा भोज' निबन्ध का मूल पाठ

मेरे मन में बहुत दिनों से यह आ रहा था कि भोज पर कुछ लिखूँ। जब से बड़े तालाब में भोज की प्रतिमा लगी है, तब से इच्छा और बलवती हो चली। तब भोज पर मेरा गहन अध्ययन नहीं था। मैंने जब पढ़ना प्रारंभ किया तो आँखें फटी–फटी सी रह गईं। आश्चर्य हुआ कि इतना बड़ा शासक, इतना अच्छा शासक और इससे भी अधिक बड़ा साहित्य, कला, धर्म, अध्यात्म, ज्योतिष, आयुर्वेद और तमाम विषयों का बहुमुखी प्रतिभासंपन्न रचनाकार आज वर्तमान परिदृश्य में लुप्त–सा हो गया। इधर मध्यप्रदेश शासन ने झील महोत्सव और अनेक सांस्कृतिक कार्यक्रमों के माध्यम से भोज की ओर अच्छा रुख किया है। इसलिए पाठकों को भोज से परिचय कराने का मन हो उठा। भोज परमारवंशी थे। इसी वंश के मुंजदेव नरेश के यहाँ भट्टहलयुध, धनपाल, धनिक, धनंजय, परिमल अथवा पद्मगुप्त अमितगति आदि विद्वान सभा में विद्यमान हुआ करते थे। इस वंश में अनेक प्रतापशाली एवं विद्याव्यसनी सम्राट हुए हैं। नवीं शताब्दी से लेकर पाँच सौ वर्षों तक इस वंश के पच्चीस–छब्बीस शासकों ने उज्जैन और धारा नगरी के विस्तृत प्रदेश पर शासन किया। इसी वंश में मुंजदेव हुए, जो प्रसिद्ध विद्वान, कवि, वक्ता और अनेक ग्रंथों के रचयिता थे।

अलबरूनी (973 ई.) ने भी अपने ग्रंथ तहकीके हिंद में भोज का कई बार उल्लेख किया है। मालवा पर परमार वंश का शासन था। इन्होंने भी कश्मीर के राजाओं की भाँति काबुलिस्तान के एक पालवंशीय युद्धपराङ्गमुख राजा को अपने यहाँ आश्रय दिया था। अलबरूनी ने मालवा के भोजदेव का उल्लेख किया है– "इसका शासन 997 ई. से लेकर 1053 ई. तक है। धार में जहाँ कि वह उज्जैन से उठकर गया था उसका राजदरबार तत्कालीन विद्वानों का समागम स्थान बन रहा था।" (डा. शाहिद अहमद : अलबरूनी कालीन भारत, पृष्ठ–10)

इसी पुस्तक में भोजदेव के बारे में एक कहानी में तीन वृत्तांत दिए गए हैं। इसका शीर्षक है–'धार के राजभवन के द्वार पर चाँदी के टुकड़े की कहानी।' इसी प्रकार की एक दूसरी कथा यह है–मालवा की राजधानी धार नगर में, जहाँ का राजा हमारे समय में भोजदेव है, राजभवन के द्वार में शुद्ध चाँदी का एक ऐसा आयत टुकड़ा पड़ा है, जिसमें मनुष्य के अवयवों की बाह्य रेखा दिखाई देती है। इसकी उत्पत्ति के विषय में निम्नलिखित कहानी बताई जाती है–प्राचीनकाल में एक बार एक मनुष्य उनके एक राजा के पास एक ऐसा रसायन लेकर गया जिसका प्रयोग उसे अमर, विजयी, अज्ञेय और प्रत्येक मनोवांछित कार्य को करने में समर्थ बना सकता था। उसने राजा से कहा कि मेरे पास अकेले आना और राजा ने आज्ञा दे दी थी कि उस मनुष्य को जिन–जिन वस्तुओं की आवश्यकता हो वे सब तैयार कर दी जाएँ।

वह मनुष्य कई दिन तक तेल को उबालता रहा। यहाँ तक कि अंत को वह गाढ़ा हो गया। तब उसने राजा को कहा–इसमें छलांग मारो और मैं क्रिया को समाप्त कर दूँगा। राजा उस दृश्य को देखकर बहुत डर गया था, इसलिए उसे छलांग मारने का साहस न बन पड़ा। उस मनुष्य ने उसकी कायरता को देखकर उससे कहा–यदि आप

टिप्पणी

में यथेष्ट साहस नहीं, आप इसे अपने लिए करना नहीं चाहते तो क्या आप मुझे अपने लिए इसे करने की आज्ञा देते हैं? राजा ने उत्तर दिया, जैसी तुम्हारी इच्छा हो वैसा करो। अब उसने औषधियों की अनेक पुड़ियाँ निकालीं और राजा को समझा दिया कि जब ऐसे–ऐसे चिह्न प्रकट हों तब अमुक–अमुक पुड़िया मुझ पर डाल देना। तब वह मनुष्य देग के पास जाकर उसमें कूद पड़ा और क्षण भर में घुल कर उसकी लेवी–सी बन गई। अब राजा वैसा ही करने लगा जैसा कि उस मनुष्य ने उसे समझाया था, परंतु जब वह प्रायः सारी क्रिया समाप्त कर चुका और उस क्वाथ में डालने के लिए केवल एक ही पुड़िया बाकी रह गई, तब उसे चिंता उत्पन्न हुई और वह सोचने लगा कि यदि यह मनुष्य, जैसा कि ऊपर कह आए हैं, अमर, विजयी, अज्ञेय बनकर जीवित हो गया तो मेरे राज्य की क्या दशा होगी। इसलिए उसने यही उचित समझा कि अंतिम पुड़िया क्वाथ में न डाली जाए। इसका फल यह हुआ कि देग ठंडी हो गई और घुला हुआ मनुष्य चाँदी के टुकड़े के रूप में जम गया।

माहूर से धार तक– माहूर और कन्नौज के बीच उतना ही अंतर है जितना कि कन्नौज और बजान के बीच, अर्थात् 28 फर्सख। यदि कोई मनुष्य माहूर से उज्जैन जाए तो उसे रास्ते में ऐसे ग्राम मिलेंगे जिनका आपस में पाँच फर्सख और इससे कम अंतर है। पैंतीस फर्सख चलने के बाद वह दूदही नामक एक बड़े गाँव में पहुँचेगा। जहाँ से बामहूर दूदही से 17 फर्सख, भेलसा 5 फर्सख, जो कि हिंदुओं का एक परम प्रसिद्ध स्थान है। इस स्थान का नाम और वहाँ की देव–मूर्ति का नाम एक ही है। वहाँ से अर्दीन 9 फर्सख है। जिस देव–मूर्ति का वहाँ पूजन होता है, उसका नाम महाकाल है। धार 7 फर्सख है।

बजान मंदगिर– बजान से दक्षिण की ओर चलकर मेवाड़ में आते हैं, जो कि बजान से 25 फर्सख है। यह एक राज्य है जिसकी राजधानी जंतरौर है। इस नगर से मालवे और उसकी राजधानी धार का अंतर 20 फर्सख है। उज्जैन नगर 7 फर्सख घर के पूर्व है। उज्जैन से भेलसा तक, जो कि मालवा में ही है, 10 फर्सख का अंतर है।

धार से दक्षिण की ओर चलने से ये स्थान आते हैं–भूमिहर, धार से 20 फर्सख, कंड फर्सख, नमावुर नर्मदा के तट पर 10 फर्सख, अलीस 20 फर्सख, मंदगिर गोदावरी के तट पर 60 फर्सख।

धार से तान तक– फिर धार से दक्षिण दिशा में चलने पर ये स्थान मिलते हैं। नमिय्य की घाटी, धार से 7 फर्सख, महरट्टा देश 18 फर्सख, कुंकन प्रांत और समुद्र तट पर इसकी राजधानी तान 25 फर्सख है।

इन वृत्तांतों में दूरी के माप के लिए फर्सख शब्द का प्रयोग हुआ है। एक फर्सख चार मील अर्थात् 6 किलोमीटर का होता है। इसमें जिन नामों और स्थानों का उल्लेख हुआ है, वे आज भी अस्तित्व में हैं। इससे भोजदेव की ऐतिहासिकता स्वतः प्रमाणित हो जाती है।

इस वंश के छठे राजा सीयक अथवा हर्षदेव और दक्षिण के मान्यखेट (मालखेड़ा) के राष्ट्रकूट वंशीय महाप्रतापी राजा खोट्टीदेव ने उसे नर्मदा के किनारे खलघाट स्थान पर हराकर उसका सब कुछ छीन लिया था। यह युद्ध नौ सौ सत्तर के आस–पास हुआ था। इसके बाद हर्षदेव एवं उनके वंशधरों का एकक्षत्र राज्य हो गया। हर्षदेव का पुत्र

टिप्पणी

वाक्यपति उपनाम मुंजदेव भी अत्यंत पराक्रमी हुए। मुंजदेव और उनके छोटे भाई तथा उत्तराधिकारी सिंधुराज ने अपने पराक्रम से भारतवर्ष में अनेक राजाओं को जीत कर अपने राज्य का विस्तार किया। इसके पश्चात सिंधुराज के पुत्र भोजदेव के विशेष विजय तथा कृति संपादन में मालवा राज्य का ऐश्वर्य शिखर पर पहुँच सका। इसका विस्तार दक्षिण में मलयागिर से लेकर उत्तर में कश्मीर तक और पूर्व में समुद्र से लेकर पश्चिम समुद्र तक फैला हुआ था। उन्होंने देश के अनेक प्रतापी राजाओं को परास्त कर अपने राज्य का विस्तार किया था। भोजदेव के पराक्रम से भारतवर्ष के अनेक तत्कालीन राज्य के नरेश आश्चर्यचकित थे। उस समय भारतवर्ष में चेदीश्वर, इंद्ररथ, तोंग्गल और भीमदेव आदि नरेश बड़े प्रतापी माने जाते थे। भोजदेव ने इन सब को परास्त कर अपना राजनैतिक वर्चस्व स्थापित किया। चेदीश्वर गांगेवदेव की पराजय का वर्णन धार के एक शिलालेख पर अर्जुन वर्मा की प्रशस्ति में लिखा है, यह विजय ऐतिहासिक थी। इसकी स्मृति में एक विजय स्तंभ खड़ा किया गया था। यह विशाल विजय–स्तंभ उस समय के इतिहास का बहुत बड़ा प्रमाण है। मंजुदेव के छोटे भाई भोजदेव के पिता सिंधुराज को वीरता के कारण नवशाहशांक या नवविक्रमांक कहते थे। इसकी प्रशंसा में पद्मगुप्त कवि द्वारा नवशाहशांक नाम से एक सुंदर काव्य ग्रंथ की रचना की गई। उसमें सिंधुराज के साथ–साथ अपने पुराने आश्रयदाता मुंजदेव का भी उल्लेख किया है–

सरस्वती कलपलेतैककंदम् वन्दाहेवाक्पतिराजदेवम्।
यस्यप्रभांवाद्यमल्यनन्य कवीन्द्रचीर्णेपथिसंचरामः।।

उपर्युक्त श्लोक में मुंजदेव की विद्वत्ता की प्रशंसा करके उनके गुरुत्व को स्वीकार किया गया है। मुंजदेव ने अनेक ग्रंथों की रचना की थी। कारण कि अनेक ग्रंथकारों की कृतियों में मुंजदेव कृत ग्रंथों के उद्धरण उपलब्ध होते हैं। इसके अतिरिक्त 'सुभाषितावली' तथा अन्य संग्रहों में मुंजदेव नरेश लिखित कई श्लोक पाए जाते हैं। अलंकार शास्त्र में भी अनेक स्थलों पर मुंजनरेश के बनाए हुए श्लोकों के उदाहरण प्राप्त होते हैं। मुंजदेव अत्यंत पराक्रमी थे। फिर भी अंत समय में अपने मंत्री की सलाह न मानने के कारण शत्रु के हाथों मारे गए। मुंजदेव के संबंध में एक पंडित ने अपना दुःख इस प्रकार व्यक्त किया है–

लक्ष्मीर्यास्यतिगोविन्दे वीरश्रीर्वीरवेश्यनि।
गते मुंजे यशः पुंजे निरालंबा सरस्वती।।

उनकी मृत्यु के पश्चात विद्वानों को सरस्वती आश्रयरहित प्रतीत हुई। मुंजदेव के पश्चात उनके छोटे भाई सिंधुराज गद्दी पर बैठे। इन्होंने भी विद्वानों को आश्रय देने का कार्य पूर्ववत जारी रखा। इनकी मृत्यु के पश्चात् पद्मगुप्त ने अपने ग्रंथ नौशाहशांक में लिखा है–

दिवंयियासुर्ममवाचिमुद्राम् अदत्तयांवाक्यतिराजदेवः।
तस्यानुजन्माकविबांधवस्य भिनत्तितांसप्रतिर्सिधुराजः।।

इसके पश्चात् सिंधुराज के पुत्र भोजदेव ने विद्वानों के आदर–सत्कार में अपने पूर्वजों के समान ही कीर्ति अर्जित की।

इसके साथ ही ये योग, धर्मशास्त्र, व्याकरण, वैद्यक, साहित्य, तत्व–ज्ञान एवं नाट्य, संगीत तथा चित्रकला के भी मर्मज्ञ थे। भोजदेव ने महर्षि पतंजलि के योगसूत्र

पर राजमार्तंड नाम का एक टीका ग्रंथ लिखा था। इसकी प्रस्तावना में भोजदेव ने अपनी तुलना पतंजलि मुनि से की है।

टिप्पणी

भोज को एक महान दार्शनिक के रूप में भी जाना जाता है। सांख्यशास्त्र और न्यायशास्त्र पर उनका असाधारण अधिकार था। सांख्यशास्त्र के संदर्भ में वाचस्पति मिश्र ने भोजकृत राजवार्तिक का उल्लेख किया है।

ज्योतिष के क्षेत्र में–(1) राजमार्तंड, (2) राजमृगांककरण, (3) द्विवज्जन–वल्लभप्रश्न ज्ञान, (4) आदित्यप्रतापसिद्धांत। ये ग्रंथ भोजदेव कृत उपलब्ध हैं।

1. राजमार्तंड ज्योतिष के संहिता–स्कंध का ग्रंथ है, जो शके 964 के आस–पास लिखा गया है। स्व. शं.बा. दीक्षित ने अपने भारतीय ज्योतिषशास्त्र नामक ग्रंथ (पृ.–47) में भोजकृत इस ग्रंथ के अंत में 'इतिश्री महाराजाधिराज श्रीभोजदेव विरचितम् राजमार्तंडामिधानम् ज्योतिशास्त्रम् समाप्तम्' लिखा हुआ बतलाया है।
2. राजमृगांककरण ग्रंथ का आरंभकाल शके 964 है। इसके अंत में लिखा है, 'इत्युर्वीपति वृंदवंदित पद्द्वंदेनसब्दुद्धिना, श्रीभोजेन कृत मृगांककरणं ज्योतीर्विदांप्रीतये'। इससे स्पष्ट है कि यह भोजकृत है 'इत्युर्वीपतिवृंदवंदित–पद्द्रंदेनसब्दुद्धिना' से विदित होता है कि शके 964 में भारतवर्ष भर में भोजदेव का आधिपत्य था।
3. विद्वज्जन वल्लभप्रश्नज्ञान, इसका विशेष नाम से ही प्रकट है। इसमें 18 प्रकरण हैं।

भोजदेवकृत राजमार्तंड नामक ग्रंथ में अब से एक हजार वर्ष पहले ही इसका उल्लेख है। उसमें शक्ति बढ़ाने के लिए वानर माँस उपयोगी बतलाया गया है। उस समय की एक और भी आश्चर्यजनक बात हमें मद्रास के प्रसिद्ध डॉक्टर सी. मुत्थू एम. डी. से ज्ञात हुई थी। डॉक्टर मुत्थू सन् 1925 में धार के अधिपति श्रीमंत स्व. महाराज उदाजीराव पंवार की बीमारी में दवा करने के लिए धार आए थे। उन्होंने कहा कि डॉक्टरी में शल्य क्रिया आज–कल जैसी उन्नत अवस्था को प्राप्त है, भोजदेव के समय में वैसी ही थी। उन्होंने बतलाया कि एक बार भोजदेव के मस्तक में कुछ विकार हो गया था, जिससे उनका मस्तक बहुत दुखता था। बहुत औषधोपचार किया गया, परंतु मस्तक–शूल अच्छा नहीं हुआ, तब एक वैद्य ने क्लोरोफार्म के समान सम्मोहनी औषधि का प्रयोग करके भोजदेव के मस्तक में कुछ शल्य–क्रिया करके उन्हें रोग–निवृत्त किया।

भोजदेव ने सैकड़ों राजाओं को अपने अधीन करके उन पर अपना अधिकार स्थापित किया था। मध्वाचार्य ने अपने रुग्विनिश्चय नामक ग्रंथ में तथा भाविमत्र ने अपने भाव–प्रकाश नामक ग्रंथ में भोजदेव कृत वैद्यक ग्रंथों के आधार पर उद्धृत किए हैं।

धर्मशास्त्र पर भोजदेव कृत 'पूर्तमार्तंड' नामक ग्रंथ है। इसके अतिरिक्त उन्होंने धर्मशास्त्र संबंधी और ग्रंथ भी लिखे होंगे, क्योंकि इनका उल्लेख अनेक सुप्रसिद्ध धर्मशास्त्र ग्रंथकारों ने अपने ग्रंथों में किया है। दक्षिण कल्याणपुर के चालुक्यवंशी प्रसिद्ध राजा विक्रमांकदेव के मंत्री भट्टविज्ञानेश्वर (108 ई.) ने याज्ञवल्लक्य स्मृति पर मिताक्षरी व्याख्या की है।

नीतिशास्त्र– भोजदेव ने 'चाणक्य राजनीतिशास्त्र' नामक ग्रंथ भी लिखा।

टिप्पणी

प्राचीन शिल्पशास्त्रज्ञ स्व. रायसाहब कृष्णाजी विनायक बझे शिल्प कालनिध ने भी लिखा है कि यह ग्रंथ अत्यंत उपयोगी है और प्राचीन शास्त्री की दृष्टि से शिल्प संबंधी बातों का अच्छा वर्णन है। ग्रंथ के प्रत्येक अध्याय के अंत में ''इति श्री महाराजाधिराज भोजदेव विरचिते समरांगणसूत्र धारापरनाम्नि वस्तुशास्त्रे...नाम...अध्याय'' लिखा है। छपे हुए ग्रंथ में 83 अध्याय हैं, परंतु ज्ञात होता है कि ग्रंथ अपूर्ण है।

राष्ट्रोपयोगी शास्त्रविद्या और कला–संबंधी ग्रंथ राष्ट्र और समाज की उन्नति के लिए उपकारक और आवश्यक हैं, इन पर भी भोजदेवकृत ग्रंथ मिलते हैं। भोजदेव रचित युक्तिकल्पतरु नाम का एक ग्रंथ है जो विश्व ज्ञानकोष के समान है। इसमें राष्ट्रोपयोगी अनेक विषयों का संक्षेप में समावेश किया गया है। आरम्भ में मंगलाचरण के पश्चात् लिखा है–

नानामुनिनिबन्धानां सारमाकृष्ययत्नतः।
तनुते भोजनृपतिर्युक्तिकल्परूं मुदे।।

अनेक ग्रंथों का सार लेकर भोजदेव ने इस युक्ति कल्पतरु की रचना की है। युक्तिकल्पतरु नाम अत्यंत व्यापक है। राज्यकर्ता के लिए आवश्यक बातें तथा राज्य को दृढ़ बनाने की अनेक युक्तियों का संचय यह कल्पतरु ही है। इसमें राज्य–व्यवस्था, मैत्री तथा दूतों के भेद और लक्षण, राजनीतिक संधिविग्रह, सेना आदि के भेद और देशानुसार उनका महत्त्व, युद्ध करने की युक्तियाँ, प्रकारादि का महत्त्व और उनके निर्माण करने की रीति, ध्वजा, पताका छत्र, चामरादि अनेक राज–चिह्नों, सिंहासनों और रत्नमणि अलंकारादि की परीक्षा, नीति और युद्धोपयोगी शास्त्रास्त्र तथा उनकी परीक्षा, रथ, पालकी इत्यादि सवारियाँ और नौका इत्यादि राष्ट्रोपयोगी अनेक विषयों का पुराण आदि ग्रंथों से आवश्यक ज्ञान प्राप्त करके वर्णन किया गया। इसके अतिरिक्त इस ग्रंथ में एक नवीनता यह भी है कि उपर्युक्त प्रत्येक विषय का वर्णन करते समय भोजदेव ने स्वरचित अन्य ग्रंथों के उदाहरण भी दिए हैं। इससे जान पड़ता है कि भोजदेव ने प्रत्येक विषय पर पृथक–पृथक ग्रंथ लिखे होंगे।

भोजदेव कृत शालिहोत्र नामक ग्रंथ का उल्लेख अश्वपरीक्षा तथा अश्ववैद्यक संबंधी संस्कृत–ग्रंथों की सूची में जर्मन पंडित आउफ्रेक्ट ने किया है। माधकाव्य की टीका में मल्लिनाथ ने भोजदेव के अश्वशास्त्र संबंधी ग्रंथ का उल्लेख किया है (सर्व 5 श्लोक 60 मल्लिनाथी टीका)। इससे ज्ञात होता है कि अश्वशास्त्र के समान गजपरीक्षा, शास्त्रास्त्र परीक्षा, युद्धकला तथा पशुवैद्यक आदि विषयों पर भी इनके बनाए हुए अलग–अलग ग्रंथ रहे होंगे।

भोजदेव कृत धार्मिक ग्रंथ भी हैं। परमारवंशीय राजा शिव के उपासक थे। उज्जैन के महाकाल और धार में कालिका देवी इनके मुख्य उपात्य देवी–देवता थे। भोजदेव अत्यंत शिवभक्त थे। उन्होंने भारतवर्ष में अनेक स्थानों पर शिवजी के मंदिर बनवाकर अपनी शिव–भक्ति का परिचय दिया। इसके संबंध में उदयपुर की प्रशस्ति में लिखा है–

केदार रामेश्वर सोमनाथ सुंडीरकालानलरुछसत्कैः।
सुराश्रयैर्व्याप्जचयः समन्तात यथार्थसंज्ञाजगतींचकार।

टिप्पणी

भोजदेव के ग्रंथों में दो–तीन स्थलों पर केवल विषयानुरोध से दूसरे देवताओं का मंगलाचरण भी है, शेष सब ग्रंथों में शंकर का ही मंगलाचरण है। इससे स्पष्ट है कि वे पक्के शैव थे। इनके (1) तत्वप्रकाश, (2) सिद्धांत–संग्रह नामक शैवमत प्रदर्शक ग्रंथों का उल्लेख आऊफ्रेक्ट सूची में है। (3) शिवतत्वरत्नकलिका नामक ग्रंथ भी इसी मत का प्रदर्शक है।

काव्य

कविता के संबंध में तो भोजदेव विशेष प्रख्यात थे। संस्कृत–कवियों तथा ग्रंथकारों ने उन्हें सूरि, कविराज, कविबन्धु आदि उपाधियाँ दे रखी थीं। उनकी कविता की प्रशंसा छित्तप, शंकर सरस्वती, विनायक, देवेश्वर इत्यादि तत्कालीन अनेक कवियों ने की है। धार में भी भोज–पाठशाला में एक शिलालेख प्राप्त हुआ है जिसमें राजगुरु मदनकविकृत अर्जुन धर्मप्रशस्ति है। इससे ज्ञात होता है कि इस समय भोजदेव की गणना महाकवियों में होती थी। इस नाटक रूपप्रशस्ति में भोजदेव को बाणभट्ट से भी अधिक श्रेष्ठ कहा गया है।

अन्य ग्रंथों से भी भोजदेव की काव्य–प्रतिभा प्रमाणित होती है।

मालवराज भोजदेव विदर्भराज भी कहलाते थे क्योंकि उनके राज्यांतर्गत विदर्भ देश था। उनके राज्य का विस्तार व्हाड के दक्षिण गोदावरी तट तक और उसके आगे चालुक्य राजधानी कल्याणपुर (हुमणवाद) तक था। इतना ही नहीं ताम्र–पत्रों से सिद्ध है कि भोजदेव ने कोकण प्रांत विजय करके अपने राज्य में मिला लिया था। मेरुतढंगोचार्य ने मालवराज भोजदेव के राज्य विस्तार के संबंध में 'सगौडो दक्षिणपथः' लिखा है। उदयपुर प्रशस्ति में भी लिखा है कि कैलाश से लेकर मलयगिरि तक और पूर्व–पश्चिम समुद्र तक भोजदेव का साम्राज्य फैला था। उनके जीते हुए राज्यों के नाम उदयपुर की प्रशस्ति में इस प्रकार हैं–

चेदीश्वरेन्द्ररथतोग्गलभीमुख्यान्।
कर्णाटलाटपतिगुर्जरराट्तुरूष्कान्।।

साहित्य की दृष्टि से 'शृंगारप्रकाश ग्रंथ' अत्यंत महत्त्व का है। 'सरस्वतीकंठाभरण' में शृंगार रस को ही प्रधानता दी गई है परंतु 'शृंगारप्रकाश' में इसे और भी बढ़ाकर लिखा गया है। इस ग्रंथ के अनुसार शृंगार रस ही एक प्रधान रस है, शेष वीरकरुणादि रस शृंगार रस के पृथक–पृथक रूप हैं। इस ग्रंथ में शब्दार्थयोगसाहित्यम् लिखकर शब्दार्थों की शृंखला को साहित्य कहा गया है।

भोजदेव साहित्य के समान संगीत, ललित कला आदि कलाओं के भी मर्मज्ञ तथा ज्ञाता थे। भोजदेव के काका मुंजदेव उर्फ वाक्पतिराज गायनादि कला में अत्यंत प्रसिद्ध थे। बचपन में उसी की देखरेख में भोजदेव को संगीत इत्यादि की शिक्षा मिली थी। इसलिए इन कलाओं में बचपन से ही उसकी रुचि अधिक थी।

भोजदेव को गायनाचार्य की उपाधि भी प्राप्त थी। तेरहवीं सदी के अंत में देवगिरि के राजा सिंघणयादव के आश्रित प्रसिद्ध संगीताचार्य शारंगददेव ने 'संगीतरत्नाकर' नामक ग्रंथ रचा है। इसमें भी भोजदेव का नाम आया है। इससे विदित होता है कि इस विषय पर भी भोजदेव ने कोई ग्रंथ लिखा होगा। चित्रकलादि का भोजदेव के राज्य में अधिक प्रचार था और राज्य की ओर से वह उन कलाओं को विशेष प्रोत्साहन भी देता

टिप्पणी

था। आज भी मालवा में सुंदर मूर्तियों तथा नक्काशी के तत्कालीन अवशेष कहीं–कहीं उपलब्ध हैं। शिलालेखों पर खुदाई की कला भी भोजराज के समय अधिक उन्नत हुई। इसके लिए भोजदेव ने एक उत्तम कारीगर के घराने की वंश परंपरा के लिए आश्रय प्रदान किया था। अजमेर में विग्रहराज विरचित शिक्षा पर लिखी 'हरकेलि' नाटिका 100 वर्षों के बाद इस घराने के भास्कर नामक कारीगर ने ही खोदी थी, नाटिका में इसका उल्लेख है। भोजदेव के समय के शिला–लेख इतने सुंदर, प्रमाणबद्ध और व्यवस्थित हैं कि भारतवर्ष में और किसी दूसरी जगह ऐसे सुंदर शिलालेख नहीं मिलते।

व्याकरण के संबंध में भोजदेव ने 'शब्दानुशासन' नामक ग्रंथ लिखा था। स्व. पंडित वामनशास्त्री इस्लामपुरकर ने धार के इतिहास में पाणिनि के सूत्रपाठ पर भी भोजराज की टीका (वृत्ति) का उल्लेख किया है। भट्टोजी दीक्षित कृत कौमुदी उत्तरार्ध में 'भवादिगण' (पृ. 213) में 'अन्नभोजाः' उल्लेख मिलता है। संस्कृत भाषा के व्याकरण ग्रंथों के टीकाकारों ने तो वैयाकरण (व्याकरणकार) भोजदेव का उल्लेख स्थान–स्थान पर किया है। वि.सं. 1197 सन् 1140 ई. के जैन वैयाकरण वर्धमान कृत 'गणरत्न महोद्धि' ग्रंथ में भी स्थान–स्थान पर भोजकृत व्याकरण ग्रंथ के उदाहरण हैं। एक श्लोक में वर्धमान ने संस्कृत भाषा के सुप्रसिद्ध व्याकरणकारों के नाम दिए हैं, जिसमें भोजराज का भी नाम है–

शालातुरीयशकटांगज चंद्रगोमी
दिग्वस्त्र भर्तृहरि वानभोजमुख्याः।
मेधाविनः प्रवरदीपककर्तृयुक्ताः
प्राज्ञेर्निषेविलपदद्वितया जयन्ति।

प्राकृत भाषा के व्याकरण के संबंध में भी भोज के ग्रंथ हैं। प्रसिद्ध जैन पंडित जिनविजयसूरि को कीर्तिविजय नामक जैन यति द्वारा तैयार की गई लगभग 300 वर्ष पहले के प्राचीन संस्कृत और प्राकृत–ग्रंथों की सूची प्राप्त हुई, जिसमें 'श्री भोजकृत प्राकृत व्याकरण' नामक ग्रंथ का उल्लेख नं. 60 में है।

वर्णमाला, धातुप्रत्ययमाला इत्यादि अब भी विद्यमान हैं। एक ग्रंथ 'भोजव्याकरण' भी है परंतु वह भोजकृत नहीं है। संभवतः वह भोजदेव की शिक्षा के लिए बनाया गया था, इसलिए उसका यह नाम रखा गया।

भोजदेव स्वतः विद्वान साहित्य–भक्त और विद्वानों का आदर करने वाले थे। इसलिए उनके आश्रय में अनेक विद्वान पंडित रहते थे और स्थान–स्थान पर ग्रंथ–संग्रहालय भी स्थापित थे। एक संग्रहालय उसकी राजधानी धार में और दूसरा उज्जैन में था। भोजदेव के लगभग 80 वर्ष पश्चात गुजरात के प्रसिद्ध राजा सिंद्धराज जयसिंह मालवा के भोजवंशीय राजा यशोवर्मनदेव को युद्ध में परास्त करके अवंतिनाथ कहलाने लगा था। उस समय सिंधराज जयसिंह उज्जैन में आया। यहाँ प्रसिद्ध जैन पंडित हेमचंद्रसूरि ने उसे भोजदेवनिर्मित 'अवंतिकोष' नामक विशाल पुस्तकालय दिखलाया।

ग्रंथों का कालानुक्रम से वर्णन करने का कोई साधन नहीं है। यौवन काल में मनुष्य ने स्वभावतः काव्य–नाटक इत्यादि यौवन काल में काव्य नाटक रचे। भोज ने इसी अवस्था में काव्य–साहित्यादि–ग्रंथ रचे होंगे। प्रौढ़ावस्था में राजव्यवस्था की ओर विशेष ध्यान होने के कारण उस समय राज्योपयोगी ग्रंथों की रचना हुई होगी और

टिप्पणी

तत्पश्चात विचारों की प्रगल्भता तथा परिपक्वता अधिक होने पर धर्म तथा तत्वज्ञान संबंधी ग्रंथों की सृष्टि हुई होगी। अतः उनके ग्रंथ रचना का यही कालक्रम उपयुक्त प्रतीत होता है। यहाँ तक भोजकृत ग्रंथों का अर्थात् भोजदेव की साहित्यिक सेवा का विशेष वर्णन किया गया है, अब उनके आश्रित विद्वानों और उनके ग्रंथों के विषय में भी थोड़ा–सा वर्णन करना आवश्यक है। भोजदेव की साहित्य सेवा का यह भी एक अंग है।

भोजदेव के समय में बहुधा युद्ध होते रहने से देश में शांति नहीं थी फिर भी भोजदेव ने विद्योन्नति के लिए जो प्रयत्न किए हैं वे वास्तव में प्रशंसनीय हैं। यह उनके ही प्रयत्न का फल है कि उस समय संस्कृत साहित्य का इतना अधिक प्रचार हुआ। उन्होंने अपने राज्य भर में विद्यालय स्थापित करके शिक्षा की उत्तम व्यवस्था की थी। उस समय एक विद्यालय धारा नगरी में, दूसरा उज्जैन और तीसरा मंडुपदुर्ग (मांडव) में था। मांडव के विद्यालय में भट्टगोविंद नामक पंडित की नियुक्ति की गई थी। धार की वर्तमान कमालमौला नामक इमारत में ही पहले धार का विद्यालय था। इसीलिए अब भी लोग उसे 'भोजशाला' कहते हैं। यह इमारत पहले जिस अवस्था में थी अब वैसी नहीं है। उसका रूपांतरण हो गया है फिर भी कुछ अवशेष अभी मिलते हैं। अर्जुन वर्मा की प्रशस्ति में इस स्थान को 'भारती भवन' अथवा 'शारदा सदन' कहा गया है। यह भारती भवन बहुत विस्तीर्ण तथा धारा नगरी स्थित चौरासी चौक के अनेक देवालयों का अलंकार था। इस शारदा सदन की दीवारों पर तत्कालीन सुंदर नागरी लिपि में संस्कृत और प्राकृत लेख खुदे हुए थे। इसलिए वह एक प्रस्तर–पुस्तकालय हो गया था। वर्तमान काल में पाठशालाओं में नक्शे और चित्र इत्यादि लटकाये जाते हैं, उसी प्रकार इस विद्यालय में व्याकरणादि विषयों के नियम, दीवारों के पत्थरों और खम्भों पर खुदे हुए थे। दुर्भाग्यवश यह विद्यालय मस्जिद बनाया गया और शिलालेख छिन्न–भिन्न हो गए तथा फर्श और दीवारों में उल्टे सीधे लगा दिए गए। अब भी दो चार महत्त्वपूर्ण शिलालेख यहाँ प्राप्त हैं।

इस स्थान में दो स्तंभों पर दो नागबंध खुदे हुए हैं। उनमें से एक में संस्कृत वर्णमाला और व्याकरण के सुप्रसिद्ध प्रत्यय खुदे हैं और दूसरे में विस्तारपूर्वक धातुप्रत्यय माला खुदी हुई है। दोनों नागबंध एक प्रकार से चित्रकाव्य के नमूने हैं। भोजदेव के पश्चात इस वंश के उदायादित्य और नरवर्मदेव राजाओं ने इन नागबंधों का अनेक स्थानों में प्रचार किया था। वे नागबंध 'कातंत्र' नामक संस्कृत व्याकरण के आधार पर लिखे गए हैं। यह संस्कृत व्याकरण 'कौमार' अथवा 'कालप' नाम से भी प्रसिद्ध है। इसकी रचना सप्तशती के रचयिता सातवाहन वंशीय हाल राजा की शिक्षा के लिए पंडित शर्म वर्मा ने की थी।

भारती भवन में भोजदेव के समय में ही विद्वानों की सभा होती थी। विक्रम की सभा की तरह इस सभा में भी अनेक देशों के विद्वान और कवि थे। उनमें नवसाहसांकचरितकार परिमल अथवा पदम गुप्त, धनपाल, भट्टगोविन्द, विद्यापति, भास्करभट्ट, छित्तप, शंकर, निचुल, विनायक, वररुचि, धनिक और धनंजय प्रमुख थे। इस भोज सभा में विद्वानों की परीक्षाएँ होती थीं और उन्हें योग्य पारितोषिक तथा पदवियाँ दी जाती थीं। संस्कृत काव्य में समस्यापूर्ति करने की प्रथा है। समस्यापूर्ति कवि की एक प्रकार की परीक्षा है, जिसके द्वारा कवि की कविता शक्ति और प्रतिभा का थोड़े में ही

टिप्पणी

परिचय हो जाता है। विद्वानों का मत है कि भोजदेव के समय में इसका अधिक प्रचार था। भोजप्रबंध नामक ग्रंथ में समस्यापूर्ति के अनेक उदाहरण पाए जाते हैं।

भोजदेव की सभा में विद्वानों में जो सबसे श्रेष्ठ होता था उसे कालिदास की पदवी प्रदान की जाती थी। जो विद्वान बाहर से आते थे उनका राजदरबार में कालिदास द्वारा उत्तम प्रकार से सत्कार कराया जाता था।

कालिदास और निचुल का परस्पर प्रेम था और दोनों भोजदेव की सभा में थे। इसका एक प्रमाण प्राप्त हुआ है। भोज कालिदास का 'नानार्थशब्दरत्न' नामक एक संस्कृत कोश है। उसकी तरला नामक व्याख्या के आरंभ में निचुल कवि ने निम्नलिखित श्लोक दिया है–

स्वमित्रकालिदासोक्तशब्दरत्नाथजृंभिताम्।

तरलाख्यालसद्वयाख्यामाख्यातातन्मतानुगाम्।।

भोजदेव की दान सरिता का प्रवाह बहुत समय प्रवाहित रहने के कारण चारों दिशाओं के साहित्य भक्त उस सरिता में अवगाहन कर सरस्वती देवी की आराधना करने के लिए भोजदेव की राजधानी धारानगरी में एकत्रित होते थे। इस प्रकार अनेक शास्त्रीय विषयों पर परस्पर वाद–विवाद होते थे और राजकर्मचारी बड़े–बड़े राजकीय विषयों पर परस्पर सलाह करते थे।

भोजदेव विद्वानों को पारितोषिक देकर संतुष्ट करता था। भोजप्रबंध, प्रबंधचिंतामणि और भोज–चरित्र इत्यादि ग्रंथों में पंडितों को पारितोषिक देने का जो वर्णन है, वह वर्णन अतिशयोक्ति है फिर भी इससे इतना अवश्य सिद्ध होता है कि भोजदेव विद्वानों को बहुत धन देते थे।

भोजदेव जैसा रसिक था वैसा ही गुणज्ञ भी था। पंडितों अथवा कवियों के उत्तम ग्रंथों तथा कविता पर योग्य पारितोषिक देकर उनका आदर–सत्कार तो करता ही था परंतु ग्रंथों में यदि कोई किसी का अपहरण करता तो अपहरणकर्ता को इसके लिए उचित ताड़ना देने में भी आगा–पीछा नहीं करता था। इस संबंध में आर्य समाज के संस्थापक स्वामी दयानंद सरस्वती ने अपने 'सत्यार्थ प्रकाश' नामक ग्रंथ में लिखा है कि भोज राजा के समय में किसी विद्वान ने मारकण्डेयपुराण और शिवपुराण बनाकर उन्हें व्यासकृत सिद्ध किया। जब राजा भोज को यह वृत्तान्त मालूम हुआ तो उस विद्वान के हाथ काट डाले और राज्य में यह घोषित कर दिया कि जो ग्रंथ लिखे वह अपने ही नाम से प्रकाशित करे और जो स्वयं काव्य रचकर उसे किसी ऋषि–मुनि–प्रणीत सिद्ध करेगा वह कड़े दंड का अधिकारी होगा। स्वामीजी ने यह वृत्तांत भोजकृत संजीवनी नामक इतिहास से लिया है। यह ग्रंथ ग्वालियर राज्य के भिंड नामक नगर में एक तिवारी ब्राह्मण के यहाँ है।

भोजदेव एक विस्तीर्ण राज्य के अधिपति थे। उनके द्वारा अनेक ग्रंथ निर्मित हुए। परंतु मानवी शक्ति और बुद्धि द्वारा विचार करने पर क्या यह बात असंभव जान पड़ती है? यह प्रश्न चिकित्सक बुद्धि द्वारा उत्पन्न होता है। भोजदेव एक धनशान्य परिपूर्ण बड़े साम्राज्य के अधिपति थे अतएव यह शंका उत्पन्न होती है कि उन्होंने अपने आश्रय में अनेक विद्वान पंडित रखे होंगे और ग्रंथ तैयार करवाकर अपने नाम से प्रकट कर दिए। परंतु आश्चर्य की बात है कि ऐसी शंका आज तक किसी प्राचीन संस्कृत विद्वान ने नहीं प्रदर्शित की।

राजतरंगिणी नामक काश्मीर के इतिहास में कल्हण ने कश्मीर के राजा क्षितिपति और मालवा के राजा भोजदेव दोनों समकालीन राजाओं की विद्वता तथा दान के विषय में निम्नलिखित श्लोक लिखा है–

टिप्पणी

स (क्षितिपति) च भोजनरेन्द्रश्च दानोत्कर्षेणश्रितो
सूरी तस्मित्क्षणे आस्तो द्वावेतौ कविबांधवौ।

(राजतरंगिणी तरंग 7 श्लोक 259)

भोजदेव के वंश में 150 वर्ष पश्चात् धार के राजा अर्जुनदेव की प्रशस्ति में राजगुरु मदन कवि ने भोजदेव को 'वल्गद्बाणजयक्षमः' अर्थात् बाण कवि से भी श्रेष्ठ कहा है। ऐसे ही अनेक उदाहरण मिलते हैं। इसके अतिरिक्त बचपन में ही उन्हें उच्च शिक्षा मिली थी।

भोज की राज्य–व्यवस्था और राज्यकार्य करने का ढंग अत्यंत उत्तम था। उनके राज्यकाल में मालवा देश बहुत उन्नति पर था। इसका थोड़ा बहुत परिचय 'युक्तिकल्पतरु' इत्यादि ग्रंथों से मिलता है।

इस राज्य में राज्यकर्ता के लिए अनेक आवश्यक बातों का विवेचन है। धारानगरी के आसपास एक अत्यंत मजबूत खाई, जो शत्रुओं को दुर्लभ थी, भोज के काका मुंजदेव ने बनवाई थी। उनके राज्य की सैनिक व्यवस्था भी उत्तम थी। यहाँ तक कि चेदीश्वर गांगेयदेव और भीमदेव सरीखे भारतवर्ष में मुख्य और अत्यंत प्रबल राजाओं को केवल उनके सैनिकों ने ही जीता था। इसके संबंध में उदयपुर प्रशस्ति में लिखा है–

चेदीश्वरेन्द्रस्थतोग्गलभीममुख्यान्।
कर्णाटलाटपतिगुर्जरराट् तुरूष्कान्।
यद्भृव्यमात्रविजितानवलोक्य योसा।
दोष्णांबलानिकलयन्तिन (योघृ) लोकान्।

अतएव भोजदेव ने अपने विस्तीर्ण राज्य में सब कार्यों की उत्तम व्यवस्था की थी और अपना बहुत–सा समय काव्यशास्त्रविनोद अथवा ग्रंथ लेखन में व्यतीत करते थे। शासनकर्ता माधवाचार्य (विद्यालय) और हेमाद्रि के द्वारा भी इसी प्रकार के बहुत से ग्रंथों की रचना हुई थी।

'सजातो येन जातेन याति वंशः समुन्नतिम्' इस वचनानुसार भोजदेव ने अपने चरित्र से परमारवंश को गौरवान्वित किया है। भोजदेव के कारण समस्त भारतवर्ष विद्या–वैभव संपन्न हो गया था। इनके चरित्र 'राजाकालस्य कारणम्' से यह बात प्रत्यक्ष सिद्ध होती है। यूरोपीय पंडित भोजदेव को भारतीय 'आगस्टस' कहते हैं।

इस प्रकार भोज भारतीय विद्या–परंपरा और भारतीय राजनय के पुरोधा थे। आज उनका स्मरण कर हम अपने को गौरवान्वित अनुभव करते हैं।

2.3.2 'एक थे राजा भोज' निबन्ध का सार

'एक थे राजा भोज' निबन्ध बहुमुखी प्रतिभा के धनी तथा राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर सम्मानित डा. त्रिभुवननाथ शुक्ल द्वारा रचित एक ज्ञानवर्धक निबन्ध है। राजा भोज के व्यक्तित्व को जानने तथा राजा कैसा होना चाहिए, इसकी पूरी झाँकी हमें इस निबन्ध

टिप्पणी

में देखने को मिलती है। इस निबन्ध के माध्यम से राजा भोज की बहुमुखी प्रतिभा तथा उस युग के स्वर्णिम इतिहास को प्रामाणिक रूप से जानने का अवसर प्राप्त होता है।

मध्य प्रदेश सरकार द्वारा झील महोत्सव और अनेक सांस्कृतिक कार्यक्रमों के माध्यम से राजा भोज के प्रति न केवल सकारात्मक रुख व्यक्त किया अपितु बड़े तालाब में उनकी प्रतिमा भी लगवाई, जिसे देखकर लेखक के मन में भोज पर लिखने की इच्छा बलवती हो उठी। इस इच्छा को साकार रूप देने के लिए भोज पर अध्ययन के दौरान उनकी बहुमुखी प्रतिभा की जानकारी ने लेखक को अचंभित कर दिया।

भोज परमारवंशी थे। इस वंश के पच्चीस–छब्बीस प्रतापी सम्राटों ने नवीं शताब्दी से लेकर पाँच सौ वर्षों तक उज्जैन तथा धारानगरी के विस्तृत प्रदेश पर शासन किया। सुप्रसिद्ध विद्वान अलबरूनी (973 ई.) ने अपने ग्रन्थ 'तहकीके हिंद' में मालवा के राजा भोज के बारे में तीन अद्‌भुत वृत्तान्त दिये और उनका समय 997 से 1053 तक माना। उन्होंने लिखा कि राजा भोज धार से उठकर उज्जैन गए थे और उनका राजदरबार तत्कालीन विद्वानों का समागम स्थल बना रहता था।

हर्षदेव ने 970 के आस–पास दक्षिण के मान्यखेट (मालखेड़ा) के राष्ट्रकूट वंशीय महा प्रतापी राजा खोट्‌टीदेव को नर्मदा के किनारे खलघाट पर हराकर उसका सबकुछ छीन लिया था। इसके बाद हर्षदेव एवं उनके वंशधरों का एकछत्र राज्य स्थापित हो गया। हर्षदेव ने देश के अनेक प्रतापी राजाओं–चेदीश्वर, इन्द्ररथ, तोंग्गल और भीमदेव आदि को परास्त कर अपने राज्य का विस्तार करके अपना राजनैतिक वर्चस्व स्थापित किया। इन विजयों की गाथा अनेक शिलालेखों पर अंकित है। हर्षदेव के पुत्र मुंजदेव भी अत्यन्त प्रतापी व अनेक ग्रन्थों के रचनाकार थे। अंत समय में अपने मंत्री की सलाह न मानने के कारण वे शत्रु के हाथों मारे गए। उनकी मृत्यु के उपरान्त सिन्धुराज ने गद्दी पर बैठकर अपने पूर्वजों की भाँति विद्वानों को आश्रय देने का काम जारी रखा। सिन्धुराज के पुत्र भोजदेव अपने पूर्वजों की भाँति ही यशस्वी तथा योग, धर्मशास्त्र, व्याकरण, वैद्यक, साहित्य, तत्वज्ञान एवं नाट्य, संगीत तथा चित्रकला के भी मर्मज्ञ थे। ज्योतिष के क्षेत्र में राजमार्तंड, राजमृगांककरण, विद्ववज्जनवल्लभप्रश्नज्ञान, आदित्यप्रतापसिद्धान्त, धर्मशास्त्र पर पूर्तमार्तंड, नीतिशास्त्र पर चाणक्य राजनीतिशास्त्र, शैवभक्ति पर तत्व प्रकाश, सिद्धान्त संग्रह तथा साहित्य के क्षेत्र में शृंगार–प्रकाश ग्रन्थ, सरस्वती कंठाभरण व व्याकरण पर शब्दानुशासन ग्रन्थ लिखा था। राष्ट्रोपयोगी शास्त्र विद्या और कला पर भोज ने 'युक्तिकल्पतरु' नामक ग्रन्थ लिखा है जो विश्वज्ञानकोश के समान है। इसमें राष्ट्रोपयोगी अनेक विषयों–राज्य–व्यवस्था, मंत्री, दूतों के भेद और लक्षण, राजनीतिक सन्धि–विग्रह, सेना के भेद और देशानुसार उनका महत्त्व, युद्ध करने की युक्तियाँ, ध्वज, पताका, छत्र, चामरादि अनेक राज–चिह्नों, सिंहासनों, नीति, युद्धोपयोगी शस्त्रास्त्र तथा उनकी परीक्षा, रथ, पालकी आदि सवारियों का विशद् वर्णन है और उपर्युक्त प्रत्येक विषय का वर्णन करते समय भोजदेव ने स्वरचित अन्य ग्रन्थों के उदाहरण भी दिये हैं। प्राकृत भाषा के व्याकरण के सम्बन्ध में भी भोज के ग्रन्थ हैं।

कविता के क्षेत्र भोजदेव विशेष प्रख्यात थे और उनके कवित्व की प्रशंसा छित्तप, शंकर सरस्वती, विनायक, देवेश्वर इत्यादि अनेक तत्कालीन कवियों ने की है और उन्हें कविराज, कविबन्धु आदि अनेक उपाधियों से अलंकृत किया है। साहित्य के समान

टिप्पणी

संगीत आदि ललित कलाओं के भी भोजदेव मर्मज्ञ थे। उन्हें गायनाचार्य की उपाधि भी प्राप्त थी। 'संगीत रत्नाकर' (शारंगदेव) में भोजदेव का नाम आया है। इससे विदित होता है कि इस विषय पर भी उन्होंने कोई ग्रन्थ लिखा होगा। इतने विषयों पर भोजदेव द्वारा ग्रन्थों की रचना निश्चित रूप से आश्चर्योत्पादक है। ऐसा भी सम्भव है कि भोजदेव ने अपने आश्रय में रह रहे विद्वान पंडितों से ग्रन्थ लिखवाकर अपने नाम से चला दिये हो, यद्यपि ऐसी शंका आज तक किसी प्राचीन संस्कृत विद्वान ने प्रदर्शित नहीं की।

भोजदेवकृत ग्रन्थों का कालानुक्रम से वर्णन करने का कोई साधन नहीं है। एक अनुमान ही लगाया जा सकता है कि यौवनकाल में स्वभावतः काव्य नाटक व साहित्यादि ग्रन्थ रचे होंगे। प्रौढ़ावस्था में राजव्यवस्था की ओर विशेष ध्यान होने के कारण उस समय राज्योपयोगी ग्रन्थों की रचना की होगी और तत्पश्चात् वैचारिक परिपक्वता बढ़ जाने पर धर्म और तत्वज्ञान सम्बन्धी ग्रन्थों की रचना की होगी।

सर्वविदित व प्रमाणित सत्य है कि भोजदेव स्वयं विद्वान, साहित्य–भक्त तथा विद्वानों का आदर करने वाले थे। इसलिए उनके आश्रय में अनेक विद्वान पंडित रहते थे और स्थान–स्थान पर ग्रन्थ संग्रहालय भी स्थापित थे। एक संग्रहालय उनकी राजधानी धार में तथा दूसरा उज्जैन में व तीसरा मंडुपदुर्ग (मांडव) में था। मांडव के विद्यालय में भट्टगोविन्द नामक पंडित की नियुक्त की गई थी। धार के विद्यालय को अर्जुन वर्मा ने 'भारती भवन' अथवा 'शारदा सदन' कहा है। यह भारती भवन बहुत विस्तृत तथा धारानगरी स्थित चौरासी चौक के अनेक देवालयों का अलंकार है। इस शारदा सदन की दीवालों पर तत्कालीन सुन्दर नागरी लिपि में संस्कृत और प्राकृत भाषा में लेख खुदे हुए हैं, जिनमें व्याकरणादि विषयों के नियम भी हैं। इस भारती भवन में भोजदेव के समय में विद्वानों की सभा होती थी, जिनमें धनपाल, भट्टगोविन्द, विद्यापति, भास्करभट्ट, छित्तप, शंकर, विनायक, वररुचि, धनिक और धनंजय आदि विद्वान सम्मिलित होते थे। कवियों के कवित्व परीक्षण के लिए समस्यापूर्ति आदि परीक्षाएँ रखी जाती थीं। भोजप्रबन्ध नामक ग्रन्थ में समस्यापूर्ति के अनेक उदाहरण पाये जाते हैं। विद्वानों को योग्य पारितोषिक तथा पदवियों से सम्मानित भी किया जाता था। भोजदेव की दान सरिता के प्रवाह के कारण चारों दिशाओं के साहित्य भक्त उस सरिता में अवगाहन कर सरस्वती देवी की आराधना करने के लिए ध ाारानगरी में एकत्रित होते थे। उनमें परस्पर विभिन्न विषयों पर वाद–विवाद और विचार–विमर्श होता था। साथ ही यह भी सत्य है कि भोज साहित्यिक अपराधियों को कठोर दण्ड देने में हिचकते नहीं थे।

भोजदेव के समय में युद्ध बहुलता के चलते देश में शान्ति नहीं थी फिर भी भोजदेव ने साहित्य, कला, शिक्षा तथा संस्कृत भाषा के प्रचार–प्रसार के लिए बहुत ही उत्तम व्यवस्था की। भोज ने चित्रकला, मूर्तिकला और स्थापत्य कला के क्षेत्र में बहुत ही उल्लेखनीय काम किया। भोजदेव के समय के शिलालेख इतने सुन्दर, प्रमाणबद्ध और व्यवस्थित हैं कि भारतवर्ष में और किसी दूसरी जगह ऐसे सुन्दर शिलालेख नहीं मिलते। 'युक्तिकल्पतरु' इत्यादि ग्रन्थों से भोज की राज्य–व्यवस्था और राज्यकार्य के उत्तम ढंग का भलीभाँति परिचय मिल जाता है। विस्तीर्ण राज्य में सब कार्यों की उत्तम व्यवस्था के कारण भोजदेव अपना पर्याप्त समय काव्यशास्त्र विनोद अथवा ग्रन्थ–लेखन को दे पाते थे। निस्सन्देह भोजदेव ने अपने चरित्र और कार्यों से परमार वंश को

गौरवान्वित करने के साथ–साथ भारतवर्ष को विद्या–वैभव सम्पन्न बनाया। यूरोपीय पंडितों ने भोजदेव को भारतीय 'आगस्टस' की संज्ञा से विभूषित किया है।

टिप्पणी

2.3.3 व्याख्यांश

- मैंने जब पढ़ना ..... अच्छा रुख किया है।

सन्दर्भ– प्रस्तुत व्याख्यार्थ उद्धृत गद्यावतरण साहित्य की अनेक विधाओं में कुशलतापूर्वक लेखनी चलाने वाले बहुमुखी प्रतिभा के धनी डा. त्रिभुवननाथ शुक्ल द्वारा रचित निबन्ध 'एक थे राजा भोज' से अवतरित है। इस निबन्ध में निबन्धकार ने सुप्रसिद्ध राजा भोज के अप्रतिम व्यक्तित्व एवं अद्वितीय कृतित्व का प्रामाणिक लेखा–जोखा प्रस्तुत किया है। इस निबन्ध में हमें राजा भोज के व्यक्तित्व की तो स्पष्ट झाँकी मिलती ही है, साथ ही एक राजा को कैसा होना चाहिए, इसकी भी पूरी तस्वीर हमें इस निबन्ध के माध्यम से देखने को मिल जाती है।

प्रसंग– व्याख्यार्थ उद्धृत अवतरण इस निबन्ध का प्रारम्भिक अनुच्छेद है। यहाँ लेखक इस निबन्ध को लिखने की प्रेरणा और आवश्यकता का वर्णन कर रहा है। लेखक काफी समय से राजा भोज पर लिखना चाह रहा था। लेकिन यह चाह काफी समय तक दमित–शमित अवस्था में रही, लेकिन जब बड़े तालाब में भोज की प्रतिमा लगी तो लेखक के मन पर राजा भोज पर निबन्ध लिखने की इच्छा प्रबल हो गई। सारगर्भित निबन्ध लिखने के लिए गहन अध्ययन आवश्यक था।

व्याख्या– राजा भोज पर निबन्ध लिखने के लिए लेखन ने इस विषय पर पुस्तकें पढ़नी शुरू कीं। जैसे–जैसे लेखक पुस्तकों के माध्यम से भोजदेव के बारे में पढ़ता गया, वैसे–वैसे उनका विस्मय भी बढ़ता गया। विस्मय इसलिए कि एक राजा राजकाज सँभालने के साथ–साथ इतने विषयों का जानकार कैसे हो सकता है? किसी एक या दो–तीन में तो किसी विद्वान की अभिरुचि व योग्यता देखी जाती है, किन्तु साहित्य, कला, धर्म, अध्यात्म, ज्योतिष, आयुर्वेद और अन्य बहुत से विषयों पर समानाधिकार से लेखनी चलाने वाले व्यक्ति अंगुलिगण्य ही होते हैं। भोजराज किसी लघुक्षेत्र के शासक नहीं थे, अपितु विदर्भ देश के शासक थे। उनके राज्य का विस्तार दक्षिण गोदावरी के तट तक और उसके आगे चालुक्य राजधानी कल्याणपुर तक था। उदयपुर प्रशस्ति में लिखा है कि कैलाश से लेकर मलयगिरि तक और पूर्व–पश्चिम समुद्र तक भोजदेव का साम्राज्य फैला हुआ था। किसी छोटे क्षेत्र का संचालन भी बड़ा दुष्कर कार्य है और उस पर इतने विशाल साम्राज्य को कुशलतापूर्वक सँभालते हुए विभिन्न विषयों की गहन जानकारी रखना और उन पर अधिकारपूर्वक लेखनी चलाना किसी दुर्लभ आश्चर्य से कम नहीं। किसी एक क्षेत्र में विशेषज्ञता रखकर उसी क्षेत्र में लिखने वाला अथवा आविष्कार करने वाला प्रतिभाशाली कहलाता है, किन्तु सर्वथा अलग–अलग क्षेत्रों में निपुणता रखकर उनमें सृजन करने वाला बहुमुखी प्रतिभासम्पन्न कहलाता है। विस्मय की बात है कि इतने महान शासक और अद्‌भुत प्रतिभासम्पन्न रचनाकार आज उतना चर्चित नहीं, जितना कि होना चाहिए। लोग उन्हें बस यदा–कदा राजा व महान दानवीर के रूप में स्मरण करके सन्तुष्ट हो जाते हैं। लेकिन यह नाममात्र का स्मरण अपर्याप्त है। सन्तोष की बात यह है कि मध्य प्रदेश सरकार के कला संस्कृति विभाग को अपने क्षेत्र के इस सुविख्यात शासक और विभिन्न विषयों पर ग्रन्थों की रचना करके साहित्य के भण्डार में श्रीवृद्धि करने वाले रचनाकार का स्मरण हुआ और उनके

टिप्पणी

व्यक्तित्व एवं कृतित्व को दर्शाने वाले अनेक सांस्कृतिक कार्यक्रमों का आयोजन किया। इसके साथ–साथ लोगों को उनका स्थायी रूप से स्मरण कराने के लिए बड़े तालाब में उनकी प्रतिमा भी लगवा दी, जिससे कि लोगों में उन्हें जानने–समझने की जिज्ञासा पैदा हो। यह मध्य प्रदेश सरकार का एक सराहनीय कदम है। सरकार का उत्तरदायित्व है कि वह देश के महान व्यक्तियों को प्रकाश में लाये।

विशेष

(i) निबन्धकार ने निबन्ध के प्रारम्भ में ही पाठकों की जिज्ञासा बढ़ाने के लिए यह संकेत दे दिया है कि वह जिस ऐतिहासिक पुरुष पर निबन्ध लिखने जा रहे हैं, वह कोई मामूली शासक व लेखक नहीं, अपितु विशाल राज्य का सम्राट तथा विभिन्न विषयों पर लिखी तमाम पुस्तकों का रचयिता भी है।

(ii) लेखक ने बड़े तालाब में भोजदेव की प्रतिमा लगाने के लिए मध्य प्रदेश सरकार की सराहना की है क्योंकि इस तरह के प्रयोग और प्रयास से लोग अपने ऐतिहासिक पुरुषों से परिचित होते हैं, उन पर अधिकाधिक जानकारी प्राप्त करते हैं। साथ ही उनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व से प्रेरणा भी पाते हैं।

(iii) भाषा सहज, सरल, सुबोध एवं भाषानुरूप है। मुहावरों का बड़ा सटीक प्रयोग हुआ है–यथा–'जब मैंने पढ़ना शुरू किया तो आँखें फटी की फटी रह गईं।' शैली प्रवाहपूर्ण है।

- भोजदेव के पराक्रम से ..... बहुत बड़ा प्रमाण है।

सन्दर्भ–पूर्ववत्।

प्रसंग–परमार वंश के छठे राजा हर्षदेव ने दक्षिण के मान्यखेट (मालखेड़ा) के महाप्रतापी राजा खोट्टीदेव को नर्मदा के किनारे खलघाट स्थान पर हराकर उसका सर्वस्व छीन लिया था। हर्षदेव के पुत्र मुंजदेव भी अत्यन्त पराक्रमी थे। मुंजदेव के उपरान्त उनके छोटे भाई सिन्धुराज ने अपने पराक्रम से भारतवर्ष में अनेक राजाओं को जीतकर अपने राज्य का विस्तार किया। सिन्धुराज के पुत्र भोजदेव ने अपने प्रताप से मालवा राज्य का ऐश्वर्य शिखर पर पहुँचा दिया। उनके राज्य का विस्तार उन्होंने दक्षिण में मलयगिर से लेकर उत्तर में कश्मीर तक और पूर्व में समुद्र से लेकर पश्चिम समुद्र तक फैला हुआ था। राज्य का इतना विस्तार शत्रु राजाओं को परास्त करने के फलस्वरूप हुआ था।

व्याख्या–भोजदेव को अपने पिता सिन्धुराज से जो राज्यक्षेत्र मिला, भोजदेव ने उसमें आशातीत विस्तार किया। उस समय भारतवर्ष में अनेक राज्य थे और उन राज्यों पर अनेक राजाओं का शासन था। भोजदेव एक–एक को पराजित कर अपनी सीमाओं का विस्तार कर रहे थे, जिससे अन्य राजा चकित होने के साथ–साथ आशंकित भी हो जाते थे। भोजदेव जिस गति से अन्य राजाओं को युद्ध में अपने बुद्धि चातुर्य और युद्ध कौशल से हरा रहे थे, वह सचमुच विस्मित कर देने वाला था। विजयश्री जैसे उनकी चेरी बन गई थी। परास्त राजा दुर्बल भी नहीं थे। उस समय भारतवर्ष में चेदीश्वर, इन्द्ररथ, तोंग्गल और भीमदेव आदि नरेश बड़े पराक्रमी माने जाते थे किन्तु हर्षदेव ने अपनी सूझ–बूझ से एक–एक को युद्ध में परास्त करके उनका राज्य अपने अधीन कर डाला। इस प्रकार भोजदेव के राज्य की सीमाओं का विस्तार बढ़ता चला गया। हर जीत के

टिप्पणी

साथ भोजदेव के पराक्रम और गौरव में वृद्धि होती जा रही थी। उस समय बड़ी विजय को रेखांकित करने के लिए शिलालेख का भी प्रयोग किया जाता था। चेदीश्वर गांगेवदेव को हराना एक बहुत बड़ी विजय थी। इस विजय को यादगार और अक्षुण्ण बनाने के लिए एक विजयस्तम्भ खड़ा किया गया। यह विजयस्तम्भ बहुत विशाल था और इस पर बहुत से राजनैतिक तथ्य स्थापित किए गए। इस विजयस्तम्भ में उत्कीर्ण तथ्यों को पढ़कर उस समय के इतिहास की सटीक जानकारी मिल जाती है। चेदीश्वर की पराजय का वर्णन धार के शिलालेख पर अंकित है। अर्जुन वर्मा ने चेदीश्वर की पराजय और भोजदेव की महाविजय को ऐतिहासिक बताया और राजा भोज के शौर्य का खुलकर गुणगान किया। भोजदेव के समय के विजयस्तम्भ तथा शिलालेख उस समय के ऐतिहासिक तथ्यों के बहुत बड़े स्रोत हैं।

विशेष

(i) भोजदेव के राज्य–विस्तार का वर्णन किया गया है। परास्त राजाओं का नाम देकर इस जानकारी को प्रामाणिक बनाया गया है।

(ii) भोजदेव के युद्ध कौशल और उनकी विजय शिलालेखों और विजयस्तम्भों पर अंकित होना वर्णित है। विजयस्तम्भों का निर्माण ऐतिहासिक तथ्यों को अक्षुण्ण बनाए रखने के लिए अतिशय सराहनीय है। इस तरह की जानकारी इतिहासकारों के लिए बहुत उपयोगी सिद्ध होती है।

(iii) भाषा विषयानुरूप सरल, सुबोध व रोचक है। शैली वर्णनात्मक है।

- साहित्य की दृष्टि से ..... कहा गया है।

सन्दर्भ–पूर्ववत्।

प्रसंग–'एक थे राजा भोज' निबन्ध में भोजराज के सम्पूर्ण व्यक्तित्व की जानकारी दी गई है। भोजदेव ने अपने समय के प्रतापी राजाओं को युद्धों में परास्त कर अपनी सीमाओं का विस्तार किया था। कुशल प्रशासक होने के साथ–साथ वे शिक्षा–भाषा संस्कृति के समर्थ संवाहक भी थे। स्वयं विद्वान थे और साथ ही अपने दरबार में विद्वानों की सभा का आयोजन करते थे। इतना ही नहीं, उन्होंने साहित्य, कला, धर्म, अध्यात्म, ज्योतिष, आयुर्वेद, राज्य संचालन आदि तमाम विषयों पर बहुत–से ग्रन्थों की रचना की। विविध विषयों पर उनका विपुल सृजन वास्तव में विस्मय विमुग्ध करने वाला है। कविता के क्षेत्र में उनकी विशेष ख्याति थी। उनकी कविताओं की प्रशंसा तत्कालीन अनेक कवियों–छित्रप, शंकरसरस्वती, विनायक, देवेश्वर आदि ने मुक्तकंठ ने की है।

व्याख्या– त्रिभुवननाथ शुक्ल भोजदेव के साहित्यिक व्यक्तित्व की चर्चा करते हुए कहते हैं कि भोजदेव ने साहित्य के क्षेत्र में 'शृंगार प्रकाश ग्रन्थ' तथा 'सरस्वती कंठाभरण' की रचना करके सरस्वती के भण्डार में तो श्रीवृद्धि की ही है, साथ ही उन्होंने अपने साहित्यिक चिन्तक रूप को भी अभिव्यक्त किया है। काव्य शास्त्र के अनेक महत्वपूर्ण विषयों पर उन्होंने अपना व्यक्तिगत मत अभिव्यक्त किया है। इस शब्द–शक्ति आदि पर अपनी भावाभिव्यक्ति की है। साहित्यिक दृष्टि से 'शृंगार प्रकाश ग्रन्थ' और 'सरस्वती कंठाभरण' बहुत महत्वपूर्ण हैं। पुरातन आचार्यों ने काव्यविधायक तत्वों की चर्चा करते हुए रस तथा शब्द शक्ति आदि पर विशेष रूप से विवेचन विश्लेषण किया है। प्रायः सभी संस्कृताचार्यों ने शृंगार रस को प्रधानता दी है। भोजदेव ने भी इसी

मत को स्वीकारा है। 'सरस्वती कंठाभरण' में उन्होंने शृंगार रस को ही प्रधानता दी है। इस पुस्तक में शृंगारिक रचनाओं का ही प्राधान्य है। 'शृंगार प्रकाश' पुस्तक में भोजदेव ने शृंगार रस को महिमामण्डित करते हुए कहा है कि शृंगार रस ही एक प्रधान रस है, शेष वीरकरुणादि शृंगार रस के पृथक्–पृथक् रूप हैं। भोजदेव का अभिप्राय है कि शृंगार रस रसराज तो है ही, अपितु अन्य सभी रसों का आधारभूत रस भी है। अन्य सभी रस उसके अधीन अथवा सहायक रस हैं। उस समय सुन्दरियों को प्राप्त करने के लिए भी युद्ध हो जाते थे और युद्ध में वीररस के साथ–साथ करुण रस की भी स्थिति बन जाती है। युद्ध–कौशल में वीर रस और युद्धभूमि पर सैनिकों की मौत और परिवारजनों के विलाप आदि में करुण रस की स्थिति बन जाती है। इस प्रकार शृंगार रस ही प्रधान व अन्य रसों का प्रेरक रस है। साहित्य की परिभाषा देते हुए भोजदेव ने लिखा है 'शब्दार्थयोस्साहित्यम्' अर्थात् शब्दार्थ की शृंखला ही साहित्य है। अर्थवत्ता से युक्त शब्द ही साहित्य का निर्माण करते हैं। अर्थहीन अथवा निरर्थक शब्द समूह से साहित्य की रचना कदापि नहीं हो सकती।

टिप्पणी

विशेष

(i) प्रस्तुत अवतरण में भोजदेव के साहित्यिक चिन्तक व्यक्तित्व पर प्रकाश डाला गया है। भोजदेव ने अपनी राज्य–व्यवस्था इस प्रकार सुव्यवस्थित कर दी थी कि वे अपना पर्याप्त समय काव्य–रचना और ग्रन्थ–निर्माण के लिए निकाल पाते थे। साथ ही दरबार में विद्वानों की सभा में विचार–विमर्श से भी विचारों को बल मिलता है। यही कारण है कि राज–काज सँभालने के साथ–साथ भोजदेव साहित्यिक विषयों व काव्य शास्त्र सम्बन्धी विषयों पर भी अपनी लेखनी चला लेते थे।

(ii) पुरातन संस्कृत आचार्यों ने शृंगार को रसराज के रूप में मान्यता प्रदान की है, भोजदेव ने शृंगार को प्रधान रस मानते हुए वीरकरुणादि रसों को शृंगार रस के पृथक्–पृथक् रूप माना है।

(iii) भाषा–शैली विषयानुरूप सरल व सुबोध है।

- सजातो येन ..... आगस्टस कहते हैं।

सन्दर्भ–पूर्ववत्।

प्रसंग–व्याख्यार्थ उद्धृत अवतरण 'एक थे राजा भोज' निबन्ध का अन्तिम अनुच्छेद है। सम्पूर्ण लेख में लेखक त्रिभुवननाथ शुक्ल ने भोजदेव की वंश परम्परा, उनके राज्य–विस्तार, राजनैतिक वर्चस्व के साथ–साथ उनके रचनाकार रूप का भी वर्णन किया है। लेखक ने विभिन्न प्रमाण देकर स्पष्ट किया है कि किस प्रकार भोजदेव इतने विस्तृत राज्य के संचालन के साथ–साथ साहित्य, राज–काज, धर्म, काव्यशास्त्र, आयुर्वेद, ज्योतिष, रत्न–विज्ञान आदि विषयों पर भी साधिकार लेखनी चलाते थे। इस अवतरण में निबन्धकार ने उनके महिमामण्डित व्यक्तित्व पर अपनी सार्थक तथा प्रशंसात्मक टिप्पणी को अभिव्यक्त करके उनको नमन किया है।

व्याख्या– निबन्धकार त्रिभुवननाथ शुक्ल का कहना है कि राजा भोज परमार जिनसे बड़ा राजपूत क्षत्रिय राजा पिछले एक हजार वर्षों में नहीं हुआ, उन्होंने बचपन में आठ वर्ष की उम्र में समस्त वेद–पुराणों का ज्ञान प्राप्त कर लिया था। 15 वर्ष की आयु में

टिप्पणी

उन्होंने मालवा का राज्य–भार सँभाल लिया। उन्होंने ज्योतिष, वैद्यक, साहित्य, काव्य–शास्त्र, भाषा–विज्ञान, व्याकरण आदि विषयों का स्वाध्याय व विचार–विमर्श के द्वारा प्रकाण्ड पाण्डित्य प्राप्त किया। वे स्वयं अप्रतिम विद्वान थे साथ ही विद्वानों को अपने दरबार में बुलाकर सभाएँ करते थे तथा विभिन्न विषयों पर शास्त्रार्थ भी करते थे। उन्होंने विभिन्न नगरों में विद्याध्ययन हेतु शालाएँ भी खुलवाईं, जिनकी दीवालों और स्तम्भों पर व्याकरणादि के नियम भी उत्कीर्ण कराये। इस प्रकार उन्होंने सारे भारतवर्ष को विद्या–वैभव सम्पन्न बना दिया था। उनके व्यक्तित्व से यह स्पष्ट प्रमाणित होता है कि 'राजाकालस्य कारणम्' अर्थात् राजा काल का निर्माता होता है। राजा समय को बदलने की शक्ति रखता है। उसे अच्छे समय के लिए भाग्य भरोसे बैठने की आवश्यकता नहीं होती। सौभाग्य और विजयश्री तो उसकी संगिनी बन जाती है। अपने पौरुष और प्रताप से उन्होंने अपने मालवा राज्य की सीमाओं का विस्तार किया। जब वे गद्दी पर बैठे थे तो भारत देश विभिन्न भागों (57) में बँटा हुआ था। उसने भारत को अखंड करने का बीड़ा उठाया और सफलता प्राप्त की। उन्होंने अपने जीवन–काल में पाँच हजार से भी ज्यादा युद्ध लड़े जो आज तक किसी राजा ने नहीं लड़े। उन्होंने अपने 'परमार' वंश को गौरवान्वित कर दिया। सचमुच महापुरुष जिस वंश में भी जन्म लेते हैं, उनके सुकर्मों से वह जाति धन्य हो जाती है। यूरोपीय विद्वानों ने भोज को भारतीय 'आगस्टस' की संज्ञा से ठीक ही विभूषित किया है। आगस्टस रोमन एम्पायर का पहला व शक्तिशाली शासक था, जिसने गणतंत्रीय व्यवस्था स्थापित की। उसी के समान राजा भोज ने भारत को एक सूत्र में बाँधा और यहाँ की राज्य व्यवस्था को चरमोत्कर्ष पर पहुँचा दिया। समस्त भारतवर्ष को एकता के सूत्र में बाँध दिया।

विशेष

(i) उपर्युक्त व्याख्यार्थ उद्धृत अवतरण निबन्ध में निष्कर्ष स्वरूप है। लेखक ने अपने मत के समर्थन में संस्कृत उद्धरणों का सार्थक प्रयोग किया है।

(ii) लेखक का यह कथन सत्य ही है कि भोजदेव के कारण समस्त भारतवर्ष विद्या–वैभव सम्पन्न हो गया था। जब भोज जीवित थे, तो कहा जाता था–

'अद्य धारा सदाधारा सदालम्बा सरस्वती
पण्डिताः मण्डिताः सर्वे भोजराजे भुवि स्थिते।'

अर्थात् जब भोजराज धरती पर स्थित हैं तो धारा नगरी अच्छे आधार वाली है। सरस्वती को अवलम्ब मिला हुआ है, सभी पंडित मण्डित हैं।

भोज के स्वर्गवास के उपरान्त कहा जाने लगा–

अद्य धारा निराधारा निरालंबा सरस्वती
पण्डिताः खण्डिताः सर्वे भोजराजे दिवंगते।

अर्थात् आज भोजराज के दिवंगत हो जाने से धारा नगरी निराधार हो गई है, सरस्वती बिना अवलम्ब की हो गई है और सभी पंडित खण्डित हैं।

(iii) भाषा–शैली प्रवाहपूर्ण एवं विषयानुरूप है।

(iv) यूरोपीय पंडितों द्वारा भोजराज को 'भारतीय आगस्टस' कहा जाना उपयुक्त ही है। दोनों ने ही अपने शौर्य से अनेक युद्ध जीते और अपने राज्य की सीमाओं का विस्तार किया तथा अपनी सुदृढ़ राज्य–व्यवस्था से नये–नये कीर्तिमान गढ़े।

2.3.4 'एक थे राजा भोज' निबन्ध का समीक्षात्मक अध्ययन

टिप्पणी

'एक थे राजा भोज' निबन्ध बहुमुखी प्रतिभा के धनी डॉ. त्रिभुवननाथ शुक्ल द्वारा रचित है। इस निबन्ध के माध्यम से हमें राजा भोज के व्यक्तित्व एवं उनकी रचनात्मक प्रतिभा एवं युद्ध कौशल आदि की सम्पूर्ण झाँकी देखने को मिल जाती है। इस निबन्ध के माध्यम से राजा भोज की अप्रतिम प्रतिभा तथा उस युग के स्वर्णिम इतिहास को जानने का सुअवसर प्राप्त होता है।

निबन्ध के तत्वों के आधार पर इस निबन्ध की समीक्षा से पूर्व निबन्ध के स्वरूप एवं परिभाषा को समझना बहुत आवश्यक है। यदि गद्य कवियों या लेखकों की कसौटी है तो निबन्ध गद्य की कसौटी है। भाषा की पूर्ण शक्ति का ज्ञान निबन्ध से ही सबसे अधिक संभव होता है। निबन्ध के विषय की सीमा मानव–जीवन के समान ही विस्तृत है। यद्यपि इसमें बुद्धितत्व की प्रधानता रहती है, तथापि इसका सम्बन्ध हृदय तत्व से बना रहता है। बाबू गुलाब राय ने निबन्ध को इस प्रकार परिभाषित किया है–

''निबन्ध उस गद्य रचना को कहते हैं, जिसमें एक सीमित आकार के भीतर किसी विषय का वर्णन या प्रतिपादन एक विशेष निजीपन, स्वच्छन्दता, सौष्ठव और सजीवता तथा आवश्यक संगीत और सम्बद्धता के साथ किया गया है।'' बाबू गुलाब राय के अनुसार, निबन्ध एक साहित्यिक ललित गद्य रचना है जिसमें लेखक किसी भाव या विचार अथवा वस्तु आदि के वर्णन को सजीव रूप में प्रस्तुत करता है। डॉ. नलिन ने निबन्धों को स्वाधीन चिन्तन और निश्छल अनुभूतियों का सजीव और मर्यादित प्रकाशन माना है।

भाषा एवं शैली के आधार पर विद्वानों ने निबन्ध की पाँच श्रेणियाँ निर्धारित की हैं–वर्णनात्मक निबन्ध, विवरणात्मक निबन्ध, विचारात्मक निबन्ध, भावात्मक निबन्ध एवं आत्मपरक या वैयक्तिक निबन्ध। लेकिन मुख्यतः निबन्ध दो प्रकार के होते हैं–

1. विचारात्मक निबन्ध–इस प्रकार के निबन्धों में बुद्धितत्व की प्रधानता रहती है। इनमें तर्कपूर्ण विवेचन, विश्लेषण एवं गवेषणा का आधिपत्य होता है। इनके लेखन के लिए चिन्तन–मनन तथा अध्ययन की अधिक अपेक्षा होती है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, महावीर प्रसाद द्विवेदी तथा त्रिभुवननाथ शुक्ल के अधिकांश निबन्ध इसी श्रेणी के अन्तर्गत आते हैं।
2. भावात्मक निबन्ध–इन निबन्धों में हृदय तत्व अथवा रागात्मक तत्व का प्राधान्य होता है। इनका लक्ष्य पाठक की बुद्धि की अपेक्षा उसके हृदय को प्रभावित करना होता है। इसकी भाषा ललित तथा मधुर होती है। भावों को उत्कर्ष प्रदान करने के लिए इनमें कल्पत्र और अलंकारों का भी समुचित प्रयोग किया जाता है। सभी ललित निबन्ध इस श्रेणी में आते हैं।

त्रिभुवननाथ शुक्ल द्वारा रचित 'एक थे राजा भोज' एक विचारात्मक निबन्ध है। विषय की दृष्टि से यह एक ऐतिहासिक निबन्ध है। यह इतिहासप्रसिद्ध भारतीय राजा भोज पर लिखित है। निबन्ध के तत्वों के आधार पर हम इस निबन्ध की समीक्षा इस प्रकार कर सकते हैं–

ऐतिहासिक दृष्टि–क्योंकि यह निबन्ध एक इतिहासप्रसिद्ध राजा पर लिखा गया है इसलिए इसमें ऐतिहासिक बोध का पाया जाना अनिवार्य ही है। शुक्ल जी ने स्वयं लिखा है कि भोज पर लिखने से पूर्व उनका विषय पर सीमित ज्ञान था। इस विषय पर

टिप्पणी

निबन्ध लिखने के लिए उन्होंने विषय से सम्बद्ध पुस्तकों का अध्ययन किया और आवश्यक जानकारी जुटाई। सम्पूर्ण निबन्ध में ऐतिहासिक जानकारियाँ समाविष्ट हैं यथा लेखक प्रारम्भ में ही भोज के परमार वंश पर लेखनी चलाते हुए कहा है–'इस वंश में अनेक प्रतापशाली एवं विद्याव्यसनी सम्राट हुए हैं। नवीं शताब्दी से लेकर पाँच सौ वर्षों तक इस वंश के पच्चीस–छब्बीस शासकों ने उज्जैन और धारा नगरी के विस्तृत प्रदेश पर शासन किया।' इस निबन्ध में लेखक ने भोज के राजा एवं विद्वान लेखक रूप पर ही चर्चा की है। उनके पारिवारिक जीवन अथवा विवाह आदि पर कुछ नहीं लिखा क्योंकि ऐसा करना उनका अभीष्ट नहीं था। वे तो उनके पराक्रम और विद्वता पर ही लिखना चाहते थे। कुछ पंक्तियाँ देखिये–'भोजदेव के पराक्रम से भारतवर्ष के अनेक तत्कालीन राज्य के नरेश आश्चर्यचकित थे। उस समय भारतवर्ष में चेदीश्वर, इन्द्ररथ, तोंग्गल और भीमदेव आदि नरेश बड़े प्रतापी माने जाते थे। लेखक ने विभिन्न विषयों पर भोज द्वारा लिखित पुस्तकों के नाम दिये हैं तथा उनमें कोई महत्वपूर्ण तथ्य होने पर, उसे भी उद्घाटित किया है यथा–'भोजदेव ने महर्षि पतंजलि के योगसूत्र पर राजमार्तंड नाम का एक टीका ग्रन्थ लिखा था। इसकी प्रस्तावना में भोजदेव ने अपनी तुलना पतंजलि मुनि से की है।'

निबन्धकार ने राजा भोज के राज्य की सीमाओं का उल्लेख करने के साथ–साथ भोज द्वारा योग, धर्मशास्त्र, व्याकरण, वैधक, साहित्य, तत्व–ज्ञान एवं नाट्य, संगीत तथा चित्रकला आदि पर लिखित समस्त ग्रन्थों का उल्लेख किया है। अप्राप्त ग्रन्थों के बारे में भी लेखक ने स्थान–स्थान पर अपनी टिप्पणी कर दी है; यथा–"माधकाव्य की टीका में मल्लिनाथ ने भोजदेव के अश्वशास्त्र सम्बन्धी ग्रन्थ का उल्लेख किया है (सर्व 5 श्लोक, 60 मल्लिनाथी टीका)। इससे ज्ञात होता है कि अश्वशास्त्र के समान गजपरीक्षा, शस्त्रास्त्र परीक्षा, युद्धकला तथा पशुवैधक आदि विषयों पर भी इनके बनाए हुए अलग–अलग ग्रन्थ रहे होंगे।''

प्रमाणों व उद्धरणों का प्राचुर्य–'एक थे राजा भोज' निबन्ध एक ऐतिहासिक निबन्ध है। लेखक ने भोज पर जानकारी मात्र नहीं दी है, अपितु जानकारी के स्रोतों का भी स्थान–स्थान पर उल्लेख किया है। राजा भोज के शासन समय का प्रमाण देने के लिए निबन्धकार ने इतिहासकार अलबरुनी के ग्रन्थ 'तहकीके हिंद' का उल्लेख किया है–'अलबरुनी ने मालवा के भोजदेव का उल्लेख किया है। इसका शासन 997 ई. से लेकर 1053 ई. तक है। धार में जहाँ कि वह उज्जैन से उठकर गया था, उसका राज दरबार तत्कालीन विद्वानों का समागम स्थल बन रहा था।' (डॉ. शाहिद अहमद : अलबरूनी कालीन भारत पृ. 10) लेखक ने स्थान–स्थान पर भोजदेव के काका मुंजदेव, पिता सिन्धुराज आदि के सम्बन्ध में भी संस्कृत के अनेक श्लोक उद्धृत किए गए हैं। अन्य रचनाकारों की पुस्तकों में भोजदेव के नामोल्लेख का भी स्थान–स्थान पर वर्णन है, यथा–'विक्रमी सं. 1197 से सन् 1140 ई. के जैन वैयाकरण वर्धमान कृत 'गणरत्न महोदधि' ग्रन्थ में भी स्थान–स्थान पर भोजकृत व्याकरण ग्रन्थ के उदाहरण हैं। एक श्लोक में वर्धमान ने संस्कृत भाषा के सुप्रसिद्ध व्याकरणकारों के नाम दिये हैं, जिसमें भोजराज का भी नाम है–

शालातुरीय शकटांगज चन्द्रगोमी

दिग्वस्त्र भर्तृहरि वामन भोज मुख्याः

मेधाविनः प्रवरदीपककर्तृयुक्ताः

प्राज्ञेर्निषेविल पदद्वितया जयन्ति।

टिप्पणी

भोजदेव द्वारा शास्त्र विधा और विभिन्न कलाओं पर लिखित ग्रन्थ 'युक्तिकल्पतरु' का जिक्र करते हुए लेखक ने उसे विश्व ज्ञानकोष के समान बताया है। इसके समस्त विषयों का उल्लेख करते हुए लेखक ने लिखा है कि ''राज्यकर्ता के लिए आवश्यक बातें तथा राज्य को दृढ़ बनाने की अनेक युक्तियों का संचय यह कल्पतरु ही है। इसमें राज्य–व्यवस्था, मंत्री तथा दूतों के भेद और लक्षण, राजनीतिक सन्धि–विग्रह, सेना आदि के भेद और देशानुसार उनका महत्व, युद्ध करने की युक्तियाँ, प्रकारादि का महत्व और उनके निर्माण करने की रीति, ध्वजा, पताका, छत्र, चामरादि, अनेक राज–चिह्नों, सिंहासनों और रत्नमणि अलंकारादि की परीक्षा, नीति और युद्धापयोगी शस्त्रास्त्र तथा उनकी परीक्षा, रथ, पालकी इत्यादि सवारियाँ और नौका इत्यादि राष्ट्रोपयोगी अनेक विषयों का पुराण आदि ग्रन्थों से आवश्यक ज्ञान प्राप्त करके वर्णन किया गया।'' भोजदेव के सम्बन्ध में लेखक ने अनेक स्थलों पर प्रामाणिक जानकारी देकर अपने निबन्ध को सारगर्भित व ऐतिहासिक रूप से मूल्यवान बनाया है–'भोजदेव के लगभग 80 वर्ष पश्चात् गुजरात का प्रसिद्ध राजा सिद्धराज जयसिंह मालवा के भोजवंशीय राजा यशोवर्मनदेव को युद्ध में परास्त करके अवंतिनाथ कहलाने लगा था। उस समय सिंद्धराज जयसिंह उज्जैन में आया। यहाँ पंडित हेमचन्द्र सूरि ने उसे भोजदेवनिर्मित 'अवंतिकोष' नामक विशाल पुस्तकालय दिखलाया।'' निबन्ध के अन्त में लेखक ने अपने मत की पुष्टि में संस्कृत के दो उद्धरण दिये हैं–'सजातो येन जातेन याति वंशः समुन्नितम्' तथा 'राजा कालस्य कारणम्।'

वैयक्तिकता का समावेश–विचारात्मक निबन्धों में भी कहीं न कहीं लेखक के व्यक्तित्व की छाप अवश्य रहती है। निबन्ध का प्रारम्भ ही उसकी भावाभिव्यक्ति से हुआ है। 'मेरे मन में बहुत दिनों से यह आ रहा था कि भोज पर कुछ लिखूँ। जब से बड़े तालाब में भोज की प्रतिमा लगी, तब से इच्छा और बलवती हो चली। तब भोज पर मैंने गहन अध्ययन नहीं किया। मैंने जब पढ़ना शुरू किया तो आँखें फटी–फटी सी रह गईं। अनेक स्थलों पर निबन्धकार ने तर्कपूर्ण ढंग से अपना मत रखा है–''इसके अतिरिक्त इस ग्रन्थ में (युक्तिकल्पतरु) एक नवीनता यह भी है कि उपर्युक्त प्रत्येक विषय का वर्णन करते समय भोजदेव ने स्वरचित अन्य ग्रन्थों के उदाहरण भी दिये हैं। इससे जान पड़ता है कि भोजदेव ने प्रत्येक विषय पर पृथक्–पृथक् ग्रन्थ लिखे होंगे। .....भोजदेवकृत शालिहोत्र नामक ग्रन्थ का उल्लेख अश्वपरीक्षा तथा अश्व वैधक सम्बन्धी संस्कृत ग्रन्थों की सूची में जर्मन पंडित आडफ्रेक्ट ने किया है। इससे ज्ञात होता है कि अश्वशास्त्र के समान गजपरीक्षा, शस्त्रास्त्र परीक्षा, युद्धकला तथा पशुवैद्यक आदि विषयों पर भी इनके बनाए हुए अलग–अलग ग्रन्थ रहे होंगे।''

भोजदेव द्वारा बहुत से ग्रन्थों की रचना बताई जाती है। दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि उनके नाम पर बहुत सारे ग्रन्थ हैं तथा कुछ ग्रन्थों का उल्लेख अन्य रचनाकारों की पुस्तकों में है। लेखक ने इतने सारे भोजदेव द्वारा वास्तविक में रचित होने पर भी शंका उठाई है। लेखक का मानना है कि एक विस्तीर्ण राज्य के अधिपति के पास इतना समय कैसे होगा कि वह इतने अधिक ग्रन्थों की रचना कर सके। ऐसा भी हो सकता

टिप्पणी

है कि कुछ ग्रन्थ अपने प्रभाव से भोजदेव ने अपने अधीन विद्वानों से लिखवा लिए हों। निबन्धकार के शब्दों में–''भोजदेव एक विस्तीर्ण राज्य के अधिपति थे। उनके द्वारा अनेक ग्रन्थ निर्मित हुए। परन्तु मानवी शक्ति और बुद्धि द्वारा विचार करने पर क्या यह बात असम्भव जान पड़ती है? यह प्रश्न चिकित्सक बुद्धि द्वारा उत्पन्न होता है। भोजदेव एक धनधान्यपरिपूर्ण बड़े साम्राज्य के अधिपति थे। अतएव यह शंका उत्पन्न होती है कि उन्होंने अपने आश्रय में अनेक विद्वान पंडित रखे होंगे और ग्रन्थ तैयार करवाकर अपने नाम से प्रकट कर दिये। परन्तु आश्चर्य की बात है कि ऐसी शंका आज तक किसी प्राचीन संस्कृत विद्वान ने प्रदर्शित नहीं की।'' निबन्ध का समापन भी निबन्धकार ने भोजदेव के सम्बन्ध में अपनी सकारात्मक विचाराभिव्यक्ति से किया है–''इस प्रकार भोज भारतीय विद्या–परम्परा और भारतीय राजनय के पुरोधा थे। आज उनका स्मरण करके हम अपने को गौरवान्वित अनुभव करते हैं।''

वैयक्तिकता के समावेश से निबन्ध में सजीवता आ गई है। उपन्यास, नाटक कहानी आदि साहित्य की अन्य गद्य विधाओं से निबन्ध अलग इसलिए भी है क्योंकि इसमें लेखक स्पष्ट रूप से पाठक के सामने नहीं जा पाते। इनमें लेखक अप्रत्यक्ष रूप से अपने पाठकों से मिलता है, जबकि निबन्ध में प्रत्यक्ष रूप से। जिस निबन्ध में लेखक का व्यक्तित्व प्रतिबिम्बित न हो, उसे श्रेष्ठ नहीं माना जाता। आत्म–निवेदन अथवा निजी दृष्टिकोण की अभिव्यक्ति में ही निबन्धकला का चरम उत्कर्ष माना गया है। उपर्युक्त दिये गए उद्धरणों से यह स्पष्ट ही है कि निबन्धकार ने आवश्यकतानुसार अपना मत अभिव्यक्त किया है। अतः निबन्धकार के व्यक्तित्व प्रकाशन की दृष्टि से भी 'एक थे राजा भोज' निबन्ध पूर्णतः खरा उतरता है। अपना मत व्यक्त करते समय लेखक ने सर्वत्र तार्किकता व विवेकबुद्धि से काम लिया।

विषयवस्तु का विवेचन–विवेचन निबन्ध में निबन्धकार ने वस्तुनिष्ठ ढंग से अपने मुख्य विषय राजा भोज के बारे में प्रमाणित जानकारी दी है। वह सर्वत्र अपने विषय पर ही केन्द्रित रहा है, विषय से भटका नहीं है। निबन्ध का प्रारम्भ भोज पर लिखने की इच्छा से होता है, मध्य में भोज पर जानकारी और विवेचन–विश्लेषण होता रहता है और अन्त राजा भोज के विषय में संक्षिप्त प्रशस्ति से होता है। "इस प्रकार भोज भारतीय विद्या परम्परा और भारतीय राजनय के पुरोधा थे। आज उनका स्मरण कर हम अपने को गौरवान्वित अनुभव करते हैं।"

निबन्धकार ने राजा भोज पर निबन्ध लिखते समय विषयवस्तु के क्रमिक विकास का ध्यान रखा है। वह अलबरुनी के 'तहकीके हिंद' का सन्दर्भ देकर भोज के शासन–समय को प्रमाणित करता है और फिर उनके शासन स्थल मालवा की भौगोलिक स्थिति वर्णित करता है। भोजदेव का बखान करने से पूर्व लेखक भोज की वंश परम्परा का उल्लेख करना नहीं भूलता– ''इस वंश (परमार) के छठे राजा सीयक अथवा हर्षदेव और दक्षिण के मान्यखेट (मालखेड़ा) के राष्ट्रकूटवंशीय महाप्रतापी राजा खोट्टीदेव ने उसे नर्मदा के किनारे खलघाट स्थल पर हराकर उसका सब कुछ छीन लिया था। यह युद्ध नौ सौ सत्तर के आस–पास हुआ था। इसके बाद हर्षदेव एवं उनके वंशधरों का एकछत्र राज्य हो गया। हर्षदेव का पुत्र वाक्यपति उपनाम मुंजदेव भी अत्यन्त पराक्रमी हुए। मुंजदेव और उनके छोटे भाई तथा उत्तराधिकारी सिन्धुराज ने

टिप्पणी

अपने पराक्रम से भारतवर्ष में अनेक राजाओं को जीतकर अपने राज्य का विस्तार किया। इसके पश्चात् सिन्धुराज के पुत्र भोजदेव के विशेष विजय तथा कृति सम्पादन में मालवा राज्य का ऐश्वर्य शिखर पर पहुँच सका।''

वंश परम्परा के उल्लेख के उपरान्त लेखक भोज द्वारा दर्शन शास्त्र, ज्योतिष, धर्मशास्त्र, नीतिशास्त्र, राष्ट्रोपयोगी शास्त्र–विद्या, अश्ववैधक, काव्य, काव्यशास्त्र आदि पर लिखित पुस्तकों के बारे में वस्तुनिष्ठ ढंग से बताता है। कहीं पर तो श्रद्धापूरित होकर गुणगान नहीं करता। इसके स्थान पर लेखक भोज द्वारा ही इतनी पुस्तकें लिखे जाने के प्रसंग में स्पष्ट रूप से यह आशंका भी व्यक्त कर देता है कि कुछ पुस्तकें भोज द्वारा अपने अधीन विद्वानों से लिखवाई गई भी हो सकती हैं। आवश्यकतानुसार भोज द्वारा स्थापित शालाओं और स्तम्भों और शिव मन्दिरों का भी वर्णन है। भोज के रचनाकार होने पर लेखक कोई शंका व्यक्त नहीं करता। भोज विद्वान भी थे और ग्रन्थकार भी–'अतएव भोजदेव ने अपने विस्तीर्ण राज्य में सब कार्यों की उत्तम व्यवस्था की है और अपना बहुत–सा समय काव्यशास्त्र विनोद अथवा ग्रन्थ लेखन में व्यतीत करते थे।'

शासनकर्ता माधवाचार्य और हेमाद्रि के द्वारा भी इसी प्रकार के बहुत से ग्रन्थों की रचना हुई थी। कुछ स्थलों पर भोज के पराक्रम का भी वर्णन है और राज्य की स्थिति का भी। दो उद्धरण देखिये (i) ''भोजदेव के पराक्रम से भारतवर्ष के अनेक तत्कालीन राज्य के नरेश आश्चर्यचकित थे। उस समय भारतवर्ष में चेदीश्वर, इन्द्ररथ, तोंग्गल और भीमदेव आदि नरेश बड़े प्रतापी माने जाते थे। भोजदेव ने इन सबको परास्त कर अपना राजनैतिक वर्चस्व स्थापित किया। चेदीश्वर गांगेवदेव की पराजय का वर्णन धार के एक शिलालेख पर अर्जुन वर्मा की प्रशस्ति में लिखा है, यह विजय ऐतिहासिक थी। इसकी स्मृति में एक विजय स्तम्भ खड़ा किया गया था। यह विशाल विजय–स्तम्भ उस समय के इतिहास का बहुत बड़ा प्रमाण है।'' (ii) ''भोज की राज्य–व्यवस्था और राज्य कार्य करने का ढंग अत्यन्त उत्तम था। उनके राज्यकाल में मालवा देश बहुत उन्नति पर था। इसका थोड़ा बहुत परिचय 'युक्ति कल्पतरु' इत्यादि ग्रन्थों से मिलता है।''

इस सम्पूर्ण निबन्ध में हम देखते हैं कि निबन्धकार भोज के ग्रन्थों और युद्धों में विजय का वर्णन वस्तुनिष्ठ भाव से किया है, अन्ध भक्ति के साथ नहीं। इसलिए एक स्थल पर लेखक ने सहज भाव से भोज द्वारा असंख्य पुस्तकें लिखी जाने पर एक शंका भी व्यक्त कर दी है। ''उन्होंने (भोज ने) अपने आश्रय में अनेक विद्वान पंडित रखे होंगे और ग्रन्थ तैयार करवाकर अपने नाम से प्रकट कर दिये। परन्तु आश्चर्य की बात है कि ऐसी शंका आज तक किसी प्राचीन संस्कृत विद्वान ने नहीं प्रदर्शित की।''

भाषा–शैली–इस विस्तृत निबन्ध में लेखक ने सरल सुबोध भाषा का प्रयोग किया है। निबन्ध की भाषा प्रवाहपूर्ण है। उसमें कहीं भी दुर्बोधता अथवा क्लिष्टता नहीं है। समूचे निबन्ध में भाषा बोधगम्य एवं विषयानुरूप है। एक ओर कहीं–कहीं तत्सम शब्दों का प्रयोग है–विद्याव्यसनी, युद्धपराङ्मुख, प्रशस्ति, प्रमाणबद्ध, आधिपत्य तो दूसरी ओर कतिपय उर्दू–फारसी के शब्दों का भी प्रयोग किया गया है। आवश्यकतानुसार मुहावरों का भी प्रयोग है–'मैंने जब पढ़ना प्रारम्भ किया तो आँखें फटी–फटी–सी रह गईं।'

आवश्यकतानुसार उद्धरण शैली का भी प्रयोग है। विषय ऐतिहासिक होने के कारण प्रमाणस्वरूप संस्कृत श्लोकों के उद्धरण भी दिये गए हैं–

टिप्पणी

लक्ष्मीर्यास्यति गोविन्दे वीरश्रीवीरवेश्यनि

गते मुंजे यश पुंजे निरालंबा सरस्वती

प्रायः छोटे–छोटे, सीधे–सरल वाक्यों का प्रयोग हुआ है; यथा– 'भारती भवन में भोजदेव के समय में ही विद्वानों की सभा होती थी। विक्रम की सभा की तरह इस सभा में भी अनेक देशों के विद्वान और कवि थे।' और कहीं–कहीं पर वाक्य बहुत अलंकृत भी हो गए हैं–'भोजदेव की दान–सरिता का प्रवाह बहुत समय प्रवाहित रहने के कारण चारों दिशाओं के साहित्य–भक्त उस सरिता में अवगाहन कर सरस्वती देवी की आराधना करने के लिए भोजदेव की राजधानी धारानगरी में एकत्रित होते थे।'

निबन्ध के सम्पूर्ण विवेचन को निबन्ध के अन्त में सार रूप में संक्षेप में दिया गया है–''सजातो येन जातेन याति वंशः समुन्नितम्।" इस वचनानुसार भोजदेव ने अपने चरित्र से परमार वंश को गौरवान्वित किया है। भोजदेव के कारण समस्त भारतवर्ष विद्या–वैभव सम्पन्न हो गया था। इनके चरित्र से 'राजाकालस्य कारणम्' यह बात प्रत्यक्ष सिद्ध होती है। योरोपीय पंडित भोजदेव को भारतीय 'आगस्टस' कहते हैं। इस प्रकार भोज भारतीय विद्या–परम्परा और भारतीय राजनय के पुरोधा थे। आज उनका स्मरण कर हम अपने को गौरवान्वित अनुभव करते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि 'एक थे राजा भोज' निबन्ध, निबन्ध की कसौटी पर पूर्णतः खरा उतरता है। कभी–कभी वैचारिक निबन्ध रसहीन हो जाते हैं, लेकिन लेखक ने निबन्ध की रसात्मकता का भी ध्यान रखा है। अतः रामचन्द्र शुक्ल के इस कथन 'निबन्ध गद्य की कसौटी है' पर त्रिभुवननाथ शुक्ल पूर्णतः खरे उतरते हैं।

अपनी प्रगति जाँचिए

3. 'एक थे राजा भोज' किस विधा की रचना है?

(क) रिपोर्ताज (ख) डायरी

(ग) संस्मरण (घ) निबन्ध

4. अलबरूनी ने 'तहकीक–ए–हिन्द' कब लिखी?

(क) 973 ई. (ख) 974 ई.

(ग) 975 ई. (घ) 976 ई.

2.4 पर्यायवाची, विलोम, एकार्थी, अनेकार्थी शब्द एवं शब्दयुग्म

पर्यायवाची, विलोम, एकार्थी, अनेकार्थी शब्दों एवं शब्द युग्म को पृथक–पृथक रूप से इस प्रकार समझा जा सकता है–

2.4.1 पर्यायवाची शब्द

शब्द और अर्थ के संबंध पर विचार करने के दौरान हमने जाना कि इनके बीच का संबंध स्थायी न होकर यादृच्छिक होता है। यदि शब्द और अर्थ के बीच का संबंध स्थायी होता

टिप्पणी

तो किसी एक वस्तु, भाव या विचार के लिए एक ही शब्द होता। चूँकि यह रिश्ता मानव मन की सामूहिक चेतना पर निर्भर करता है इसलिए किसी एक वस्तु या विचार के लिए कई शब्दों का प्रयोग होता है। जैसे 'कपड़ा' को हम 'वस्त्र' भी कहते हैं और 'अम्बर' भी। यहाँ 'कपड़ा', 'वस्त्र' और 'अम्बर' समान अर्थ प्रकट करते हैं अतः इन्हें पर्यायवाची शब्द कहेंगे। 'पर्याय' का तात्पर्य है समान अर्थ वाला। जिन शब्दों के अर्थ में समानता हो उन्हें पर्यायवाची शब्द कहते हैं।

जो भाषा जितनी प्राचीन और समृद्ध होती है उसमें उतने ही ज्यादा पर्यायवाची शब्द होते हैं। ये शब्द किसी भी भाषा के सौन्दर्य को बढ़ाने में काफी मददगार होते हैं। यदि हम किसी भाव के लिए बार–बार एक ही शब्द का प्रयोग करें तो पाठक को बोरियत होगी। पर्यायवाची शब्दों के द्वारा हमें अलग–अलग शब्दों के प्रयोग का विकल्प उपलब्ध होता है जिससे हमारी अभिव्यक्ति निखरती है। किसी भाषा पर अपनी पकड़ मजबूत करने के लिए हमें अधिक–से–अधिक पर्यायवाची शब्दों की जानकारी रखनी चाहिए।

पर्यायवाची शब्दों के संबंध में यह बात भी ध्यान रखनी चाहिए कि प्रत्येक पर्यायवाची शब्द बिल्कुल समान अर्थ की अभिव्यंजना नहीं करते। प्रत्येक शब्द का निश्चित अर्थ होता है जो किसी अन्य शब्द द्वारा प्रकट करना कठिन है। 'कमल' शब्द का पर्यायवाची शब्द है 'जलज' और 'पंकज'। अब यहाँ जल में पैदा होने वाली हर वस्तु को 'जलज' और 'पंक' अर्थात 'कीचड़' में उत्पन्न होने वाली प्रत्येक वस्तु को 'पंकज' कहा जाता है। 'कमल' एक खास फूल को कहते हैं। चूँकि यह 'जल' और 'पंक' में पैदा होता है इसलिए इसे 'जलज' और 'पंकज' भी कहते हैं। तात्पर्य यह है कि पर्यायवाची शब्दों के अर्थ लगभग समान होते हैं लेकिन उनके सूक्ष्म अर्थ भिन्न–भिन्न भी हो सकते हैं।

जिन शब्दों के अर्थ में समानता होती है, उन्हें समानार्थक या पर्यायवाची शब्द कहते हैं। हिन्दी भाषा में एक शब्द के समान अर्थ वाले कई शब्द हमें मिल जाते हैं, जैसे–

पहाड़ – पर्वत, अचल, भूधर।

ये शब्द पर्यायवाची कहलाते हैं। इन शब्दों के अर्थ में समानता होती है, लेकिन प्रत्येक शब्द की अपनी विशेषता होती है। पर्यायवाची शब्दों का प्रयोग करते हुए विशेष सावधानी बरतनी चाहिए। कुछ पर्यायवाची शब्द यहाँ दिए जा रहे हैं–

अंधकार – तिमिर, अँधेरा, तम।

आग – अग्नि, अनल, पावक, दहन, ज्वलन, धूमकेतु।

अच्छा – उचित, शोभन, उपयुक्त, शुभ, सौम्य।

अजेय – अजित, अपराजित, अपराजेय।

अतिथि – पाहुन, आगंतुक, अभ्यागत, मेहमान।

अनुचर – नौकर, दास, सेवक, परिचारक।

अनुपम – अनूठा, अनोखा, अपूर्व, निराला, अभूतपूर्व।

टिप्पणी

अन्य – पृथक, और, भिन्न, दूसरा।
अनाज – अन्न, धान्य।
अरण्य – विपिन, वन, कानन, कान्तार, जंगल।
आभूषण – विभूषण, भूषण, गहना, अलंकार।
आज्ञा – हुक्म, आदेश, निर्देश।
अमृत – सुधा, अमिय, पीयूष, सोम, अमी।
असुर – दैत्य, दानव, राक्षस, निशाचर, रजनीचर, दनुज।
अश्व – वाजि, घोड़ा, घोटक, हय, तुरंग।
आम – रसाल, आम्र, अमृतफल।
अहंकार – गर्व, अभिमान, दर्प, मद, घमंड।
आँख – लोचन, नयन, नेत्र, चक्षु, दृग, विलोचन, दृष्टि।
आकाश – नभ, गगन, अम्बर, व्योम, अनन्त, आसमान।
आनंद – हर्ष, सुख, आमोद, मोद, प्रमोद, उल्लास।
आश्रम – कुटी, विहार, मठ, संघ, अखाड़ा।
आँसू – नेत्रजल, नयनजल, चक्षुजल, अश्रु।
इंद्र – देवराज, सुरेन्द्र, सुरपति, अमरेश, देवेन्द्र, सुरराज, सुरेश।
इन्द्राणी – इंद्रवधु, शची।
ईश्वर – भगवान, परमेश्वर, जगदीश्वर, विधाता।
इच्छा – अभिलाषा, चाह, कामना, लालसा, मनोरथ, आकांक्षा।
उन्नति – प्रगति, विकास, उत्कर्ष, अभ्युदय, उत्थान, वृद्धि।
उत्साह – आवेग, जोश, उमंग।
उद्यान – बाग, कुसुमाकर, वाटिका, उपवन, बगीचा।
ओंठ – ओष्ठ, अधर, होंठ।
कमल – पद्म, पंकज, नीरज, सरोज, जलज।
कल – सुन्दर, अगला दिन, बीता हुआ दिन, मशीन, कोमल, सुहावना।
कपड़ा – चीर, पट, वसन, अम्बर, वस्त्र।
कनक – गेंहू का आटा, स्वर्ण, धतूरा, सोना।
कृषक – हलवाहा, किसान, कृषिजीवी, खेतिहर।
कान – श्रवण, श्रुतिपट, कर्ण, श्रवणेंद्रिय।
कोमल – नाजुक, नरम, मृदु, सुकुमार, मुलायम।
कोष – भंडार, खजाना, निधि।
कोयल – वनप्रिय, पिक, कोकिल, काक्पाली, वसंतदूत।

टिप्पणी

किरण – मरीचि, कर, अंशु, रश्मि, मयूख।

किनारा – कगार, कूल, तट, तीर।

कृपा – प्रसाद, दया, अनुग्रह।

खल – अधम, दुर्जन, दुष्ट, कुटिल, नीच।

गाय – गौ, धेनु, सुरभि।

गधा – गर्दभ, खर, धूसर, शीतलावाहन।

चरण – पद, पग, पाँव, पैर।

चातक – सारन, मेघजीवन, पपीहा, स्वातीभक्त।

किताब – पोथी, ग्रन्थ, पुस्तक।

कपड़ा – चीर, वसन, पट, वस्त्र, अम्बर, परिधान।

कामदेव – मन्मथ, मनोज, काम, मार, कंदर्प, अनंग, मनसिज, रतिनाथ, मीनकेतु।

कुबेर – किन्नरपति, किन्नरनरेश, यक्षराज, धनाधिप, धनराज, धनेश।

कृष्ण – राधापति, घनश्याम, वासुदेव, माधव, मोहन, केशव, गोविन्द, गिरधारी।

कल्पवृक्ष – कल्पतरु, देवतरु, कल्पद्रुम, देववृक्ष।

गंगा – देवनदी, मंदाकिनी, भागीरथी, जाह्नवी, देवपगा।

गणेश – गजानन, गौरीनंदन, गणपति, गणनायक, शंकरसुवन, लम्बोदर, महाकाय।

क्रोध – रोष, कोप, अमर्ष, कोह।

गज – हाथी, हस्ती, मतंग, कुंजर, करी।

गुरु – शिक्षक, बड़ा, भारी, बृहस्पति।

ग्रीष्म – ताप, घाम, निदाघ, गर्मी।

गृह – घर, सदन, गेह, भवन, धाम, निकेतन, निवास।

चंद्रमा – चन्द्र, शशि, हिमकर, राकेश, रजनीश, निशानाथ, सोम, मयंक, सारंग, सुधाकर, कलानिधि।

चतुर – चालाक, कुशल, पटु, नागर, दक्ष, प्रवीण।

जल – वारि, नीर, तोय, अम्बु, उदक, पानी, जीवन, पय।

जहाज – पोत, जलयान।

जमुना – सूर्यसुता, कृष्णा, अर्कजा, रवितनया, कालिंदी।

जीभ – रसना, जिह्वा, गिरा, रसज्ञा।

झंडा – फरहरा, ध्वज, पताका, निशान।

झरना – प्रताप, उत्स, निर्झर, सोता, श्रोत।

झूठ – असत्य, मिथ्या, मृषा, अनृत।

तन – काया, तनु, शरीर, देह, कलेवर।

टिप्पणी

तरु – विटप, पादप, पेड़, द्रुम, वृक्ष।
तात – परम, प्यारा, पूज्य, पिता।
तालाब – सरोवर, जलाशय, सर, पुष्कर, पोखरा।
तलवार – असि, करवाल, कृपाण, खड़ग, चंद्रहास।
तीर – वाण, सर, नाराच, विहंग।
तोता – सुग्गा, शुक, सुआ, कीर, दाड़िमप्रिय।
दरिद्र – निर्धन, गरीब, रंक, कंगाल, दीन।
दिन – दिवस, दिवा, वार।
दुःख – पीड़ा, कष्ट, व्यथा, वेदना, संताप, शोक, खेद, पीर, क्लेश।
दूध – दुग्ध, क्षीर, पय।
दर्पण – शीशा, आरसी, आईना, मुकुर।
दाँत – दन्त, दशन, रद।
दुर्गा – चंडिका, भवानी, कुमारी, कल्याणी, महागौरी, कालिका, शिवा।
देवता – सुर, देव, अमर, वसु, आदित्य।
धनुष – धनुही, धनु, सारंग, चाप, शरासन।
धन – दौलत, संपत्ति, सम्पदा, वित्त।
धरती – पृथ्वी, भू, भूमि, धरणी, वसुंधरा, अचला, मही, रत्नवती, रत्नगर्भा।
ध्वनि – स्वर, आवाज, आहट।
नदी – सरिता, तटिनी, सरि, तरंगिणी।
नया – नूतन, नव, नवीन, नव्य।
नरक – यमलोक, यमालय, कुम्भीपाक।
नित्य – सदा, सर्वदा, सतत, निरंतर।
निरादर – अपमान, उपेक्षा, अवहेलना, तिरस्कार, अवज्ञा।
नाव – नौका, बेड़ा, तरिणी, जलयान, जलवाहन।
पवन – वायु, हवा, समीर, वात, मारुत, अनिल, पवमान।
पहाड़ – पर्वत, गिरि, अचल, नग, भूधर, महीधर।
पक्षी – खग, चिड़िया, गगनचर, पखेरू, विहंग, नभचर।
पानी – जल, नीर, वारि, सलिल, अंबु।
पार्वती – उमा, गिरिजा, गौरी, शिवा, भवानी, अम्बिका।
पति – स्वामी, प्राणाधार, प्राणप्रिय, प्राणेश, आर्यपुत्र।
पत्नी – गृहिणी, वधू, वनिता, दारा, जोरू, वामांगिनी।
पुत्र – बेटा, आत्मज, वत्स, तनुज, तनय, नंदन।
पुत्री – बेटी, आत्मजा, तनुजा, सुता, तनया।

टिप्पणी

पुष्प – फूल, सुमन, कुसुम, मंजरी, प्रसून।
बादल – मेघ, घन, जलधर, जलद, वारिद, नीरद, सारंग।
बालू – रेत, बालुका, सैकत।
बन्दर – वानर, कपि, कपीश, हरि।
बिजली – घनप्रिया, चपला, दामिनी, तडित, विद्युत।
ब्रह्मा – विधि, विधाता, प्रजापति, निर्माता, धाता, चतुरानन।
विष – जहर, हलाहल, गरल, कालकूट।
वृक्ष – पेड़, पादप, विटप, तरु, द्रुम।
विष्णु – नारायण, दामोदर, पीताम्बर, चक्रपाणि।
भौरा – भ्रमर, भँवरा, भृंग, मिलिंद, मधुप।
महेश – महादेव, नीलकंठ, चंद्रशेखर, गंगाधर, रुद्र, शिव, विश्वनाथ, त्रिलोचन।
मनुष्य – आदमी, नर, मानव, मानुष, मनुज।
मदिरा – शराब, हाला, आसव, मधु, मद्य।
मोर – केकी, कलापी, नीलकंठ, नर्तकप्रिय, मयूर।
मधु – शहद, रसा, कुसुमासव।
मृग – हिरण, सारंग, कृष्णसार।
मछली – मीन, मत्स्य, जलजीवन, शफरी।
मूर्ख – गँवार, अल्पमति, अज्ञानी, अनपढ़, जड़।
मृत्यु – देहांत, मौत, अंत, स्वर्गवास, मरण।
मोक्ष – मुक्ति, परधाम, निर्वाण, परमपद, अपवर्ग।
यमराज – धर्मराज, यम, अन्तक, सूर्यपुत्र, दंडधर।
रात – रात्रि, रैन, रजनी, निशा, यामिनी, तमी, निशि, यामा।
राजा – नृप, भूप, भूपाल, नरेश, महीपति, अवनीपति।
लक्ष्मी – कमला, पद्मा, रमा, हरिप्रिया, श्री, इंदिरा।
विवाह – शादी, गठबंधन, परिणय, ब्याह, पाणिग्रहण।
समूह – गण, झुण्ड, संघ, वृन्द, समुदाय।
वायु – पवन, अनिल, समीर, हवा, वात।
वस्त्र – कपडा, वसन, अम्बर, परिधान, पट।
साँप – सर्प, नाग, विषधर, उरग, भुजंग।
सूर्य – रवि, सूरज, दिनकर, प्रभाकर, आदित्य, भास्कर, दिवाकर।
संसार – जग, विश्व, जगत, लोक, दुनिया।
शरीर – देह, तन, काया, कलेवर, अंग, गात।
सोना – स्वर्ण, कंचन, कनक, हेम, सुवर्ण।

टिप्पणी

स्त्री – अबला, नारी, महिला, रमणी, दारा, कान्ता।

सिंह – केसरी, शेर, महावीर, नाहर, सारंग, मृगराज।

सेना – वाहिनी, कटक, चमू।

समुद्र – सागर, पयोधि, उदधि, पारावार, नदीश, जलधि।

हनुमान – महावीर, पवनसुत, रामदूत, मारुति, कपीश, बजरंगबली।

हर्ष – आनंद, प्रसन्नता, प्रमोद, खुशी, आमोद।

हाथी – गज, हस्ती, नाग, मतंग, कुंजर।

शत्रु – रिपु, दुश्मन, अमित्र, वैरी।

हिमालय – हिमगिरी, हिमाचल, गिरिराज, पर्वतराज, नगेश।

हृदय – छाती, वक्ष, वक्षस्थल, हिय, उर।

2.4.2 विलोम शब्द

ऊपर हमने शब्द और अर्थ के बीच के संबंध का विस्तृत अध्ययन किया। हम जानते हैं कि शब्द और उसके अर्थ का निर्माण समाज के बीच होता है। समाज में किसी वस्तु, भाव या विचार के मूल रूप के साथ–साथ उसका विपरीत रूप भी होता है; जैसे यदि 'सुख' है तो उसके साथ 'दुःख' भी है। यदि 'मीठा' है तो उसके साथ 'तीखा' भी है। 'विलोम' शब्द का अर्थ है 'उल्टा' या 'विपरीत'। किसी शब्द से प्रकट होने वाले अर्थ का विपरीत अर्थ प्रकट करने वाले शब्द को 'विलोम शब्द' कहते हैं, जैसे 'जन्म' शब्द का विलोम शब्द 'मृत्यु' होगा। यहाँ यह भी ध्यान रखने की बात है कि दो विलोम शब्द एक–दूसरे का विलोम होते हैं, जैसे यदि 'जन्म' का विलोम शब्द 'मृत्यु' है तो 'मृत्यु' शब्द का विलोम शब्द 'जन्म' होगा।

विलोम शब्दों के निर्धारण के दौरान यह बात ध्यान रखनी चाहिए कि संज्ञा शब्द का विलोम संज्ञा शब्द ही होगा विशेषण शब्द नहीं, जैसे 'आग' शब्द का विलोम 'पानी' होगा। अब 'आग' शब्द से जलने का भाव प्रकट हो रहा है तो उसका विलोम 'शीतलता' नहीं हो सकता। इसी प्रकार विशेषण शब्दों का विलोम विशेषण ही होगा संज्ञा नहीं।

हिन्दी भाषा के कुछ प्रमुख शब्दों के विलोम नीचे दिये जा रहे हैं :

शब्द	विलोम शब्द
आरंभ	अंत
आलोक	अंधकार
आयात	निर्यात
इष्ट	अनिष्ट
इच्छा	अनिच्छा
ईश्वर	अनीश्वर
उन्नति	अवनति
उत्तीर्ण	अनुत्तीर्ण

टिप्पणी

उपकार	अपकार
उत्कृष्ट	निकृष्ट
उतार	चढ़ाव
उचित	अनुचित
अभ्यंतर	बाह्य
उपयोगी	अनुपयोगी
उत्तर	प्रश्न, दक्षिण
एकत्र	सर्वत्र
एकांगी	सर्वांगी
एक	अनेक
ऐच्छिक	अनैच्छिक
कठोर	मुलायम
मान	अपमान
आशा	निराशा
आवश्यक	अनावश्यक
आकाश	पाताल
आदि	अंत
आय	व्यय
आकर्षण	विकर्षण
आज्ञा	अवज्ञा
आस्तिक	नास्तिक
आदान	प्रदान
आदर	निरादर
आग	पानी
अनुरक्ति	विरक्ति
अनुराग	विराग
अमीर	गरीब
अर्थ	अनर्थ
अस्त	उदय
अनुकूल	प्रतिकूल
अपेक्षा	उपेक्षा

2.4.3 एकार्थी शब्द

एकार्थी शब्द उन्हें कहते हैं, जिनका वाच्यार्थ एक ही होता है। दूसरे शब्दों में समान अर्थ की प्रतीति कराने वाले शब्दों को एकार्थी शब्द कहते हैं।

टिप्पणी

कुछ एकार्थी शब्दों के उदाहरण इस प्रकार हैं–

शब्द	**एकार्थी**
अपयश	बदनामी
अहंकार	घमंड
आसक्ति	गहरी चाह
उत्तम	श्रेष्ठ, अच्छा
अभिनेता	कलाकार
अपराध	जुर्म
आराधना	तपस्या
अनुराग	प्रेम
अर्चना	पूजा
इष्ट	इच्छित
छात्र	विद्यार्थी
कलंक	धब्बा (बदनामी)
तरुण	जवान
कृति	रचना
निधन	मृत्यु
अधिक	ज्यादा
अभिमान	घमंड
मृत्यु	निधन
ग्रंथ	धार्मिक पुस्तक
निर्णय	फैसला
भय	डर
शक	संदेह
निंदा	बुराई
निपुण	कुशल
प्रणय	दाम्पत्य प्रेम
बली	बलवान
यातना	कष्ट
सम्राट	राजा
शस्त्र	हथियार
आधि	मानसिक रोग
व्याधि	शारीरिक रोग
स्त्री	महिला

टिप्पणी

पत्नी	विवाहिता
पाप	अपराध
अगम	दुर्गम
न्याय	इंसाफ
स्वभाव	प्रकृति
स्वाभिमान	आत्मसम्मान
सेवा	सुश्रूषा
अमूल्य	बहुमूल्य
श्रद्धा	भक्ति
पर्याप्त	पूर्ण
तृप्ति	संतोष
उपहार	भेंट
आजादी	स्वतंत्रता
स्नेह	वात्सल्य
शिक्षा	विद्या
स्वागत	अभिनंदन
किराया	भाड़ा

2.4.4 अनेकार्थी शब्द

अनेकार्थक शब्दों के कारण भाषा की व्यंजना शक्ति बढ़ती है। कविगण श्लेष और यमक अलंकारों की सृष्टि शब्दों के इस गुण से करते आए हैं। ये वे शब्द होते हैं, जिनके अनेक अर्थ निकलते हैं।

संस्कृत में बहुत से शब्द अनेकार्थक हैं। संस्कृत की शब्दावली धातुज है। धातुएँ प्रायः ध्वन्यात्मक या अनुकरणात्मक हैं। किसी ध्वनि का भाषण कई ढंग से किया जाता है। इसलिए प्रायः शब्दों में अनेकार्थकता आ गई है।

हिन्दी के कुछ अनेकार्थी शब्दों का विवरण निम्नांकित है–

- अंक – निशान, पत्रिका का नंबर, गिनती की संख्या, नाटक का अध्याय, गोद
- अंकुश – हाथी को चलाने–रोकने का लोहे का हुक, नियंत्रण, दबाव
- अंग – शरीर, शरीर का कोई अवयव, अंश, शाखा
- अंचल – साड़ी का पल्लू, प्रदेश, सिरा
- अंत – सिरा, समाप्ति, मृत्यु, भेद/रहस्य
- अंतरंग – अंदर का/भीतरी, घनिष्ठ, गुप्त
- अपवाद – खंडन, बदनामी, नियम की छूट, दोष
- अपेक्षा – आशा, इच्छा, आवश्यकता, तुलना में

टिप्पणी

- अबोध – नासमझ, मूर्ख, दुरूह, दुर्बोध
- अब्ज – कमल, चंद्रमा, कपूर, शंख
- अभाव – कमी, अप्राप्यता
- अभिधान – नाम, पदनाम, उक्ति, शब्दकोश, नाममाला
- अमल – मलरहित, कार्यान्वयन, नशा–पानी
- अमृत – सुधा, जल, मुक्ति, मृत्युरहित दूध
- अपयुक्त – न जुड़ा हुआ, जो प्रयाग में न हो, अनुचित
- अरिष्ट – कष्ट, दुर्भाग्य, विपत्ति शत्रु, औषधियुक्त रस
- आँख – नेत्र, दृष्टि, निगरानी
- आकर – खान, कोष, स्रोत
- आगम – आना, ज्ञान, शास्त्र
- आब – पानी, चमक, छवि/शोभा
- आराम – वाटिका, विश्राम, सुविधा, राहत
- उड़ाना – उड़ने में प्रवृत्त करना, तेजी से चलाना, चुराना, नष्ट करना, अपव्यय करना, फैलाना
- उतरना – नीचे आना, कम होना (ज्वर), जगह से खिसकना (बाँह), ठहरना (बरात), मद्धिम पड़ना (रंग)
- उत्तर – ऊपर की दिशा, बाद का (गणित में) फल
- कर – हाथ, टैक्स, किरन, सूँड
- करीब – समीप, लगभग सगा
- कर्तन – काटना, कतरना, कातना
- कर्ता – करने वाला, बनाने वाला, परिवार का मुखिया, पहला कारक
- कल – मशीन, सुख, बीता दिन, आने वाला दिन
- कोटि – धनुष का सिरा, श्रेणी, करोड़
- कोरा – बिलकुल नया, अप्रयुक्त, अलिखित (कागज), गुणरहित (व्यक्ति)
- कोष्ठ – कोठा, पेट, ब्रैकेट
- क्रिया – कर्म, कार्रवाई, करम होने का द्योतक शब्द
- क्षुद्र – नीच, कंजूस, छोटा, थोड़ा
- खर – प्रखर, दुष्ट, गधा, तिनका, एक राक्षस का नाम
- खराब – गंदा, बुरा, बरबाद/नष्ट, न चालू
- खल –दुष्ट, चुगलखोर, खरल, तलछट, धतूरा

टिप्पणी

- गला – निगलने का अंग, गरदन, घड़े आदि की पकड़, आवाज
- गहन – गहरा, घना, दुर्गम, जटिल
- गाँठ – गिरह, फंदा, गठरी, उलझन, मनमुटाव
- घुमाना – सैर कराना, मोड़ना, चक्कर देना, लट्टू चलाना, प्रचारित करना
- घोड़ा – एक प्रसिद्ध चौपाया, बंदूक का खटका, शतरंज का एक मोहरा
- घोर – भयानक, बहुत अधिक, बहुत बुरा, बहुत घना (बम)
- चंचला – चंचल स्त्री, लक्ष्मी, बिजली
- चक्र – चाक, पहिया, चक्कर, घेरा, मंडल
- जीवन – जिंदगी, प्राण, जीविका–निर्वाह, पानी
- जुड़ना – जोड़ा जाना, मिलाना, जुटना, जोता जाना, सम्मिलित होना
- जोड़ – योग, मेल, गाँठ
- जोड़ना – मिलाना, टूटे हुए को जोड़ना, योग करना, बढ़ाना, एकत्र करना
- ठस – बहुत कड़ा, भारी, घनी बुनावट वाला, कंजूस, आलसी, हठी
- ठहरना – रुकना, टिकना, शांत हो जाना, पक्का होना
- ठाकुर – देवता, ईश्वर, मालिक, क्षत्रिय, नाई
- तलब – खोज, चाह, आवश्यकता, बुलावा, वेतन
- तात – पिता, गुरु, भाई, मित्र
- तारक – तारने वाला, तारा, आँख की पुतली
- तारा – आँख की पुतली, नक्षत्र, भाग्य, बालि की स्त्री का नाम
- ताव – गरमी/ताप, आवेश, कष्ट, कागज का पूरा टुकड़ा
- धर्म – स्वभाव, प्राकृतिक गुण, कर्तव्य, संप्रदाय
- धर्मराज – न्यायाधीश, यमराज, युधिष्ठिर
- नायक – सेनापति, छोटा, सेनाधिकारी, मुखिया, नाटक का मुख्य पात्र
- नाल – डंडी, डंठल, नली, अर्धचंद्राकार लोहा
- निकालना – बाहर आना या जाना, सामने आना, प्रकाशित होना, रहस्य स्पष्ट होना, हिसाब में बाकी ठहरना
- निकासी – निकलने का ढंग, माल बिना, चुंगी
- निशाचर – राक्षस, प्रेत, उल्लू, चोर
- निशान – चिह्न, मोहर की छाप, झंडा, धब्बा, पता–ठिकाना
- पद – कदम, स्थान, छंद, ओहदा, शब्द
- पय – दूध, जल, अन्न
- पयोधर – बादल, स्तन, तालाब, पर्वत

टिप्पणी

- परचा – कागज, अखबार, प्रश्नपत्र
- परिकर – समूह, कमरबंद, परिवार, नौकर–चाकर
- पल्ला – आँचल, तराजू का पलड़ा, दिशा, किवाड़
- पाटी – पंक्ति, रीति, तख्ती, चारपाई की पट्टी
- प्रपंच – विस्तार, झंझट, बखेड़ा, मिथ्या, जगत्
- बढ़ना – और आगे चलना, उन्नत होना, अधिक होना, बुझना
- बनाना – रचना, लाभ करना, मरम्मत करना, तैयार करना, प्रतिष्ठित करना, संबंध जोड़ना
- बल – शक्ति, सेना, सहारा, चक्कर, मरोड़
- बलि – बलिदान, चढ़ावा, राजा बलि, हव्य, आहुति
- बहना – पानी का चलते रहना, हवा चलना, अधिक व्यय होना, नष्ट होना
- महावीर – बहुत बलवान, हनुमान, 24वें जैन तीर्थंकर
- महीधर – शेषनाग, पहाड़, एक वर्णिक छंद
- मान – सम्मान, घमंड, रूठना, माप
- माया – भगवान की लीला, भ्रम, दौलत, इंद्रजाल
- मित्र – दोस्त, सहयोगी, सूर्य
- मिलना – मिश्रित करना, जोड़ना, सटाना, तुलना करना
- मुड़ना – घूमना, लौटना, झुकना
- युक्ति – मिलन, तरकीब, दलील
- योग – मेल, लगाव, मन की साधना, ध्यान, कुल जोड़, शुभकाल
- रक्त – लाल, खून, केसर, लाल चंदन
- रस – निचोड़, स्वाद, आनंद, नवरस, धातु का भस्म
- लक्ष्य – निशाना, उद्देश्य, लक्षणार्थ
- लहर – तरंग, उमंग, झोंका, झूलना
- वन – जंगल, जल, फूलों का गुच्छा
- वर – दूल्हा, श्रेष्ठ, वरदान, वरण करने योग्य
- वृत्त – गोल घेरा, वृत्तांत, चरित्र, वर्णिक छंद
- वृत्ति – रोजी, सहायता के लिए मिलने वाला धन, स्वभाव, रुझान, पेशा
- सधना – (मतलब) पूरा होना, अभ्यस्त होना, ठीक जगह पर लगना (निशाना)
- सरदार – अगुआ, छोटा, शासक, रईस, सिख
- सरल – सीधा, ईमानदार, खरा, आसान

टिप्पणी

- सारंग – कोयल, चातक, मोर, हंस, बाज, सिंह, घोड़ा, हाथी, एक मृग, सूर्य चंद्रमा, सोना, भौंरा, धनुष, बादल, समुद्र, शंख, कामदेव
- सार – तत्व, निष्कर्ष, रस, लाभ, धैर्य
- हरकत – गति, चेष्टा नटखटपन
- हस्ती – हाथी, अस्तित्व, हैसियत

2.4.5 शब्दयुग्म

वे शब्द जिनका उच्चारण प्रायः समान होता है किंतु, उनके अर्थ भिन्न होते हैं, 'युग्म शब्द' कहलाते हैं।

शब्दयुग्म का प्रयोग गद्य की अपेक्षा पद्य में अधिक होता है। इन्हें 'समोच्चरितप्राय भिन्नार्थक शब्द' भी कहते हैं।

ऐसे कुछ शब्द युग्म 'अर्थ सहित' निम्नांकित हैं–

शब्द	**अर्थ**
अधम	नीच
अधर्म	पाप
अली	सखी
अलि	भौंरा
अन्त	समाप्ति
अन्त्य	नीच, अन्तिम
आदि	आरम्भ, इत्यादि
आदी	अभ्यस्त, अदरक
आरति	विरक्ति, दुःख
आरती	धूप–दीप दिखाना
आभरण	गहना
आमरण	मरण तक
कर्म	काम
क्रम	सिलसिला
कृपण	कंजूस
कृपाल	कटार
खोआ	दूध का बना ठोस पदार्थ
खोया	भूल गया, खो गया
गण	समूह
गण्य	गिनने योग्य

टिप्पणी

गुड़	शक्कर
गुड़	गम्भीर
चर	नौकर, दूत, जासूस
छात्र	विद्यार्थी
क्षात्र	क्षत्रिय–संबंधी
जगत	कुएँ का चौतरा
जगत्	संसार
तरणि	सूर्य
तरणी	नाव
तरुणी	युवती
नारी	स्त्री
नाड़ी	नब्ज
निसान	झंडा
निशान	चिह्न
प्रसाद	कृपा, भोग
प्रणय	प्रेम
प्रासाद	महल
परिणय	विवाह
प्रणाम	नमस्कार
प्रणाम	सबूत, नाप
पवन	हवा
पावन	पवित्र
पथ	रास्ता
पथ्य	आहार (रोगी के लिए)
भित्ति	दीवार, आधार
भीत	डरा हुआ
भवन	महल
भुवन	संसार
भारतीय	भारत का
भारती	सरस्वती
बात	वचन

टिप्पणी

वात	हवा
बुरा	खराब
बूरा	शक्कर
बन	बनना, मजदूरी
वन	जंगल
बहु	बहुत
बहू	पुत्रवधू, ब्याही स्त्री
भंगि	लहर, टेढ़ापन
भंगी	मेहतर, भंग करने वाला
भिड़	बरें
भीड़	जनसमूह
बार	दफा
वार	चोट, दिन
बान	आदत, चमक
बाण	तीर
व्रण	घाव
वर्ण	रंग, अक्षर

अपनी प्रगति जाँचिए

5. निम्न में से कौन–सा 'आकाश' का पर्यायवाची नहीं है?

   (क) जलद (ख) अम्बुद

   (ग) वारि (घ) शून्य

6. 'उपकार' शब्द का उचित विलोम शब्द क्या है?

   (क) विकार (ख) अनाकार

   (ग) सत्कार (घ) अपकार

2.5 अपनी प्रगति जाँचिए प्रश्नों के उत्तर

1. (ख)
2. (ग)
3. (घ)
4. (क)

5. (ग)

6. (घ)

टिप्पणी

2.6 सारांश

प्रेमचंद के साहित्य में आम नागरिकों और सामान्य जनजीवन पर प्रकाश डाला गया है। उस समय की गरीबी और सामान्य लोगों के जीवन की समस्याओं का विस्तृत वर्णन किया गया है। समाज में फैली बुराइयों को जिस ढंग से उन्होंने कथा–शिल्प में गढ़ा है, वह अद्वितीय है। सत्य और असत्य का संघर्ष ही मूलतः उनके कथा साहित्य का आधार है।

अभिव्यक्ति मानव हृदय का स्वाभाविक गुण है। कहानियों का जन्म तो उसी समय से हुआ, जब आदमी ने बोलना सीखा। पुरानी कथा–कहानियों में घटना–वैचित्र्य की प्रधानता होती थी, किन्तु वर्तमान युग में कहानी का आधार घटना नहीं, अनुभूति है। वर्तमान कहानी मनोवैज्ञानिक विश्लेषण और जीवन के यथार्थ एवं स्वाभाविक चित्रण को अपना ध्येय मानती है। कथा–सम्राट प्रेमचन्द हिन्दी कथा–साहित्य में एक दुर्निवार आकर्षण का केन्द्र है। 'नमक का दारोगा' प्रेमचन्द की एक लोकप्रिय कहानी है, जो उनके प्रायः सभी कहानी–संग्रहों में प्रकाशित रहती है।

प्रेमचंद ने पददलित शोषितों, मजदूरों, किसानों व गरीबों के दुःख–दर्द को अपने साहित्य में सच्ची अभिव्यक्ति दी है। इस संदर्भ में हजारीप्रसाद द्विवेदी का मानना सही है कि इतने कौशलपूर्ण और प्रामाणिक भाव से वहाँ ले जाने वाला परिदर्शक हिन्दी–उर्दू की दुनिया में नहीं है। उनके उपन्यासों में विचारों का वह समागम मिलता है जो एक दार्शनिक व्यक्ति ही लिख सकता है। उनकी कथाएँ व्यक्ति की मानसिकता पर भी गहरा प्रभाव डालती हैं।

'एक थे राजा भोज' निबन्ध बहुमुखी प्रतिभा के धनी डा. त्रिभुवननाथ शुक्ल द्वारा रचित है। इस निबन्ध के माध्यम से हमें राजा भोज के व्यक्तित्व एवं उनकी रचनात्मक प्रतिभा और युद्ध कौशल आदि की सम्पूर्ण झांकी देखने को मिल जाती है। निबन्ध के विषय की सीमा मानव–जीवन के समान ही विस्तृत है। यद्यपि इसमें बुद्धितत्व की प्रधानता रहती है, तथापि इसका सम्बन्ध हृदय तत्व से बना रहता है।

त्रिभुवननाथ शुक्ल द्वारा रचित 'एक थे राजा भोज' एक विचारात्मक निबन्ध है। विषय की दृष्टि से यह एक ऐतिहासिक निबन्ध है। यह इतिहास प्रसिद्ध भारतीय राजा भोज पर लिखित है। यह निबन्ध एक इतिहास प्रसिद्ध राजा पर लिखा गया है।

2.7 मुख्य शब्दावली

- **टेम्पर** : स्वभाव, प्रकृति, मनोवृत्ति।
- **क्वाथ** : काढ़ा, जोशांदा।
- **अज्ञेय** : जिसे जाना न जा सके।

2.8 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास

टिप्पणी

लघु–उत्तरीय प्रश्न

1. प्रेमचंद द्वारा रचित कुछ प्रमुख कहानियों का परिचय दीजिए।
2. 'नमका का दारोगा' कहानी के पात्र पंडित अलोपीदीन के चरित्र की किन्हीं दो विशेषताओं को बताइए।
3. डॉ. त्रिभुवननाथ शुक्ल के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का संक्षिप्त परिचय दीजिए।
4. 'एक थे राजा भोज' निबन्ध का लेखन किस शैली में किया गया है?
5. किन शब्दों को शब्दयुग्म कहा जाता है?

दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न

1. प्रेमचंद ने अपनी रचनाओं में मुख्यतः किन विचारों को अभिव्यक्त किया है? 'नमक का दारोगा' कहानी के आलोक में उत्तर दीजिए।
2. मुंशी प्रेमचंद जी द्वारा रचित कहानी 'नमक का दारोगा' की समीक्षा कीजिए।
3. 'नमक का दारोगा' कहानी में मुंशी वंशीधर का पात्र आदर्शवादी चरित्र की कसौटी पर कितना खरा उतरता है? अपने विचार दीजिए।
4. प्रमाणों एवं उद्धरणों के माध्यम से 'एक थे राजा भोज' निबन्ध की ऐतिहासिकता पर प्रकाश डालिए।
5. निबन्ध के तत्वों के आधार पर 'एक थे राजा भोज' की समीक्षा कीजिए।

2.9 सहायक पाठ्य सामग्री

1. 'प्रतिनिधि कविताएं', जयशंकर प्रसाद, राजकमल प्रकाशन, 2015
2. 'माखनलाल चतुर्वेदी रचना संचयन', चयन एवं संपादन– कृष्णदत्त पालीवाल, 2014.
3. 'आधुनिक हिन्दी व्याकरण और रचना', डॉ. वासुदेवनंदन प्रसाद, भारती भवन पब्लिशर एवं डिस्ट्रीब्यूटर, 2017
4. 'हिन्दी व्याकरण', कामता प्रसाद गुरु, वाणी प्रकाशन, 2014
5. 'प्रेमचंद का व्यक्तित्व', लक्ष्मण राव, भारतीय साहित्य कला प्रकाशन, 2019
6. 'भाषीय औदात्तय', डॉ. त्रिभुवन शुक्ल, वाणी प्रकाशन, 2016
7. 'व्यक्तित्व का संपूर्ण विकास', स्वामी विवेकानंद, प्रभात प्रकाशन, 2017
8. 'भगवान बुद्ध तथा उनके संदेश', स्वामी विवेकानंद, रामकृष्ण मठ, नागपुर, 2011
9. 'विवेकानंद साहित्य' (10 वाल्यूम), स्वामी विवेकानंद, अद्वैत आश्रम, 2017
10. 'हिन्दी भाषा प्रकृति, प्रयोग और शिक्षा', हीरालाल बाछोतिया, आर्यप्रकाशन मंडल, दिल्ली, 2012

टिप्पणी

11. 'डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन', आर.पी.एच. एडिटोरियल बोर्ड, रमेश पब्लिशिंग हाउस, 2016
12. 'डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन', बृजकिशोर, प्रभात प्रकाशन, 2018
13. 'व्यंग्य समय', शरद जोशी, किताब घर प्रकाशन, 2017
14. 'व्यंगर्षि शरद जोशी', वागीश सारस्वत, शिल्पायान, 2013
15. 'व्यक्तिगत निबन्ध और डायरी', रामधारी सिंह दिनकर, नेहा पब्लिशिंग एंड डिस्ट्रीब्यूटर, 2012
16. 'हमारी सांस्कृतिक एकता' (वाल्यूम 3 ऑफ 29), दिनकर ग्रंथालय, लोकभारती प्रकाशन, 2019
17. 'हिन्दी के प्रमुख निबन्धकार और उनका निबन्ध साहित्य', डॉ. जीवनभाई आर. डांगर, शांति प्रकाशन, 2016

इकाई 3 हिन्दी भाषा

टिप्पणी

संरचना

3.0 परिचय
3.1 उद्देश्य
3.2 भगवान बुद्ध (निबन्ध) : स्वामी विवेकानंद
  3.2.1 भगवान बुद्ध निबन्ध का मूल पाठ
  3.2.2 'भगवान बुद्ध' निबन्ध का सार
  3.2.3 व्याख्यांश
  3.2.4 'भगवान बुद्ध' निबन्ध का समीक्षात्मक अध्ययन
3.3 लोकतंत्र एक धर्म है (निबन्ध) : डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन
  3.3.1 'लोकतंत्र एक धर्म है' निबन्ध का मूल पाठ
  3.3.2 'लोकतंत्र एक धर्म है' निबन्ध का सार
  3.3.3 व्याख्यांश
  3.3.4 'लोकतंत्र एक धर्म है' निबन्ध का समीक्षात्मक अध्ययन
3.4 नहीं रुकती है नदी : हीरालाल बाछोतिया
  3.4.1 'नहीं रुकती है नदी' का मूल पाठ
  3.4.2 यात्रा वृत्तान्त की लेखन शैली
  3.4.3 'नहीं रुकती है नदी' यात्रा वृत्तान्त के मूल बिन्दुओं का महत्व और विश्लेषण
3.5 पल्लवन
3.6 अपनी प्रगति जाँचिए प्रश्नों के उत्तर
3.7 सारांश
3.8 मुख्य शब्दावली
3.9 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
3.10 सहायक पाठ्य सामग्री

3.0 परिचय

निबन्ध गद्य एक सर्वाधिक सशक्त एवं प्रचलित विधा है। भाषा निबन्ध में ही अपने पूर्णत्व को प्राप्त होती है। काव्य में जहाँ कवि को अपनी बातें रोचकता व चमत्कार पूर्वक कहने की खुली छूट होती है, कहानी व उपन्यासों में लेखक पात्रों और कथोपकथन के सहारे भावों को उकेर सकने में सक्षम होता है, वहीं निबन्ध की भाषा सीधी एवं विषयपरक होती है। निबन्ध में मनोरंजन की ज्यादा गुंजाइश नहीं होती, जिसके कारण लेखक को भाषा एवं विचार के सहारे ही पाठक की उत्सुकता बनाए रखना पड़ता है। निबन्ध का अर्थ ही निश्छल अनुभूतियों का कसी हुई भाषा में क्रमबद्ध गुम्फन है।

यात्रा वृत्तांत भी साहित्य लेखन की एक प्रमुख विधा है। मानव सृष्टि के आरंभ से ही यात्राएँ करता रहा है और इन यात्राओं की कथाएँ कहता–सुनता रहा है। यात्रा वृत्तांत हर युग में लिखे गए हैं। यात्रा की कथा को शब्दों में लिख देना ही यात्रा वृत्तांत है। यात्रा वृत्तांत का मूल उद्देश्य ही लेखक द्वारा अपनी यात्रा का विवरण देकर पाठक को यात्रा के लिए प्रेरित करना है।

इस इकाई में निबन्ध विधा का परिचय देते हुए स्वामी विवेकानंद के निबन्ध 'भगवान बुद्ध' और डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन के निबन्ध 'लोकतंत्र एक धर्म है' निबन्धों

टिप्पणी

के साथ उनकी व्याख्या एवं समीक्षा की गई है। यात्रा वृत्तांत की शैली एवं साहित्यिक अनुदान की चर्चा करते हुए डॉ. हीरालाल बाछोतिया के यात्रा वृत्तांत 'नहीं रुकती है नदी' की यात्रा वृत्तांत की कसौटियों पर समीक्षा की गई है, साथ ही पल्लवन के अर्थ, प्रकार एवं नियमों की जानकारी दी गई है।

3.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- स्वामी विवेकानंद की निबन्ध शैली से परिचित हो पाएँगे;
- 'भगवान बुद्ध' निबन्ध का समीक्षात्मक अध्ययन कर पाएँगे;
- डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन के साहित्य एवं दर्शन में योगदान से अवगत हो पाएँगे;
- 'लोकतंत्र एक धर्म है' निबन्ध के मूलार्थ को जान पाएँगे;
- डॉ. हीरालाल बाछोतिया के वृत्तांत 'नहीं रुकती है नदी' का विश्लेषण कर पाएँगे;
- पल्लवन की परिभाषा, प्रकारों एवं नियमों की जानकारी प्राप्त कर पाएँगे।

3.2 भगवान बुद्ध (निबन्ध) : स्वामी विवेकानंद

स्वामी विवेकानंद आधुनिक भारतीय चिंतकों में अग्रणी हैं। वे वेदांत के विख्यात और प्रभावशाली आध्यात्मिक गुरु थे। उनका जन्म 12 जनवरी, 1863 को कोलकाता में हुआ था। उनके बचपन का नाम नरेन्द्रनाथ दत्त था। इनकी माता भुवनेश्वरी देवी एक धार्मिक महिला थी। पिता विश्वनाथ दत्त कलकत्ता उच्च न्यायालय में अधिवक्ता थे। दादा जी दुर्गादत्त संस्कृत और फारसी के विद्वान थे। नरेन्द्रनाथ ने 25 वर्ष की उम्र में घर परिवार छोड़कर संन्यासी बन गए थे। बड़े धार्मिक और शिक्षित माहौल में इनका पालन–पोषण हुआ। ये कुल नौ भाई–बहन थे। बचपन में ये बहुत शरारती थे, साथ ही जिज्ञासु भी। अपनी जिज्ञासा शांत करने के लिए अपने परिवार तथा शिक्षकों से बराबर प्रश्न पूछा करते थे। बचपन से ही वे खोजी प्रवृत्ति के थे।

1871 में 8 वर्ष की आयु में उन्होंने ईश्वरचंद्र विद्यासागर मैट्रोपोलिटन इंस्टीट्यूट में प्रवेश लिया और 1877 तक उन्होंने यहीं शिक्षा प्राप्त की। 1877 से 79 तक वे सपरिवार रायपुर में रहे। रायपुर में उन्होंने जीवन की विविधताओं को समझा। रायपुर की पहाड़ियों और घने जंगल में विचरण से उनकी आंतरिक चेतना का विकास हुआ। बचपन से ही उनकी याद्दाश्त बहुत तेज थी और उन्हें बचपन में ही पूरी संस्कृत व्याकरण, रामायण और महाभारत के अध्याय कंठस्थ हो गए थे। 79 में वे पुनः कलकत्ता आ गए। 79 में उन्होंने मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण की और कलकत्ता के प्रेसीडेंसी कॉलिज में प्रवेश लिया। एक वर्ष बाद उन्होंने स्काटिश चर्च कॉलेज में प्रवेश लिया और दर्शनशास्त्र का अध्ययन आरंभ किया। 1884 में बैचलर ऑफ आर्ट्स की डिग्री प्राप्त की।

पिता विश्वनाथ दत्त अपने पुत्र को अंग्रेजी शिक्षा देकर पश्चिमी रंग में रंग देना चाहते थे लेकिन इसके विपरीत नरेन्द्र भारतीय दर्शन के रंग में रंगे हुए थे। 1884 में पिता की मृत्यु के बाद परिवार दीवालिया हो गया। मुसीबत के इस दौर में रिश्तेदारों ने भी मुँह मोड़ लिया। जीवन का यह कठिन दौर नरेन्द्र के मन को उद्वेलित कर गया।

टिप्पणी

इसी समय ईश्वर के अस्तित्व पर उनके मन में बहुत से प्रश्न उठने लगे। उनके मन में किसी को गुरु बनाने की इच्छा बलवती होने लगी। उन्हें कहीं संतुष्टि नहीं मिल रही थी। 1881 में वे रामकृष्ण परमहंस के संपर्क में आए। परमहंस दक्षिणेश्वर में माँ काली के मंदिर में पुजारी थे। यहाँ भी उन्होंने ईश्वर के अस्तित्व से संबंधित प्रश्न पूछे– 'क्या ईश्वर को देखा जा सकता है? क्या आपने ईश्वर को देखा है?' परमहंस जी ने उत्तर दिया कि 'हां मैंने ईश्वर को देखा है और ईश्वर को ऐसे ही देख सकते हैं जैसे तुम मुझे और मैं तुम्हें देख रहा हूँ।' इसके बाद परमहंस जी से उन्होंने दो–तीन मुलाकात और की और संतुष्ट होकर उन्हें अपना गुरु बना लिया। 1885 में रामकृष्ण जी को गले का कैंसर हो गया। 1886 में उनका निधन हो गया। मृत्यु से पूर्व उन्होंने नरेन्द्र को अपना उत्तराधिकारी घोषित किया और उनसे कहा कि जो कुछ भी उनके पास ज्ञान था, वह सब वे उन्हें दे चुके हैं। अब वे उस ज्ञान को युवाओं को देशहित में जाग्रत करने में प्रयोग करें। गुरु जी की मृत्यु के उपरांत बारानगर मठ की स्थापना की और यहाँ अपने आध्यात्मिक प्रयोग करने लगे।

यात्राएँ भ्रमण

मठ की स्थापना के उपरांत उनके जीवन में नया मोड़ आया। भारतीय मठ परंपरा का पालन करते हुए उन्होंने भारत भ्रमण किया। 1990 में संन्यासी के रूप में हाथ में दंड और कमण्डलु लेकर उन्होंने पूरे भारत में पैदल ही भ्रमण किया। पूरा देश उनका घर बन गया। इन्हीं यात्राओं के दौरान उनका नामकरण हुआ– स्वामी विवेकानंद। इन यात्राओं के दौरान वे राजाओं के महलों में भी ठहरे और झोंपड़ों में भी।

1893 में अमेरिका के शिकागो शहर में आयोजित विश्वधर्म संसद में भाग लेने के लिए शिकागो पहुँचे। यहाँ पहले जिन लोगों ने उनकी पोशाक का मजाक बनाया था, बाद में उन्होंने उनके वक्तव्य का लोहा मान लिया। उन्होंने श्रोताओं को 'माई सिस्टर्स एंड ब्रदर्स ऑफ अमेरिका' कहकर संबोधित किया, जिससे श्रोता इतने अभिभूत हो गए कि वे 2 मिनट तक तालियाँ ही बजाते रहे। यहाँ वे कई वर्षों तक शिकागो, न्यूयॉर्क आदि में व्याख्यान देने में व्यस्त रहे। 1894 में उन्होंने न्यूयॉर्क में 'वेदांत सोसायटी' की स्थापना की। अतिशय व्यस्तताओं का असर उनके स्वास्थ्य पर होने लगा। 1895 में उनकी भेंट एक आयरिश महिला मार्गरेट एलिजाबेथ से हुई, जिसे बाद में सिस्टर निवेदिता के नाम से जाना गया। 1896 में वे ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी में मैक्समूलर से मिले। 1897 में विवेकानंद भारत लौटे आए और दक्षिणी क्षेत्र पंबेन, रामेश्वरम आदि क्षेत्रों में व्याख्यान देने लगे। 1899 में अपने गिरते स्वास्थ्य के बावजूद वे भगिनी निवेदिता और स्वामी सूर्यानंद के साथ पुनः अमेरिका चले गए। इस दौरान न्यूयॉर्क में उन्होंने वेदांत सोसायटी की स्थापना की। कैलिफोर्निया में शक्ति आश्रम भी स्थापित किया। 1900 में में धर्मसभा हेतु पुनः पेरिस गए। अंत में 9 दिसंबर 1900 को वे कलकत्ता वापस आ गए। बैलूर में उन्होंने बैलूर मठ की स्थापना की। यहाँ उनसे मिलने वालों में साधारण जन से लेकर अधिकारी और राजनेता भी आते थे।

4 जुलाई 1902 को बेलूर में शाम 7.10 बजे ध्यान के दौरान उन्होंने अंतिम सांस ली। उनका अंतिम संस्कार गंगातट पर किया गया। लगभग 40 वर्ष के छोटे से जीवन काल में उन्होंने अपने देश का परचम पूरी दुनिया में फैला दिया। उन्होंने विदेशों में भारतीय संस्कृति तथा वेद–उपनिषदों का डंका बजा दिया। भारत सरकार उनके जन्मदिन को राष्ट्रीय युवा दिवस के रूप में मनाकर उनके प्रति अपनी प्रशस्ति व्यक्त करती है।

टिप्पणी

रचनात्मक योगदान

पूरी दुनिया में भारत का परचम लहराने वाले विवेकानंद एक बहुत बड़े दार्शनिक और चिंतक हैं। दर्शन और चिंतन रचनात्मक लेखन की जमा–पूँजी है। चिंतन से लेखन में भाव पक्ष समृद्ध होता है। स्वामी विवेकानंद ज्यादातर देश–विदेश में धार्मिक और आध्यात्मिक विषयों पर व्याख्यान देने में ही व्यस्त रहे। बाद में उनके भाषणों को अलग–अलग ढंग से पुस्तकों में संगृहीत किया गया। विवेकानंद द्वारा लिखित पुस्तकों में प्रमुख हैं–

1. राजयोग (1896) इसमें उन्होंने पतंजलि सूत्र की व्याख्या की है
2. ज्ञानयोग (1899)
3. कर्मयोग (1896)
4. आत्मानुभूति और उसके मार्ग
5. मैडिटेशन एंड इट्स मैथड्स
6. लैक्चर्स फ्रॉम कोलम्बो टू अल्मोड़ा

स्वामी विवेकानंद के लेखन की भाषा शैली सरल, सुबोध और प्रवाहपूर्ण है क्योंकि उनका ज्यादातर लेखन भाषण का ही लिपिबद्ध रूपांतर है। उसमें पाण्डित्य प्रदर्शन अथवा क्लिष्ट भाषा–शैली का प्रयोग नाममात्र भी नहीं है। वे हिंदी, संस्कृत के साथ–साथ अंग्रेजी के भी विद्वान थे। बचपन में वे अंग्रेजी नहीं सीखना चाहते थे, क्योंकि उन्हें महसूस होता था कि यह हमें गुलाम बनाने वालों की भाषा है। बाद में उन्होंने यह दुराग्रह छोड़कर अंग्रेजी में भी महारत हासिल कर ली और देश–विदेश में व्याख्यानों से अपनी प्रतिभा का लोहा मनवाया।

स्वामी विवेकानंद जी भगवत् गीता, रामायण, महाभारत, वेद–उपनिषद् के ज्ञाता, और पश्चिमी दर्शन के भी प्रकाण्ड पंडित थे। उन्होंने देश के करोड़ों युवाओं को आजादी का स्वप्न दिया, विदेशों में भारतीय संस्कृति का प्रकाश फैलाया। वे राजनीति को धर्म से अलग रखने में विश्वास नहीं रखते थे। वे सार्वभौम धर्म की कल्पना करते थे। सारा जीवन उन्होंने एक संन्यासी की भाँति व्यतीत किया। उनके हाथ में दंड और कमंडल के सिवाय कुछ नहीं होता था। एक फूटी कौड़ी नहीं होती थी, फिर भी बड़े–बड़े राजनीतिज्ञ और प्रभावी लोग उनके कदमों में सिर झुकाते थे। उन्हें भारतीय पुनर्जागरण का पुरोधा माना जाता है।

3.2.1 भगवान बुद्ध निबन्ध का मूल पाठ

'भगवान बुद्ध' स्वामी विवेकानंद द्वारा अमेरिका के डेट्रॉएट नगर में दिया गया व्याख्यान है जिसे निबन्ध की श्रेणी में रखा गया है। इस व्याख्यान में भगवान बुद्ध की चारित्रिक विशेषताओं को रेखांकित करने के साथ–साथ बौद्ध–धर्म की उपलब्धियों का भी आकलन हुआ है। स्वामी विवेकानंद वेदांत दर्शन के व्याख्याता थे। बौद्ध दर्शन की नास्तिकता से उनकी असहमति थी तथापि उन्होंने बौद्ध–धर्म की करुणाजनित अहिंसा और उदारता की सराहना करते हुए उसकी श्रेष्ठता प्रतिपादित की है। अतः वैदिक–बौद्ध दर्शन की यह समन्वयकारी प्रस्तुति इस पाठ की अद्भुत उपलब्धि है।

टिप्पणी

हर एक धर्म में हम किसी एक प्रकार की साधना को चरम सीमा पर पहुँची हुई पाते हैं। बौद्ध धर्म में निष्काम कर्म का भाव अत्यन्त विकसित है। तुम लोग बौद्ध धर्म तथा ब्राह्मण धर्म को समझने में भूल न करो। बौद्ध धर्म हमारे सम्प्रदायों में से एक है। भारतीय वर्ण–व्यवस्था, कठिन कर्मकाण्ड एवं दार्शनिक वाद–विवादों से ऊबकर गौतम नामक एक महापुरुष ने बौद्ध धर्म की स्थापना की। कुछ लोग कहते हैं कि हमारा एक विशेष कुल में जन्म हुआ है और इसलिए हम उन लोगों से श्रेष्ठ हैं, जिनका जन्म ऐसे वंश में नहीं हुआ। भगवान बुद्ध का इस सिद्धान्त में कोई विश्वास न था– वे इस प्रकार के जाति–भेद के विरोधी थे। और पुरोहित लोग धर्म के नाम पर जो कपटाचरण द्वारा स्वार्थ–सिद्धि करते थे, इसके भी वे घोर विरोधी थे। इसलिए उन्होंने एक ऐसे धर्म का प्रचार किया, जिसमें कामनाओं तथा वासनाओं के लिए स्थान न था। वे दर्शन तथा ईश्वर के संबंध में सम्पूर्ण अज्ञेयवादी थे।

उनसे कई बार ईश्वर के अस्तित्व के सम्बन्ध में प्रश्न पूछे गए, पर उन्होंने सदैव यही उत्तर दिया, "मैं नहीं जानता" उनसे पूछा गया कि मनुष्य का प्रकृत कर्तव्य क्या है। उन्होंने कहा, "शुभ चरित्र बनो और शुभ कर्म करो।" एक बार पाँच ब्राह्मणों ने आकर उनसे विनती की, "भगवन्, हमारे वाद–विवाद का न्याय कीजिए।" उनमें से एक ने कहा, "भगवान्, मेरे शास्त्रों में ईश्वर का यह स्वरूप बतलाया गया है और उसकी प्राप्ति के लिए यह मार्ग दर्शाया गया है।" दूसरे ब्राह्मण ने कहा, "नहीं, यह सब मिथ्या है, क्योंकि मेरे शास्त्र में इसके विपरीत लिखा है और ईश्वर–प्राप्ति का अन्य मार्ग बतलाया गया है।" इस प्रकार दूसरों ने भी शास्त्रों की दुहाई देकर ईश्वर के स्वरूप तथा उसकी प्राप्ति के सम्बन्ध में अपने–अपने मत प्रकट किए। बुद्धदेव यह विवाद शान्तिपूर्वक सुनकर उनसे क्रमशः पूछने लगे, "क्या किसी के शास्त्र में यह भी कथन है कि ईश्वर कभी क्रोध करता है? किसी की हानि करता है या अशुद्ध है?" उन सब ने कहा, "नहीं भगवन्, हमारे सभी शास्त्र यही कहते हैं कि ईश्वर शुद्ध, विकाररहित और कल्याणकर है।" तब भगवान् बुद्ध बोले, "मित्रो, तब तुम पहले शुद्ध और सदाचारी बनने की चेष्टा क्यों नहीं करते, जिससे तुम्हें ईश्वर का ज्ञान हो सके।"

अवश्य ही मैं बुद्ध के समस्त दर्शन का अनुमोदन नहीं करता हूँ। मुझे अपने लिए यथेष्ट दार्शनिक विचार की आवश्यकता प्रतीत होती है। मैं पूर्णतया बौद्ध दर्शन से सहमत नहीं हूँ; किन्तु यह मेरे उस महान् आत्मा के चरित्र एवं भावसौन्दर्य के दर्शन में बाधक नहीं हैं। बुद्ध ही एक व्यक्ति थे, जो पूर्णतया तथा यथार्थ में निष्काम कहे जा सकते हैं। ऐसे अन्य कई महापुरुष थे, जो अपने को ईश्वर का अवतार कहते थे और विश्वास दिलाते थे कि जो उनमें श्रद्धा रखेंगे, वे स्वर्ग प्राप्त कर सकेंगे। पर बुद्ध के अधरों पर अन्तिम क्षण तक ये ही शब्द थे, 'अपनी उन्नति अपने ही प्रयत्न से होगी। अन्य कोई इसमें तुम्हारा सहायक नहीं हो सकता। स्वयं अपनी मुक्ति प्राप्त करो।' अपने सम्बन्ध में भगवान् बुद्ध कहा करते थे, 'बुद्ध शब्द का अर्थ है– आकाश के समान अनन्त ज्ञानसम्पन्न; मुझ गौतम को यह अवस्था प्राप्त हो गई है। तुम भी यदि प्राणपण से प्रयत्न करो, तो उस स्थिति को प्राप्त हो सकते हो।' बुद्ध ने अपनी सब कामनाओं पर विजय पा ली थी। उन्हें स्वर्ग जाने की कोई लालसा न थी और न ऐश्वर्य की ही कोई कामना थी। अपने राज–पाट और सब प्रकार के सुखों को तिलांजलि दे, इस राजकुमार ने अपना सिन्धु–सा विशाल हृदय लेकर नर–नारी तथा जीव–जन्तुओं के कल्याण के हेतु, आर्यावर्त की वीथि में भ्रमण कर भिक्षावृत्ति से जीवन–निर्वाह करते हुए

टिप्पणी

अपने उपदेशों का प्रचार किया। जगत् में वे ही एकमात्र ऐसे हैं, जो यज्ञों में पशुबलि–निवारण के हेतु, किसी प्राणी के जीवन की रक्षा के लिए अपना जीवन भी निछावर करने को तत्पर रहते थे। एक बार उन्होंने एक राजा से कहा, "यदि किसी निरीह पशु के होम करने से तुम्हें स्वर्ग–प्राप्ति हो सकती है, तो पशु के पाश काटकर मेरी आहुति दे दो– शायद तुम्हारा अधिक कल्याण हो सके।" राजा स्तब्ध हो गया! इस प्रकार हम देखते हैं कि भगवान् पूर्ण रूप से निष्काम थे। वे कर्मयोग के ज्वलन्त आदर्श स्वरूप थे और जिस उच्चावस्था पर वे पहुँच गए थे, उससे प्रतीत होता है कि कर्म–शक्ति द्वारा हम भी उच्चतम आध्यात्मिक स्थिति को प्राप्त कर सकते हैं।

ईश्वर में विश्वास रखने से अनेक व्यक्तियों का मार्ग सुगम हो जाता है, किन्तु बुद्ध का चरित्र बताता है कि एक ऐसा व्यक्ति भी, जो नास्तिक है, जिसका किसी दर्शन में विश्वास नहीं, जो न किसी सम्प्रदाय को मानता है और न किसी मन्दिर–मस्जिद में ही जाता है, जो घोर जड़वादी है, परमोच्च अवस्था प्राप्त कर सकता है। बुद्ध के मतामत या कार्यकलापों का मूल्यांकन करने का हमें कोई अधिकार नहीं। उनके विशाल हृदय का सहस्रांश पाकर भी मैं स्वयं को धन्य मानता। बुद्ध की आस्तिकता या नास्तिकता से मुझे कोई मतलब नहीं। उन्हें भी वह पूर्णावस्था प्राप्त हो गई थी, जो अन्य जन भक्ति, ज्ञान या योग के मार्ग से प्राप्त करते हैं। केवल इसमें–उसमें विश्वास करने से ही पूर्णता प्राप्त नहीं होती, कल्पना से कोई अर्थ–सिद्धि नहीं होती। यह तो शुक–सारिका भी कर लेते हैं। केवल निष्काम कर्म ही मनुष्य को पूर्णत्व तक पहुँचा सकता है।

3.2.2 'भगवान बुद्ध' निबन्ध का सार

भगवान बुद्ध स्वामी विवेकानंद द्वारा अमेरिका के डेट्रॉएट नगर में दिया गया व्याख्यान है। इस निबन्ध में भगवान बुद्ध के जीवन–दर्शन को प्रतिपादित करने के साथ–साथ उनके द्वारा प्रतिपादित बौद्ध धर्म की उपलब्धियों का भी आकलन हुआ है।

बौद्ध धर्म हमारे अनेक संप्रदायों में से एक है। गौतम बुद्ध के समय में भारत वर्ण व्यवस्था और कठिन कर्मकांडों में जकड़ा हुआ था। जगह–जगह दार्शनिक वाद–विवाद हुआ करते हैं। जाति–प्रथा के कारण समाज में भेदभाव बना हुआ था। इस कारण बुद्ध जातिप्रथा के घोर विरोधी थे। दर्शन और ईश्वर के प्रति भी उनकी आस्था न थी। मानव मात्र को आश्रयदेने के लिए उन्होंने अपना एक नया धर्म चलाया। ईश्वर के अस्तित्व व स्वरूप पर होने वाले वाद–विवादों को वे सदैव सूझ–बूझ के साथ सुलझाकर शास्त्रों के शब्दजाल से परे सार तत्व को ग्रहण करने का उपदेश देते थे। शास्त्रार्थ के वाग्जाल से परे उनका उपदेश आचरण पर होता था।

विवेकानंद कहते हैं कि वे बौद्ध दर्शन के भी अंध समर्थक या संपूर्ण समर्थक नहीं हैं। वे बौद्ध दर्शन के भाव–सौंदर्य को स्वीकार करते हैं। बुद्ध ने कुछ पूर्ववर्ती महापुरुषों की भाँति स्वयं को ईश्वर का अवतार घोषित करके अपनी पूजा–अर्चना नहीं कराई। इस तरह की किसी भी कामना से वे मुक्त थे। अंतिम समय तक उनका यही उपदेश था कि मुक्ति अपने आचरण और अपने प्रयास से ही संभव है। निष्काम बुद्ध को स्वर्ग अथवा ऐश्वर्य की कोई चाह न थी। वे तो राजकुमार थे। स्वयं सारे राजपाट को छोड़कर समस्त नर–नारियों के कल्याण के लिए तपस्या करने निकले थे और भारत की गलियों में घूम–घूमकर भिक्षावृत्ति से प्राप्त अन्न से अपना जीवन–यापन करते थे।

टिप्पणी

भारत में प्राचीन काल से रूढ़ परंपरा के रूप में प्रचलित पशुबलि का भी उन्होंने विरोध किया। तथाकथित स्वर्ग की प्राप्ति के लिए निरीह जानवर की बलि दे रहे राजा को उन्होंने बोध कराने के उद्देश्य से कहा था– 'राजन, उस पशु के पाश काटकर मेरी आहुति दे दो– शायद तुम्हारा अधिक कल्याण हो सके।' इस प्रकार बुद्ध अपने जीवन के प्रति भी निष्काम थे और दूसरों को सही बात समझाने के लिए वे उपदेशों के स्थान पर आचरण का आश्रय लेते थे।

बुद्ध किसी दर्शन अथवा ईश्वर व मंदिर जाने में आस्था नहीं रखते थे। उनका मानना था कि इन सब चीजों में आस्था रखे बिना भी उच्च पद को प्राप्त किया जा सकता है। बुद्ध के दर्शन पर किसी को सहमति–असहमति हो सकती है लेकिन उनके हृदय की विशालता और व्यक्तित्व की महानता पर किसी को लेशमात्र भी शंका नहीं हो सकती। निःसंदेह वे ज्ञान की पूर्णावस्था को प्राप्त हो गए थे। उनके उपदेशों को सु–सारिका की भाँति रटने से कोई लाभ नहीं होगा, अपितु उन पर आचरण से ही संपूर्ण मनुष्यत्व को प्राप्त किया जा सकता है।

3.2.3 व्याख्यांश

- भारतीय वर्ण–व्यवस्था, कठिन कर्मकाण्ड एवं दार्शनिक ..... किया, जिसमें कामनाओं तथा वासनाओं के लिए स्थान न था। वे दर्शन तथा ईश्वर के संबंध में सम्पूर्ण अज्ञेयवादी थे।

संदर्भ– प्रस्तुत व्याख्यार्थ उद्धृत अवतरण स्वामी विवेकानंद द्वारा रचित 'भगवान बुद्ध' शीर्षक निबन्ध से अवतरित है। यह निबन्ध वस्तुतः स्वामी विवेकानंद द्वारा अमेरिका के डेट्रॉएट नगर में दिए गए भाषण का अंश है। इस व्याख्यान में विवेकानंद ने भगवान बुद्ध की चारित्रिक विशेषताओं को रेखांकित करने के साथ–साथ बौद्ध धर्म की उपलब्धियों का भी आकलन किया है।

प्रसंग– विवेकानंद का कहना है कि हम हर एक धर्म में किसी एक प्रकार की साधना को चरमसीमा पर पहुँचा हुआ पाते हैं। बौद्ध धर्म में निष्काम कर्म की साधना है। इस अवतरण में विवेकानंद ने भगवान बुद्ध की आस्था और मान्यताओं को रेखांकित किया है।

व्याख्या– गौतम बुद्ध के आविर्भाव के समय भारतीय समाज वर्णव्यवस्था के नाम पर जाति–व्यवस्था में जकड़ा हुआ था। कुछ वर्णों को ऊँचा और अन्य को नीचा समझा जाता था। ऊँचे वर्ण वाले लोग विशेषतः ब्राह्मण अपने आपको श्रेष्ठ समझते थे और शूद्र वर्ण वाले लोगों को अस्पृश्य मानकर उन्हें नीचा दिखाते थे। जन्म के आधार पर ऊँच–नीच की भावना बहुत अमानवीय थी। इसके कारण शूद्र जाति के लोगों पर अमानवीय अत्याचार हो रहे थे। उन्हें समाज से अलग बस्ती में रहने को विवश किया जाता था। गौतम बुद्ध का विशाल हृदय मानव–मानव में इस प्रकार के भयंकर भेदभाव को देखकर क्षुब्ध हो उठा और उन्होंने समस्या की मूल जड़ वर्णव्यवस्था को ही अस्वीकार कर दिया। उन्होंने जन्म के स्थान पर कर्म को माना। वे देख रहे थे कि समाज में कुछ शिक्षित और पण्डित लोग भोली–भाली जनता को दार्शनिक वाद–विवाद में उलझा रहे थे। पण्डित–पुरोहित धार्मिक कर्मकाण्ड के नाम पर अनपढ़ जनता को मिथ्या भय दिखाकर लूट रहे थे। पुरोहित सत्याचारण का अनुसरण नहीं कर रहे थे। वे पाप–पुण्य और स्वर्ग–नरक का भय दिखा कर जनता को बेवकूफ बना रहे थे।

टिप्पणी

इसलिए गौतम बुद्ध के मन में जाति–प्रथा के प्रति वितृष्णा हो गई थी। उन्होंने प्रताड़ित मानवता को इस कर्मकाण्डी धर्म से निकालने का मार्ग निकाला। उन्होंने एक नये धर्म का प्रचार किया, जिसमें वर्ग–भेद, कर्मकाण्ड की कोई जगह नहीं थी। न स्वर्ग की कामना थी और न नरक का डर। न यज्ञ–हवन कराने थे और न किसी को मोटी–मोटी दान–दक्षिणा देनी थी। पुरोहित लोग ये सारे प्रपंच ईश्वर के नाम पर रच रहे थे। चारों वर्णों की उत्पत्ति के संबंध में भी उन्होंने विचित्र सी कहानी बना रखी है कि अमुक वर्ण ब्रह्मा के मस्तक से निकला है और दूसरा पैरों से। पैरों से निकलने वाले वर्ण को शूद्र नाम दिया गया और उसका कर्तव्य अपने से ऊपर के तीन वर्णों की सेवा बताया गया। ईश्वर के नाम पर हो रहे इस अमानवीय भेदभाव ने गौतम बुद्ध के मन में दर्शन और ईश्वर के प्रति अनास्था भर दी और उन्होंने अपनी इस अनास्था को घोषित भी कर दिया। ईश्वर के अस्तित्व के संबंध में प्रश्न पूछे जाने पर वे कह देते थे कि मैं ईश्वर को नहीं जानता। उन्होंने प्रत्यक्ष को स्वीकार किया, अप्रत्यक्ष को नहीं। दर्शन के आधार पर कुछ पण्डित लोग शास्त्रार्थ के नाम पर लोगों को गुमराह कर रहे थे। लोगों को अपने वाग्जाल में उलझा रहे थे, इसलिए उन्होंने दर्शन को भी अस्वीकार कर दिया।

विशेष

1. किसी भी व्यक्ति की मान्यता और आस्थाओं के पीछे कुछ न कुछ सामाजिक कारण अवश्य होते हैं। मान्यताएँ शून्य में नहीं बनती। ईश्वर और वर्णव्यवस्था के नाम पर चल रहे वर्णभेद, जाति–प्रथा जन्य अमानवीय भेदभाव को प्रत्यक्ष देखकर ही गौतम बुद्ध के मन में दर्शन और ईश्वर के प्रति अनास्था ने जन्म लिया।
2. भारतीय वर्णव्यवस्था के नाम पर समाज में अमानवीय भेदभाव के अनेक चित्र हमें मुंशी प्रेमचंद के उपन्यासों और कहानियों– ठाकुर का कुआँ, सद्गति, सवा सेर गेहूँ आदि में देखने को मिल जाता है।
3. निबन्ध भाषण का ही लिखित रूप है और भाषण की भाषा सरल सुबोध और प्रवाहपूर्ण होती है ताकि वह लोगों को तुरंत समझ में आ जाए। अतः इस निबंध की भाषा भी अत्यंत सरल है। विवेकानंद ने दुरुह और क्लिष्ट शब्दों का प्रयोग नहीं किया। यह सहज रूप से मुंह से निसृत भाषा है।

- बुद्ध ही एक व्यक्ति थे, ... स्वयं अपनी मुक्ति प्राप्त करो।'

संदर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– गौतम बुद्ध ईश्वर के संबंध में अनास्थावादी थे। ईश्वर के नाम पर समाज में फैले हुए प्रपंचों ने ही उनमें ईश्वर के प्रति अनास्था भर दी। ईश्वर के अस्तित्व के संबंध में पूछे जाने पर वे सदैव यही उत्तर देते थे– "मैं नहीं जानता।" प्रस्तुत व्याख्यार्थ उद्धृत अवतरण में विवेकानंद गौतम बुद्ध की चारित्रिक विशेषताओं पर प्रकाश डाल रहे हैं।

व्याख्या– विवेकानंद कहते हैं कि गौतम बुद्ध ही एक ऐसे व्यक्ति हैं जिन्होंने बिना किसी लाग–लपेट के ईश्वर के अस्तित्व में अनास्था व्यक्त कर दी। ऐसा करने के पीछे उनके हृदय का सात्विक भाव ही था, कोई स्वार्थ या कामना नहीं थी। उन्हें सच्चे अर्थों में निष्काम पुरुष कहा जा सकता है। उनसे पहले बहुत से महापुरुष हुए जो सामाजिक प्रतिष्ठा और लोगों की श्रद्धा बनने की कामना से स्वयं को ईश्वर घोषित कर देते थे। ऐसा करने के पीछे उनका निहित स्वार्थ होता है कि लोग उनकी पूजा–अर्चना करें।

टिप्पणी

उनके आस–पास उनकी प्रशस्ति में जुटे रहें। यश की कामना महापुरुषों की स्वाभाविक दुर्बलता है। संतोष का विषय है कि भगवान बुद्ध इस दुर्बलता से मुक्त थे और उन्होंने स्वयं को कभी ईश्वर का अवतार नहीं कहा। उनसे पहले के कुछ महापुरुष स्वयं को अवतारी पुरुष घोषित कर देते थे और यह प्रचारित–प्रसारित करते थे कि वे अवतारी पुरुष हैं। अपनी सेवा कराने के लिए वे उस सेवा को स्वर्ग से भी जोड़ देते थे। वे उपयुक्त माध्यम से साधारण जनता में यह बात फैला देते थे कि उनकी सेवा से स्वर्ग की प्राप्ति होगी। इस तरह का भ्रामक प्रचार उन अवतारी पुरुषों का स्वार्थपूर्ण कपटाचरण ही कहलाएगा। लेकिन बुद्ध यश की कामना से परे हो गए थे। वे मनुष्य की आंतरिक शक्ति में विश्वास रखते थे। वे यही उपदेश देते थे कि अपनी उन्नति अपने ही प्रयासों से होती है। मुक्ति की भी कामना है तो वह भी अपने प्रयत्नों से ही प्राप्त होगी। कोई किसी को मुक्त नहीं कर सकता। मुक्ति देने का दावा तो कर सकते हैं किंतु सच बात तो यह है कि किसी की मुक्ति किसी के हाथ में नहीं है। अपने भाग्य का निर्माता मनुष्य स्वयं है। उसकी मुक्ति भी स्वयं उसके हाथ में है।

विशेष

1. भगवान बुद्ध की चारित्रिक विशेषताओं पर वस्तुनिष्ठ भाव से प्रकाश डाला गया है। यद्यपि विवेकानंद स्वयं वेदांत दर्शन के अनुयायी थे और ईश्वर के प्रति भी आस्था रखते थे, किंतु वे दूसरों की आस्था–अनास्था को भी सम्मान देते थे। भगवान बुद्ध का एक प्रसिद्ध कथन है 'अप्प दीपो भव।' अर्थात अपना दीपक स्वयं बनो। किसी के दीपक की रोशनी में मत चलो। अपने आचरण का दीपक जलाकर उसकी रोशनी में स्वयं चलो। किसी कवि ने भी इस बात को कितने प्रभावी ढंग से कहा है–

   सबसे अधिक कठिन है जग में
   अपना ही निर्माण
   क्योंकि अपने आपसे लड़ते रहना
   काम नहीं आसान।

2. भाषा शैली अत्यंत सरल व सुबोध है।

- बुद्ध ने अपनी सब कामनाओं पर विजय पा ली थी ..... अपने उपदेशों का प्रचार किया।

संदर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– भगवान बुद्ध का व्यक्तित्व बड़ा विराट है। वे कपिलवस्तु का राजपाट छोड़कर मानव मात्र के कल्याण के लिए तपस्या करने निकल पड़े थे। उनके मन में धन–वैभव व राज–पाट, स्त्री–सुत आदि का कोई आकर्षण नहीं था। विवेकानंद ने अपने भाषण के इस अंश में गौतम बुद्ध की निष्कामता पर प्रकाश डाला है।

व्याख्या– सामान्यतः मनुष्य कामनाओं का पुतला होता है। कामनाएँ व्यक्ति को सारा जीवन अपने इशारों पर चलाती रहती हैं। मनुष्य कामनाओं के वशीभूत होकर न जाने क्या–क्या करता रहता है किंतु बुद्ध ने अपनी साधना से कामनाओं पर विजय पा ली थी। यश या प्रशस्ति आदि की भी कोई कामना उनके मन में शेष नहीं थी। सामान्यतया

टिप्पणी

लोगों को स्वर्ग की कामना होती है। स्वर्ग के बहुत सारे सुख–स्वप्न दिखाकर लोगों को उस तरफ लालायित किया जाता है किंतु बुद्ध को स्वर्ग की भी कोई कामना नहीं थी। कामनाएँ हृदय में सिर उठाती हैं, लेकिन मन को साधकर उन पर नियंत्रण पाना होता है। बुद्ध ऐसा करके जितेन्द्रिय हो गए थे। ऐश्वर्य की कामना होने का तो प्रश्न ही नहीं उठता था क्योंकि ऐश्वर्य को तो वे स्वयं ही छोड़ कर आए थे। सुख–शयन, खान–पान आदि के समस्त सुखों को तिलांजलि देकर वे राजकुमार से भिक्षुक बन गए थे। वे अपने भौतिक सुखों से ऊपर उठकर सबके लिए जीना चाहते थे। सबके दुखों को दूर करना चाहते थे। उनका हृदय अब समुद्र जैसा विशाल हो गया था, जिसमें सबके लिए स्थान था। केवल मानवों के लिए ही नहीं, अपितु मानवेतर मूक प्राणियों के लिए भी। उन्होंने पशुबलि को दूर करने के लिए न केवल उपदेश दिए, अपितु बलि हो रहे पशु को बचाने के लिए स्वयं को बलि के लिए प्रस्तुत कर लोगों के हृदय–परिवर्तन किए। राजकुमार के रूप में ऐशो–आराम का जीवन बिताने वाले बुद्ध स्वेच्छा से नगर–नगर गलियों में घूमकर भिक्षा माँगते थे और उसी से ही अपना जीवन–यापन करते थे।

विशेष

1. यहाँ विवेकानंद ने बुद्ध के व्यक्तित्व का चरित्रांकन करते हुए उनकी निष्कामता, करुणार्द्रता, अतिमानवीयता और सादगीपूर्ण जीवन को उजागर किया है। सादगी संन्यास का मूलमंत्र है। यदि संन्यास में भी ऐश्वर्य आ जाए (जैसा कि वर्तमान युग के साधु–संतों के आश्रमों में देखने को मिलता है) तो उस संन्यास का अर्थ ही क्या है। वस्तुतः हर प्रकार की कामनाओं और सुखों से मुक्त हो जाना ही संन्यास है। समाज को विभिन्न बुराइयों से मुक्त करने में सहयोग देना भी संन्यासी का दायित्व होता है।
2. भाषा–शैली बहुत प्रभावपूर्ण है। आवश्यकतानुसार लघु–दीर्घ वाक्यों का प्रयोग किया गया है। 'सिन्धु–सा विशाल हृदय' वाक्यांश बड़ा प्रभावी व सटीक है।

- बुद्ध की आस्तिकता या नास्तिकता से ..... कर्म ही मनुष्य को पूर्णत्व तक पहुँचा सकता है।

संदर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– प्रस्तुत व्याख्यार्थ उद्धृत अवतरण 'भगवान बुद्ध' निबन्ध का अंतिम भाग है। समूचे निबंध में लेखक विवेकानंद ने निबन्ध के शीर्षक के अनुरूप भगवान बुद्ध के व्यक्तित्व की विशिष्टताओं पर प्रकाश डाला है। भगवान बुद्ध ने स्वयं को कभी भी अवतारी पुरुष घोषित नहीं किया। वे स्वर्ग–नरक यहाँ तक कि ईश्वर में भी आस्था नहीं रखते थे। भगवान बुद्ध की इन्हीं आस्थाओं पर विवेकानंद अपनी गंभीर प्रतिक्रिया व्यक्त कर रहे हैं।

व्याख्या– विवेकानंद का कहना है कि भगवान बुद्ध की आस्तिकता या नास्तिकता से उन्हें कोई सरोकार नहीं। इससे वे असहमत भी हो सकते हैं। असहमति के बावजूद भी किसी की आस्था और विराटता को स्वीकारा और सराहा जा सकता है। यह मानने में किसी को कोई संकोच नहीं होना चाहिए कि उन्होंने साधना की वही पूर्णावस्था प्राप्त कर ली थी, जिसे कुछ खास जन भक्ति, ज्ञान या योग के मार्ग से प्राप्त करते हैं। केवल

टिप्पणी

विश्वास से सिद्धि नहीं मिलती। तपस्या और अनवरत साधना से ही सिद्धि मिलती है। मनोवासनाओं पर विजय प्राप्त करनी पड़ती है। मन को रोज साधना पड़ता है। मन को साधना कोई सरल कार्य नहीं है क्योंकि मन बहुत चंचल होता है। उसमें संकल्प–विकल्प का बहुत आलोड़न–विलोड़न चलता रहता है। विश्वास के साथ साधना का संयोग बहुत जरूरी है। केवल नाम–स्मरण भी काफी नहीं होता। बहुत से लोग माला जपते रहते हैं लेकिन ध्यान कहीं और होता है। ऐसे जप का भी कोई लाभ नहीं मिलता। ध्यानहीन जप तोता–मैना के रटन्त की भाँति निरर्थक होता है। नाम स्मरण की सामाजिक रूप से कोई सार्थकता नहीं है। सामाजिक सार्थकता कर्मयोगी बनने में है और कर्म भी निष्काम होना चाहिए। अपने जीवन–यापन के लिए तो सभी कर्म करते हैं। वह कर्म आत्मकेंद्रित व स्वार्थपूर्ण कहे जाएँगे। समाज के लिए निष्काम कर्म करके ही मनुष्य पूर्णता और सार्थकता को प्राप्त होता है। गौतम बुद्ध ने ऐसा ही किया। इसलिए वे साधना की चरमावस्था पर पहुँचे।

विशेष

1. भगवान बुद्ध के चारित्रिक वैशिष्ट्य को उजागर किया गया है। आस्तिकता की अपेक्षा निष्काम कर्म को अधिक महत्व दिया गया है।
2. भक्ति यदि मात्र नाम–स्मरण तक सीमित हो तो वह समाज के लिए उपादेयता नहीं रखती। समाज के लिए तो कर्मों का महत्व ही सबसे ज्यादा है।
3. बिना अर्थ समझे और बिना एकाग्र ध्यान के नाम जपने को तोता–मैना के रटन्त की भाँति निरर्थक बताया है।
4. भाषा शैली सरल–सुबोध व प्रभावपूर्ण है। भाषा की सम्प्रेषणीयता अद्‌भुत है।
5. गीता के निष्काम कर्मयोग सिद्धांत को प्रतिष्ठित किया गया है।

3.2.4 'भगवान बुद्ध' निबन्ध का समीक्षात्मक अध्ययन

निबन्ध गद्य की एक प्रचलित व महत्वपूर्ण विधा है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल के शब्दों में "यदि गद्य कवियों या लेखकों की कसौटी है तो निबन्ध गद्य की कसौटी है। भाषा की पूर्ण शक्ति का ज्ञान निबन्ध से ही सबसे अधिक संभव होता है। निबन्ध शब्द 'नि उपसर्ग तथा बन्ध धातु में घञ प्रत्यय लगाकर बना है जिसका शाब्दिक अर्थ है 'बाँधना' अर्थात कसा हुआ 'बंध'। किंतु साहित्य में निबन्ध का आशय उस गद्य रचना से है, जिसमें किसी विषय–विशेष को लेकर विचारों के क्रमबद्ध गुम्फन से उसका समग्र विवेचन किया जाता है। गद्य की भाषा की अभिव्यंजना–शक्ति का सबसे अधिक प्रसार इसी विधा में होता है।" हिंदी के सुप्रसिद्ध विद्वान जयनाथ नलिन ने निबन्ध की परिभाषा देते हुए कहा है– 'निबन्ध किसी विषय पर स्वाधीन चिंतन और निश्छल अनुभूतियों का एक सजीव और मर्यादित गद्यात्मक प्रकाशन है।'

'भगवान बुद्ध' निबन्ध वस्तुतः स्वामी विवेकानंद द्वारा अमेरिका के डेट्रॉएट नगर में दिए गए भाषण का एक अंश है जिसे निबन्ध की श्रेणी के अंतर्गत रखा गया है। यह लिखने की दृष्टि से नहीं लिखा गया है, तथापि इसमें निबन्ध की समूची विशेषताएँ

बखूबी दृष्टव्य है। स्वरूप की दृष्टि से यह विचारात्मक लघु निबन्ध के अंतर्गत आता है। निबन्ध के तत्वों के आधार पर इसका विवेचन इस प्रकार है–

टिप्पणी

गंभीर विषय–विवेचन : विचारात्मक निबन्धों में बुद्धि की प्रधानता व विचारात्मकता बहुत अधिक होती है। इनमें लेखक नवीन विचार दर्शन देता है। कभी–कभी विचारात्मक निबन्ध नीरस और रुखे–से हो जाते हैं, अतः विचारों को तीखे तीर न बनाकर मीठे घूंट बनाना लेखक की रचनात्मक सिद्धि मानी जाती है। निबन्धकार इन निबन्धों में पाठकों का मस्तिष्क नवीन विचार–पथ पर ऐसे दौड़ाता है कि हमारे तंतुओं में चेतना के तार बजते हैं।

विवेच्य निबन्ध में सुप्रसिद्ध दार्शनिक एवं चिंतक स्वामी विवेकानंद ने भगवान बुद्ध का जीवन परिचय नहीं दिया, अपितु उनकी चारित्रिक विशेषताओं को रेखांकित करते हुए बौद्ध दर्शन के वैशिष्ट्य को संक्षेप में उभारा है। लेखक प्रारंभ में कि बौद्ध धर्म की उद्‌भावना के मूल में क्या परिस्थितियाँ रही– "भारतीय वर्ण व्यवस्था, कठिन कर्मकाण्ड एवं दार्शनिक वाद–विवादों से ऊबकर गौतम नामक महापुरुष ने बौद्ध धर्म की स्थापना की... वे इस प्रकार के जाति भेद के विरोधी थे और पुरोहित लोग धर्म के नाम पर जो कपटाचरण द्वारा स्वार्थ–सिद्धि करते थे, इसके भी वे घोर विरोधी थे। इसलिए उन्होंने एक ऐसे धर्म का प्रचार किया जिसमें कामनाओं और वासनाओं के लिए स्थान न था। वे दर्शन और ईश्वर के संबंध में संपूर्ण अज्ञेयवादी थे।"

इसके उपरांत लेखक गौतम बुद्ध और उनके शिष्यों की बातचीत के माध्यम से यह स्पष्ट करता है कि बुद्ध ईश्वर के प्रति आस्थावान नहीं थे। लेकिन वे शिष्यों के द्वारा ईश्वर के अस्तित्व के बारे में प्रश्न पूछे जाने पर ईश्वर का खंडन न करके यही कहते थे– "मैं नहीं जानता।" उनका यह कहना अपने आप में बहुत महत्वपूर्ण है। इससे सिद्ध होता है कि वे अनुभूत सत्य को ही व्यक्त करते थे। परंपरा अथवा संस्कारों के नाम पर मिथ्या भाषण न कर सकते थे। 'न जानने' और 'न मानने' में अंतर है। 'न जानने' में जहाँ अपनी अल्पज्ञता का आभास दिया जाता है वहीं 'न मानने' में अहंकार का। अहंकारी से अल्पज्ञ होना अच्छा है। शिष्यों द्वारा ईश्वर के स्वरूप पर शास्त्रों में अलग–अलग रूपाकार की चर्चा होने के विषय पर वे शिष्यों से पूछ लेते थे– 'क्या किसी के शास्त्र में यह भी कथन है कि ईश्वर कभी क्रोध करता है, किसी की हानि करता है या अशुद्ध है।' शिष्यों द्वारा उत्तर 'ना' में मिलने पर बुद्ध उन्हें शुद्ध व सदाचारी जीवन जीने की शिक्षा सरलता से दे पाते थे– 'मित्रो, तब तुम पहले शुद्ध और सदाचारी बनने की चेष्टा क्यों नहीं करते, जिससे तुम्हें ईश्वर का ज्ञान हो सके।'

निबन्ध में गौतम बुद्ध की समस्त मानव जाति के साथ–साथ मानवेतर प्राणियों के प्रति करुणा, पशु–बलि का निषेध आदि का भी वर्णन है। बौद्ध धर्म के वैशिष्ट्य का उल्लेख तो है ही, साथ ही उसे समझने में भूल न करने का अनुरोध भी है– "बौद्ध धर्म में निष्काम धर्म का भाव अत्यंत विकसित है। तुम लोग बौद्ध धर्म और ब्राह्मण धर्म को समझने में भूल न करो। बौद्ध धर्म हमारे संप्रदायों में से एक है।"

इस प्रकार हम देखते हैं कि इस संक्षिप्त निबन्ध में विवेच्य विषय का विवेचन–विश्लेषण भलीभाँति किया गया है। लेखक अपने विषय पर ही केंद्रित रहता है और बौद्ध दर्शन पर अपनी सधी हुई प्रतिक्रिया देकर निबन्ध का समापन कर देता है।

टिप्पणी

निबन्धकार का व्यक्तित्व प्रकाशन : निबन्ध में निबन्धकार के व्यक्तित्व की प्रतिष्ठा बहुत आवश्यक है। स्वयं को प्रकट करने की बेचैनी ही निबन्ध के व्यक्तित्व को आकार देती है। शुद्ध रूप से आत्माभिव्यक्ति का विराटीकरण निबन्ध में ही होता है। निबन्ध लेखक के स्वाधीन मानसिक चिंतन और निश्छल अनुभूतियों का गद्यात्मक रूप है। निबन्ध केवल वर्ण्य विषय का वर्णन मात्र न होकर विषय के संबंध में लेखक का स्वगत भाषण कहा जा सकता है। निजी दृष्टिकोण की अभिव्यक्ति में ही निबन्ध कला का चरमोत्कर्ष माना गया है। इसमें लेखक को अपनी वैयक्तिक विचारधारा के प्रकाशन का पूर्ण अवसर मिलता है।

प्रस्तुत निबन्ध में भी लेखक स्वामी विवेकानंद ने प्रसंगानुसार अपना अभिमत व्यक्त किया है। क्योंकि निबन्ध वस्तुतः भाषण का ही रूपांतर है, इसलिए इसमें कई स्थलों पर लेखक का निजी मत प्रकट हुआ है– "तुम लोग बौद्ध धर्म को समझने में भूल न करो। बौद्ध धर्म हमारे संप्रदायों में से एक है।" निबन्ध के अंत में बुद्ध और बौद्ध धर्म के संबंध में निष्कर्ष निकालते हुए लेखक कहता है– 'वे कर्मयोग के ज्वलंत आदर्श स्वरूप थे और जिस उच्चावस्था पर वे पहुँच गए थे, उससे प्रतीत होता है कि कर्मशीलता द्वारा हम भी उच्चतम आध्यात्मिक स्थिति को प्राप्त कर सकते हैं... बुद्ध के मतामत या कार्यकलापों का मूल्यांकन करने का हमें कोई अधिकार नहीं। उनके विशाल हृदय का सहस्रांश पाकर भी मैं स्वयं को धन्य मानता। बुद्ध की आस्तिकता या नास्तिकता से मुझे कोई मतलब नहीं।" इस प्रकार हम देखते हैं कि निबन्धकार के व्यक्तित्व प्रकाशन की दृष्टि से भी निबन्ध समृद्ध बन पड़ा है। निबन्धकार स्पष्ट रूप से एक स्थल पर अपना अभिमत प्रकट करते हुए कहता है– "अवश्य ही मैं बुद्ध के समस्त दर्शन का अनुमोदन नहीं करता हूँ। मुझे अपने यथेष्ट दार्शनिक विचार की आवश्यकता प्रतीत होती है। मैं पूर्णतया बौद्ध दर्शन से सहमत नहीं हूँ, किंतु यह मेरे उस महान आत्मा के चरित्र एवं भावसौंदर्य के दर्शन में बाधक नहीं है।"

तार्किकता, भावात्मकता एवं रोचकता का समावेश : वैचारिक निबन्धों में तार्किकता एवं रोचकता का समावेश होना भी नितांत वांछनीय है। विचार तर्कपूर्ण ढंग से प्रस्तुत किए जाएँ तो अधिक ग्राह्य होते हैं। रोचकता के समावेश से निबन्ध पठनीय हो जाता है।

निबन्ध के प्रथम अनुच्छेद में लेखक ने तर्क देकर बताया कि गौतम बुद्ध ने बौद्ध धर्म की स्थापना क्यों की "भारतीय वर्ण व्यवस्था, कठिन कर्मकाण्ड एवं दार्शनिक वाद–विवादों से ऊबकर गौतम नामक एक महापुरुष ने बौद्ध धर्म की स्थापना की।" पशु–बलि से स्वर्ग–प्राप्ति की धारणा अथवा अंधविश्वास पर गौतम बुद्ध बड़े तर्कपूर्ण ढंग से बलि देने को उद्यत राजा को समझाते हुए कहते हैं– "यदि किसी निरीह पशु के होम करने से तुम्हें स्वर्ग की प्राप्ति हो सकती है, तो मनुष्य के होम से और भी उच्च फल की प्राप्ति होगी।" यह तर्क संबंधित राजा के हृदय में शूल–सा गड़ जाता है और वह क्रूर कर्म करने से रुक जाता है।

तार्किकता के साथ–साथ निबन्ध में भावात्मकता का भी समावेश है। जाति प्रथा से प्रताड़ित लोगों की पीड़ा से द्रवित होकर गौतम बुद्ध का जाति–भेद का विरोधी बन जाना उनकी हृदय की भावुकता को ही दर्शाता है। पशु को बलि से बचाने के लिए वे राजा के सामने अपनी बलि देने को प्रस्तुत हो गए थे– 'राजन! उस पशु के पाश

टिप्पणी

काटकर मेरी आहुति दे दो–शायद तुम्हारा अधिक कल्याण हो सके।' बुद्ध की इसी करुण भावुकता के कारण विवेकानंद ने उनके हृदय को सिंधु–सा विशाल बताया है– "इस राजकुमार ने अपना सिंधु–सा विशाल हृदय लेकर नर–नारी तथा जीव–जंतुओं के कल्याण के लिए आर्यावर्त की वीथि में भ्रमण कर भिक्षावृत्ति से जीवन–निर्वाह करते हुए अपने उपदेशों का प्रचार किया।"

दार्शनिक विषय पर वैचारिक निबन्ध होते हुए भी निबन्ध क्लिष्ट अथवा बोझिल नहीं है। लेखक की रोचक भाषा–शैली ने इसकी रोचकता को बनाए रखा है। पहली बात तो यही है कि निबन्ध है ही बहुत संक्षिप्त। दूसरे लेखक ने दो स्थलों पर संवाद–शैली का प्रयोग करता है। एक स्थल पर शिष्यों द्वारा भगवान के स्वरूप के विषय में मत विभिन्नता होने पर गौतम बुद्ध का प्रश्न था– 'क्या किसी के शास्त्र में यह भी कथन है कि ईश्वर कभी क्रोध करता है? किसी की हानि करता है? या अशुद्ध है?" इस प्रकार के वृत्तांतों से निबन्ध में रोचकता का समावेश हुआ है।

परिष्कृत भाषा–शैली : संक्षिप्तता, सघन गठन, कसे–कसे वाक्य निबन्ध शैली की शान हैं। बड़ी से बड़ी बात कम शब्दों में कहना आदर्श निबन्ध शैली है।

मूलतः भाषण होने के कारण निबन्ध की भाषा–शैली सरल, सुबोध व प्रवाहपूर्ण है। निबन्ध का प्रारंभ (श्रोताओं को) समझाने के तौर पर होता है– "तुम लोग बौद्ध धर्म और ब्राह्मण धर्म को समझने में भूल न करो।" आवश्यकतानुसार संवाद शैली, वर्णनात्मक, उद्धरण तथा सूत्रात्मक शैली का प्रयोग है। निबन्ध में कहीं–कहीं आत्मपरक शैली का प्रयोग है– 'अवश्य ही मैं बुद्ध के समस्त दर्शन का अनुमोदन नहीं करता हूँ। मुझे अपने लिए यथेष्ट दार्शनिक विचार की आवश्यकता प्रतीत होती है। मैं पूर्णतया बौद्ध दर्शन से सहमत नहीं हूँ।' आवश्यकतानुसार कहीं छोटे वाक्यों का प्रयोग है तो कहीं अपेक्षाकृत बड़े वाक्यों का यथा–छोटा वाक्य– 'वे दर्शन तथा ईश्वर के संबंध में संपूर्ण अज्ञेयवादी थे।' दीर्घ वाक्य का उद्धरण भी दृष्टव्य है– "अपने राजपाट और सब प्रकार के सुखों को तिलांजलि दे, इस राजकुमार ने अपना सिंधु–सा हृदय लेकर नर–नारी तथा जीव–जंतुओं के कल्याण के हेतु आर्यावर्त की वीथि में भ्रमण कर भिक्षावृत्ति से जीवन निर्वाह करते हुए अपने उपदेशों का प्रचार किया।"

बुद्ध का कथन उद्धृत करके विवेकानंद ने उद्धरण शैली का प्रयोग किया है– "अपनी उन्नति अपने ही प्रयत्न से होगी। अन्य कोई इसमें तुम्हारा सहायक नहीं हो सकता। स्वयं अपनी मुक्ति प्राप्त करो।" कहीं–कहीं कुछ अतीव सारगर्भित सूत्रात्मक वाक्यों का प्रयोग है– "(क) 'जल्पना से कोई अर्थ–सिद्धि नहीं होती, (ख) केवल निष्काम कर्म ही मनुष्य को पूर्णत्व तक पहुँचा सकता है।" शब्द–योजना की बात करें तो साधारण बोलचाल के शब्दों के साथ–साथ तत्सम (अज्ञेयवादी, आर्यावर्त, वीथि, परमोच्च) तथा एक दो उर्दू के शब्दों का भी प्रयोग है– मतलब आदि।

इस प्रकार हम देखते हैं कि निबन्ध के तत्वों के आधार पर 'भगवान बुद्ध' निबंध उच्चकोटि का विचारात्मक निबन्ध है। इस निबन्ध का उद्देश्य भगवान बुद्ध की चारित्रिक विशेषताओं को रेखांकित करने के साथ–साथ बौद्ध धर्म की उपलब्धियों का भी आकलन करना है। बौद्ध धर्म की नास्तिकता से विवेकानंद असहमत थे तथापि उन्होंने निःसंकोच बौद्ध धर्म की करुणाजनित अहिंसा और उदारता की सराहना करते हुए उसकी श्रेष्ठता प्रतिपादित की है। यह एक बहुत ही प्रेरक बात है। कुछ असहमतियों के आधार पर

हमें किसी दर्शन को पूरी तरह खारिज नहीं करना चाहिए। उसकी श्रेष्ठताओं की सराहना मुक्त कंठ से करनी चाहिए। किसी व्यक्ति, संस्था, धर्म, संप्रदाय आदि की समीक्षा वस्तुनिष्ठ ढंग से की जानी चाहिए न कि पूर्वाग्रह के आधार पर। यही बात विवेच्य निबन्ध के माध्यम से समझाना विवेकानंद का अभीष्ट रहा है।

टिप्पणी

अपनी प्रगति जाँचिए

1. स्वामी विवेकानंद का जन्म कहाँ हुआ था?

   (क) गुवाहाटी (ख) आसनसोल

   (ग) महिसादल (घ) कोलकाता (कलकत्ता)

2. स्वामी विवेकानंद ने 'भगवान बुद्ध' व्याख्यान किस शहर में दिया था?

   (क) शिकागो में (ख) डेट्रॉएट में

   (ग) न्यूयार्क में (घ) बर्लिन में

3.3 लोकतंत्र एक धर्म है (निबन्ध) : डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन

दुनिया को अपनी मेधा और वक्तता से प्रभावित करके और देश विदेश में अपने नाम का परचम लहराने वाले डा. सर्वपल्ली राधाकृष्णन का जन्म 5 सितम्बर, 1888 को तिरुमनी गाँव, तमिलनाडु के एक छोटे से गाँव में हुआ था। इनकी माता का नाम सिताम्मा तथा पिता का नाम सर्वपल्ली किरास्वामी था। सर्वपल्ली नाम इस परिवार को विरासत में मिला था। इनके पूर्वज सर्वपल्ली गाँव के रहने वाले थे और 18वीं सदी में तिरुमनी गाँव में आकर बस गए थे। पूर्वज चाहते थे कि उनके नाम के साथ गाँव का नाम भी जुड़े, इसलिए परिजन गाँव के नाम को अपने नाम के साथ लगाने लगे थे। इनके पिता गरीब जरूर थे लेकिन विद्वान ब्राह्मण थे। इनके पिता पर पूरे परिवार की जिम्मेदारी थी, इसलिए राधाकृष्णन को बचपन में सुख–सुविधाएँ नहीं मिल सकीं। इनके चार भाई और एक बहन थी। उस समय के रीति रिवाजों के अनुसार इनका छोटी उम्र में ही विवाह हो गया था। 1905 में इनका विवाह 10 वर्षीय कन्या सिवाकामु से हो गया था। पत्नी को औपचारिक शिक्षा तो नहीं मिली थी लेकिन वह तेलुगू और अंग्रेजी भाषा लिख पढ़ सकती थी। दाम्पत्य धर्म का निर्वाह करने के क्रम में दोनों को पाँच पुत्रियों और एक पुत्र–रत्न की प्राप्ति हुई। पत्नी की मृत्यु 1956 में हुई।

आरम्भिक शिक्षा गाँव में ही हुई। आगे की शिक्षा के लिए इनके पिताजी ने इन्हें क्रिश्चियन मिशनरी स्कूल 'लूथर्न मिशन' तिरुपति में दाखिल करा दिया। स्कूल के दिनों से ही इनकी प्रतिभा सामने आने लगी थी। स्कूल के दिनों में ही उन्होंने बाइबिल के महत्वपूर्ण अंश कंठस्थ कर लिए थे, जिसके लिए उन्हें विशेष योग्यता सम्मान भी प्राप्त हुआ। सन् 1900 में उन्होंने वेल्लूर के कॉलिन में प्रवेश लिया। तत्पश्चात् मद्रास के क्रिश्चियन कॉलिज से आगे की शिक्षा प्राप्त की। 1904 में उन्होंने कला वर्ग में मनोविज्ञान, इतिहास और गणित विषय में स्नातक की डिग्री प्रथम श्रेणी में प्राप्त की। 1906 में उन्होंने दर्शनशास्त्र में एम.ए. किया। दर्शनशास्त्र में पढ़ाई करने के पीछे भी एक रोचक प्रसंग है। राधाकृष्णन बचपन में विज्ञान के प्रति आकृष्ट थे और उसी में अपनी

टिप्पणी

पढ़ाई करना चाहते थे। एक दिन एक रिश्तेदार उनके घर आए जो मद्रास क्रिश्चियन कॉलिज से दर्शनशास्त्र में अपनी पढ़ाई कर रहे थे। रिश्तेदार के वापस जाने के समय तक राधाकृष्ण ने उनकी दर्शनशास्त्र की पुस्तक को पूरा पढ़ डाला और दर्शनशास्त्र में ही उनकी इतनी रुचि हो गई कि आगे की पढ़ाई उन्होंने दर्शनशास्त्र में ही करने का फैसला कर लिया। सिलसिला चल निकला और आगे चलकर उन्होंने दर्शनशास्त्र के शिक्षक व अन्य रूपों में दुनिया भर में अपने नाम के साथ–साथ भारत का भी नाम रोशन किया। जिस कॉलिज से उन्होंने एम.ए. किया उस कॉलिज में अल्फ्रेड जॉर्ज जैसे व्यक्ति भी पढ़ाया करते थे, जिनके सम्पर्क में आकर राधाकृष्णन की दर्शनशास्त्र में रुचि इतनी बढ़ गई कि उन्होंने भारत के ही नहीं पश्चिम के भी सभी दर्शनशास्त्र की श्रेष्ठ पुस्तकों का अध्ययन कर डाला। उच्च शिक्षा के अध्ययन के दौरान निजी खर्च के लिए ट्यूशंस भी किया करते थे।

1909 में उन्हें 20 वर्ष की आयु में मद्रास प्रेसीडेंसी कॉलिज में दर्शनशास्त्र का प्राध्यापक बना दिया गया। इसके बाद तो लगभग 50 वर्षों तक वे देश–विदेश के अलग–अलग संस्थानों में प्रोफेसर, प्राचार्य, उपकुलपति, कुलपति के रूप में नियुक्त होते रहे और आगे बढ़ते रहे। 1918 में उन्हें मैसूर यूनिवर्सिटी द्वारा दर्शनशास्त्र के प्रोफेसर के रूप में चुना गया। 1931 से 1936 तक वे आन्ध्र विश्वविद्यालय के वाइस चांसलर रहे। 1936 में उन्होंने ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी में दर्शनशास्त्र के प्रोफेसर के रूप में कार्यभार सँभाला। 1939 में उनकी शैक्षणिक यात्रा में नया मोड़ तब आया जब वे महामना मदन मोहन मालवीय के निमंत्रण पर ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी की नौकरी छोड़कर बीएचयू पहुँचे और बीएचयू के चांसलर पद को ग्रहण किया। यहाँ से उनके राजनीतिक जीवन की शुरुआत हुई और वे नेहरू के सम्पर्क में आए। 1940 के दशक में उन्हें संविधान निर्मात्री सभा का सदस्य बनाया गया। 1946 में उन्होंने भारतीय प्रतिनिधि के रूप में यूनेस्को में अपनी उपस्थिति दर्ज कराई। 1953 से 62 तक दिल्ली विश्वविद्यालय के चांसलर रहे। 1949 से 1952 तक वे सोवियत संघ में भारत के राजदूत रहे। 1952 में सोवियत संघ बनने के बाद संविधान के अन्तर्गत नया पद सृजित करके नेहरू ने उन्हें उपराष्ट्रपति बना दिया। नेहरू ने उन्हें यह पद देकर सबको चौंका दिया। सबको लगा कि भला एक प्रोफेसर राजनयिक के ऐसे महत्वपूर्ण पद पर कैसे सफल हो पाएगा, किन्तु राधाकृष्णन जी ने यह जिम्मेदारी बड़ी कुशलतापूर्वक निभाई। उन्हें राज्यसभा का सबसे कुशल सभापति माना जा सकता है जिनकी एक युक्ति से पक्ष–विपक्ष दोनों ही सन्तुष्ट और शांत हो जाते थे। 13 मई 1952 से 13 मई 1962 तक उन्होंने देश के उपराष्ट्रपति के रूप में बखूबी कार्य किया। अनेक मतभेदों के बीच उन्होंने समन्वय का रास्ता ढूंढने की बात सिखाई।

13 मई 1962 को ही वे देश के राष्ट्रपति निर्वाचित हुए। उनका कार्यकाल चुनौतियों से भरा था। उनके कार्यकाल में भारत और चीन के साथ युद्ध हुए जिसमें चीन के साथ भारत को हार का सामना करना पड़ा। वे इकलौते ऐसे राष्ट्रपति थे जिन्होंने दो प्रधानमंत्रियों की मौत देखी, दो युद्ध देखे और दो कार्यवाहक प्रधानमंत्रियों को शपथ दिलाई। बतौर राष्ट्रपति वे हेलीकॉप्टर से अमरीका के व्हाइट हाउस पहुँचे। सितम्बर 1957 में उन्होंने तीन देशों की यात्रा की। चीन भी गए, जिसके साथ लगातार सीमा विवाद चल रहा था और वहाँ इनकी मुलाकात चीन के सर्वोच्च नेता माउत्सेतुंग से हुई जिनका प्रसिद्ध कथन है– 'सत्ता बंदूक की नोक से निकलती है।' राष्ट्रपति रहते

हुए उन्होंने यह व्यवस्था कर रखी थी कि सप्ताह में दो दिन कोई भी उनसे मिल सकता था। नेताओं के आग्रह के बावजूद उन्होंने राष्ट्रपति के रूप में दूसरा कार्यकाल नहीं लिया। इस पद से मुक्त होकर वे मई 1967 चेन्नई स्थित अपने घर चले गए। 17 अप्रैल, 1975 में एक लम्बी बीमारी से उनकी मृत्यु हो गई।

टिप्पणी

भारतीय दर्शनशास्त्र के पुरोधा– डा. राधाकृष्णन ने बहुत लम्बा समय दर्शनशास्त्र के प्राध्यापक के रूप में बिताया। देश–विदेश में उनके व्याख्यान होते रहते थे। 1926 में अमेरिका की हावर्ड यूनिवर्सिटी में दर्शनशास्त्र की कान्फ्रेंस हुई। वहाँ उन्होंने अंग्रेजी भाषा में पश्चिम की शैली में भारतीय दर्शनशास्त्र को समझाया। अगले दिन वहाँ के अखबारों में वे सुर्खियों में छाये रहे। वे पश्चिमी सभ्यता से अलग हिन्दुत्व को देश विदेश में फैलाना चाहते थे और साथ ही दोनों सभ्यताओं को मिलाना चाहते थे। अपने जीवन के चालीस वर्ष वे भारतीय धर्म व दर्शन के शिक्षक बनकर रहे। उनका मानना था कि शिक्षकों का स्थान देश में सबसे ऊपर होना चाहिए क्योंकि देश को बनाने में इन्हीं का योगदान सबसे ऊपर होता है। उनके बेटे सर्वपल्ली गोपाल ने 1989 उनकी जीवनी का प्रकाशन कराया।

पुस्तकें– उन्होंने अनेक पुस्तकें लिखीं। ज्यादातर उनकी पुस्तकें अंग्रेजी में हैं। सन् 1926 में ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस से उनकी एक चर्चित पुस्तक आई– 'दि हिन्दू व्यू ऑफ लाइफ'। 1929 में दूसरी पुस्तक आई– 'ऐन आइडियलिस्ट व्यू ऑफ लाइफ'। उनकी अन्य पुस्तकें हैं : गौतमबुद्ध : जीवन और दर्शन, धर्म और समाज, भारत और विश्व, दि एथिक्स ऑफ वेदान्त, द फिलोसफी ऑफ रवीन्द्रनाथ टैगोर, माई सर्च फॉर ट्रुथ, द रेन ऑफ कंटम्परेरी फिलॉसफी, रिलीजन एंड सोसायटी, इण्डियन सोसायटी, द ऐसेंसियल ऑफ सायकॉलोजी।

सम्मान व पुरस्कार– समय–समय पर देश–विदेश में उन्हें सम्मानों व पुरस्कारों से सम्मानित किया गया, जिनका विवरण इस प्रकार है–

1. 1913 में ब्रिटिश सरकार ने उन्हें 'सर' की उपाधि प्रदान की।
2. 1963 में इंग्लैण्ड सरकार द्वारा उन्हें 'आर्डर ऑफ मैरिट' का सम्मान प्राप्त हुआ।
3. 1954 में जर्मन में कला और विज्ञान के विशेषज्ञ के रूप में पुरस्कृत किया गया।
4. 1961 में जर्मन बुक ट्रेड का शांति पुरस्कार प्राप्त हुआ।
5. 1975 में अमेरिकी सरकार द्वारा उन्हें टेम्पलटन पुरस्कार से सम्मानित किया गया। यह सम्मान पाने वाले वे पहले गैर ईसाई व्यक्ति थे

इस पुरस्कार की सारी धनराशि उन्होंने ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी को दानस्वरूप दे दी। 1989 में ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी द्वारा डा. राधाकृष्णन् शिष्यवृत्ति संस्थावृत्ति की स्थापना की गई और सबसे महत्वपूर्ण पुरस्कार है भारत सरकार द्वारा प्रदान किया जाने वाला भारत का सर्वोच्च नागरिक पुरस्कार। 1954 में भारत सरकार द्वारा उन्हें 'भारत–रत्न' की उपाधि से सम्मानित किया गया।

बीसवीं सदी के विद्वानों में डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन का नाम सबसे ऊपर है। अनेकानेक पुस्तकों के रचयिता, दर्शनशास्त्र के सुप्रसिद्ध व्याख्याता, आजाद भारत के प्रथम उपराष्ट्रपति तथा द्वितीय राष्ट्रपति रहे डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन का नाम भारतीय

टिप्पणी

इतिहास में स्वर्णाक्षरों से अंकित है। 1962 से उनके जन्मदिन को शिक्षक दिवस के रूप में मनाने की घोषणा की गई। उनके जन्मदिन को देश की सभी शिक्षण–संस्थाओं द्वारा धूमधाम से शिक्षक दिवस के रूप में तो मनाया ही जाता है, साथ ही इस दिन सरकार द्वारा देश के विख्यात और लब्धप्रतिष्ठ, समर्पित शिक्षकों को उनके योगदान के लिए पुरस्कृत भी किया जाता है।

3.3.1 'लोकतंत्र एक धर्म है' निबन्ध का मूल पाठ

भारत ने 1947 में राजनीतिक स्वतंत्रता प्राप्त की। स्वच्छ, शालीन ढंग से देश का शासन करने की तुलना में वह एक सरल कार्य था। यह कहीं विशाल कार्य दिखाई पड़ता है। इसके लिए हमें आत्मत्योगी नेतृत्व और ईमानदार तथा कुशल नागरिक सेवा की आवश्यकता है। हमें अनुशासित नागरिक सेवा तथा पुलिस दल की आवश्यकता है। हमें विशेषज्ञ औद्योगिक प्रबन्धकों, कुशल श्रमिकों और बढ़िया कृषि–ज्ञान रखने वाले किसानों की आवश्यकता है। हमारे सामान्य नागरिकों में नागरिक वृत्ति एवं राष्ट्रीय भावना होनी चाहिए। ये सब बातें एक दिन में नहीं हो जातीं। अपनी शक्ति–भर जो कुछ कर रहे हैं, वह यह है कि निर्दोष प्रशासन, स्थिर शासन और एक स्वस्थ राष्ट्र का विकास करने की ओर हमने कुछ कदम उठाए हैं। हम यह नहीं कह सकते हैं कि हमने जो कुछ किया है, उससे हम सन्तुष्ट हैं। हमारे देश के विभिन्न भागों में ऐसी बातें हो रही हैं जो हमें दुःखी, निराश और अपने प्रति लज्जित करने वाली हैं। जो बात जरूरी है, वह देशभक्ति की शक्तिमयी भावना है। यह सत्य है कि जब हम देश को विदेशी शासन से मुक्त करने के लिए लड़ रहे थे तब हमने एक नकारात्मक देशभक्ति का विकास किया था, किन्तु सकारात्मक देशभक्ति, एक ऊर्जस्वी, भ्रातृत्व–भावना, इस महान देश का होने की भावना और उसका होने का अभिमान, ये बातें अभी आने को हैं। हमें इनको मनुष्यों के मस्तिष्कों एवं हृदयों में निर्मित करना होगा। बीच–बीच में अधोगतियों एवं अन्धगलियों में गिरने के बावजूद लगभग चालीस या पचास सदियों तक यह देश जिन महती परम्पराओं के लिए खड़ा रहा है, उन्हें अपने अन्दर विकसित करने की आवश्यकता है।

हमारी आकांक्षा अपने समाज में लोकतन्त्रात्मक व्यवस्था स्थापित करने की है। लोकसत्ता के विभिन्न पहलू होते हैं। यह राजनीतिक व्यवस्था है, यह एक आर्थिक रास्ता है, यह जीवन की एक नैतिक प्रणाली है।

जहाँ तक राजनीतिक व्यवस्था का प्रश्न है, हमने वयस्क मताधिकार को ग्रहण किया है। प्रत्येक व्यक्ति को, जो एक विशेष आयु का हो, फिर उसकी शैक्षणिक योग्यताएँ, सुविधाएँ, सम्पत्ति कुछ भी क्यों न हो, मताधिकार प्राप्त है। एक आदमी, एक वोट (मत), इस प्रकार हम सब मानवीय प्राणियों की समानता पर बल देते हैं। यह सिद्धांत हमारी विरासत का एक अंश है। प्रत्येक व्यक्ति परमात्मा की एक चिंगारी हैः देहो देवालयों नाम। यह देह भगवान का मंदिर है। हमने इस पर जोर तो दिया, किन्तु इस पर बराबर अमल नहीं किया। यदि हम पर आक्रमण हुए और हमने बड़ी कठिनाइयाँ भोगीं तो इसका कारण यही था कि यह धार्मिक प्रतिस्थापना, जिसके प्रति हम निष्ठा व्यक्त करते हैं, हमारे देशवासियों के हृदयों में प्रवेश नहीं कर पाई। आज राजनीतिक लोकतन्त्र वर्ग, प्रजाति एवं धर्म के भेदभाव को लाँघ जाता है। ये भेद चाहे जो हों, ये मनुष्य के रूप में मनुष्य की पवित्रता और मर्यादा के लिए अप्रासंगिक हैं। हमें मानवीय

व्यक्ति का सम्मान उसके मानवीय स्वभाव तथा उसकी सम्भावनाओं के लिए करना चाहिए। प्रत्येक मानव–प्राणी सर्वोच्च जीवन के लिए शक्तिमान उम्मीदवार है।

टिप्पणी

इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि हमें सब व्यक्तियों को पूर्ण, स्वतंत्र एवं समृद्ध जीवन जीने का अवसर देना चाहिए। प्रत्येक व्यक्ति के अन्दर जो कोष छिपा पड़ा है, उसे बिना तोड़े ऊपर लाने में हमें सहायता करनी चाहिए। इसके लिए कतिपय निम्नतम सांस्कृतिक एवं आर्थिक परिस्थितियाँ पैदा की जानी चाहिए। इसलिए तो हमारे विधान में सार्वदेशिक शिक्षा का लक्ष्य रखा गया है। हम प्रायः समाज के समाजवादी ढाँचे की बात करते हैं। इसका अभिप्राय व्यक्ति का व्यूह–बन्धन नहीं है। मानवीय उत्थान के नाटक में मुख्य अभिनेता प्रतिभावान व्यक्ति ही होते हैं। हमें विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के आक्रमणों तथा जीवन के यन्त्रीकरण द्वारा मानवीय प्राणियों के व्यक्तित्व को कुचले जाने या कम किए जाने का भी मौका नहीं देना चाहिए।

समाजवाद का अर्थ सभी व्यक्तियों की योग्यताओं का समानीकरण नहीं है। ऐसा होना असम्भव है। सब व्यक्ति समान नहीं होते। समाजवाद का अर्थ केवल सबके लिए समान अवसर या सुविधाएँ देना है। हम यह नहीं कहते कि सब व्यक्ति समान हैं, किन्तु हम यह कहते हैं कि जो भी सम्भावनाएँ उनमें हैं उनको व्यक्त करने के लिए सब व्यक्तियों को समान अवसर दिया जाना चाहिए। जब हम कहते हैं कि सब मनुष्यों को भोजन, वस्त्र एवं आश्रय (निवास) की सुविधा मिलनी चाहिए, तब हम लोकतांत्रिक आदर्श के आर्थिक पक्ष पर जोर देते हैं। हम संपन्न एवं गरीबों के बीच के अन्तर को कम करना और सामान्य मानव के जीवन–मान को उठाना चाहते हैं। जब तक हमारे देश में ऐसे लोग हैं जो दिन में एक बार भी भरपेट भोजन नहीं पाते, जिनके सर पर कोई छत या छाया नहीं है, जो हमारे नगरों की पटरियों पर सोते हैं, तब तक हमारे सामने एक चुनौती है। कोई भी मनुष्य, जो अपने देश के प्रति भावना रखता है तब तक सुखी और संतुष्ट नहीं हो सकता जब तक वह भयानक दुर्दशा और गरीबी को देख रहा है। ये बातें हम सबके लिए चुनौती हैं। यदि अपने देश को प्रजासत्तात्मक कहना है तो हमें उनका प्रतिरोध करना होगा और उन्हें खत्म करना होगा।

अब भी लोकतन्त्र एक आदर्श ही बना हुआ है। हम उसमें कुछ सामाजिक और आर्थिक सामग्री डालने की चेष्टा कर रहे हैं और जिसे समाज का समाजवादी ढाँचा कहा जाता है वह हमारे सब अधिवासियों की शरीर एवं आत्मा की रक्षा करने योग्य आलम्बन देने के निरन्तर प्रयत्न के सिवा और कुछ नहीं है। यह है लोकतन्त्र का आर्थिक पक्ष।

आर्थिक लोकतन्त्र की उपलब्धि के लिए हमें अपनी राष्ट्रीय संपत्ति, अपनी कृषि–सम्बन्धी उपज और औद्योगिक उत्पादन बढ़ाना चाहिए। पंचवर्षीय योजनाएँ इन्हीं लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए हैं। हमारे देहात बहुत उपेक्षित रहे हैं और इन्हें विकसित करने की आवश्यकता है। सामूहिक विकास–कार्यक्रम ग्राम्य पुनर्रचना के उद्देश्य को लेकर ही चल रहे हैं। दुर्भाग्यवश हम अपने देशवासियों में उत्साह तथा उमंग भरने में समर्थ नहीं हुए हैं। प्रशासन–तन्त्र भारी–भरकम है और इन योजनाओं में हमारे देशवासियों के भाग लेने को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।

इससे भी अधिक मौलिक बात है– नैतिक पकड़, नैतिक वृत्ति। लोकतंत्र एक धर्म है। लोकतंत्र हमारी समस्याओं के समाधान में हमें समझाने–बुझाने, संयम और सहमति के तरीके अपनाने के लिए कहता है। क्या हमने इस सिद्धान्त का, कि 'स्वतंत्रता का

टिप्पणी

अर्थ संयम है', निहितार्थ समझ लिया है? जहाँ भी झगड़े होते हैं, हम सीधी कार्यवाही, सीधी लड़ाई का तरीका ग्रहण करते हैं। हम क्रोध से भर जाते हैं, हममें हिंसा है। हम दुर्भावनाओं को, क्रोध को प्रकट करते हैं और मानव–प्राणियों की तरह आचरण नहीं करते। जब हम लोकतंत्र के नैतिक पक्ष पर जोर देते हैं, तब हमारा अर्थ यही होता है कि प्रत्येक मानव–प्राणी में विवेक का अंश है और हमारे लिए यह सम्भव है कि उसी विवेक की 'अपील' करें – प्रेरित करें। हमें यह विश्वास तो रखना ही होगा कि हम सदा ही ठीक नहीं हो सकते, कभी हमारे विरोधी भी सही हो सकते हैं। हममें यह विश्वास करने की नम्रता होनी चाहिए कि हमारे विरोधियों में भी कुछ गुण हो सकते हैं। यही विनम्रता की भावना, यही संयम की भावना लोकतंत्र हम पर लागू करता है। हमारा कर्तव्य है कि हम उनकी बात समझें और उनके साथ उचित समझौता करें। असहमति विवेक नहीं है। विरोध विद्रोह नहीं है। हमें अपनी समस्याएँ विवेक के साथ, बिना कटुता के हल करने की चेष्टा करनी चाहिए। लोकतंत्र तथा हिंसक कार्यवाही एक–दूसरे के प्रतिकूल है। जब भी हममें संघर्ष होता है, झगड़ा होता है, तब हम भूल जाते हैं कि हमारे शत्रु भी उसी रक्त–माँस के बने हैं, उनमें भी वही प्रेरणाएँ एवं वासनाएँ हैं, वही आशाएँ एवं उच्चाकांक्षाएँ हैं। वे मानवता की किसी दूसरी जाति के नहीं हैं।

यह बड़ा दुर्भाग्य है कि न केवल इस देश में बल्कि और भी बहुतेरे देशों में सभ्य मूल्यों के विनाश की अपेक्षा अपनी अप्रतिष्ठा को बड़ा खतरा समझा जाता है। ऐसे कितने ही व्यक्ति हैं जो उस समय, जब मानवता का जीवन संकट में होता है, अपनी मर्यादा, अपने सम्मान और किसी तरह की अपनी इज्जत के लिए तन जाते हैं। जब हम देखते हैं कि हम मानवता के भविष्य को प्रभावित करने वाली विशाल समस्याओं के आमने–सामने खड़े हैं, तब हमारे लिए इतना जानना–समझना जरूरी है कि काल सबसे बड़ा व्याधिहर्ता है। मानवीय प्रकृति में लोच की, लचीलेपन की असाधारण शक्ति होती है। सामाजिक एवं राजनीतिक संस्थाएँ भी परिवर्तन के उन्हीं नियमों से प्रभावित होती हैं जिनसे दुनिया की और सब चीजें होती हैं। यदि हमें मानवीय स्वभाव की लोच में, समय की व्याधि शमनकारी शक्ति में, सामाजिक एवं राजनीतिक संस्थाओं की परिवर्तनशीलता में और सबके ऊपर सर्वसाधारण की सदिच्छा में विश्वास हो तो जो समस्याएँ आज हमको इतनी भयावह रीति से विभाजित कर रही हैं, वे ही कुछ समय बाद विशुद्ध सैद्धान्तिक या शास्त्रीय प्रतीत होने लगेंगी।

इससे पहले कि हम दुनिया से शान्तिपूर्ण सह–अस्तित्व में जीने को कहें, हमें अपने देश की समस्याएँ, उसी भावना से हल करनी चाहिए। आचरण उपदेश से ज्यादा अच्छा होता है। वैसा ही करने की चेष्टा हमें करनी चाहिए। बहुत–सी समस्याएँ समाधान के लिए हमारा मुँह देख रही हैं। भाषायी झगड़े, प्रान्तीय ईर्ष्याएँ, घरेलू लड़ाइयाँ, इन्होंने हमारे स्थायित्व को, हमारी स्थिरता को सदियों से झकझोर रखा है। लगता है, हमने अपने अतीत इतिहास से कुछ भी नहीं सीखा है। इतिहास ने हमें केवल इतनी शिक्षा दी है कि हम इतिहास से कुछ भी नहीं सीखते। अपनी असंगतियों के कारण, अपने विग्रहों एवं ईर्ष्याओं के कारण, पड़ोसियों से अपने झगड़े के कारण, बार–बार हमने अपनी स्वाधीनता खोई है। लगता है, हम फिर विच्छिन्न होकर गिर रहे हैं।

क्या हम फिर उन्हीं विच्छेदकारिणी प्रवृत्तियों के शिकार हो रहे हैं? क्या हम बड़े–बड़े सवालों को, जो हमारे आगे हैं, हल करने के लिए ज्यादा विवेक–सम्मत

टिप्पणी

उपायों का सहारा नहीं लेंगे? बहुत समय से हमारे देश में यह कहा जा रहा है कि हिमालय के दक्षिण और सागर के उत्तर का सारा विस्तृत भूखण्ड भारत है– तद्वर्ष भारत नाम, भारती यत्र सन्ततिः। वह देश भारत कहा जाता है और वे सब लोग, जो इस भौगोलिक क्षेत्र के नागरिक हैं फिर चाहे उसकी जाति, पंथ, प्रजाति, धर्म कुछ भी हो, इस देश के नागरिक हैं। हमारा राष्ट्र एक है और अखण्डनीय है– यही हमें सिखाया गया है। इसलिए अपने गौरव के दिनों में हम विभिन्न धर्मों के बीच सहिष्णुता और समझदारी से काम ले सके थे। यदि आज हम उन शिक्षाओं को भूल जाते हैं और अपनी वर्गीय निष्ठाओं को बढ़ाते–चढ़ाते हैं तो निश्चय ही भविष्य अंधकारमय है।

लोकतंत्र एक राजनीतिक व्यवस्था है जो लोगों को समान मानती है। यह एक आर्थिक मार्ग है जो इस देश और इस दुनिया के सर्वसामान्य लोगों की आर्थिक दशा को ऊपर उठाने की माँग हमसे करता है। यह जीवन की नैतिक प्रणाली है, जिसमें दूसरे लोगों के प्रति मित्रवत् व्यवहार करने की आशा हमसे की जाती है– फिर भले ही इस समय वे लोग हमारे शत्रु ही क्यों न हों। पराजित शत्रु, शत्रु बना रहता है और बदला लेने के लिए अवसर की प्रतीक्षा में रहता है, परन्तु एक कृतसन्धि विरोधी मित्र बन जाता है। घृणा सबसे बड़ा खतरा है। यह हमारा सबसे बड़ा शत्रु है। हमारा सारा रुख सुलह–समझौते का होना चाहिए। अपने देश को सच्चा लोकतंत्र बनाने के लिए कठोर कार्य–कुशलता और संघटन की आवश्यकता है। जब एक अमेरिकी को मिडिल वेस्ट में एक सुन्दर फार्म दिखाया गया तो वह बोला, 'देखा, यदि ईश्वर और मनुष्य सहयोग करें तो इतना महान कार्य हो सकता है।' फार्म के मालिक ने कहा 'आप तब फार्म को देखते, जब वह केवल ईश्वर द्वारा चलाया जा रहा था।' ईश्वर हमसे सच्चाई के साथ कठोर काम की आशा करता है। वह उन्हीं की सहायता करता है, जो अपनी सहायता स्वयं करते हैं।

3.3.2 'लोकतंत्र एक धर्म है' निबन्ध का सार

भारत ने 1947 में राजनैतिक स्वतन्त्रता प्राप्त की। स्वच्छ, शालीन ढंग से देश का नेतृत्व करने के लिए हमें आत्म त्यागी नेतृत्व, कुशल नागरिक सेवा, ईमानदार पुलिस दल, औद्योगिक प्रबन्धकों, कुशल श्रमिकों और बढ़िया कृषि प्रधान ज्ञान रखने वाले किसानों की आवश्यकता है। देशवासियों में इन सब गुणों और समस्त व्यवस्थाओं का विकास एक दिन में नहीं होता, अपितु क्रमशः ही होता है। देश के विकास के लिए देशभक्ति की शक्तिमयी भावना की परमावश्यकता है। यही वह भावना है, जिसके बलबूते हम विदेशी शासन से मुक्त हुए। बीच–बीच में इस महान देश में कुछ अधोगति वाली स्थिति जरूर आई, किन्तु इस देश की महान परम्पराओं ने इस देश को धराशायी नहीं होने दिया। आज हम सबको उन्हीं महान परम्पराओं को अपने अन्दर विकसित करने की आवश्यकता है।

हमारी आकांक्षा अपने समाज में लोकतंत्रात्मक व्यवस्था कायम करने की है। लोकसत्ता के विभिन्न पहलू होते हैं। राजनीतिक, आर्थिक और नैतिक। राजनीतिक दृष्टि से भारत ने व्यस्क मताधिकार को ग्रहण किया है। प्रत्येक व्यक्ति को जो एक विशेष आयु का हो, फिर उसकी शैक्षणिक योग्यताएँ, सुविधाएँ, सम्पत्ति कुछ भी क्यों न हो, मताधिकार प्राप्त है। यह सिद्धान्त हमारी विरासत का एक अंग है। भारत में प्रत्येक प्राणी सर्वोच्च जीवन जीने के लिए शक्तिमान उम्मीदवार है। इस लक्ष्य की प्राप्ति के

टिप्पणी

लिए अनुकूल सांस्कृतिक एवं आर्थिक परिस्थितियाँ पैदा की जानी चाहिए इसके द्वारा शासन द्वारा सार्वदेशिक शिक्षा का लक्ष्य रखा गया है। मानव व्यक्ति एवं मानवीय प्रतिभा सबसे उच्च है। विज्ञान, प्रौद्योगिकी तथा जीवन के यन्त्रीकरण द्वारा इसे कुचला नहीं जाना चाहिए।

समाजवाद का अर्थ सभी व्यक्तियों की योग्यताओं का समानीकरण नहीं है। ऐसा होना असम्भव है क्योंकि सब व्यक्ति समान नहीं होते। समाजवाद का अर्थ केवल सबके लिए समान अवसर या सुविधाएँ देना है। गरीब और अमीर की खाई को कम करना है। आज भी हम लोकतंत्र की आदर्श स्थिति को प्राप्त नहीं कर सके हैं। अभी प्रशासन द्वारा सामाजिक और आर्थिक ढांचे पर काम किया जा रहा है। आर्थिक लोकतंत्र की उपलब्धि के लिए जरूरी है कि सरकार द्वारा राष्ट्रीय सम्पत्ति, कृषि सम्बन्धी उपज और औद्योगिक उत्पादन बढ़ाया जाए। पंचवर्षीय योजनाएँ इन्हीं लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए हैं। जरूरत इस बात की है कि देशवासियों को इन योजनाओं और विकास–कार्यक्रमों में भाग लेने के लिए और अधिक प्रोत्साहित किया जाए।

लोकतंत्र वस्तुतः एक धर्म है, जिसके निर्वाह के लिए नागरिकों को पूरी नैतिकता के साथ संयम और सहमति से काम लेना चाहिए। विरोध का अर्थ विद्रोह नहीं होना चाहिए। नागरिकों को अपनी समस्याएँ बिना किसी कटुता के हल करने की चेष्टा करनी चाहिए। लोकतंत्र में असहमति प्रदर्शन के लिए हिंसक कार्यवाही वांछनीय नहीं है। देश की किसी भी समस्या का समाधान हिंसा से नहीं हो सकता। काल के प्रभाव से जो समस्याएँ आज अतिशय भयावह लगती हैं, कुछ समय बाद वे बिल्कुल सैद्धान्तिक प्रतीत होने लगती हैं। भाषाई झगड़े, प्रान्तीय ईर्ष्याओं व घरेलू लड़ाइयों ने देश की स्थिरता को सदियों से झकझोर कर रखा है। इन्हीं झगड़ों के कारण देश पराधीन हुआ। आज भी ऐसे झगड़े बराबर जारी है। ऐसा लगता है कि लोग अपनी गलितयों अथवा इतिहास से कुछ भी नहीं सीखते।

भारत का भूखण्ड विस्तृत है और वे सब लोग जो इस भौगोलिक क्षेत्र के नागरिक हैं फिर चाहे उनकी जाति, पंथ, प्रजाति, धर्म कुछ भी हो, इस देश के नागरिक हैं। भारत का इतिहास इसलिए गौरवपूर्ण है क्योंकि पहले यहाँ विभिन्न धर्मों के बीच सहिष्णुता थी। यदि धार्मिक सहिष्णुता को घटाकर वर्गीय निष्ठाओं को बढ़ाया जाता है, तो इससे देश का भविष्य अंधकारमय हो सकता है।

लोकतंत्र एक राजनैतिक व्यवस्था है जो लोगों को समान मानती है। यह जीवन की एक नैतिक प्रणाली है, जिसमें नागरिकों से मित्रवत व्यवहार की अपेक्षा की जाती है। शत्रुओं के प्रति भी मित्रवत् व्यवहार होना चाहिए। पराजित शत्रु शत्रु बना रहता है और बदला लेने के लिए अवसर की प्रतीक्षा में रहता है, किन्तु शत्रु से यदि सच्चे मन से मित्रता कर ली जाए तो वह मित्र बन जाता है। देशोन्नति के लिए आवश्यक है कि सब लोग परस्पर मित्रवत व्यवहार करें। साथ ही सच्चाई के साथ कठोर श्रम की जरूरत है क्योंकि ईश्वर भी उनकी सहायता करता है, जो अपनी सहायता स्वयं करते हैं।

3.3.3 व्याख्यांश

- यह सिद्धान्त हमारी विरासत का एक अंश है ..... प्रवेश नहीं कर पाई।

सन्दर्भ– प्रस्तुत अवतरण भारत के पूर्व राष्ट्रपति डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन द्वारा लिखित एक प्रेरक निबन्ध 'लोकतंत्र एक धर्म है' से व्याख्यार्थ उद्धृत है। वे भारत के भूतपूर्व

राष्ट्रपति होने के साथ–साथ एक महान शिक्षाविद् तथा दार्शनिक भी रहे हैं। इस निबन्ध में लेखक ने आदर्श लोकतंत्र की स्थापना में विविध चुनौतियाँ और समाधान दोनों पर सरल भाषा में विस्तृत रूप से प्रकाश डाला है।

टिप्पणी

प्रसंग– भारत ने 1947 में राजनैतिक स्वतन्त्रता प्राप्त की। आजादी के बाद भारत ने लोकतन्त्रात्मक व्यवस्था को अपनाया। इसके अन्तर्गत वयस्क मताधिकार को ग्रहण किया गया। प्रत्येक व्यक्ति को जो एक विशेष आयु का हो, फिर उसकी शैक्षणिक योग्यताएँ, सुविधाएँ, सम्पत्ति कुछ भी क्यों न हो, मताधिकार प्राप्त है। प्रत्येक व्यक्ति को मत का अधिकार देना इस बात का परिचायक है कि हम सब मानवीय प्राणियों की समानता पर बल देते हैं।

व्याख्या– मानवीय प्राणियों की समानता का सिद्धान्त हमारी विरासत का अंग है। भारत में प्रत्येक व्यक्ति को ईश्वर का अंश माना गया है। हर किसी की आत्मा में परमात्मा की उपस्थिति मानी गई है। 'यहाँ आत्मा के स्तर पर प्राणी–प्राण में कोई भेद नहीं किया गया। सबकी देह को देवालय की संज्ञा प्रदान की गई। इस शरीर को एक ओर क्षणभंगुर कहा गया, तो दूसरी ओर भगवान का मन्दिर भी कहा गया। हम सबने सिद्धान्त रूप में मानव–मात्र की समानता को माना, लेकिन इसे व्यावहारिक जीवन में नहीं उतारा। यदि इस बात पर अमल किया गया होता, तो आज देश की स्थिति कुछ और ही होती।

देश के देशवासी अभी समझ नहीं पा रहे कि यह सिद्धान्त समाज में व्याप्त सामाजिक भेदभाव को निराधार कर देता है। धर्म के नाम पर देशवासियों ने बड़ी लड़ाइयाँ लड़ीं। लेकिन किसी के लिए भी लड़ाइयाँ वांछनीय नहीं कही जा सकतीं। आज तक हमने सच्ची धर्मनिष्ठा का ढोंग भर किया है; उसे अपने हृदय में प्रवेश नहीं कराया। किसी भी भाव की जब हृदय में प्रविष्टि हो जाती है, तभी वह प्रबल व प्रभावी होता है। अतः देशहित में यह अत्यन्त आवश्यक है कि हम इस सिद्धान्त को अपने हृदय में स्थान दें कि हर आत्मा में परमात्मा का निवास है। ऐसा मानने पर हम छोटे–बड़े, ऊँच–नीच के भेद से मुक्त हो जाते हैं।

विशेष

(i) भारत की राजनैतिक व्यवस्था में वयस्क मताधिकार का नैतिक पक्ष सिद्ध किया गया है। जब हर व्यक्ति ईश्वर का ही अंश है तो प्राणियों में भेद क्यों किया जाए। यही भाव तुलसीदास जी ने अपनी इस चौपाई में इस प्रकार व्यक्त किया है– 'ईश्वर अंश जीव अविनाशी'।

(ii) 'देहो देवालयो नाम'– मन के साथ–साथ इस तन को भी भारतीय संस्कृति में देवालय की संज्ञा दी गई है। कई भजनों में भी इस प्रकार के भाव देखने को मिलते हैं– 'तेरे पूजन को भगवान, बना मन–मन्दिर आलीशान।'

(iii) लेखक ने लोकतंत्र में राजनैतिक व्यवस्था के समान मताधिकार की विशेषता वर्णित की, तो साथ ही अधिकार के साथ–साथ नागरिकों को उनके कर्तव्य का बोध भी कराया। अधिकारों के साथ कर्तव्य स्वाभाविक रूप से जुड़े रहते हैं। दूसरे शब्दों में कहें तो अधिकारों का फूल कर्तव्यों के आंगन में ही खिलता है।

(iv) भाषा–शैली सरल सुबोध एवं प्रभावपूर्ण है। 'प्रत्येक व्यक्ति परमात्मा की एक चिंगारी है' वाक्य बहुत ही अर्थगर्भित है। भारतीय दर्शनशास्त्र में कहा ही गया है– 'अहं ब्रह्मस्मि।'

टिप्पणी

- हम प्रायः समाज ..... मौका नहीं देना चाहिए।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग–भारत ने स्वतंत्रता प्राप्त करने के बाद लोकतांत्रिक व्यवस्था को अपनाया। इस व्यवस्था में वयस्क मताधिकार को ग्रहण किया। एक आदमी, एक वोट का सिद्धान्त बताता है कि सब व्यक्ति एक समान है, चाहे उनकी शिक्षा, सुविधा अथवा सम्पत्ति कुछ भी क्यों न हो। इस व्यवस्था में सरकार का यह दायित्व बनता है कि वह सब व्यक्तियों को पूर्ण, स्वतन्त्र एवं समृद्ध जीवन जीने का अधिकार दे। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए सार्वदेशिक शिक्षा का लक्ष्य रखा गया है।

व्याख्या– निबन्धकार का कहना है कि शासन–प्रशासन द्वारा प्रायः समाज के समाजवादी ढांचे की बात की जाती है। इसका आशय किसी व्यक्ति को किसी निश्चित खाके में बाँधना नहीं है। समाजवादी ढांचे का अर्थ है – समाज में आर्थिक भेद को, सामाजिक भेद अथवा वैषम्य को न्यूनतम कर देना। पूँजीवादी व्यवस्था में जहाँ वर्ग–वैषम्य बहुत बढ़ जाता है। एक शोषक होता है तो दूसरा शोषित। वहीं समाजवादी व्यवस्था में ये दोनों वर्ग शून्य हो जाते हैं। समाज में कुछ ऐसे प्रतिभावान विचारक अथवा चिन्तक होते ही हैं जो सामाजिक ढांचे में बुनियादी परिवर्तन के लिए एक नया दर्शन प्रदान करते हैं। सामाजिक भेदभाव को कम करने के लिए विज्ञान व प्रौद्योगिकी का विकास करना पड़ता है, ताकि रोजगार के अवसर बढ़ सकें। रोजगार के अवसरों में वृद्धि किए बिना समाजवाद का आदर्श समाज में स्थापित नहीं किया जा सकता। इस सम्बन्ध में यह भी ध्यान रखा जाना चाहिए कि मशीनीकरण इतना न बढ़ जाए कि उसमें इन्सानों का व्यक्तित्व और उनकी प्रतिभा कुचलकर रह जाए। दूसरे शब्दों में यन्त्रीकरण मानवता के विकास में सहायक होना चाहिए, बाधक नहीं। यन्त्र मानव की जगह न ले सके। यन्त्र कभी सजीव प्राणी का स्थानापन्न नहीं हो सकता।

विशेष

(i) सचमुच सार्वदेशिक शिक्षा सरकार का सर्वप्रमुख दायित्व है। शिक्षा ही प्रगति और समानता का अधिकार है।

(ii) मानवीय उत्थान के नाटक में मुख्य अभिनेता प्रतिभावान व्यक्ति ही होते हैं। भाव की दृष्टि से बिल्कुल ऐसी ही बात हिन्दी के लब्ध प्रतिष्ठ कवि श्री अज्ञेय जी ने नदी के द्वीप कविता में अभिव्यक्त की है। उन्होंने प्रतिभावान लोगों को नदी के द्वीप बताया है। ये द्वीप पानी की धारा के साथ बहते नहीं हैं क्योंकि 'बहना रेत होना है।'

(iii) आज प्रगति के नाम पर मशीनीकरण और यन्त्रीकरण का दौर है। वैज्ञानिक द्वारा तरह–तरह के काम करने के लिए रोबोट तैयार किए जा रहे हैं। यदि ऐसे ही रोबोट मानव की जगह लेते रहे तो वे जाति के लिए खतरा बन जाएँगे।

(iv) भाषा शैली सुबोध और प्रवाहपूर्ण है। कुछ वाक्य निश्चय ही बहुत ही अर्थगर्भित बन पड़े हैं जिन पर पर्याप्त चिन्तन मनन की गुंजाइश है।

• असहमति विवेक नहीं है ..... दूसरी जाति के नहीं है।

टिप्पणी

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– 1947 में भारत ने राजनैतिक स्वतन्त्रता प्राप्त की। लोकतंत्रात्मक व्यवस्था स्थापित हुई। डा. राधाकृष्णन जी ने लोकतंत्रात्मक व्यवस्था के तीन पक्ष बताए हैं– यह एक राजनीतिक व्यवस्था है, यह एक आर्थिक रास्ता और साथ ही यह जीवन की एक नैतिक प्रणाली है। लोकतंत्रात्मक व्यवस्था के अन्तर्गत भारत ने वयस्क मताधिकार को ग्रहण किया है। आर्थिक पक्ष के अंतर्गत सरकार का प्रयास है कि वह नागरिकों को स्वतन्त्र एवं समृद्ध जीवन जीने का अवसर प्रदान करे। नैतिक पक्ष की बात की जाए तो यह पक्ष नागरिकों के कर्तव्यों से जुड़ा हुआ है। नागरिकों को यह समझना होगा कि स्वतन्त्रता का अर्थ संयम है, उच्छृंखला नहीं है। राज्य के नागरिकों में सरकार की किसी नीति अथवा परस्पर किसी मुद्दे पर असहमति हो सकती है लेकिन उनके प्रकटीकरण का तरीका बहुत शान्तिपूर्ण होना चाहिए।

व्याख्या– निबन्धकार का कहना है कि राज्यों के नागरिक परस्पर भाषा, धर्म आदि के मुद्दों पर हमेशा जानबूझकर असहमति बनाए रखें, यह विवेकपूर्ण बात नहीं है। विरोधियों की बात, समझना और उनके साथ उचित समझौता करना भी आवश्यक है। इस बात का ध्यान रखना बहुत आवश्यक है कि सदा हम ही ठीक नहीं हो सकते, हमारे विरोधी भी ठीक हो सकते हैं। किसी बात पर यदि विरोध भी हो और उसे प्रकट भी करना हो तो प्रकटीकरण का यह तरीका विद्रोह के रूप में कदापि नहीं होना चाहिए क्योंकि विद्रोह में विध्वंस व हिंसा प्रायः आ ही जाती है। नागरिकों का कर्तव्य है कि वे अपनी समस्याएँ शान्तिपूर्ण ढंग से तथा पूरी विवेकबुद्धि के साथ सरकार के समक्ष प्रस्तुत करें। दोनों ही पक्षों का पूरा प्रयास समस्याओं को हल करने का होना चाहिए। केवल अपनी ताकत दिखाने के लिए समस्याओं को उग्र प्रदर्शन करके रखना वांछनीय नहीं है। नागरिकों को यह अच्छी तरह समझ लेना चाहिए कि लोकतंत्र का अर्थ मनमाने ढंग से चलना नहीं है। लोकतंत्र का अर्थ स्वानुशासन है। हिंसा और लोकतंत्र का पारस्परिक विरोध है। कई बार दो राज्यों के नागरिक भाषा, धर्म, फिल्म आदि के मुद्दों पर हिंसक प्रदर्शन करते हैं। सरकारी वाहनों को क्षति पहुँचाते हैं अथवा विरोधी पक्ष पर हिंसक हमले करके उसे नुकसान पहुँचाते हैं, यह सर्वथा अमानवीय और निन्दनीय है। हमें यह याद रखना होगा कि विरोधियों अथवा शत्रुओं पर हिंसा की ताकत दिखाकर उन्हें दबाना व नुकसान पहुँचाना सर्वथा अमानवीय है। हमें यह सोचना चाहिए कि शत्रु में भी वैसी ही भावनाएँ और इच्छाएँ होती हैं, जैसी कि हमारे अन्दर होती हैं। वे मानवता की किसी दूसरी जाति के नहीं होते। जो व्यवहार हम अपने लिए चाहते हैं, वही हमें दूसरे के लिए करना चाहिए। लेकिन असहमति अथवा विरोध प्रकट करते समय लोग प्रायः मानवता की बात भूल ही जाते हैं और अपने विरोधियों को नीचा दिखाने के लिए उनके साथ अमानवीय व दोयम दर्जे का व्यवहार करते हैं जो कि सर्वथा निन्दनीय है। हम सब एक ही प्रकार की मानवता के प्राणी हैं। विरोधियों के साथ व्यवहार करते हुए अथवा असहमति प्रकट करते हुए हमें विनम्रता और संयम से काम लेना चाहिए।

विशेष

(i) प्रायः लोकतंत्रात्मक व्यवस्था में लोग स्वतन्त्रता का अर्थ उच्छृंखलता अथवा मनमानापन समझ लेते हैं और इस कारण छोटी–छोटी बातों पर हिंसक प्रदर्शन

टिप्पणी

और आगजनी आदि पर उतर आते हैं। अपने अहं को तुष्ट करने के लिए दूसरे पक्ष पर ज्यादा से ज्यादा ताकत दिखाना उन्हें वीरता की बात लगती है। नागरिकों को याद करना चाहिए कि इस तरह की हिंसक गतिविधियाँ लोकतंत्र और मानवता दोनों के लिए घातक हैं।

(ii) 'जब भी हममें संघर्ष होता है, झगड़ा होता है तब हम यह भूल जाते हैं कि हमारे शत्रु भी उसी रक्त–मांस के बने हैं...' वाक्य से मिलती–जुलती बात संस्कृत में इस प्रकार कही गई है– 'आत्मनः प्रतिकूलानि परेषाम् न समाचरेत्।'

(iii) भाषा–शैली बहुत प्रवाहपूर्ण व प्रभावी है। अवतरण के प्रारम्भ में निबन्धकार ने दो अर्थगर्भित और छोटे–छोटे वाक्यों का प्रयोग किया है– 'असहमति विवेक नहीं है। 'विरोध–विद्रोह नहीं है।' बाद के वाक्यों में उदाहरण देकर इन्हें समझाया गया है।

- काल सबसे बड़ा व्याधिहर्ता है..... शास्त्रीय प्रतीत होती है।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– 'लोकतंत्र एक धर्म है' निबन्ध में निबन्धकार ने लोकसत्ता के तीन पहलुओं पर विशद चर्चा की है– राजनीतिक, आर्थिक तथा नैतिक। राजनीतिक और आर्थिक पक्ष सरकार के कर्तव्यों और नागरिकों के अधिकार से जुड़ा हुआ है, वहीं नैतिक पक्ष नागरिकों के कर्तव्य से जुड़ा हुआ है। नागरिकों को चाहिए कि वे किसी भी मुद्दे पर अपने विरोधियों के सम्मुख असहमति प्रकट करने के लिए हिंसक कार्यवाही का सहारा न लें। यह मानवता और सभ्यता के सर्वथा प्रतिकूल है। भारतवर्ष और कुछ अन्य देशों में भी लोग सभ्यता के मूल्यों के विनाश की इतनी चर्चा नहीं करते, जितनी कि अपनी प्रतिष्ठा की। अपनी झूठी शान दिखाने के लिए प्रायः दूसरे पक्ष के प्रति अधिकाधिक मानसिक व शारीरिक हिंसा का प्रयोग किया जाता है।

व्याख्या– लेखक का कहना है कि नागरिकों को परस्पर छोटी–छोटी बातों पर एक दूसरे के प्रति शंकालु और आक्रामक नहीं होना चाहिए। कुछ बातें समय पर भी छोड़ देनी चाहिए क्योंकि समय को सबसे बड़ा चिकित्सक कहा गया है। जिस प्रकार एक अच्छा चिकित्सक हमारी बीमारी का इलाज कर हमारे कष्ट का निवारण करता है, उसी प्रकार समय भी हमारे बहुत सारे संतापों को दूर कर देता है और खास बात यह है कि समय यह काम बिना किसी दवाई को ही कर देता है। कहने का अभिप्राय यह है कि हमारे आपसी मतभेद समय के साथ स्वयमेव कम हो जाते हैं। इसका कारण यह है कि मानवीय प्रकृति लचीली होती है। आज जिस बात पर कोई व्यक्ति इतना दुराग्रही है और हिंसक झड़क के लिए आमादा है, यदि वह अपने आवेश को कुछ दिनों के लिए स्थगित कर दे तो समय के साथ उसका दुराग्रह स्वयमेव कम होता जाएगा और इससे वह हिंसक झड़पों से बच जाएगा। मानवीय प्रकृति की यह बात सामाजिक व राजनीतिक संस्थाओं पर भी समान रूप से लागू होती है। समय में बहुत शमनकारी शक्ति होती है। वक्त के साथ व्यक्ति की नकारात्मक भावों की प्रबलता शान्त हो जाती है। अतः उत्तेजना में तुरन्त कोई कदम उठा लेना उचित नहीं है। एक–दूसरे की मानवीय प्रकृति और उसकी अच्छाई में भी भरोसा करना चाहिए। कोई भी मनुष्य मूलतः बुरा नहीं होता। कुछ समय के लिए उस पर बुराई का प्रभाव हो जाता है लेकिन उसे सद्प्रयत्नों से सुधारा जा सकता है। कोई व्यक्ति सदा के लिए भी बुरा नहीं होता।

टिप्पणी

समय के साथ–साथ मानवीय प्रकृति में धीरे–धीरे परिवर्तन होता रहता है। अतः सामाजिक व राजनीतिक संस्थाओं को भी चाहिए कि वे सर्वसाधारण की सदिच्छा पर भरोसा करें और आनन–फानन में किसी तरह का कोई नकारात्मक फैसला न लें। बहुत सारी समस्याएँ समय के साथ स्वयमेव हल हो जाती हैं। आज जो समस्याएँ हमें बहुत भयावह अथवा विकराल लगती हैं, समय के साथ उनकी तीव्रता कम हो जाती है। थोड़े समय बाद वे सैद्धान्तिक या शास्त्रीय जैसी लगने लगती हैं। जो बात अथवा जो समस्या किसी व्यक्ति या संस्था को आज इतनी विचलित करती है, वह कुछ समय बाद उतनी विचलनकारी नहीं लगती। धीरे–धीरे उसका शमन होता रहता है। यह बात स्वयंसिद्ध है।

विशेष

(i) समय को सबसे बड़ा चिकित्सक बताया गया है और यह बात व्यावहारिक दृष्टि से बिल्कुल सत्य है। सामान्य बोलचाल में यह पंक्ति बड़ी प्रसिद्ध है– 'वक्त सबसे बड़ा मरहम है। वह हर घाव को भर देता है।

(ii) 'जो समस्याएँ आज हमको.....होने लगेंगी' वाक्य से मिलती–जुलती बात उर्दू के सुप्रसिद्ध शायर मिर्ज़ा गालिब ने इस प्रकार कही है 'मुश्किलें मुझ पर पड़ीं इतनी कि आसाँ हो गईं।'

(iii) मानवीय प्रकृति में लचीलेपन की बात स्वयंसिद्ध है। आवेश में व्यक्ति का व्यवहार कुछ अलग होता है और आवेश खत्म हो जाने पर कुछ अलग। इसका मनोवैज्ञानिक कारण यह है कि संवेग बहुत प्रबल होने के साथ अपनी प्रकृति से ही बहुत क्षणिक होते हैं। संवेग का वेग उतरते ही व्यक्ति का व्यवहार नियंत्रित हो जाता है। अतः व्यक्ति को सोच–समझकर ही कोई कार्य करना चाहिए।

(iv) भाषा बहुत प्रभावपूर्ण है। 'काल सबसे बड़ा व्याधिहर्ता' वाक्य सूत्र की तरह अर्थगर्भित है। कबीर ने ठीक ही कहा है–

बिना विचारै जो करे सो पाछे पछिताय

काम बिगारे आपनो, जग में होत हँसाय।

- पराजित शत्रु ..... संघटन की आवश्यकता है।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– 'लोकतंत्र एक धर्म है' निबन्ध में लेखक ने वर्णित किया है कि भारत ने आजादी के बाद लोकतांत्रिक व्यवस्था को अपनाया। लोकतंत्र एक राजनैतिक व्यवस्था है जिसमें देश के सभी नागरिकों को उनकी शिक्षा, आर्थिक स्थिति और रूप रंग का विचार किए बिना एक दृष्टि से देखा जाता है और उन्हें समानाधिकार प्रदान करती है। सरकार लोगों की आर्थिक दशा ऊपर उठाने के भी निरन्तर प्रयास करती है। लोकतंत्र का नैतिक पक्ष मुख्यतः नागरिकों के कर्तव्य से जुड़ा हुआ है। नागरिकों को भी चाहिए कि वे दूसरे लोगों के साथ मित्रवत् व्यवहार रखें और बात–बात पर विद्रोह अथवा झगड़ों की तरफ उतारू न हो। विरोधियों के साथ भी हमारा व्यवहार शान्त एवं शालीन होना चाहिए।

व्याख्या– लेखक का कहना है कि यदि शत्रु को ताकत दिखाकर हरा भी दिया जाए, तो भी वह अधीन तो हो सकता है, पर मित्र नहीं हो सकता। और हारा हुआ शत्रु बहुत

टिप्पणी

खतरनाक होता है। वह कभी भी आस्तीन के साँप की भाँति डस सकता है। वह बस घात करने के अवसर की प्रतीक्षा में रहता है। अतः शत्रु को पराजित करके उसके आक्रमण के भय से मुक्त नहीं रहा जा सकता। वह कभी भी मौका मिलने पर हमलावर हो सकता है। अतः आवश्यकता इस बात की है कि उससे सन्धि करके मित्रता कर ली जाए। सन्धि किया हुआ शत्रु मित्र बन जाता है। इस दृष्टान्त से सबको यह स्पष्ट हो जाना चाहिए कि घृणा बहुत खतरनाक चीज है। यही हमारी सबसे बड़ी शत्रु है। प्रेम से प्रेम बढ़ता है और घृणा से घृणा। घृणा का शमन कर शत्रुता को मित्रता में परिणत करने का निरन्तर प्रयास करना चाहिए। अतः देशवासियों को चाहिए कि वे भाषा, धर्म, राजनीति आदि किसी भी मुद्दे पर किसी के प्रति घृणा का प्रदर्शन न करें। इससे लोकतंत्र को आघात पहुँचता है। आपस में प्रेमभाव और संगठन से ही देश उन्नति के चरमोत्कर्ष पर पहुँच सकता है। यदि इस देश को प्रगति के शिखर पर पहुँचाना है तो सभी देशवासियों को अपने अन्दर कठोर कार्यकुशलता विकसित करनी होगी। अपनी प्रतिभा का प्रदर्शन नकारात्मक क्रियाकलापों में न करके सकारात्मक गतिविधियों में करना चाहिए।

विशेष

(i) इस अवतरण में डा. राधाकृष्णन जी ने हृदय–परिवर्तन की आवश्यकता पर जोर दिया है। किसी व्यक्ति को छल–बल से पराजित करने से अधिक महत्वपूर्ण है उसका दिल जीतना। मैथिलीशरण गुप्त ने ठीक ही कहा है– 'परवशता हो सकती है पर होती नहीं भीति में प्रीति' अर्थात् हम बल–प्रयोग करके किसी को अपने अधीन तो बना सकते हैं पर उसमें अपने लिए प्रेम उत्पन्न नहीं कर सकते। प्रेम से प्रेम का जन्म होता है और घृणा से घृणा का।

(ii) डा. राधाकृष्णन जी दार्शनिक भी थे। इसलिए उन्होंने आन्तरिक हृदयगत भावों की शुद्धि पर बल दिया है। अपने भावों की शुद्धि के लिए निरन्तर आत्म–संघर्ष करना पड़ता है। किसी कवि ने कहा है–

सबसे अधिक कठिन होता है
अपना ही निर्माण
क्योंकि अपने आपसे लड़ते रहना
काम नहीं आसान।

(iii) विवेच्य अवतरण में भाव–सौन्दर्य के साथ–साथ भाषा–शैली का सौन्दर्य देखते ही बनता है। सीधे–सादे शब्दों में अर्थगर्भित वाक्यों का प्रयोग सराहनीय है। यथा– 'पराजित, शत्रु, शत्रु बना रहता है।

3.3.4 'लोकतंत्र एक धर्म है' निबन्ध का समीक्षात्मक अध्ययन

'लोकतंत्र एक धर्म है' निबन्ध भारत के भूतपूर्व राष्ट्रपति, महान शिक्षाविद् एवं दार्शनिक डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन द्वारा रचित है। इस निबन्ध के माध्यम से वे न केवल अच्छी लोकतंत्रात्मक व्यवस्था स्थापित करने की आकांक्षा रखते हैं, बल्कि उसकी सफलता के लिए आत्मत्यागी नेतृत्व और कुशल नागरिक सेवा की आवश्यकता पर भी जोर देते हैं।

टिप्पणी

कलाकारों का अनुभव विविध बाहरी रूपों में अभिव्यक्त होकर नाना विधाओं की रचना करता रहता है। निबन्ध गद्य की एक महत्वपूर्ण विधा है। हिन्दी गद्य का विकास आधुनिक काल में हुआ। भारतेन्दु युग में हम हिन्दी गद्य के बढ़ते कदमों की आहट सुन सकते हैं। इस युग में समाजोपयोगी और देशभक्तिपरक निबन्ध लिखे गए। द्विवेदी युग से होते हुए शुक्ल युग में निबन्ध कला चरम विकास पर जा पहुँची। निबन्ध को परिभाषित करते हुए निबन्धकार मान्तेन ने कहा है– ''निबन्ध विचारों, उद्धरणों और कथाओं का मिश्रण है'' निबन्ध वह है जिसमें वैयक्तिक विचारों या अनुभूतियों को कलात्मक सूत्र में पिरोने का प्रयत्न किया जाए। भारतीय विद्वानों ने भी निबन्ध के स्वरूप पर पर्याप्त चिन्तन–मनन किया है। बाबू श्यामसुन्दर दास के अनुसार ''निबन्ध उस लेख को कहना चाहिए जिसमें किसी गहन विषय पर विस्तारपूर्वक और पांडित्यपूर्ण विचार किया गया हो, भाषा–शैली के आधार पर निबन्धों के मुख्यतः दो प्रकार माने गए हैं– (1) विचारात्मक निबन्ध और (2) भावात्मक निबन्ध। 'लोकतंत्र एक धर्म है' निबन्ध विचारात्मक निबन्धों की श्रेणी में आता है। आकार की दृष्टि से यह एक लघु निबन्ध कहा जाएगा।

गम्भीर विषय–विवेचन– विचारात्मक निबन्ध किसी न किसी विषय पर लिखे जाते हैं। विषय गम्भीर भी हो सकता है और हल्का–फुल्का भी। जैसा कि शीर्षक से ही स्पष्ट है, इसमें लेखक ने लोकतंत्र जैसे गम्भीर विषय पर लिखा है। लेखक लोकतंत्र को किन्हीं परिभाषाओं आदि तात्विक विवेचन में नहीं उलझाता। लेखन निबन्ध के व्यावहारिक पक्ष पर ही केन्द्रित रहता है।

आजादी के संघर्ष से कहीं अधिक विशाल कार्य है देश को स्वच्छ एवं शालीन शासन प्रदान करना। इसके लिए आत्म–त्यागी नेतृत्व और ईमानदार तथा कुशल नागरिक सेवा की आवश्यकता है। लेखक प्रशासन की जिम्मेदारी के साथ–साथ जनता की जिम्मेदारी पर भी प्रकाश डालता है 'अपनी शक्ति भर जो कुछ कर रहे हैं, वह यह कि निर्दोष प्रशासन, स्थिर शासन और एक स्वस्थ राष्ट्र का विकास करने की ओर हमने कुछ कदम उठाये हैं...हमारे देश के विभिन्न भागों में ऐसी बातें हो रही हैं जो हमें दुखी, निराश और अपने प्रति लज्जित करने वाली हैं।' आगे लेखक लोकसत्ता के तीन पहलुओं– राजनीतिक व्यवस्था, आर्थिक और नैतिक पक्ष पर चर्चा करता है। वयस्क मताधिकार पर लेखक ने दार्शनिक की भाँति विचार करते हुए कहा है– ''यह सिद्धान्त हमारी विरासत का एक अंश है। प्रत्येक व्यक्ति परमात्मा की एक चिंगारी है : देहो देवालयो नाम'। लोकतंत्र में शिक्षा की अनिवार्य आवश्यकता का भी जिक्र है– 'इसलिए तो हमारे विधान में सार्वदेशिक शिक्षा का लक्ष्य रखा गया है।' लेखक स्वीकार करता है कि मानवीय उत्थान में प्रतिभाशाली व्यक्तियों की भूमिका महत्वपूर्ण होती है।'

लेखक ने समाजवाद का वास्तविक अर्थ बताकर अपने निबन्ध को बहुत सारगर्भित कर दिया है। लेखक समाजवाद के लक्ष्य की प्राप्ति में खड़ी हुई चुनौतियों को भी स्वीकारता है और साथ ही यह स्वीकार करने में भी संकोच नहीं करता कि अब भी लोकतंत्र एक आदर्श ही बना हुआ है। इस लक्ष्य की पूर्ण प्राप्ति तभी सम्भव है जब जनता सहयोग करे और छोटी–छोटी समस्याओं को संयम से सुलझाए, न कि हिंसक कार्यवाही पर उतर आए। लोकतंत्र और हिंसक कार्यवाही एक दूसरे के प्रतिकूल हैं। देशवासी अपनी समस्याएँ सह–अस्तित्व की भावना के साथ ही हल करें। आपसी

टिप्पणी

लड़ाइयों के कारण ही देश पराधीन हुआ। जनता को इतिहास से सीखकर विच्छेदकारी प्रवृत्तियों से बचना होगा। इस प्रकार लेखक ने लोकतंत्र के आशय, उपादेयता के साथ–साथ सरकार और जनता के अधिकारों व कर्तव्यों का सम्यक् विश्लेषण करके निबन्ध को बहुत अधिक सारगर्भित प्रेरक और उद्देश्यपूर्ण बना दिया है।

लेखक के व्यक्तित्व का प्रकाशन– निबन्ध में निबन्धकार के व्यक्तित्व की उपस्थिति भी वांछनीय मानी गई है। अपने हृदय में उमड़ते हुए विचारों और भावों को जब लेखक पाठकों के सामने लिपिबद्ध रूप में रखना चाहता है, तब निबन्ध जन्म लेता है। निबन्ध लेखक और पाठक के बीच सबसे छोटा, सरल और सीधा राजपथ है। कहानी, उपन्यास आदि में लेखक अपने भावों और विचारों को प्रत्यक्ष रूप से पाठकों के सम्मुख नहीं रख पाता। ऐसा सुअवसर लेखक को निबन्ध में ही मिल पाता है। यहाँ वह अपने विचारों और भावों को प्रत्यक्ष रूप से खुलकर पाठक के सामने प्रस्तुत कर देता है। निबन्ध वर्ण्य विषय का वर्णनमात्र न होकर लेखक की प्रतिभा और व्यक्तित्व की चमक से परिपूर्ण होना चाहिए।

इस दृष्टि से विचार करने पर हम पाते हैं कि पूरे निबन्ध में लेखक का व्यक्तित्व प्रतिबिम्बित हुआ है। निबन्ध के प्रारम्भ में ही लेखक ने अपना निजी विचार रखते हुए कहा है कि देश में अच्छा शासन देना एक मुश्किल कार्य है। इसकी अपेक्षा राजनैतिक स्वतन्त्रता प्राप्त करना सरल कार्य था। ''भारत ने 1947 में राजनीतिक स्वतन्त्रता प्राप्त की। स्वच्छ शालीन ढंग से देश का शासन करने की तुलना में वह एक सरल कार्य था। यह कहीं विशाल कार्य दिखाई पड़ता है।' आगे भी लेखक स्पष्ट रूप से स्वीकारता है कि अच्छा प्रशासन देने के लिए उन्होंने सशक्त प्रयास जरूर किए हैं लेकिन अभी पूरी तरह सफल नहीं हुए और वे स्वयं भी सन्तुष्ट नहीं है। ''अपनी शक्ति भर हम जो कुछ कर रहे हैं, वह यह है कि निर्दोष प्रशासन, स्थिर शासन और एक स्वस्थ राष्ट्र का विकास करने की ओर हमने कुछ कदम उठाए हैं। हम यह नहीं कह सकते हैं कि हमने जो कुछ किया है, उससे हम सन्तुष्ट हैं। समाजवाद का अर्थ और देश में उसकी स्थापना के विषय में भी लेखक ने अपना मत इस प्रकार व्यक्त किया है– 'समाजवाद का अर्थ सभी व्यक्तियों की योग्यताओं का समानीकरण नहीं है। ऐसा होना असम्भव है। सब व्यक्ति समान नहीं होते। समाजवाद का अर्थ केवल सबके लिए समान अवसर या सुविधाएँ देना है। हम यह नहीं कहते कि सब व्यक्ति समान हैं, किन्तु हम यह कहते हैं कि जो भी सम्भावनाएँ उनमें हैं उनको व्यक्त करने के लिए सब व्यक्तियों को समान अवसर दिया जाना चाहिए।

दार्शनिकता का समावेश– इस निबन्ध में दार्शनिकता की छटा कई स्थलों पर दृष्टव्य है क्योंकि लेखक स्वयं एक प्रसिद्ध दार्शनिक रहे हैं। इसलिए अनेक स्थलों पर दार्शनिकता का सौन्दर्य बिखरा पड़ा है। एक स्थल पर लेखक ने मताधिकार के सिद्धान्त को भी दार्शनिकता से सम्बद्ध कर उसका औचित्य सिद्ध करते हुए कहा है– ''यह सिद्धान्त हमारी विरासत का एक अंश है। प्रत्येक व्यक्ति परमात्मा की एक चिंगारी है– 'देहो देवालयो नाम' यह देह भगवान का मन्दिर है।' लेखक देशवासियों को पारस्परिक झगड़ों का परित्याग करने का परामर्श देते हुए उन्हें दार्शनिक ढंग से समझाते हुए कहता है ''जब भी हममें संघर्ष होता है हम यह भूल जाते हैं कि हमारे शत्रु भी उसी रक्त–मांस के बने हैं उनमें वही प्रेरणाएँ एवं वासनाएँ है वही आशाएँ एवं उच्चाकांक्षाएँ

टिप्पणी

हैं। वे मानवता की किसी दूसरी जाति के नहीं हैं।'' पारस्परिक वैर और वैमनस्य दूर करने के लिए इससे बेहतर दार्शनिक आधार और परामर्श क्या हो सकता है? लेखक का दार्शनिक व्यक्तित्व पूरे निबन्ध में ही अभिव्यंजित हुआ है। एक राजनीतिज्ञ के रूप में लेखक का विचार है कि देशवासियों के पारस्परिक झगड़े, भाषा–धर्म आदि के नाम पर झगड़े देश की प्रगति में बाधक हैं। एक दार्शनिक के रूप में लेखक समझता है कि झगड़ों के शमन के लिए जरूरी तत्व है लोगों की मानसिकता में परिवर्तन। उनकी सोच बदलना। सोच बदलने के लिए वह दार्शनिकता का आधार ग्रहण करता है कि समय सबसे बड़ा मरहम है, चिकित्सक है। उत्तेजना में जो समस्याएँ तात्कालिक रूप से हमें बहुत बड़ी लगती है, और हम आवेश में भरकर आन्दोलन आदि के लिए उत्तेजित हो उठते हैं, कुछ समय बाद वे समस्याएँ स्वयमेव बहुत छोटी महसूस होती हैं। लेखक के शब्दों में ''काल सबसे बड़ा व्याधिहर्ता है।'' मानवीय प्रकृति में लोच की, लचीलेपन की असाधारण शक्ति होती है। सामाजिक एवं राजनीतिक संस्थाएँ भी परिवर्तन के उन्हीं नियमों से प्रभावित होती है, जिनसे दुनिया की और सब चीजें हेाती हैं....जो समस्याएँ आज हमको इतनी भयानक रीति से विभाजित कर रही हैं, वे ही कुछ समय बाद विशुद्ध सैद्धांतिक या शास्त्रीय प्रतीत होने लगेंगी। इससे पहले कि हम दुनिया से शान्तिपूर्ण सह अस्तित्व में जीने को कहें, हमें अपने देश की समस्याएँ उसी भावना से हल करनी चाहिए। ''आचरण उपदेश से अच्छा होता है।'' दार्शनिकता के समावेश से निबन्ध का भावपक्ष बहुत समृद्ध हो गया है।

देशभक्ति एवं सांस्कृतिक गौरवगान– प्रस्तुत निबन्ध लोकतंत्र जैसे राजनैतिक व्यवस्था से जुड़े विषय पर लिखा गया है, अतः उसके प्रतिपादन में देश भक्ति का समावेश होना स्वाभाविक ही था। लेखक ने उसमें भारतीय संस्कृति के गौरव को भी समाविष्ट कर निबन्ध को बहुत समृद्ध बना दिया है। लेखक ने लोकतंत्र की सम्यक् प्रतिष्ठा में आत्मत्यागी नेतृत्व और ईमानदार तथा कुशल नागरिक सेवा को आवश्यक माना है। साथ ही वह नागरिकों में नागरिक वृत्ति एवं राष्ट्रीय भावना को भी आवश्यक मानता है। लेखक के शब्दों में सकारात्मक देशभक्ति की भावना बहुत ऊर्जस्वी होती है। उसके बिना देश का विकास सम्भव नहीं 'बीच बीच में अधोगतियों एवं अन्धगलियों में गिरने के बावजूद लगभग चालीस पचास सदियों तक यह देश जिन महती परम्पराओं के लिए खड़ा रहा है, उन्हें अपने अन्दर विकसित करने की आवश्यकता है।'

लेखक देश के सब मनुष्यों को भोजन, वस्त्र एवं आश्रय की सुविधा देना सरकार की महती जिम्मेदारी मानते हैं और उसके लिए लोकतन्त्र के आर्थिक पक्ष को मजबूत करने पर बल देते हैं– 'आर्थिक लोकतन्त्र की उपलब्धि के लिए हमें अपनी राष्ट्रीय सम्पत्ति, अपनी कृषि सम्बन्धी उपज और औद्योगिक उत्पादन बढ़ाना चाहिए। पंचवर्षीय योजनाएँ इन्हीं लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए है। हमारे देहात बहुत उपेक्षित रहे हैं और इन्हें विकसित करने की आवश्यकता है।'' अपने वर्ण्य विषय के सम्यक् विवेचन में निबन्धकार देशवासियों को समझाने के लिए भारत की महान सांस्कृतिक समृद्धि का बोध कराते हुए कहता है– 'वे सब लोग, जो इस भौगोलिक क्षेत्र के नागरिक हैं फिर चाहे उनकी जाति, पंथ, प्रजाति, धर्म कुछ भी हो, इस देश के नागरिक हैं। हमारा राष्ट्र एक है और अखण्डनीय है– यही हमें सिखाया गया है। इसलिए अपने गौरव के दिनों में हम विभिन्न धर्मों के बीच सहिष्णुता और समझदारी से काम ले सके थे। यदि आज हम उन शिक्षकों को भूल जाते हैं और अपनी वर्गीय निष्ठाओं को बढ़ाते चढ़ाते हैं तो निश्चय ही भविष्य अंधकारमय है।''

टिप्पणी

तार्किकतता और भावात्मकता– विचारप्रधान निबन्धों में विचारों का प्राधान्य रहता है। यह प्राधान्य कभी–कभी निबन्धों को बोझिल बना देता है अतः उसमें भावात्मकता का पुट भी रहना आवश्यक है, जिससे निबन्धों में सरसता आ सके। भावात्मकता के साथ तार्किकता सोने में सुहागे का काम करती है। निबन्ध में लेखक ने आदर्श लोकतंत्र की स्थापना में विविध चुनौतियों और समाधान दोनों पर प्रकाश डाला है। कोई भी परिवर्तन केवल विचारों के दम पर सम्भव नहीं। मनुष्य अन्ततः भावों से ही परिचालित होता है। अतः भावों के परिष्कार पर जोर देना जरूरी है। लेखक स्पष्ट करता है गुलामी के दिनों में नकारात्मक देशभक्ति का विकास हुआ था अर्थात् सरकार के साथ असहयोग। किन्तु आज आजादी प्राप्त हो गई है तो नकारात्मक देशभक्ति के स्थान पर सकारात्मक देशभक्ति का विकास होना चाहिए लेकिन अभी ऐसा पूरी तरह क्रियान्वित नहीं हुआ है– ''सकारात्मक देशभक्ति, एक ऊर्जस्वी भ्रातृत्व–भावना, इस महान देश का होने की भावना और उसका होने का अभिमान, ये बातें अभी आने को हैं। हमें इनको मनुष्यों के मस्तिष्कों एवं हृदयों में निर्मित करना होगा।''

लेखक लोकतंत्र की बात करते हुए देश के लाखों भूखे, अर्द्धनग्न और पटरियों पर सोने वाले लोगों की बात करना नहीं भूलता। उनकी दुरावस्था से द्रवित है और इसके निराकरण के लिए कटिबद्ध भी 'जब तक हमारे देश में ऐसे लोग हैं जो दिन में एक बार भी भरपेट भोजन नहीं पाते, जिनके सिर पर कोई छत या छाया नहीं है, जो हमारे नगरों की पटरियों पर सोते हैं, तब तक हमारे सामने एक चुनौती है। कोई भी मनुष्य जो अपने देश के प्रति भावना रखता है, तब तक सुखी और सन्तुष्ट नहीं हो सकता जब तक वह भयानक दुर्दशा और गरीबों को देख रहा है।''

अनेक स्थलों पर लेखक ने भावों के परिष्कार की आवश्यकता पर बल दिया है। यथा– 'असहमति विवेक नहीं है। विरोध विद्रोह नहीं है।' लेखक मानवीय स्वभाव की परिवर्तनशीलता और लचीलेपन को स्वीकार करते हुए बहुत गहन बात कहता है कि 'काल सबसे बड़ा व्याधिहर्ता है। मानवीय प्रकृति में लोच की, लचीलेपन की असाधारण शक्ति होती है। विचारों के साथ–साथ जीवन में भाव भी बहुत ही महत्वपूर्ण बल्कि अधिक महत्वपूर्ण होते हैं। भावों में नकारात्मकता होने पर मनुष्य समस्त बौद्धिक क्षमताएँ होने के बावजूद एक सुखमय जीवन नहीं जी सकता। दूसरों से छोटी–छोटी बातों पर लड़ाई झगड़ा, बैर–वैमनस्य से भी जीवन में नकारात्मकता का समावेश होता है। अतः प्रयास पारस्परिक सद्भाव और शत्रुओं को भी मित्र बनाने के होने चाहिए क्योंकि ''पराजित शत्रु, शत्रु बना रहता है, परन्तु एक कृतसन्धि विरोधी मित्र बन जाता है। घृणा सबसे बड़ा खतरा है। यह हमारा सबसे बड़ा शत्रु है। हमारा सारा रुख सुलह समझौते का होना चाहिए। यहाँ यह दृष्टव्य है कि लेखक ने भावात्मकता के साथ तार्किकता का भी संयोग किया है। कोरी भावुकता कारगर नहीं होती। वह तार्किकता से पुष्ट होनी चाहिए। समाजवाद का आशय समझाते हुए भी लेखक स्पष्ट कर देता है कि समाजवाद का अर्थ सबकी योग्यताओं का समानीकरण नहीं है क्योंकि ऐसा होना सम्भव नहीं है। लेखक के शब्दों में 'समाजवाद का अर्थ सभी व्यक्तियों की योग्यताओं का समानीकरण नहीं है। ऐसा होना असम्भव है। सब व्यक्ति समान नहीं होते। समाजवाद का अर्थ केवल सबके लिए समान अवसर या सुविधाएँ देना है।'

परिष्कृत भाषा–शैली– भाषा किसी भी रचना का कलेवर है। भाषा के माध्यम से ही कोई रचना आकार ग्रहण करती है। किसी भी निबन्ध की भाषा शैली निबन्ध की प्रकृति

तथा विषय के अनुरूप होनी चाहिए। वह भावों और विचारों को वहन करने में सक्षम होनी चाहिए।

टिप्पणी

इस निबन्ध की बात करें तो हम पाते हैं कि भाषा–शैली सरल, सुबोध और बोल चाल की है। निबन्ध भाषण की सी शैली में लिखा गया है। सम्भवतः भाषण के लिए ही लिखा गया हो। कहीं भी दुरुह अथवा क्लिष्ट शब्दों का प्रयोग नहीं है। आवश्यकतानुसार तत्सम–ऊर्जस्वी, सार्वदेशिक, व्याधिहर्ता, कृतसन्धि, कतिपय तथा उर्दू के चिंगारी, बावजूद, भरपेट, गरीबी जैसे प्रचलित शब्दों का प्रयोग है। प्रसंग के अनुसार लघु तथा दीर्घ वाक्यों का प्रयोग है। लघु वाक्य वाक्य है– 'असहमति विवेक नहीं है।' दीर्घ वाक्य का एक उदाहरण दृष्टव्य है– 'यदि हमें मानवीय स्वभाव की लोच में, समय की व्याधि शमनकारी शक्ति में, सामाजिक एवं राजनीतिक संस्थाओं की परिवर्तनशीलता में और सबके ऊपर सर्वसाधारण की सदिच्छा में विश्वास हो तो जो समस्याएँ आज हमको इतनी भयानक रीति से विभाजित कर रही हैं, वे ही कुछ समय बाद विशुद्ध सैद्धान्तिक या शास्त्रीय प्रतीत होने लगेंगी।'

इस निबन्ध की भाषा शैली की एक अन्य विशेषता है इसमें कुछ वाक्य सूत्र की तरह से अर्थगर्भित हैं यथा–

(i) प्रत्येक व्यक्ति परमात्मा की एक चिंगारी है।

(ii) समाजवाद का अर्थ सभी व्यक्तियों की योग्यताओं का समाजीकरण नहीं है।

(iii) विरोध विद्रोह नहीं है।

(iv) काल सबसे बड़ा व्याधिहर्ता है

(v) आचरण उपदेश से ज्यादा अच्छा होता है।

(vi) पराजित शत्रु शत्रु बना रहता है और बदला लेने के लिए अवसर की प्रतीक्षा में रहता है।

(vii) कृतसन्धि द्वारा विरोधी मित्र बन जाता है।

(viii) घृणा सबसे बड़ा खतरा है।

(ix) प्रत्येक प्राणी सर्वोच्च जीवन के लिए शक्तिमान उम्मीदवार है।

रोचकता बनाए रखने के लिए लेखक ने अमेरिका के इस प्रसंग का भी वर्णन किया है जो निबन्ध की अर्थ–सिद्धि में बहुत सहायक है 'जब एक अमेरिकी को मिडिल वेस्ट में एक सुन्दर फार्म दिखाया गया तो वह बोला 'देखा, यदि ईश्वर और मनुष्य सहयोग करें तो इतना महान कार्य हो सकता है।' फार्म के मालिक ने कहा 'आप तब फॉर्म को देखते, जब वह केवल ईश्वर द्वारा चलाया जा रहा था। ईश्वर हमसे सच्चाई के साथ कठोर काम की आशा करता है।' कहीं कहीं लेखक ने बहुत प्रचलित सूक्तियों का प्रयोग किया है, यथा– 'देहो देवालयो नाम'। और निबन्ध इस प्रसिद्ध कहावत के साथ ही बहुत सन्देश देकर समाप्त हो जाता है– 'ईश्वर उन्हीं की सहायता करता है, जो अपनी सहायता स्वयं करते हैं।'

इस प्रकार निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि विवेच्य निबन्ध वर्ण्यविषय, वैचारिकता, भावात्मकता, निबन्धकार का व्यक्तिगत प्रकाशन तथा प्रतिपादन शैली, उद्देश्यपरकता आदि सभी दृष्टियों से महत्वपूर्ण व सराहनीय बन पड़ा है। निबन्ध देशभक्ति को लोक–तंत्र की समृद्धि की दिशा में मोड़ने की वांछा से लिखा गया है और

लेखक अपने उद्देश्य की प्राप्ति में पूर्णतः सफल भी हुआ है। लेखक इस निबन्ध के माध्यम से लोकतंत्र का सही अर्थ समझाने, नेता और जनता के अधिकार और कर्तव्य का बोध कराने तथा सही मार्ग–दर्शन करने में पूर्ण सक्षम है।

टिप्पणी

अपनी प्रगति जाँचिए

3. डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन की नियुक्ति राष्ट्रपति पद पर कब हुई?

   (क) 13 मई 1962 (ख) 13 मई 1952

   (ग) 5 सितम्बर 1963 (घ) 5 सितम्बर 1954

4. डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन ने निबन्ध के अंतर्गत किसे सबसे बड़ा व्याधिहर्ता कहा है?

   (क) मानव को (ख) लोकतंत्र को

   (ग) काल को (घ) समाजवाद को

3.4 नहीं रुकती है नदी : हीरालाल बाछोतिया

डॉ. हीरालाल बाछोतिया शिक्षा व साहित्य के क्षेत्र में एक जाना माना नाम है। वे एन. सी.ई.आर.टी. में हिन्दी प्रकोष्ठ के अध्यक्ष हैं। इस पद पर कार्य करते हुए वे शताधिक पुस्तकों के निर्माण से सम्बद्ध रहे हैं और उन्होंने लब्धप्रतिष्ठ साहित्यकारों पर कला फिल्मों के लिए स्क्रिप्ट लेखन भी किया है। दक्षिण भारत में हिन्दी की प्रचार सभा के माध्यम से भी इन्होंने हिन्दी के प्रचार–प्रसार में अपना योगदान दिया है। साथ ही गैर पारम्परिक शिक्षा तथा मुक्त विद्यालयी शिक्षा के क्षेत्र में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

बहुत–सी संस्थाओं से जुड़कर हिन्दी के विकास में योगदान देने के साथ–साथ अपने बहुविध लेखन के द्वारा माँ सरस्वती के भंडार को भी समृद्ध किया है। शिक्षा, संस्कृति और भाषा पर आपने बहुत सी पुस्तकें लिखी हैं। आपने देश के अन्तरिम क्षेत्रों की यात्राओं से लेकर यूरोप, अमेरिका, वेस्टइंडीज आदि देशों की यात्राएँ भी की हैं और उन अनुभवों को यात्रा–वृत्तान्त के माध्यम से लिपिबद्ध भी किया है।

डा. हीरालाल बाछोतिया की प्रकाशित पुस्तकें इस प्रकार हैं– काव्य अभी भी, जनहित और अन्य कविताएँ, विद्रोहिणी शबरी– कविता की पुस्तकें हैं।

उपन्यास– एक और मीनाक्षी, कस्तूरी गंध, नेकी की राह, आँगन का पेड़, फल हमारा है।

यात्रा वृत्तान्त– नहीं रुकती है नदी, भारत से बाहर भारत

भाषा–भाषिकी– हिन्दी शिक्षण : संकल्पना और प्रयोग, राजभाषा हिन्दी और उसका विकास

सम्पादन– अनुस्वा (साहित्यिक त्रैमासिकी का सम्पादन)

शोध–समीक्षा– निराला साहित्य का अनुशीलन, आकाशधर्मी आचार्य पं. हजारी प्रसाद द्विवेदी।

अन्य– हिन्दी की अन्य गद्य विधाएँ, सतपुड़ा के स्वर, अस्मिता (काव्य संकलन)

सम्मान– डॉ. हीरालाल जी को समय–समय पर अनेक संस्थाओं द्वारा सम्मानित किया गया है। हिन्दी अकादमी दिल्ली द्वारा उन्हें साहित्यकार सम्मान प्रदान किया गया। इसके अतिरिक्त उनकी सृजन साधना सहस्त्राब्दी हिन्दी सम्मान, चित्रकला संगम सम्मान आदि सहित अनेक सम्मानों–पुरस्कारों से अलंकृत हुई है।

टिप्पणी

3.4.1 'नहीं रुकती है नदी' का मूल पाठ

महाकवि कालिदास ने 'मेघदूत' में आम्रकूट पर्वत का वर्णन किया है। मेघदूत में वर्णित आम्रकूट विन्ध्याचल का पूर्वी छोर है। इसी पूर्वी छोर का एक हिस्सा है– अमरकंटक। 'अमरकंटक' नाम में ही ऐसा आकर्षण है जो पर्यटक के मन को बाँध लेता है। किसी ओर से भी जाएँ– अमरकंटक की यात्रा कंटकपूर्ण किन्तु रोमांचक है।

पहले अमरकंटक पहुँचने में बड़ी कठिनाई होती थी, किन्तु अब सड़कों के बन जाने से सुविधा हो गई है। कटनी से बिलासपुर जाने वाली रेल लाइन पर पेंडरा रोड से यह 40 किलोमीटर है। जबलपुर–बिलासपुर से भी यहाँ पहुँचा जा सकता है। अमरकंटक की यात्रा बिलासपुर से जीप द्वारा करना कुछ अधिक ही कंटकपूर्ण और रोमांचक थी।

वह नए साल का पाँचवाँ या छठाँ दिन था। जनवरी में भी बारिश हो जाया करती है। पिछली रात ही वर्षा हुई थी। तेज हवाएँ अब भी चल रही थीं। बीच–बीच में तेज बौछारें आ–जा रही थीं। लहलहाते खेतों वाली भूमि पीछे छूटती जा रही थी। घने जंगलों का सिलसिला शुरू हो गया था। काफी देर बाद एकाध वन–ग्राम दिखाई दे जाता था। सड़क भी अब कच्ची–पक्की रह गई थी। नालों पर या तो नए पुल निर्माणाधीन थे या मात्र रपटे थे। निर्माणाधीन पुलों पर गिट्टी–मिट्टी का ऐसा रेल–पेल बन गया था कि जीप को कच्चे रास्ते से ले जाना ही सुरक्षित था। कई स्थानों पर आसपास की झाड़ियाँ आदि काटकर बिछानी पड़ीं, तभी जीप आगे बढ़ सकी। झाड़ियाँ काटने के लिए एक ग्रामवासी गिरिजन ने कुल्हाड़ी दे दी थी। बड़ी प्रतीक्षा के बाद भी जब वह कुल्हाड़ी लेने नहीं आया तो सड़क के किनारे ही कुल्हाड़ी को रख देना पड़ा। उसी के नीचे पाँच रुपये का एक नोट भी रख दिया क्योंकि आसपास कहीं कोई था ही नहीं, जिसे कुछ बता सकें। वह यह भी न सोचे कि शहर के लोग मतलबी होते हैं।

घने वनों के बीच एक बड़ा–सा वनग्राम आया, नाम था– 'अचानक मार'। कभी किसी अंग्रेज साहब पर यहाँ शेर ने अचानक हमला कर दिया था, इसलिए नाम पड़ा– 'अचानक मार'। 'अचानक मार' में वन–विभाग का कारोबार है। जंगल से लकड़ियाँ काटकर यहाँ जमा की जाती हैं। डिपो है यहाँ– शासकीय काष्ठ भंडार। एक–दो होटल, दो–एक दुकानें भी सड़क के किनारे दिखीं। सरकारी स्कूल भी था। यहाँ आदिवासी नृत्य अपने ही परिवेश में देखने का अवसर मिल गया। घने बादल छाए हुए थे। उस माहौल में आदिवासी नृत्य में शामिल होना असमय शायद हो किन्तु अयाचित या अनाकर्षक नहीं। ढोल पर आदिवासी स्त्रियाँ थिरकती रहीं और गूँजते रहे उनके गीत। उनका कला–प्रदर्शन सार्थक रहा, क्योंकि दर्शकों द्वारा उन्हें काफी इनाम आदि दिए गए।

अचानक मार के आगे सड़क कान्हा अभयारण्य क्षेत्र के पास से गुजरती है। हिरणों के झुंड पहले ही देख चुके थे। ड्राइवर ने बताया– रात में शेर, चीते सड़क पर

ही मिल जाते हैं। बारिश अब लगातार हो रही थी। सड़क एक के बाद दूसरा मोड़ ले रही थी।

टिप्पणी

चढ़ाई के साथ ऊँचाई बढ़ रही थी और उसी के साथ बढ़ रही थी सर्दी। कहीं कोई गाँव तक नहीं था। काफी देर बाद यह सँकरी सड़क गौरेला (शहडोल) से आने वाली बड़ी सड़क से जा मिली। इस सड़क पर ट्रकों का आना–जाना ज्यादा ही था। लकड़ी से लदे हुए ट्रक हॉर्न बजाते सीधे निकले जा रहे थे। यह तो खैर थी कि पहाड़ी की ओर जीप को हट जाना पड़ता था, जबकि दूसरी ओर नुकीले बाँसों के जंगल से भरी गहरी घाटी थी। कुछ ही देर में एक तिराहे– कबीर चबूतरे पर जा पहुँचे। कबीर चबूतरा एक प्रसिद्ध स्थान है। कहते हैं, कभी कबीर यहाँ आए थे। इसके आगे और ऊँची चढ़ाई थी। सड़क पहाड़ के एक स्कंध को लाँघकर दूसरे पर पहुँच रही थी। सर्द हवाएँ पूर्ववत कँपकँपी पैदा कर रही थीं। यदि वर्षा न हो रही होती तो यह मार्ग अपनी रमणीयता का अद्‌भुत आयाम समग्रता में प्रस्तुत करता। मंडला जबलपुर–शहडोल से होकर आएँ तब भी मार्ग की रमणीयता या संभावित कंटक यही होते हैं।

ऊँचाई पर ऊँची–नीची समतलता अमरकंटक के बिल्कुल पास आ पहुँचने का संकेत दे रही थी। एक ओर ढालू जमीन पर मकानों का सिलसिला था। पास ही वन विभाग की इमारतों की कतार दिख रही थी। पृष्ठभूमि में सघन सागौन वन था। दूसरी ओर ढालू जमीन के निचले भाग में दुकानें तथा बस्ती थी और दोनों के बीच नर्मदा मैया का मंदिर दिख रहा था।

अमरकंटक की ऊँचाई लगभग साढ़े तीन हजार फुट है। एक तरह से हिल–स्टेशन की अर्हताएँ हैं। किन्तु हिल स्टेशन के आधुनिक निष्कर्षों को यह शायद ही कभी पूरा कर सके। अमरकंटक 'नर्मदा मैया' की जन्म–स्थली है और तीर्थ–यात्रियों के आकर्षण का केन्द्र है। हाँ, प्रकृति प्रेमियों या पर्वतारोहण में रुचि रखने वाले भी यहाँ मिल जाएँगे। 'नर्मदा मैया की जय' की अनुगूँज ही यहाँ की पहचान है।

नर्मदा को चिर–कुँआरी कहा जाता है। कहते हैं– सोन इसे ब्याहने आया, किन्तु उसके अहं की क्षुद्रता नर्मदा को रास नहीं आई। नर्मदा ने सोन के अहं पर प्रहार किया। वह स्वयं पूर्वाभिमुख होकर बह निकला और यह ठीक उसके विरुद्ध पश्चिम दिशा की ओर बढ़ चली। नर्मदा कुंड से निकली हैं, जिसे कोटितीर्थ कहते हैं। कुंडों के पास खड़े होकर देखें तो पूर्व की ओर दिखने वाली क्षितिज रेखा को रोककर खड़े सघन वन से जमीन का एक ढाल पश्चिमाभिमुख है, दूसरा पूर्वाभिमुख। सघन वन में बाँस के भिड़े हैं, जो वर्षा के पानी को सँजोकर रखते हैं। यही पानी धीरे–धीरे उनमें से रिसता रहता है। ढालू पर बहता पानी जल–कुंडों में एकत्रित होता रहता है। यही नर्मदा का उद्‌गम है।

स्नान के लिए भी जल–कुंडों का प्रयोग किया जा सकता है। इन कुंडों का जल पूजा–अर्चना के लिए भी है। कई मंदिर हैं जिनमें नर्मदा मैया का मंदिर सबसे भव्य है। यहाँ मंदिर है, तो पंडे–पुजारी भी हैं और हैं पूजा–अर्चना के बाद 'परकम्म' (परिक्रमा) पर निकलने वाले तीर्थ–यात्री भी। नर्मदा की परिक्रमा उद्‌गम के एक ओर से शुरू होकर सागर–मिलन पर समाप्त होती है। फिर वहाँ से दूसरे तट से प्रारंभ होकर यहीं समाप्त होती है। कुछ यात्री इसे हिस्सों में पूरा करते हैं। कुछ यात्री हंडिया से यात्रा शुरू करते हैं। कुछ ओंकारेश्वर पर पड़ाव डालते हैं। यह परकम्मा पैदल की जाती है। घने जंगलों, वन्य–पशुओं, कंटकों, नावों, सबसे होकर गुजरते हैं– परकम्मावासी। शायद यही अमरत्व का काँटा है।

टिप्पणी

हमने सोचा– कपि धारा तक 'परकम्मा' की जाए और चल पड़े परकम्मा पर। कुंड से कितनी छोटी धारा को बहते देखा था, किन्तु 4 किलोमीटर बाद ही वह प्रवाहमयी धारा बन गई थी। कितने ही परकम्मावासी मार्ग में मिले। मार्ग भी तो उछलती–कूदती नर्मदा के साथ–साथ आगे बढ़ता है। सामने से आते दल चाहे परकम्मा वाले हों, चाहे पर्यटकों के 'बोलो नर्मदा मैया की जय' के साथ एक दूसरे का अभिवादन करते मिले। उद्‌गम से कोई 5 किलोमीटर की दूरी पर नर्मदा को पार कर दूसरे किनारे जाना था कि पीछे से आती जीप बीच में फँसकर चट्‌टानों के पास बहती चली गई। रस्से से बाँधकर उसे निकाला जा सका। लगा कि पैदल परकम्मा करना ही निरापद है।

आगे कपिल धारा है, जहाँ नर्मदा चट्‌टानों से लगभग सौ फुट नीचे उतरती है और एक सुन्दर जल–प्रपात का निर्माण करती है। हरियाली के बीच लटकी यह जल–धारा एक अद्‌भुत दृश्य उपस्थित करती है। जहाँ धारा गिरती है वहाँ कतिपय गुफाएँ या चट्‌टानों को काटकर बनाए गए शैलाश्रम हैं, जहाँ बैठकर ध्यान–मनन किया जा सकता है। कहा जाता है, कपिल मुनि ने यहीं तपस्या की थी।

पत्थरों–चट्‌टानों पर संभलकर चलना ही ठीक है। ठीक कपिल धारा के ऊपर नर्मदा को इसी तरह पार करना होता है। फिर सँकरी नीचे उतरती पगडंडी से चलकर वहाँ पहुँचते हैं, जहाँ नर्मदा फिर पाषाण–खंडों के बीच 'कलकल' करती घने वनों के बीच दौड़ती है। जिस ओर नर्मदा जा रही थी, उस ओर देखते रहे। आगे सघन वन और नीले पहाड़ थे। हाँ, सघन वनों के बीच एक खाली रेखा थी और दूर उसमें से झाँकते नीले पहाड़ों की शृंखला दिखाई दे रही थी। शायद वही नर्मदा का प्रवाह–पथ था, लेकिन नर्मदा तो उन सबको लाँघकर आगे बढ़ती जाती है– आगे बढ़ती रहती है।

नहीं रुकती नर्मदा–कहीं नहीं रुकती–न डिंडोरी में, न मंडला में, न बरगी में, न भेड़ाघाट (जबलपुर) में। भेड़ाघाट में वह श्यामल चट्‌टानों को दूधिया बनाती है। भेड़ाघाट में ही सुंदरतम जल–प्रपात का आँचल फहराकर पथिकों को कुछ क्षण विश्राम की प्रेरणा देती है। फिर संगमरमरी चट्‌टानों के बीच बहती पर्यटकों को नौका विहार का सुख देती है।

नर्मदा का पथ सतपुड़ा और विन्ध्याचल के बीच से होकर गुजरता है। जगह–जगह शैल–शृंखलाएँ इसे रोकने जा खड़ी होती हैं और यह है कि अपनी तेज धारा से उन्हें काटती–छाँटती वेग से आगे बढ़ती रहती है। कितनी ही छोटी–बड़ी नदियों को यह गले लगाती बढ़ती जाती है। शक्कर, दूधी, गंजाल, मोरन, माचक, चोरल और न जाने कितनी नदियाँ जो अपने क्षेत्र की किवदंतियों को नर्मदा के यशोगान में जोड़ती जाती हैं, जैसे तवा जो होशंगाबाद के पास नर्मदा में मिलता है। कहते हैं, तवा भी फुफकारते अहं के साथ नर्मदा को ब्याहने आया। उसे नर्मदा ने ऐसी फटकार लगाई कि वह वहीं चौड़ा हो गया। वहाँ तवा की चौड़ाई (फैलाव) तवा जैसी है भी।

नर्मदा का कंकर शंकर या शिवलिंग है। गोल पत्थर जो नर्मदा के तट पर मिलते हैं, उनमें प्रायः एक जनेऊ जैसी रेखा दिखती है। इन गोल पत्थरों को लोग जनेऊ जैसे देखकर शिवलिंग के रूप में अपने घरों में प्रतिष्ठित करते हैं। नर्मदा तट पर विभिन्न नामों से शिव का ही वास है। कहीं गंगेश्वर, कहीं कालेश्वर, कहीं ओंकारेश्वर। नर्मदा तट पर घाट हैं। मंदिर हैं। बरमान घाट, खल घाट, राजघाट और न जाने कितने घाट– जहाँ नाव से नर्मदा को पार करना होता था। अब सेतु बन जाने के बाद वे नाविकों के लिए आजीविका के केन्द्र नहीं रह गए हैं। होशंगाबाद के घाटों की अपनी शोभा है, तो

माहेश्वर के घाटों में वाराणसी के घाटों का प्रतिरूप दिखाई देता है। इनके साथ पौराणिक कथाएँ जुड़ी हुई हैं। नावड़तोड़ी (महेश्वर) में पूर्व मध्यकालीन या उससे पहले की सभ्यता के अवशेष भी मिले हैं।

टिप्पणी

कपिल धारा पर खड़े होकर वेगवती नर्मदा के आगे बढ़ते रहने की कल्पना की जा सकती है। 'परकम्मा' पर निकले तो यह सारा कुछ देखा जा सकता है या इन्हें टुकड़ों में भी देखा जा सकता है। नर्मदा जहाँ भी पहुँचती हैं, वहीं तीर्थ बन जाता है। 'स्कंध–पुराण' के ' रेवा–खंड' में कहा गया है कि गंगा कनखल तीर्थ में और सरस्वती कुरूक्षेत्र में सबसे अधिक पवित्र मानी जाती हैं, परन्तु नर्मदा की महिमा का कोई पार नहीं। वह तो गाँव–गाँव और डगर–डगर सब कहीं पवित्र है। उसके महात्म्य को लेकर हर स्थान पर एक कहानी मिलती है। नर्मदा लोकजीवन को प्रेरित करती है। लोग गा उठते हैं–

मुरूआ–मुरूआ आ गई नरबदा रे।
आ गई नरबदा रे।।

उसकी लहरों में दीपदान किया जाता है। तागली, चोली और फरिया भेंट की जाती है।

नर्मदा जिस पथ से होकर बहती है, वह गोंडवाना कहलाता है। इसलिए आदिम जन की अनगढ़ता का सौंदर्य इसमें सहज सुलभ है। इसकी अगवानी पर बुंदेली, निमाड़ी मालवी, भीली की लोक–परंपरा आज भी जीवंत है। यहाँ लोकगीतों में नर्मदा को पतितपावनी, दरिद्र नारायण की रक्षक, अखंड सौभाग्य का वरदान देने वाली तथा मातृत्व से परिपूरित कहा गया है। नर्मदा एक नदी नहीं, संस्कृति है। इस संस्कृति की अनुगूँज पूरे नर्मदा कछार में सुनी जा सकती है–

''म्हारा मेंहदी रचा न हुई हात
घागर म्हारो भरी रे दीजो
भरि दीजो रे नंदजी का लाल
घागर म्हारी भरी दीजो।।''

नर्मदा का महात्म्य जन–भावना में सर्वज्ञात है। अब इस चिर–कुमारी को बाँधों के घूँघट पहनाए जा रहे हैं। पुनासा बाँध, नर्मदा सागर बाँध आदि इसी प्रकार के प्रयास हैं, जो नर्मदा के जल को प्यासी फसलों तक पहुँचाएँगे और जल से उत्पन्न विद्युत गाँवों को बिजली की आँखें देगी। यह अलग बात है कि इनके कारण हजारों एकड़ बेकार भूमि ही नहीं, उर्वर जमीन भी पानी में डूबेगी। लोगों को अपने घर–जमीन छोड़कर देश बाहर होने का अभिशाप ढोना पड़ेगा। हरसूद जैसा बड़ा कस्बा और बम्बई जाने वाली रेल लाइन का एक हिस्सा तक डूब में आएगा। बड़वानी क्षेत्र का बड़ा भूभाग भी इस डूब में आएगा, लेकिन लोग अभी भी आशा नर्मदा पर ही लगाए हैं– ''नर्मदा मैया जो चाहेगी वही होगा''– कितनी गहन आस्था है।

कार्तिक पूर्णिमा, संक्रांति, चन्द्र और सूर्य ग्रहण आदि अवसरों पर नर्मदा के हर घाट पर या कहें बसे हुए तट पर मेले जुड़ते हैं। आसपास के क्षेत्रों से लोग अपनी बैलगाड़ियों में गाते हुए नर्मदा के किनारे जुड़ते हैं और नर्मदा में डुबकी लगाते हैं– ''हर हर नर्मदे''। इस जयकारे के द्वारा ये अपने आपको कृतार्थ मानते हैं। नर्मदा के तट पर ही 'गक्कड़' बनाते और नर्मदा मैया के प्रसाद के रूप में उसे खाते हैं। अमरकंटक में

तो सदा ही मेला भरा रहता है। तीर्थ–यात्रियों की भीड़ लगी रहती है, जिनमें परकम्मावासी भी शामिल हैं। यह परकम्मा हमारी परिक्रमाओं को एक वृहत् अर्थ भी तो देती है। कोटितीर्थ (गोमुख) से कपिल धारा और कपिल धारा से कोटितीर्थ की परकम्मा हमारी अमरकंटक यात्रा की उपलब्धि ही है।

टिप्पणी

3.4.2 यात्रा वृत्तान्त की लेखन शैली

मानव आदिकाल से ही यात्रा करता रहा है। आदिम मानव यायावर ही था। आदिम काल से लेकर आज तक का सफर यात्रा का ही सफर कहा जा सकता है। और महत्वपूर्ण बात यह भी है कि यात्राएँ मात्र मनोरंजन के लिए नहीं होतीं, उनका मानव की प्रगति में भी महत्वपूर्ण योगदान रहता है। सामान्य व्यक्ति अपनी यात्रा के अनुभवों व ज्ञान को अपने तक सीमित रख लेता है अथवा वाचिक रूप से अपने घर–परिवार व मित्रों आदि से साझा कर लेता है, किन्तु एक लेखक अपनी यात्रा के अनुभव व ज्ञान को शब्दबद्ध यात्रा साहित्य में अभिवृद्धि करके लाखों पाठकों को लाभान्वित करते हैं। यात्रा वृत्तान्त के लेखन का मूल उद्देश्य आत्माभिव्यक्ति की सहज प्रवृत्ति तो है ही, साथ ही इस प्रकार के लेखन का मूल प्रयोजन लेखक द्वारा यात्रा किए गए स्थल के सम्बन्ध में दी गई जानकारी से पाठकों को यात्रा के लिए प्रेरित करना होता है।

यात्रा के विषय में हिन्दी के लोकप्रिय लेखक राकेश मोहन का कहना है कि यात्रा व्यक्ति को तटस्थ नजरिया देती है, जो हमें दैनिक जीवन में देखने को नहीं मिलता है। एक नये वातावरण में जाकर व्यक्ति कुंठामुक्त हो जाता है और अपने निकट के वातावरण के दबाव से मुक्त होकर नये स्थानों और लोगों से सम्बन्ध स्थापित करता है। मनुष्य जहाँ की भी यात्रा करता है, वहाँ से कुछ न कुछ अवश्य ग्रहण करता है और कलात्मक ढंग से व्यक्त किए गए लिपिबद्ध यात्रा–वर्णन को ही यात्रा–वृत्तान्त कहते हैं। यह निबन्ध–शैली का नया रूप है। इस साहित्य विधा के पीछे का उद्देश्य लेखक के रमणीय अनुभवों को हुबहू पाठक तक प्रेषित करना होता है ताकि पाठक उस अनुभव को आत्मसात् कर सके।

आदिकाल में भी यात्राओं का प्रचलन था। लेखक विदेशों में घूमा करते थे। इस यात्रा में लेखक एक दूसरे की संस्कृति से परिचित होते तथा शिक्षा व धर्म का प्रचार–प्रसार करते हैं। प्राचीन काल के यात्रियों में अलबरूनी, इब्नबतूता, ह्वेनसांग, फाहियान, मार्कोपोलो आदि के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इन यात्रियों ने अपने यात्रा विवरण प्रस्तुत किए हैं। उनके ये विवरण ज्ञान के भंडार तो कहे जा सकते हैं, परंतु यात्रा–साहित्य नहीं। संस्कृत साहित्य में कालिदास और बाणभट्ट के साहित्य में भी आंशिक रूप से यात्रा वर्णन मिलता है। ऐसे वर्णनों में लेखक के व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति बहुत कम हो जाती है। वह एक तटस्थ दृष्टा के रूप में देखता है और लिख देता है। प्रकृति–चित्रण अभिव्यक्त होता है। ऐसे यात्रा विवरणों में आत्माभिव्यक्ति कम ही होती है। यही कारण है कि आधुनिक यात्रा साहित्य का विकास शुद्ध निबन्धों की शैली से माना जाता है। यात्रा साहित्य विविध शैलियों में लिखा जाता है।

मुख्य रूप से आधुनिक हिन्दी साहित्य के प्रथम युग भारतेन्दु युग को ही यात्रा साहित्य का आरम्भ काल माना जा सकता है। उनकी यात्रा–रचनाएँ हरिद्वार, लखनऊ, जबलपुर, रामपुर, वैद्यनाथ की यात्रा आदि उनके जीवन काल में ही प्रकाशित हुई थीं। उनके द्वारा सम्पादित पत्र–पत्रिकाओं में भी यात्रा विवरण प्रकाशित होता था। इन यात्रा

टिप्पणी

वृत्तान्तों की भाषा व्यंग्यपूर्ण है और शैली बड़ी रोचक और सजीव है। इस युग के प्रताप नारायण मिश्र ने विलायत यात्रा तथा बालकृष्ण भट्ट ने 'गया यात्रा' नामक रचनाएँ लिखी। भारतेन्दु युग में विदेश यात्रा सम्बन्धी वर्णनों में लन्दन को प्रमुखता मिली तो स्वदेश यात्रा सम्बन्धी वर्णनों में तीर्थ यात्रियों के वर्णनों को मिली।

राहुल सांकृत्यायन का यात्रा–साहित्य में योगदान अद्वितीय है। उन्होंने भारत ही नहीं, भारत के आस–पास अन्य देशों में भी भ्रमण किया। वे दुर्गम घाटी, दर्श, पहाड़ी, पठार आदि पर भी यात्रा करने से नहीं हिचकते थे। वे आजीवन यायावर रहे। उनके अनुसार जिसने एक बार घुमक्कड़ी धर्म अपना लिया, उसे चैन कहाँ? उनके मुख्य यात्रा वृत्तान्त हैं– मेरी तिब्बत यात्रा, मेरी लद्दाख यात्रा, किन्नर देश में, रूस में पच्चीस मास, तिब्बत में सवा वर्ष। यात्रा वृत्तान्तों में रामवृक्ष बेनीपुरी की 'पैरों में पंख बांधकर (1952), उड़ते चलो उड़ते चलो"। यशपाल द्वारा लिखित लोहे की दीवार, भगवत शरण उपाध्याय द्वारा लिखित कोलकाता से चैकिंग तक (1953) सागर की लहरों पर (1959) मोहन राकेश द्वारा लिखित आखिरी चट्टान तक (1953) निर्मल वर्मा द्वारा लिखित चीड़ों पर चाँदनी (1964) विशेष रूपेण उल्लेखनीय हैं। यात्रा साहित्य के महत्व को प्रदर्शित करने वाली सत्यदेव की रचना यात्रा मित्र 1936 में प्रकाशित हुई थी। इस पुस्तक के कैलाश यात्रा के भाग में लेखक ने काठगोदाम से तिब्बत तक की यात्रा का सर्वाधिक विस्तृत विवरण दिया है।

अज्ञेय ने भी यात्रा वृत्तान्त के क्षेत्र में विशेष योगदान दिया है। उन्होंने यायावरी के महत्व को समझाते हुए कहा है ''देवता भी मन्दिर में रूके कि शिला हो गए और प्राण संचार की पहली शर्त है गति, गति, गति।' उनके द्वारा रचित 'अरे यायावर रहेगा याद (1953), एक बूँद सहसा उछली (1964) उत्कृष्ट यात्रा साहित्य में परिगणित होते हैं। उन्होंने यात्राओं को चित्रात्मक व वर्णनात्मक शैली में प्रस्तुत कर यात्रा वृत्तान्त को नया आयाम दिया। आज यात्रा साहित्य पर्याप्त मात्रा में लिखा जा रहा है। पहले यातायात के साधन कम थे, तो यात्राएँ भी कम होती थीं। आज परिवेश बदल गया है। सांस्कृतिक आदान–प्रदान, राजनीतिक कामकाज, शिक्षा–प्राप्ति तथा प्रियजनों से मिलने के लिए भी यात्राएँ होती हैं।

यात्रा–साहित्य में यात्री अपनी यात्रा के प्रत्येक स्थल और क्षेत्रों में उन्हीं क्षेत्रों का संयोजन करता है, जिनको वह अद्भुत सत्य के रूप में ग्रहण करता है। बाहरी जगत की प्रतिक्रिया से उसके हृदय में जो भावनाएँ उमड़ती हैं, वह उन्हें अपनी सम्पूर्ण चेतना के साथ अभिव्यक्त कर देता है जिससे शुष्क विवरण भी मधुर एवं भाव–विभोर कर देने वाला बन जाता है। पाठक वह विवरण पढ़ता हुआ आनन्दित हो उठता है। इस विषय में यह भी उल्लेखनीय है कि यात्रा साहित्य के लेखक को संवेदनशील होकर भी निरपेक्ष होना चाहिए अन्यथा यात्रा के स्थान पर यात्री के प्रधान हो उठने की संभावनाएँ बढ़ जाती है तथा वह यात्रा साहित्य न रहकर आत्म–चरित्र या आत्म–स्थान बन जाता है। इस सम्बन्ध में डॉ. धीरेन्द्र वर्मा का मत उल्लेखनीय है– ''यात्रा में स्वतः स्थान, दृश्य, प्रदेश, नगर और गाँव मुखरित होते हैं। उनका अपना व्यक्तित्व उभरता है। यात्री अपनी यात्रा को मानसिक प्रतिक्रियाओं के रूप में ही ग्रहण करता है। अपने को केन्द्र में रखकर भी प्रमुख न होने देना साहित्यिक यायावर का कर्तव्य है क्योंकि यदि लेखक का व्यक्तित्व उभरेगा तो अन्य सब गौण हो जाएगा और यात्रा साहित्य न होकर आत्मचरित ही रह जाएगा। फिर भी यात्रा वृत्तान्त में वैयक्तिकता स्वाभाविक रूप से समाहित हो जाती है।

टिप्पणी

यात्रा साहित्य आधुनिक युग की विधा है। यात्रा में कुछ–कुछ संस्मरण और रेखाचित्र की विशेषताएँ भी होती हैं। डॉ. रघुवंश का मत है कि कुछ ऐसे यायावर हैं जो अपने यात्रा साहित्य को समग्र जीवन की अभिव्यक्ति के रूप में ग्रहण करते हैं। उनके लिए प्रकृति सजीव है, यात्रा में मिलने वाले पात्र आत्मीयजन हो जाते हैं। वे देश की आत्मा का साक्षात्कार करते हैं। वे देश विदेश में बिखरे हुए इतिहास को, संस्कृति को, समाज को अपनी अनुभूतियों का अंग बनाकर प्रस्तुत करते हैं। उनके यात्रा–साहित्य में महकाव्य और उपन्यास का विकार तत्त्व, कहानी का आकर्षण, गीतिकाव्य की मोहक भावशीलता संस्मरणों की आत्मीयता, निबन्धों की मुक्ति सब एक साथ मिल जाती है। उत्कृष्ट यात्रा साहित्य ऐसा ही होता है।''

यात्रा वृत्तान्त हर युग में लिखे गए। यात्राएँ करना मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति भी है और आवश्यकता भी। यात्रा–संस्मरणों को लिपिबद्ध कर देने से वह एक साहित्यिक विधा बन जाती है। यात्रा वृत्तान्त, में लेखक जहाँ से चला और जहाँ पहुँचा इस सबका कलात्मक शैली में वर्णन होता है। एक स्थान की ऐतिहासिक, भौगोलिक तथा सांस्कृतिक विशेषताओं का वर्णन करके लेखक उस स्थल की पर्यटन अर्हता पर मुहर लगाता है। भौगोलिक स्थिति के अन्तर्गत लेखक नदी, तालाब, पहाड़ आदि का जीवन्त वर्णन करता है। यात्रावृत्त विषय प्रधान भी हो सकता है और विषयी प्रधान भी। सौन्दर्य बोध और कौतूहल जगाये रखना यात्रा वृत्तान्त की अनिवार्य विशेषता है। इन दोनों विशेषताओं के अभाव में पाठक की रुचि यात्रा वृत्तान्त पढ़ने में क्षीण हो जाती है। वह यात्रा वृत्तान्त पढ़ना बीच में ही छोड़ सकता है। यात्रा किसी प्राकृतिक स्थल, ऐतिहासिक महत्व के स्थल, पर लिखते समय उस स्थल के ऐतिहासिक पुरातात्त्विक, सामाजिक, सांस्कृतिक व धार्मिक महत्व पर लिखना चाहिए।

एक अच्छे यात्रा वृत्तान्त में इन गुणों का होना आवश्यक है– वर्णनीय विषय, तथ्यात्मकता, वैयक्तिकता, स्वच्छन्द प्रवृत्ति, सौन्दर्य बोध, प्रवाहपूर्ण शैली। यात्रा वृत्तान्त का लेखक यात्रा के समय के दृश्यों को अपने हृदय में बैठा लेता है या संक्षेप में लिख लेता है और जब लिखने बैठता है तो वह अपनी स्मृति का सहारा लेता है। अतः यात्रा साहित्य की शैली में संस्मरण व रेखाचित्र का समन्वय देखने को मिलता है। यही कारण है कि संस्मरण का एक भेद यात्रा संस्मरण भी होता है।

वर्णनीय विषय– यात्रा वृत्त के विषय प्रायः रमणीय स्थल, नदी, वन, पर्वत, नगर, ग्राम शहर अथवा विदेश–स्थल होते हैं। भारतेन्दु युग में तीर्थस्थानों पर यात्रा वृत्त अधिक लिखे गए। कुछ लोगों ने विदेश यात्राओं पर भी यात्रा वृत्तान्त लिखें। बालकृष्ण भट्ट ने गया यात्रा, प्रताप नारायण मिश्र ने विलायत यात्रा नामक रचनाएँ लिखी। श्रीमती हरदेवी ने बम्बई से लन्दन तक की जहाजी यात्रा का विस्तृत विवरण दिया है। भगवान दास वर्मा ने तुलनात्मक शैली का आश्रय लेते हुए लखनऊ और लन्दन की समानताएँ प्रकट की हैं। द्विवेदी युग में स्वामी मंगला नन्द ने मॉरीशस यात्रा और श्रीधर पाठक ने देहरादून, शिमला यात्रा, स्वामी सत्यदेव पारिवार्जक द्वारा 1915 में लिखित मेरी कैलाश यात्रा और 1911 की अमेरिका यात्रा उल्लेखनीय वृत्तान्त हैं। सत्यदेव जी ने अपने यात्रा वृत्तान्तों में कैलाश व हिमालय के अद्वितीय सौन्दर्य का वर्णन बड़े प्रभावी ढंग से किया है। डॉ. हीरालाल बाछोतिया के यात्रा वृत्तान्त 'नहीं रुकती है नदी' तथा 'भारत से बाहर भारत' शीर्षक से प्रकाशित हैं। 'नहीं रुकती है नदी' नर्मदा परिक्रमा पर

टिप्पणी

केन्द्रित यात्रा वृत्तान्त है जिसमें लेखक ने नर्मदा के उद्‌गम स्थल अमरकंटक से लेकर कपिलधारा तक की यात्रा का जीवन्त वर्णन किया है। यात्रा वृत्तान्त किसी न किसी स्थल की यात्रा के विषय में लिखा जाता है। केवल किसी स्थल की सुन्दरता या महत्ता आदि के वर्णन हेतु लिखी गई रचना यात्रा वृत्तान्त नहीं कही जा सकती। देश–विदेश के किसी भी वर्णनीय स्थल की यात्रा का वर्णन अनिवार्य है।

तथ्यात्मकता– यात्रा वृत्तान्त किसी व्यक्ति के द्वारा किसी काल खंड में, किसी विशिष्ट उद्देश्य से किसी स्थान की यात्रा का भावात्मक चित्रण है। अतः उसमें तिथि, दिनांक, समय, स्थान, यात्रा के मार्ग, साधन, उद्देश्य आदि का वर्णन होना चाहिए। इन वर्णनों से यात्रा का गहरा सम्बन्ध होता है। इन वर्णनों के अभाव में तो वर्णनीय स्थल का वर्णन लेख मात्र बन कर रह जाएगा। यात्रा वृत्तान्त है तो यात्रा के तथ्यों का जिक्र जरूरी है। इससे यात्रा वृत्तान्त में विश्वसनीयता और सहजता का समावेश होता है। साथ ही तथ्यात्मकता के कारण वर्णनीय स्थल का स्वरूप चित्रण आदि शोधार्थियों के लिए उपयोगी बना रहता है। हम जान सकते हैं कि अमुक कालखंड तक वह स्थल इस अवस्था में था और वहाँ का समूचा परिवेश इस प्रकार का है।

'नहीं रुकती है नदी' में भी लेखक ने सर्वत्र तथ्यात्मकता को उजागर किया है। उसने प्रारम्भ में ही बताया कि अमरकंटक की यात्रा कंटकपूर्ण किन्तु रोमांचक है। कटनी से बिलासपुर जाने वाले रेल लाइन पर पेंडरा रोड़ से यह 40 किलोमीटर है। जबलपुर–बिलासपुर से भी यहाँ पहुँचा जा सकता है। लेखक ने सन का जिक्र तो नहीं किया, किन्तु यात्रा प्रारम्भ करने का दिन नये साल का पाँचवाँ या छठा दिन बताया है। यात्रा में पड़ रहे बीच–बीच के स्थलों का भी वर्णन है– 'लहलहाते खेतों वाली भूमि पीछे छूटती जा रही थी। घने जंगलों का सिलसिला शुरू हो गया था। काफी देर बाद एकाध वन–ग्राम दिखाई दे जाता था।...निर्माणाधीन पुलों पर गिट्‌टी–मिट्‌टी का ऐसा रेलपेल बन गया था कि जीप को कच्चे रास्ते से ले जाना ही सुरक्षित था।' इस यात्रा वृत्त में लेखक ने यात्रा में पड़ रहे स्थलों जैसे 'अचानक मार' के पीछे की कहानी भी वर्णित की है कि यहाँ पर किसी अंग्रेज साहब पर किसी शेर ने अचानक हमला कर दिया था। इसलिए नाम पड़ा 'अचानक मार।' आगे भी लेखक अमरकंटक, कान्हा अभयारण्य, कबीर चबूतरा, कपिलधारा, भेड़ाघाट आदि स्थलों का, उनके स्वरूप व विशेषताओं का जिक्र करता चलता है। लेखक न केवल जिक्र करता है अपितु उनसे आत्मीयता स्थापित करते हुए चलता है।

वैयक्तिकता– यात्रा वृत्तान्त डायरी के समान वैयक्तिक लेखन है। लेखक का किसी दृश्य–वर्णन में अपना विशेष दृष्टिकोण होता है। यही निजी दृष्टिकोण उनकी वैयक्तिकता कहलाता है। इसलिए यात्रा वृत्तान्त में उसकी वैयक्तिकता स्वाभाविक रूप से समाहित हो जाती है। यों तो वैयक्तिकता हर विधा में शामिल होती है। यात्रा वृत्तान्त का भी यह अनिवार्य उपकरण है। फिर भी वह डायरी या आत्म–कथा के समान अपना वर्णन करने के लिए स्वतन्त्र नहीं है। यात्रा–साहित्य में लेखक को स्वयं को गौण रखना पड़ता है। यात्रा के समय लेखक जिन स्थलों को देखता है, उन्हें वह भूगोल, इतिहास आदि के दृष्टिकोण से देखते हुए भी आत्मीयता के साथ देखता है। उनके साथ तादात्म्य स्थापित करता है। तभी उसकी अनुभूति पाठक की अनुभूति बनती है और उसमें साहित्यिकता का गुण आता है। 'बदरी केदार के पथ पर' डॉ. कुमुद का

यात्रा वृत्तान्त है। उन्होंने इस रचना में हिमालय क्षेत्र का विवरण देने का प्रयास किया है। यात्रा वृत्त का प्रारम्भ इस प्रकार होता है ''दिन है सोमवार, तारीख 15 जून, 1987 धूप प्रखर और हवा में झुलसा देने वाली तपन। तापमान 15.5 डिग्री। मेरठ के भवाना बस अड्डे से मैं और शीला, सुधीर, सविता, उनके बच्चे जॉली और पिंटू। हम सब निकल पड़े यात्रा पर।''

टिप्पणी

'नहीं रुकती है नदी' यात्रा वृत्तान्त में भी वैयक्तिकता की छाप हर जगह मौजूद है किन्तु वह कहीं भी विषय को गौण नहीं करती। लेखक ने अपने विचार और भाव बहुत सहज–स्वाभाविक रूप में संक्षेप में ही व्यक्त किए हैं– ''अब इस चिरकुमारी को बाँधों के घूँघट पहनाये जा रहे हैं।... हरसूद जैसा बड़ा कस्बा और बम्बई जाने वाली रेल लाइन का एक हिस्सा तक डूब में आएगा। बडवानी क्षेत्र का बड़ा भूभाग भी इस डूब में आएगा, लेकिन लोग अभी भी आशा नर्मदा पर ही लगाए हैं– 'नर्मदा मैया जो चाहेगी वही होगा'– कितनी गहन आस्था है।''

कल्पना का आश्रय– यात्रा वृत्त में देश–विदेश के किसी स्थल, नदी, पहाड़, झरने, ऐतिहासिक इमारत आदि को विषय बनाया जाता है। यह वर्णन पूर्णतया यथातथ्य नहीं होता और न होना चाहिए। कल्पना से भी कुछ काम लेकर वृत्त को रोचक बनाने का प्रयास होता है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि भोगे हुए यथार्थ को कल्पना की झीनी भीनी चादरिया में ढांककर पेश किया जाता है। यात्रा वृत्त की यह विशेषता ही उसे प्रचारात्मक पुस्तक और पर्यटन गाइड होने से बचाती है और उसे साहित्यिकता का जामा पहनाती है। 'नहीं रुकती है नदी' यात्रावृत्त से एक उदाहरण देखिए– ''नहीं रुकती नर्मदा कहीं नहीं रुकती– न डिंडोरी में, न मंडला में, न बरगी में, न भेड़ाघाट (जबलपुर) में। भेड़ाघाट में वह श्यामल चट्टानों को दूधिया बनाती है। भेड़ाघाट में ही सुन्दरतम जल–प्रपात का आँचल फहराकर पथिकों को कुछ क्षण विश्राम की प्रेरणा देती है। फिर संगमरमरी चट्टानों के बीच बहती पर्यटकों को नौका–विहार का सुख देती है।''

भौगोलिक सांस्कृतिक व प्राकृतिक चित्रण– यात्रावृत्त घटनाओं अथवा स्थलों का यथातथ्य लेखा–जोखा नहीं है। उसमें सम्बन्धित स्थल और उसके आसपास का भौगोलिक, सांस्कृतिक व प्राकृतिक चित्रण भी होता है। इसी चित्रण से यात्रा वर्णन में रोचकता व बिम्बात्मकता का समावेश होता है। प्रायः ऐतिहासिक, भौगोलिक अथवा सांस्कृतिक दृष्टि से समृद्ध स्थलों का ही यात्रा वृत्तान्त लिखा जाता है। देखे गए स्थल वर्णनीय भी तो होने चाहिए। और यात्रावृत्त लिखने वाले लेखक के लिए आवश्यक है कि वह संक्षेप में ही सही, स्थल से सम्बद्ध भौगोलिक, सांस्कृतिक व प्राकृतिक चित्रण करता चले। इस विवेच्य 'नहीं रुकती है नदी' में ऐसे वर्णन सरलता से ढूँढे जा सकते हैं।

भौगोलिक– ऊँचाई पर ऊँची–नीची समतलता अमरकंट के बिल्कुल पास आ पहुँचने का संकेत दे रही थी। एक ओर ढालू जमीन पर मकानों का सिलसिला था। पास ही वन–विभाग की कतार दिख रही थी। पृष्ठभूमि में सागौन वन था। दूसरी ओर ढालू जमीन के निचले भाग में दुकानें तथा बस्ती थीं और दोनों के बीच नर्मदा मैया का मन्दिर दिख रहा था।

सांस्कृतिक– यहाँ मन्दिर है, तो पंडे पुजारी भी हैं और हैं पूजा अर्चना के बाद 'परकम्मा' (परिक्रमा) पर निकलने वाले तीर्थयात्री भी। नर्मदा की परिक्रमा उद्गम की ओर से शुरू होकर सागर–मिलन पर समाप्त होती है। फिर वहाँ से दूसरे तट से प्रारम्भ होकर यहीं समाप्त होती है। कुछ यात्री इसे हिस्सों में पूरा करते हैं। कुछ यात्री हंडिया

से यात्रा शुरू करते हैं। कुछ ओंकारेश्वर पर पड़ाव डालते हैं। यह परकम्मा पैदल की जाती है। घने जंगलों, वन्य पशुओं, कंटकों, नावों सबसे होकर गुजरते हैं– परकम्मा वासी। शायद यही अमरत्व का कांटा है।''

टिप्पणी

प्राकृतिक– ''कुंडों के पास खड़े होकर देखें तो पूर्व की ओर दिखने वाली क्षितिज रेखा को रोककर खड़े सघन वन से जमीन का एक ढाल पश्चिमाभिमुख है, तो दूसरा पूर्वाभिमुख। सघन वन में बाँस के भिड़े हैं जो वर्षा के पानी को संजोकर रखते हैं। यही पानी धीरे–धीरे उनमें से रिसता रहता है। ढालू पर बहता पानी जल कुंडों में एकत्रित होता रहता है।''

रोचक व प्रवाहपूर्ण भाषा–शैली– यात्रा वर्णन की भाषा सरल, सुबोध और प्रवाहपूर्ण होनी चाहिए। उसका क्लिष्ट तथा तत्सम प्रधान होना उचित नहीं। यात्रा की भाँति उसमें गतिशीलता रहनी चाहिए। यहाँ स्थान उद्धरणों, कहावत, लोकोक्ति, किवदन्ती आदि का भी प्रयोग किया जा सकता है। शैली की दृष्टि से आवश्यकतानुसार वर्णनात्मक, विचारात्मक व भावात्मक अलंकृत शैली का प्रयोग किया जा सकता है। कुल मिलाकर भाषा–शैली प्रसंगानुकूल हो। उसमें कहीं भी दुरुहता तथा जटिलता नहीं होनी चाहिए। 'नहीं रुकती है नदी' की भाषा–शैली पर विचार करें तो इसकी भाषा सरल सुबोध व बोलचाल की ही है। कहीं कहीं पर ही एक दो तत्सम शब्द आए हैं यथा– कंटकपूर्ण, अनाकर्षक, यशोगान। सिलसिला, मतलब जैसे उर्दू के शब्द भी हैं। परिक्रमा के लिए 'परकम्मा' शब्द का काफी प्रयोग है क्योंकि वहाँ यही शब्द प्रचलन में है।

इस यात्रा वृत्तान्त की निबन्ध शैली बहुत सजीव, बिम्बात्मक व अलंकृत है। कहीं वर्णनात्मक है तो कहीं चित्रात्मक। वर्णनात्मक शैली के साथ–साथ बिम्बात्मक शैली का एक–एक उदाहरण दृष्टव्य है। वर्णनात्मक शैली– 'अब सेतु बन जाने के बाद वे नाविकों के लिए आजीविका के केन्द्र नहीं रह गए हैं। होशंगाबाद के घाटों की अपनी शोभा है तो माहेश्वर के घाटों में वाराणसी के घाटों का प्रतिरूप दिखाई देता है। इसके साथ पौराणिक कथाएँ जुड़ी हुई हैं। बिम्बात्मक भाषा– 'नर्मदा का पथ सतपुड़ा और विन्ध्याचल के बीच से होकर गुजरता है। जगह जगह शैल श्रृंखलाएँ इसे रोकने आ खड़ी होती हैं और यह है कि अपनी तेज धारा से उन्हें काटती–छाँटती वेग से आगे बढ़ती रहती हैं। कितनी ही छोटी बड़ी नदियों को यह गले लगाती बढ़ती जाती हैं।'' कुछ अन्य उदाहरण भी अधोलिखित हैं–

1. सड़क एक के बाद दूसरा मोड़ ले रही थी।
2. चढ़ाई के साथ ऊँचाई बढ़ रही थी और उसी के साथ बढ़ रही थी– सर्दी।
3. हरियाली के बीच लटकी यह जलधारा एक अद्‌भुत दृश्य उपस्थित करती है।
4. नर्मदा तो उन सबको लाँघकर आगे बढ़ती जाती है, आगे बढ़ती रहती है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि यात्रा वृत्त सामान्य निबन्ध से अलग विधा है। इसलिए इसके वर्ण्य विषय के साथ–साथ इसकी लेखन–शैली भी भिन्न होती है।

3.4.3 'नहीं रुकती है नदी' यात्रा वृत्तान्त के मूल बिन्दुओं का महत्व और विश्लेषण

'नहीं रुकती है नदी' नर्मदा परिक्रमा पर केन्द्रित यात्रा वृत्तान्त है जिसके लेखक डा. हीरालाल बाछोतिया हैं जो एक प्रतिष्ठित शिक्षाविद्, कवि एवं लेखक हैं। इस वृत्तान्त

में लेखक ने नर्मदा के उद्‌गम स्थल अमरकंटक से लेकर कपिलधारा तक की यात्रा का जीवन्त वर्णन किया है। इस यात्रा में नर्मदा नदी की भौगोलिक स्थिति, प्राकृतिक सौन्दर्य और सांस्कृतिक वैशिष्ट्य का कलात्मक दृष्टि से अंकन है।

टिप्पणी

यात्रा करना मनुष्य की मूल प्रवृत्ति है। हम अगर मानव इतिहास पर नजर डालें तो पाएँगे कि मनुष्य के विकास की यात्रा में यात्रा का अत्यधिक महत्व है। हर मनुष्य अपने जीवनकाल में कुछ न कुछ यात्राएँ अवश्य करता है। साधारण मनुष्य की यात्राएँ मात्र व्यक्तिगत अनुभव बनकर रही हैं, लेकिन महापुरुषों और लेखकों की यात्राएँ महत्वपूर्ण साहित्य का निर्माण करा देती हैं। महात्मा गांधी, विवेकानन्द, विनोबा भावे जैसे महानुभावों ने पूरे देश की यात्राएँ की और उन्हें अपने कृतित्व और सृजन में सहायक बनाया। इसी प्रकार भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, डा. नगेन्द्र, राहुल सांस्कृत्यायन, डा. हीरालाल बाछोतिया आदि अनेकानेक लेखकों ने यात्रा वर्णनों से अपने साहित्य को समृद्ध बनाया।

हिन्दी साहित्य में एक अलग विधा के रूप में 'यात्रा वृत्तान्तों' का लेखन एक नई शुरुआत है। यात्रा वृत्तान्त साहित्य की एक ऐसी विधा है जिसमें लेखक अपनी यात्राओं का वर्णन एक रोचक ढंग से प्रस्तुत करता है। जब कोई लेखक अपने द्वारा की गई यात्रा का कलात्मक एवं रोचक ढंग से वर्णन करता है तो उसे यात्रा वृत्तान्त कहते हैं।

'नहीं रुकती है नदी' यात्रा वृत्तान्त में लेखक ने अपनी नर्मदा यात्रा का बड़ा सजीव वर्णन किया है। लेखक यात्रा के उत्साह से लेकर स्थानों का सटीक ब्यौरा, भौगोलिक स्थिति, वहाँ की संस्कृति, इतिहास तथा पौराणिक सन्दर्भों आदि का रोचक शैली में वर्णन करता चलता है। प्रकृति–सौन्दर्य की छटा तो सर्वत्र बिखरी हुई है।

यात्रा वर्णन में लेखक सर्वप्रथम 'अमरकंटक' स्थल का जिक्र करता है विन्ध्याचल की पहाड़ियों में बसा अमरकंटक एक वन प्रदेश है। अमरकंटक को ही नर्मदा का उद्‌गम स्थल माना जाता है। पहले अमर–कंटक तक पहुँचना दुष्कर था, किन्तु अब सड़कों के बन जाने से सुगमता हो गई है। लेखक इसकी भौगोलिक स्थिति का वर्णन करते हुए कहता है कि यह कटनी से बिलासपुर जाने वाली रेल लाइन पर पेंडरा रोड से 40 कि.मी. है। लेखक की यात्रा जीप से थी। लेखक यात्रा के समय प्राकृतिक दृश्यों का या यात्रा की कठिनाइयों का भी सजीव भाषा में वर्णन करता चलता है। इससे यात्रावर्णन की सजीवता बनी रहती है– "निर्माणाधीन पुलों पर गिट्‌टी मिट्‌टी का ऐसा रेलपेल बन गया था कि जीप को कच्चे रास्ते से ले जाना ही सुरक्षित था। कई स्थानों पर आस–पास की झाड़ियाँ काटने के लिए एक ग्रामवासी गिरिजन ने कुल्हाड़ी दे दी थी। बड़ी प्रतीक्षा के बाद भी जब वह कुल्हाड़ी लेने नहीं आया तो सड़क के किनारे ही कुल्हाड़ी को रख देना पड़ा। उसी के नीचे पाँच रुपये का एक नोट भी रख दिया। वह यह भी न सोचे कि शहर के लोग मतलबी होते हैं।"

'अचानक मार' शीर्षक वनग्राम के नामकरण का रहस्य खोलते हुए लेखक अपनी यात्रा में आए पड़ावों अभ्यारण्य क्षेत्र, कबीर चबूतरा का संक्षिप्त वर्णन करने के उपरान्त अमरकंटक के आस–पास के क्षेत्र की भौगोलिक स्थिति का वर्णन मनोयोगपूर्वक बखान करता है– ''ऊँचाई पर ऊँची–नीची समतलता अमरकंटक के बिल्कुल पास आ पहुँचने का संकेत दे रही थी। एक ओर ढालू जमीन पर मकानों का सिलसिला था। पास ही वन–विभाग की कतार दिख रही थी। पृष्ठभूमि में सघन सागौन वन था। दूसरी ओर ढालू जमीन के निचले भाग में दुकानें तथा बस्ती थीं। और दोनों के बीच नर्मदा मैया का मन्दिर दिख रहा था। अमरकंटक की ऊँचाई लगभग साढ़े तीन हजार फुट है।''

टिप्पणी

यात्रा वृत्तान्तों की सफलता का एक महत्वपूर्ण घटक या बिन्दु होता है– किए गए यात्रा स्थल का सटीक व सूक्ष्म चित्रण जिससे कि पाठक भौतिक रूप से यात्रास्थल पर गए बिना ही शब्दों को पढ़कर मनोकल्पना करते हुए यात्रा का आनन्द उठा सकें, साथ ही पूर्ण जानकारी भी प्राप्त कर सकें– ''नर्मदा कुंड से निकली हैं जिसे कोटि तीर्थ कहते हैं। कुंडों के पास खड़े होकर देखें तो पूर्व की ओर दिखने वाली क्षितिज रेखा को रोककर खड़े सघन वन से जमीन का एक ढाल पश्चिमाभिमुख है, तो दूसरा पूर्वाभिमुख। सघन वन में बाँस के भिड़े हैं जो वर्षा के पानी को संजोकर रखते हैं। यही पानी उनमें से धीरे–धीरे रिसता रहता है। यही नर्मदा का उद्‌गम है। स्नान के लिए भी जल–कुंडों का प्रयोग किया जा सकता है। इन कुंडों का जल पूजा–अर्चना के लिए भी है। कई मन्दिर हैं जिनमें नर्मदा मैया का मन्दिर सबसे भव्य है।''

लेखक पूजा अर्चना के बाद की जाने वाली 'परकम्मा' (परिक्रमा) का सजीव विस्तृत वर्णन करता है। 'नर्मदा की परिक्रमा उद्‌गम के एक ओर से शुरू होकर सागर मिलन पर समाप्त होती है। कुछ यात्री इसे हिस्सों में पूरा करते हैं। कुछ यात्री हंडिया से यात्रा शुरू करते हैं। कुछ ओंकारेश्वर पर पड़ाव डालते हैं। यह परकम्मा पैदल की जाती है। घने जंगलों, वन्य पशुओं, कंटकों, नावों सबसे होकर गुजरते हैं परकम्मा वासी शायद यही अमरत्व का कांटा है।'' परिक्रमा का वर्णन करते हुए लेखक नर्मदा नदी के प्रवाह का वर्णन करते समय यात्रा वृत्तान्त के शीर्षक की ओर आ जाता है और यात्रा वृत्तान्त के इस वाक्य से शीर्षक की सार्थकता पूर्णरूपेण सिद्ध हो जाती है ''नहीं रुकती नर्मदा– कहीं नहीं रुकती– न डिंडोरी में, न मंडला में, न बख्शी में, न भेड़ाघाट (जबलपुर) में .... नर्मदा का पथ सतपुड़ा और विन्ध्याचल के बीच से होकर गुजरता है। जगह–जगह शैल श्रृंखलाएँ इसे रोकने आ खड़ी होती हैं और यह है कि अपनी तेज धारा से उन्हें काटती–छाँटती वेग से आगे बढ़ती है।''

पौराणिक सन्दर्भ– यात्रा वृत्तान्तकार का एक दायित्व है कि वह वर्ण्यस्थल की यात्रा का ही वर्णन न करे, अपितु उस स्थल या विषय से जुड़े सांस्कृतिक बोध को भी उजागर करता चले। विषय अगर धर्म व संस्कृति से जुड़ा हो तो ऐसा करना और भी जरूरी हो जाता है। 'नहीं रुकती है नदी' यात्रा वृत्तान्त भारत की सारी नदियों में जो सर्वाधिक प्राचीन व पुण्यशीला है नर्मदा की यात्रा व परिक्रमा पर आधृत है। शिव की पुत्री होने के कारण इसका एक नाम शांकरी भी है। इस वृत्तान्त में लेखक ने नर्मदा के चिर–कुँआरी होने से जुड़े दो प्रसंगों को उद्‌घाटित किया है– सोम नद और तवा से जुड़े ये दोनों प्रसंग लेखक ने बड़े तार्किक ढंग से जोड़कर इस तरह प्रस्तुत किए हैं कि पौराणिक सन्दर्भों की सत्यता में सन्देह की गुंजाइश ही नहीं रहती।

1. ''नर्मदा को चिर–कुँआरी कहा जाता है। कहते हैं– सोन इसे ब्याहने आया, किन्तु उसके अहं की क्षुद्रता नर्मदा को रास नहीं आई। नर्मदा ने सोन के अहं पर प्रहार किया। वह स्वयं पूर्वाभिमुख होकर बह निकला और यह ठीक उसके विरुद्ध पश्चिम दिशा की ओर बढ़ चली।''
2. ''तवा जो होशंगाबाद के पास नर्मदा में मिलता है। कहते हैं– तवा भी फुफकारते अहं के साथ नर्मदा को ब्याहने आया। उसे नर्मदा ने ऐसी फटकार लगाई कि वह वहीं चौड़ा हो गया। वहाँ तवा की चौड़ाई (फैलाव) तवा जैसी है भी।'

नर्मदा के माहात्म्य का बखान करते हुए लेखक कहता है कि नर्मदा जहाँ भी पहुँचती है, वहीं तीर्थ बन जाता है–''स्कन्ध पुराण के रेवा खंड में कहा गया है कि

टिप्पणी

गंगा कनखल तीर्थ में और सरस्वती कुरुक्षेत्र में सबसे अधिक पवित्र मानी जाती है। परन्तु नर्मदा की महिमा का कोई पार नहीं वह तो गाँव–गाँव और डगर–डगर सब कहीं पवित्र है। उसके माहात्म्य को लेकर हर स्थान पर एक कहानी मिलती है।'' नर्मदा का भगवान शिव से अभिन्न नाता है 'नर्मदा का कंकर शंकर या शिवलिंग है। नर्मदा तट पर विभिन्न नामों से शिव का ही वास है। कहीं गंगेश्वर, कहीं कालेश्वर कहीं ओंकारेश्वर।' चट्टानों को काटकर बनाए गए शैलाश्रम का जिक्र करते हुए एक स्थल पर लेखक पौराणिक सन्दर्भ देना नहीं भूलता– ''कहा जाता है कि कपिल मुनि ने यहाँ तपस्या की थी।''

भौगोलिक एवं ऐतिहासिक बोध–यात्रा वृत्तान्त कोई कल्पित कथा–कहानी नहीं होती। उसका वर्ण्य विषय पात्र, देशकाल एवं वातावरण– सब कुछ यथार्थ एवं वास्तविक होता है। लेखक देश–विदेश के जिस भी स्थान की यात्रा का वृत्तान्त लिखता है उस स्थल की भौगोलिक स्थिति का यथातथ्य वर्णन उसमें होना ही चाहिए, साथ ही ऐतिहासिक सन्दर्भों का भी उल्लेख वांछनीय होता है। इनके अभाव में यात्रा वृत्तान्त का वर्णन अपूर्ण तो कहा ही जाएगा, साथ ही यात्रा वृत्तान्त का उद्देश्य भी धूमिल हो जाएगा। यात्रा वृत्तान्त का एक उद्देश्य यह भी है कि पाठक उसे पढ़कर उस स्थल की यात्रा करने को प्रेरित हो सके और वहाँ तक पहुँचने की जानकारी भी प्राप्त कर सके।

प्रस्तुत विवेच्य यात्रा वृत्तान्त में स्थान–स्थान पर भौगोलिक एवं ऐतिहासिक सन्दर्भ मौजूद हैं। लेखक स्थलों की वास्तविक दूरी तथ्यात्मक ढंग से बताता चलता है। यथा– 'कटनी से बिलासपुर जाने वाली रेललाइन पर पेंडरा रोड से यह (अमरकंटक) 40 किलोमीटर है।'' नर्मदा प्रवाह पथ का वर्णन करते हुए लेखक का कथन है– 'नर्मदा जिस पथ से होकर बहती है, वह गोंडवाना कहा जाता है। इसलिए आदिम जन की अनगढ़ता का सौन्दर्य इसमें सहज सुलभ है।'' भौगोलिक के साथ–साथ इस यात्रा वृत्तान्त में कुछ एक स्थलों पर ऐतिहासिक बोध पाया जाना भी अवश्यंभावी ही था। परिक्रमा में कबीर चबूतरे पर पहुँचने पर लेखक जनश्रुति का वर्णन करते हुए कहता है कि ''कबीर चबूतरा एक प्रसिद्ध स्थान है। कहते हैं कि कबीर यहाँ आए थे।'' नर्मदा के कुछ घाटों का वर्णन करते हुए लेखक ऐतिहासिक सन्दर्भों का हवाला देते हुए कहता है– ''नावड़ातोड़ी (महेश्वर) में पूर्व मध्यकालीन या उससे पहले की सभ्यता के अवशेष भी मिले हैं।'

लोक आस्था व संस्कृति का वर्णन– भारत एक सांस्कृतिक देश है। नदी, पहाड़ों में अटूट आस्था सर्वविदित है और बात यदि गंगा, यमुना, नर्मदा जैसी पुण्यशीला नदियों की हो तो यह आस्था चरम पर पहुँच जाती है। लेखक डॉ. हीरालाल बाछोतिया का यह यात्रा वृत्तांत ऐतिहासिक कम और सांस्कृतिक अधिक है। अतः लेखक ने अनेक स्थलों पर आदिवासी नृत्य, परिक्रमा, नर्मदा के पत्थरों आदि से जुड़ी लोक आस्था का बड़ा जीवन्त वर्णन किया है। इन वर्णनों के अभाव में यह यात्रा वृत्तान्त इतना मनोरम न बन पाता। 'अमरकंटक' स्थल का वर्णन करते समय लेखक ने यहाँ की पहचान लोक आस्था से जोड़ते हुए कहा है– ''नर्मदा मैया की जय' की अनुगूँज ही यहाँ की पहचान है। परिक्रमा करते समय का वर्णन भी बड़ा सजीव बन पड़ा है– ''हमने सोचा कपिल धारा तक 'परकम्मा' की जाए और चल पड़े परकम्मा पर। कुंड से कितनी छोटी धारा को बहते देखा था किन्तु चार किलोमीटर बाद ही वह प्रवाहमयी धारा बन गई थी। कितने ही परकम्मावासी मार्ग में मिले। मार्ग भी तो उछलती कूदती नर्मदा के साथ–साथ

टिप्पणी

आगे बढ़ता है। सामने से आते दल चाहे परकम्मा वाले हों, चाहे पर्यटकों के 'बोलो नर्मदा मैया की जय' के साथ एक दूसरे का अभिवादन करते मिले।' नर्मदा की धारा में मिलने वाले गोल पत्थरों पर लोगों की अटूट आस्था का वर्णन करते हुए लेखक कहता है ''नर्मदा का कंकर शंकर या शिवलिंग है। गोल पत्थर जो नर्मदा के तट पर मिलते हैं, उनमें प्रायः एक जनेऊ जैसी रेखा दिखती है। इन गोल पत्थरों को लोग जनेऊ जैसे देखकर शिवलिंग के रूप में अपने घरों में प्रतिष्ठित करते हैं। नर्मदा पर लोगों की अटूट श्रद्धा और आस्था इतनी है कि लोग बात–बात पर यही कहते हैं ''नर्मदा मैया जो चाहेगी, वही होगा।'' नर्मदा लोगों के लिए एक नदी नहीं, संस्कृति है, जिसकी गूँज पूरे नर्मदा कछार में सुनी जा सकती है–

म्हारा मेंहदी रचा न हुई हात
धागर म्हारो भरीरे दीजो
भरि दीजी रे नन्दजी का लाल
धागर म्हारी भरी दीजो।'

पूरे क्षेत्र में नदी के महात्म्य को लेकर हर स्थान पर एक कहानी मिलती है। उसकी लहरों में दीपदान किया जाता है। नागली, चोली और फरिया भेंट की जाती है। 'अमरकंटक' में आदिवासी महिलाओं के लोकनृत्य का भी लेखक ने जिक्र किया है– ''ढोल पर आदिवासी स्त्रियाँ थिरकती रहीं और गूँजते रहे उनके गीत। उनका कला प्रदर्शन सार्थक रहा, क्योंकि दर्शकों द्वारा उन्हें काफी इनाम आदि दिए गए।''

प्राकृतिक सौन्दर्य चित्रण– नर्मदा का क्षेत्र श्रद्धालुओं के लिए ही नहीं अपितु पर्यटकों के लिए भी आकर्षण का केन्द्र है। कलकल करती नदी, वन्य प्रदेश, पेड़ों की कतारें और समूचा परिवेश प्राकृतिक सौन्दर्य का कोष है। इस यात्रा वृत्तान्त में लेखक ने प्रसंगानुरूप प्रकृति चित्रण करके अपनी रचना को जीवन्तता प्रदान की है। जीप से जाते समय प्रकृति का सजीव चित्रण लेखक के शब्दों में दृष्टव्य है– ''तेज हवाएँ अब भी चल रही थीं। बीच–बीच में तेज–बौछारें आ जा रही थीं। लहलहाते खेतों वाली भूमि पीछे छूटती जा रही थी। घने जंगलों का सिलसिला शुरू हो गया था। काफी देर बाद एकाध वन ग्राम दिखाई दे जाता था।... यदि वर्षा न हो रही होती तो यह मार्ग अपनी रमणीयता का अद्‌भुत आयाम समग्रता में प्रस्तुत करता।'' अन्यत्र भी इसी प्रकार के मनोहारी प्राकृतिक दृश्य हैं– ''आगे कपिल धारा है जहाँ नर्मदा चट्‌टानों से लगभग सौ फुट नीचे उतरती है और एक सुन्दर जल–प्रपात का निर्माण करती है। हरियाली के बीच लटकी यह जलधारा एक अद्‌भुत दृश्य उपस्थित करती है।'' इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रकृति–सौन्दर्य चित्रण यात्रा वृत्तान्त का ही एक अनिवार्य हिस्सा है। वह सर्वत्र संक्षिप्त व मनोरम है। कभी भी आरोपित तथा बोझिल नहीं है।

रोचक भाषा शैली– किसी भी विधि की भाषा की ही भाँति यात्रा वृत्तान्त में भी भाषा शैली का बहुत महत्वपूर्ण स्थान है। भाषा शैली का वैशिष्ट्य ही यात्रा वृत्तान्त को साकार व सजीव बनाता है। इस यात्रा वृत्तान्त की भाषा–शैली निश्चय ही बहुत प्रभावी है। इसे पढ़ते हुए प्रसंग के अनुरूप मस्तिष्क में कल्पनाओं द्वारा दृश्य बनते जाते हैं। भाषा की बात करें तो भाषा बिल्कुल सुबोध व विषयानुकूल है। शब्द योजना अनायास है, कहीं भी सायास प्रतीत नहीं होती। एकाध जगह मुहावरों का भी सुन्दर प्रयोग है– 'कितनी ही छोटी छोटी नदियों को यह गले लगाती बढ़ती जाती है। इस वृत्तान्त की शैली निस्सन्देह बड़ी उपयुक्त हैं। आवश्यकतानुसार कहीं वर्णनात्मक शैली का प्रयोग है

टिप्पणी

यथा– 'कई स्थानों पर आस–पास की झाड़ियाँ आदि काटकर बिछानी पड़ी, तभी जीप आगे बढ़ सकी। झाड़ियाँ काटने के लिए एक ग्रामवासी गिरिजन ने कुल्हाड़ी दे दी थी। बड़ी प्रतीक्षा के बाद भी जब वह कुल्हाड़ी लेने नहीं आया तो सड़क के किनारे ही कुल्हाड़ी को रख देना पड़ा। उसी के नीचे पाँच रुपये का एक नोट भी रख दिया।' नर्मदा नदी के प्रवाह का चित्रण करते समय इस यात्रा वृत्तान्त की भाषा बड़ी सजीव और बिम्बात्मक हो गई है। उसमें मानवीकरण का आकर्षण सोने पे सुहागे का काम कर रहा है। एक उद्धरण देखिये– 'भेड़ाघाट में वह श्यामल चट्टानों को दूधिया बनाती है। भेड़ाघाट में ही सुन्दरतम् जल प्रपात का आँचल फहराकर पथिकों को कुछ क्षण विश्राम की प्रेरणा देती है। फिर संगमरमरी चट्टानों के बीच बहती पर्यटकों को नौका–विहार का सुख देती है। नर्मदा का पथ सतपुड़ा और विन्ध्याचल के बीच से होकर गुजरता है। जगह–जगह शैल शृंखलाएँ इसे रोकने आ खड़ी होती हैं और वह है कि अपनी तेज धारा से उन्हें काटती छाँटती वेग से आगे बढ़ती रहती है। कितनी ही छोटी–बड़ी नदियों को यह गले लगाती बढ़ती जाती है।''

सर्वत्र लेखक की भाषा इतनी बिम्बात्मक है कि पढ़ते समय पाठक के सामने पूरा दृश्य आँखों के सम्मुख उपस्थित हो जाता है। यात्रा वृत्तान्तों में बिम्बात्मक व चित्रात्मक भाषा का प्रयोग बहुत ही जरूरी है क्योंकि बिम्बात्मक भाषा से ही भाषा–वर्क में सजीवता आती है। सुन्दर भाषा–शैली के कुछ अन्य प्रयोग भी दृष्टव्य हैं–

(i) सड़क एक के बाद दूसरा मोड़ ले रही थी।

(ii) चढ़ाई के बाद ऊँचाई बढ़ रही थी और उसी के साथ बढ़ रही थी सर्दी।

(iii) मार्ग भी तो उछलती–कूदती नर्मदा के साथ–साथ आगे बढ़ता है।

(iv) नर्मदा फिर पाषाण–खंडों के बीच 'कलकल' करती घने वनों के बीच दौड़ती है।

(v) अब इस चिरकुमारी को बाँधों के घूँघट पहनाए जा रहे हैं।

(vi) नर्मदा तो उन सबको लांघकर आगे बढ़ती जाती है आगे बढ़ती रहती है।

इस यात्रा वृत्तान्त के अन्त में लेखक ने नर्मदा के तट पर बाँध बनाये जाने से उत्पन्न समस्याओं का जिक्र वर्णनात्मक शैली में किया है। यहाँ लेखक का विचारक रूप सामने आया है। निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि 'नहीं रुकती है नदी' यात्रा वृत्तान्त वर्ण्य विषय, वर्णन शैली, बिम्बात्मकता आदि सभी दृष्टियों से कलात्मक बन पड़ा है। दृश्यबिम्बों के साथ भाव–बिम्बों का सफल संयोजन पाठक वर्ग पर अपूर्व प्रभाव डालता है।

अपनी प्रगति जाँचिए

5. 'एक और मीनाक्षी' किस लेखक की उपन्यास रचना है?

(क) अज्ञेय (ख) हीरालाल बाछोतिया

(ग) भगवतशरण उपाध्याय (घ) त्रिलोचन

6. तवा नदी नर्मदा से किस स्थान पर मिलती है?

(क) होशंगाबाद (ख) शहडोल

(ग) कनखल (घ) ओंकारेश्वर

3.5 पल्लवन

टिप्पणी

'पल्लवन' अंग्रेजी के Expansion शब्द का हिंदी अनुवाद है। इसे 'भाव विस्तार' या 'भाव पल्लवन' भी कहते हैं परंतु 'पल्लवन' शब्द अधिक उपयुक्त एवं समीचीन है। पल्लवन शब्द संक्षेपण का पूर्णतया विरोधी है क्योंकि 'संक्षेपण' में जहाँ विस्तार में वर्णित किसी भाव या विचार को संक्षिप्त रूप दिया जाता है, वहाँ 'पल्लवन' के अंतर्गत सूत्र रूप में वर्णित किसी भाव या विचार का विस्तार किया जाता है। इसी कारण 'संक्षेपण' में जहाँ दृष्टांत, उदाहरण, विशेषण, अलंकार, मुहावरे, लोकोक्ति आदि को हटाकर मुख्य आशय पर जोर दिया जाता है, वहाँ 'पल्लवन' में दृष्टांतों, उदाहरणों, प्रसंगों आदि का प्रयोग करके मुख्य आशय को विस्तारपूर्वक समझाया जाता है। इसके अतिरिक्त 'संक्षेपण' में जहाँ समास शैली का प्रयोग होता है, वहाँ 'पल्लवन' में व्यास–शैली अपनायी जाती है। इस दृष्टि से 'पल्लवन' की सामान्य परिभाषा यह हो सकती है–

परिभाषा– सूत्र रूप में या संक्षेप में व्यक्त भाव या विचार के विस्तार को 'पल्लवन' कहते हैं।

पल्लवन के प्रकार

पल्लवन के विविध प्रकार प्रचलित हैं। कभी किसी एक शब्द का पल्लवन कराया जाता है तो कभी दो या दो से अधिक शब्दों वाले किसी भाव या विचार का पल्लवन कराया जाता है। कभी किसी वाक्य का पल्लवन कराया जाता है तो कभी किसी लोकोक्ति या मुहावरे को पल्लवन के लिए दिया जाता है या किसी वार्ता या कथा की रूपरेखा का पल्लवन किया जाता है। इस तरह पल्लवन को छः भागों में विभाजित कर सकते हैं–

1. **किसी एक शब्द का पल्लवन**– जैसे– पंचायत, प्रतिभा, बसंत, सहकारिता, मितव्ययिता, पुस्तकालय, सूर्यग्रहण आदि।
2. **दो या दो से अधिक शब्दों का पल्लवन**– जैसे–राजकीय प्रयोजन, परीक्षा का माध्यम, वैधानिक व्यवस्था, राष्ट्रहित की सिद्धि, मानसिक संकीर्णता, कुसंगति का प्रभाव, प्रातःकाल का दृश्य आदि।
3. **किसी वाक्य का पल्लवन**– जैसे– गरीबी हमारा मानसिक रोग, हमें विजय और सफलता पूर्णतया मन की वैज्ञानिक क्रिया से प्राप्त होती है, मानव के साथ दुःख–सुख का भी जन्म होता है; वैर क्रोध का अचार या मुरब्बा है; श्रद्धा और प्रेम के योग का नाम भक्ति है आदि।
4. **किसी मुहावरे या लोकोक्ति का पल्लवन**– जैसे– समरथ को नहिं दोष गुसाईं, होनहार बिरवान के होत चीकने पात, सब दिन होत न एक समान, थोथा चना बाजे घना, बंदर क्या जाने अदरक का स्वाद, आप काज महाकाज, तिल की ओट पहाड़, सावन सूखे न भादों हरे, गड़े मुर्दे उखाड़ना, ईंट से ईंट बजाना, मन के हारे हार है मन के जीते जीत आदि।
5. **किसी कथा या वार्ता की रूप रेखाओं का पल्लवन**– जैसे– किसी हाथी का नित्य तालाब की ओर जाना–––मार्ग में दर्जी की दुकान पड़ना–––हाथी का दर्जी की दुकान की ओर सूंड़ करना –––दर्जी का हाथी की सूंड़ में सूई चुभोना–––हाथी का दर्जी की दुकान में कीचड़ फेंकना। ऐसे ही किसी जंगल

में शेर का रहना–––उसका नित्य जानवरों को मारकर खाना–––जानवरों की सभा करना–––खरगोश का शेर के पास जाना–––शेर का कुंए में झांकना–––उसका कुएँ में गिरकर मर जाना आदि।

टिप्पणी

6. **किसी कथा या वार्ता के शीर्षक का पल्लवन**– जैसे– खरगोश और कछुआ, लोमड़ी और सारस, बंदर और मगर, सावित्री और सत्यवान, तुलसी और शालिग्राम, रुक्मिणी–हरण, नरसी का भात, जहांगीर का न्याय, पन्नाधाय का त्याग आदि।

पल्लवन के नियम

पल्लवन को वृद्धिकरण, विषदीकरण, संवर्धन या भाव–विस्तार आदि भी कहते हैं। डॉ. राघव प्रकाश पल्लवन के संदर्भ में लिखते हैं, "पल्लवन में किसी संक्षिप्त गूढ़ विचार–भाव, सूक्ति को विस्तार से स्पष्ट करने की आवश्यकता होती है। लेखकों द्वारा रची गई या समाज में परंपरा से चली आती हुई कुछ सूक्तियाँ ऐसी होती हैं कि सामान्य व्यक्ति उनके मूल आशय को अच्छी तरह से समझ नहीं सकता। ऐसी स्थिति में हमें उस उक्ति को खोलकर उदाहरण देते हुए इस तरह से स्पष्ट करना चाहिए कि वह संक्षिप्त गूढ़ बात सभी को सहजता से बोधगम्य हो जाए।" अतः स्पष्ट है कि "लेखक के मूल लेख या वक्ता के कथन को विस्तार के साथ लिखने या अभिव्यक्त करने की क्रिया को पल्लवन या भाव विस्तार कहते हैं।" पल्लवन हेतु निम्नलिखित बातों का ध्यान रखा जाना चाहिए–

1. पल्लवन के लिए दिए हुए भाव या विचार का पहले भलीभाँति चिंतन एवं मनन करना चाहिए जिससे उसके विभिन्न पहलुओं का भली प्रकार बोध हो सके। इसके साथ ही अपना संपूर्ण ध्यान उसके मूल अर्थ पर केंद्रित करके फिर उससे संबंधित विविध आयामों के बारे में विचार करना चाहिए।
2. पल्लवन के केंद्रीय भाव या विचार का अर्थ समझ लेने के बाद उसके विस्तार हेतु विषय के पक्ष और विपक्ष संबंधी रूपरेखा तैयार करनी चाहिए।
3. विपक्ष के तर्कों को काटने के लिए और अपने पक्ष की पुष्टि के लिए प्रमाण, दृष्टांत या उदाहरणों का संग्रह करना चाहिए।
4. प्रमाण, दृष्टांत या उदाहरणों का संग्रह करने के पश्चात यह देखना चाहिए कि कौन सा प्रमाण, दृष्टांत या उदाहरण मूल भाव को स्पष्ट करने में तर्कसंगत है और कौन सा अधिक उपयुक्त नहीं है। इनमें से तर्कसंगत प्रमाण या दृष्टांत का चयन कर लेना चाहिए।
5. पल्लवन करते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि कोई उपयुक्त सामग्री छूट तो नहीं गई है अथवा मूल भाव या विचार के समर्थन में संकलित उपयुक्त सामग्री का उपयोग ठीक ढंग से हो रहा है या नहीं।
6. पल्लवन करते समय सदैव तर्कसम्मत पद्धति का प्रयोग होना चाहिए। यदि कहीं तार्किक क्रम भंग होता हुआ प्रतीत हो तो उसे ठीक कर लेना चाहिए।
7. पल्लवन के दौरान मूल भाव या विचार के विरोधी अथवा उसके समानांतर चलने वाले बिंदुओं को छोड़ देना चाहिए क्योंकि उनको महत्व देने से मूल विषय गौण हो जाता है और विरोधी बातें प्रमुख हो जाती हैं।

टिप्पणी

8. पल्लवन करते समय उन्हीं प्रमाणों, दृष्टांतों या उदाहरणों का प्रयोग करना चाहिए, जो मूल भाव या विचार को स्पष्ट करने, समझने अथवा उसके विविध पहलुओं को प्रस्तुत करने में सहायक सिद्ध होते हैं।
9. इस दौरान मूल विषय या मूल भाव के विरोध में दिए तथ्यों का उल्लेख किया जा सकता है परंतु ऐसा करते समय उन विरोधी तथ्यों का खंडन करने वाले तर्कों का निरूपण भी अवश्य होना चाहिए।
10. पल्लवन करने के लिए प्रयुक्त सभी वाक्य एक क्रम से व्यक्त होने चाहिए, उनमें पारस्परिक संगति होनी चाहिए और वे इतने सुगठित एवं श्रृंखलाबद्ध होने चाहिए कि उनमें से यदि एक वाक्य भी निकाल दिया जाए तो पूरा ढांचा बिखरा हुआ सा प्रतीत होना चाहिए।
11. पल्लवन के लिए दिए हुए विषय पर लंबे–लंबे निबंध भी लिखे जा सकते हैं परंतु जब कोई विषय पल्लवन के लिए दिया जाता है, तब उस पर लंबा निबंध लिखना उचित नहीं है, अपितु उसका एक ही अनुच्छेद में डेढ़ सौ शब्दों से लेकर पाँच सौ शब्दों तक विस्तार होना चाहिए।
12. पल्लवन का अंतिम निष्कर्ष सदैव मूल भाव या प्रतिपाद्य विषय के अनुरूप होना चाहिए। यदि अपेक्षित निष्कर्ष न निकल रहा हो, तो रचना को पुनः ठीक करना चाहिए और उसे ऐसा रूप देना चाहिए, जिससे मूल भाव या प्रतिपाद्य विषय का सही चित्र उतरकर आ सके।
13. पल्लवन के लिए भूमिका, मध्यभाग और उपसंहार की अलग–अलग व्यवस्था करने की आवश्यकता नहीं है। इसमें तो पूरे कथ्य को एक ही अनुच्छेद में व्यवस्थित ढंग से प्रस्तुत करना चाहिए।
14. पल्लवन की भाषा शुद्ध, परिमार्जित एवं व्याकरण–सम्मत होनी चाहिए, इसके लिए व्यास–शैली का प्रयोग होना चाहिए और भावों एवं विचारों को स्पष्ट रूप में अभिव्यक्त करने वाली प्रवाहपूर्ण पद्धति का प्रयोग होना चाहिए।
15. अंत में वर्तनी, शुद्ध–प्रयोग, वाक्य–रचना, विराम–चिह्नों के प्रयोग आदि की दृष्टि से भी लिखित अंश को अच्छी तरह सावधानी से देख लेना चाहिए। यदि कहीं संशोधन, परिवर्तन या परिवर्धन की आवश्यकता हो तो यथास्थान कर देना चाहिए।

पल्लवन के कुछ उदाहरण

मूल : ईर्ष्या

पल्लवन– जैसे दूसरे के दुःख को देखकर दुःख होता है वैसे ही दूसरे के सुख या भलाई को देखकर भी एक प्रकार का दुःख होता है, जिसे 'ईर्ष्या' कहते हैं। ईर्ष्या की उत्पत्ति कई भावों के संयोग से होती है, इससे इसका प्रादुर्भाव बच्चों में कुछ देर में देखा जाता है और पशुओं में तो शायद होता भी न हो। ईर्ष्या एक संकर भाव है, जिसकी संप्राप्ति आलस्य और नैराश्य के योग से होती है। जब दो बच्चे किसी खिलौने के लिए झगड़ते हैं तब कभी–कभी ऐसा देखा जाता है कि दोनों में से कोई एक बच्चा उस खिलौने को लेकर फोड़ देता है, जिससे वह किसी के काम में नहीं आता। इससे अनुमान हो सकता है कि उस लड़के के मन में यही रहता है कि चाहे वह खिलौना

मुझे मिले या न मिले, दूसरे के काम में न आए अर्थात उसकी स्थिति मुझसे अच्छी न रहे। ईर्ष्या पहले–पहले इसी रूप में व्यक्त होती है।

टिप्पणी

मूल : वैर क्रोध का अचार या मुरब्बा है

पल्लवन– जिससे हमें दुःख पहुँचता है उस पर यदि हमने क्रोध किया और यह क्रोध यदि हमारे हृदय में बहुत दिनों तक टिका रहा तो यह वैर कहलाता है। इसके स्थायी रूप में टिक जाने के कारण क्रोध का वेग और उग्रता तो धीमी पड़ जाती है पर लक्ष्य को पीड़ित करने की प्रेरणा हमेशा हुआ करती है। क्रोधी अपना बचाव करते हुए शत्रु को पीड़ित करने की युक्ति आदि सोचने में प्रायः समय नहीं लगाता, पर वैर उसके लिए बहुत समय देता है। दुःख पहुँचने के साथ ही दुःख देने वाले को पीड़ित करने की प्रेरणा देने वाला मनोविकार क्रोध और कुछ काल बीत जाने पर प्रेरित करने वाला भाव वैर है। जैसे– किसी ने आपको गाली दी। अगर आपने उसी समय उसे मार दिया तो आपने क्रोध किया। मान लीजिए कि वह गाली देकर भाग गया और दो महीने बाद आपको कहीं मिला। अब यदि आपने उससे बिना गाली सुने, मिलने के साथ ही उसे मार दिया तो आपका वैर निकालना हुआ। इसी कारण वैर को क्रोध का अचार या मुरब्बा कहा जाता है।

मूल : लालच बुरी बला है

पल्लवन– एक मनुष्य के पास एक मुर्गी थी। वह नित्य एक अंडा देती थी परंतु वह अंडा अन्य दूसरे अंडों के समान नहीं होता था। वह सोने का अंडा था। वह मनुष्य सोने के अंडे को पाकर बड़ा प्रसन्न रहता था। परंतु साथ ही वह लालची भी था। वह अपने मन में सोचा करता था कि मुझे केवल एक ही अंडा रोज मिलता है। मुझे सारे सोने के अंडे एक साथ ही क्यों नहीं मिलने चाहिए? मैं मुर्गी को मारूंगा और सभी अंडे एक साथ ही निकाल लूंगा। इसी कारण उसने सारे अंडे एक साथ लेने के लिए मुर्गी को मार डाला। वह मुर्गी भी अन्य मुर्गियों के ही समान थी। उसके पेट में सोने के अंडे भरे नहीं थे। मुर्गी के मरने के बाद उसको सोने का एक भी अंडा प्राप्त नहीं हुआ। सच है लालच बड़ी बुरी बला है।

कतिपय काव्य सूक्तियों का पल्लवन

मूल : ''प्रकृति के यौवन का शृंगार, करेंगे कभी न बासी फूल''

पल्लवन– प्रकृति निरंतर परिवर्तनशील है, प्रकृति नित्य ही सुंदर पुष्पों से अपना सौंदर्य सजाती है। यदि आज एक पुष्प खिलता है तो वह दूसरे दिन मुरझा जाता है और वृक्ष की डालियाँ उसे गिरा देती हैं। उस स्थान पर नये पुष्प विकसित होते हैं। प्रकृति नित्य ही नूतनता धारण करती रहती है, सौंदर्य वही है जो हर क्षण नवीन रूप धारण करता रहता है। प्रकृति की इस गतिविधि का अर्थ है– 'परिवर्तन'। मानव जीवन भी परिवर्तनशील है। मानव नित्य ही नवीन विचारों से ओत–प्रोत रहता है। उसकी पुरानी मान्यताएँ नष्ट होती जाती हैं और उन स्थानों पर नये विचार विकसित होते हैं। जीवन में यदि कोई परिवर्तन न हो तो वह उत्साह से परिपूर्ण एवं आकर्षक न रह जाए।

मूल : ''विपत्ति कसौटी जे कसे वे ही सांचे मीत''

पल्लवन– मनुष्य के जीवन में मित्र तो होते हैं पर अमीर व्यक्ति के लिए सभी मित्र होते हैं और निर्धन के नहीं। अपना कार्य बनाने वाले मित्र तो बहुत होते हैं और

टिप्पणी

सुख में साथ देने वाले मित्र भी कम नहीं होते परंतु वास्तविक मित्र वही होते हैं जो कि विपत्ति के समय मनुष्य की तन–मन–धन से सहायता करते हैं। सच्चे मित्र की पहचान विपत्तियों में ही होती है– 'धीरज धर्म मित्र अरू नारी, आपति काल परखिए चारी', इसलिए मनुष्य को सच्चा मित्र ही बनना चाहिए।

मूल : ''बीती ताहि बिसार दे, आगे की सुधि लेय।''

पल्लवन– कभी–कभी मनुष्य अपने बीते हुए जीवन के विषय में सोचता रहता है। यदि कोई कार्य बिगड़ जाता है अथवा कोई हानि हो जाती है तो वह निराश हो जाता है तथा आगे कार्य नहीं करता है परंतु उसे बीती बातों को भुला देना चाहिए और आगे के जीवन के विषय में विचार करना चाहिए क्योंकि यदि वह पिछली बातों को ही सोचता रहेगा तो वह भविष्य में कभी भी उन्नति नहीं कर सकता है।

मूल : ''मुखिया मुख सो चाहिए, खान पान को नेक
पालहिं पोषई सकल अंग तुलसी सहित विवेक।''

पल्लवन– मुख संपूर्ण शरीर में मुख्य है। वह मुखिया की भाँति समस्त भोजन को शरीर में पहुँचाता है। यद्यपि वह संपूर्ण सामग्री को सबसे पहले ही पाता है तथापि वह सभी अंगों के पालने–पोसने में ही उसे दे देता है। यदि राजा इसी प्रकार का हो कि वह अपने अधिकारों का दुरुपयोग न करके सभी का हित करे व प्रजा के धन को निजी सुख के लिए न लेकर प्रजा की भलाई के लिए ही ग्रहण करे तो इसमें कोई भी समस्या पैदा नहीं होगी। जिस प्रकार सूर्य भूमि के जल को ग्रहण करता है और उसे पृथ्वी की श्यामलता के लिए बादलों द्वारा बरसाता है उसी प्रकार मुखिया व राजा को टैक्स आदि के रूप में प्रजा से प्राप्त धन को विवेकपूर्वक प्रजा के हित में ही व्यय करना चाहिए।

मूल : ''परहित सरिस धर्म नहिं भाई।''

पल्लवन– उक्त कथन गोस्वामी तुलसीदास कृत रामचरित मानस से संकलित है। 'धर्म' शब्द जितना व्यापक है उतना ही उसका प्रयोग मनमाने ढंग से किया जाता है। राजनीति प्रधान आधुनिक युग में तो वह प्रायः अवज्ञा का विषय ही बन गया है तथा धर्म के नाम पर नाक भौं सिकोड़ना एक फैशन की चीज समझी जाती है।

धर्म के बारे में दो बातें स्पष्ट रूप से समझ ली जानी चाहिए। वह अंग्रेजी का शब्द Religion का पर्यायवाची नहीं है। अतः धर्म, मजहब, मिल्लत, पंथ, संप्रदाय आदि से सर्वथा भिन्न है। दूसरी बात यह है कि धर्म के लक्षणों में परमात्मा की चर्चा कहीं नहीं की गई है। धर्म एक ऐसा विहित कार्य है, जिसमें अभ्युदय और निःश्रेयस की सिद्धि होती है जिससे लौकिक समृद्धि और पारलौकिक कल्याण की प्राप्ति होती है।

धर्म का महत्व व्यक्ति और समष्टि दोनों ही दृष्टियों में माना गया है। धर्म की व्याख्या करते समय आचार्यों ने व्यक्ति के सम्मुख सामाजिक संदर्भ को सदैव रखा है अर्थात धर्म का अभिप्रेत कर्तव्य है, अधिकार नहीं। यम और नियम धर्म के आवश्यक अंग हैं तथा धर्म के प्रत्येक भेद जैसे– वर्ण धर्म, आश्रम धर्म, वर्णाश्रम धर्म तथा नैमित्तिक धर्म के संदर्भ में केवल कर्तव्यों की चर्चा की गई है। धर्म व्यक्ति के अधिकारों की बात नहीं करता है, वह समाज को देने की बात करता है, समाज से लेने की बात नहीं करता। भारत के ऋषियों ने भारतीय धर्म साधना का विधान समाज सेवा की भाव भूमि पर किया है।

लोकोक्ति : ''अधजल गगरी छलकत जाए''

भाव पल्लवन– जब घड़ा जल से पूर्ण भरा हुआ है तो पानी सरलता से सिर पर रखकर जाया जा सकता है। घड़े से पानी छलक नहीं पाता और वह बाहर नहीं आ सकता है। अतः पानी को पूरा ही भरना चाहिए। इसके विपरीत जब मनुष्य घड़े को आधा ही भरता है, तो उसमें से पानी के छलकने व गिरने की संभावना ज्यादा होती है। इसी प्रकार जो मनुष्य अल्प ज्ञानी अथवा सीमित साधनों वाले होते हैं, वे अपनी योग्यता अथवा सामर्थ्य प्रकट करने के लिए उतावले बने रहते हैं। जरा सा भी अवसर मिलने पर वे अपना बखान करने लग जाते हैं जिससे उनका अल्प ज्ञान परिलक्षित होने लगता है।

टिप्पणी

लोकोक्ति– "जीवन एक फूल है प्रेम उसकी सुगंध"

पल्लवन– प्रकृति ने फूलों के रूप में मानव को इतनी महत्वपूर्ण सौगात सौंपी है कि उसका जीवन फूलों का संसर्ग होते ही महक उठता है। महक या सुगंध पुष्प–जगत का निष्कर्ष है तो मानव–जगत का निष्कर्ष है प्रेम। यदि जीवन में से प्रेम को हटा दिया जाए तो वह बिना सुगंध के फूल की तरह हो जाएगा। सुगंध है तो फूल है। ज्ञात रहे कि जिन फूलों में सुगंध नहीं होती, उन्हें प्रयोग में नहीं लिया जाता अपितु फेंक दिया जाता है। ठीक इसी प्रकार, यदि जीवन में प्रेम न हो तो यह सांसों का श्मशान स्थल बनकर रह जाएगा। किसी ने सच कहा है कि जीवन एक फूल है और प्रेम उसकी सुगंध।

लोकोक्ति– ''न नौ मन तेल होगा, न राधा नाचेगी''

पल्लवन– पर्याप्त सामग्री के अभाव में अपेक्षित कार्य नहीं हो सकता है। अतः न नौ मन तेल होगा, न राधा नाचेगी। अर्थात जब पूरे मन तथा शक्ति से कार्य ही नहीं किया जाएगा तो कार्य भी पूरा नहीं होगा। इस तरह जब समय को टाला जाता है तो कोई भी काम नहीं होता। कार्य करने के लिए अपने काम में मन लगाना चाहिए। जब तक अपने काम को निष्ठापूर्वक नहीं किया जाता, तब तक काम अच्छा नहीं होता है। किसी कार्य को पूरा करने के लिए संबंधित पर्याप्त सामग्री का होना आवश्यक है, और जब तक सामग्री अर्थात निष्ठा का अभाव होगा, काम पूरा नहीं हो सकता।

लोकोक्ति– "जहाँ सुमति तहं संपति नाना।"

पल्लवन– जब मनुष्य में सुमति अर्थात सद्बुद्धि होती है तो वह अच्छे मार्ग तथा धर्म का अनुसरण करता है। सद्बुद्धि के प्रभाव से मनुष्य के वैभव एवं सुख–संपत्ति की वृद्धि होती है। इसी प्रकार जब कुमति से व्यक्ति अंधा होता है तो उसके दुष्प्रभाव में वह अधर्म के मार्ग पर चलने लगता है और इस प्रयास में सर्वस्व गंवा देता है। सर्वत्र कलह एवं झगड़ों में वृद्धि होती है। सुमति से सब कार्य बन जाते हैं और मनुष्य वास्तविक शांति को प्राप्त कर लेता है। सुमति मनुष्य को धर्म तथा ज्ञान की ओर ले जाती है। यदि मनुष्य कुमति से चलता है तो विपत्तियाँ बढ़ जाती हैं और मनुष्य को निराशा के साथ विफलताओं का सामना भी करना पड़ता है।

लोकोक्ति– "जो गरजते हैं वो बरसते नहीं।"

पल्लवन– वस्तु के रूप पर मनुष्य को मोहित नहीं होना चाहिए। रूप की अपेक्षा गुण को अधिक महत्व देना चाहिए। इसी प्रकार बरसने वाले बादल गरजते नहीं, वे तो

टिप्पणी

बिना गरजे ही जल की वर्षा कर देते हैं। जलयुक्त बादल शब्दहीन होते हैं। इसी प्रकार शीलयुक्त गुण–संपन्न व्यक्ति अहंकार से हीन होते हैं। नम्रता ही उनके चरित्र का प्रमुख गुण होता है। करनी अच्छे गुणों की द्योतक है। करने वाले कहते नहीं, कहने वाले करते नहीं।

लोकोक्ति– "करत–करत अभ्यास के जड़मति होत सुजान।"

पल्लवन– सुजान अर्थात सुज्ञानी होने के लिए प्रतिभा का अपना महत्व तो है ही, प्रतिभा के अलावा ज्ञान का एक और विकल्प है, और वह है अभ्यास, निरंतर अभ्यास। प्रतिभा ज्ञान को प्राप्त करने की आधारभूत एवं प्रथम शर्त है। उत्कृष्ट प्रतिभा बहुत कम समय में सूक्ष्म से सूक्ष्म ज्ञान को प्राप्त कर लेती है। आदि गुरु शंकराचार्य, विवेकानंद आदि ऐसी जन्मजात प्रतिभाएँ थीं जिन्होंने बहुत कम आयु में न केवल अपनी परंपरा के उत्कृष्ट ज्ञान को प्राप्त कर लिया बल्कि ऐसे अद्‌भुत और नये ज्ञान का सृजन किया कि उनकी विद्वता के सम्मुख विश्व नत–मस्तक हुआ।

किंतु यदि किसी में जन्मजात प्रतिभा कम है तो भी निराश होने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि प्रतिभा के बाद ज्ञान का दूसरा आधार अभ्यास है। यदि व्यक्ति कम प्रतिभाशाली है किंतु खूब अभ्यास करता है, तो वह भी ज्ञानी बन सकता है। अभ्यास की बारंबारता से स्मृति और समझ की रेखाएँ घनी होती हैं, समझ का बहुत–सा कार्य आदत में बदल जाता है, बुद्धि को अधिक प्रयोग में लेने से उसमें पैनापन बढ़ता है। मानव बुद्धि की सामर्थ्य बहुत अधिक है, हम उसका बहुत कम उपयोग कर पाते हैं। अतः यदि हम अभ्यास की आवृति को बढ़ा देते हैं तो प्रतिभा का अधिकाधिक उपयोग कर सकेंगे।

लोकोक्ति– "दूर के ढोल सुहावने होते हैं।"

पल्लवन– दूर के ढोल सुहावने होते हैं। इस लोकोक्ति का अर्थ यह है कि दूर से हमें वस्तु अत्यंत प्रिय लगती है। जिस प्रकार कहीं दूर बजते हुए ढोल की आवाज सुनने पर अत्यंत मधुर लगती है, उस ढोल की मधुरता में कई नवयुवक या युवतियाँ अपने वैवाहिक जीवन की मादक कल्पना करने लगते हैं, कि उनका वह संसार कितना सुखमय होगा। दूर से बजता हुआ यही ढोल जब पास बजने लगता है तो उसकी आवाज अत्यंत कटु और कर्कश लगने लगती है। यह ढोल जैसे ही घर में बजने लगेगा तो उसका कोलाहल और बढ़ जाएगा। अर्थात वैवाहिक जीवन के यथार्थ में आते ही व्यक्ति को उस विवाहरूपी ढोल की यथार्थता एवं कर्कशता का अनुभव होने लगता है।

सच ही कहा है कि यथार्थ जगत और काल्पनिक जगत में बहुत अंतर होता है, यथार्थ की कठोरता का अनुभव व्यक्ति के लिए सुखद नहीं होता। कहा भी गया है कि "हर चमकने वाली चीज सोना नहीं होती", ठीक उसी प्रकार दूर के ढोल सुहावने होते हैं, क्योंकि उसमें कल्पना का रोमांचकारी रंगीन संसार होता है।

लोकोक्ति– "निंदक नियरे राखिए, आंगन कुटी छवाय।"

पल्लवन– व्यक्ति सामान्यतः अपने आलोचक से दूर भागता है, वह केवल उसकी उपेक्षा ही नहीं करता, बल्कि प्रत्यालोचना भी करने लगता है और इस प्रकार अपने आलोचक का मुँह बंद करने की कोशिश करता है। लेकिन कबीर ने व्यक्ति के विकास में आलोचक की भूमिका को बहुत ऊँचा स्थान दिया है।

टिप्पणी

हमें अपने आलोचक को इतना निकट रखना चाहिए कि वह दिन–रात, उठते–बैठते, खाते–पीते हमारे संपर्क में रहे तथा हमारी कमियाँ बताता रहे। हम आलोचक को इतने निकट, कि अपने आंगन में ही रखें और आंगन में उसको कोई कष्ट न हो इसके लिए उसकी कुटिया भी हम बना दें। अर्थात एक व्यक्ति को चाहिए कि वह अपने आलोचक के निरंतर संपर्क में रहे, उससे संवाद बनाए रखे ताकि उससे हमें अपनी कमजोरियों की जानकारी मिलती रहे और हम निरंतर अपना दोष–निवारण करते रहकर विकास–पथ पर अग्रसर हो सकें।

व्यक्ति को अपने आप अपनी कमजोरियों का ज्ञान होना कठिन है और बिना कमजोरियों को दूर किए वह विकास नहीं कर सकता, इसलिए विकास की कुंजी आलोचक के हाथ में है। दरअसल, सीखने का भाव, जिज्ञासा का भाव हमें आलोचक के समीप ले जाता है और पूर्णता का भाव दंभ पैदा करके आलोचक से परे ले जाता है। ज्ञानी व्यक्ति इसीलिए आलोचक को सम्मान देता है, उसकी आलोचना को गंभीरता से सुनता है तथा उसके अनुसार अपने में सुधार करता है। इसलिए आलोचक से प्राप्त होने वाले लाभ के बारे में कबीर ने साखी की अगली पंक्ति में कहा है–

"बिन पानी साबुन बिना, निर्मल करे सुभाय।"

अर्थात हमारे स्वभाव में बिना अपनी ओर से कुछ किए निर्मल–सी स्वच्छता प्राप्त होती है।

अपनी प्रगति जाँचिए

7. पल्लवन का उपयुक्त विलोम शब्द क्या है?

(क) भाव पल्लवन (ख) संवर्धन

(ग) विरोधीकरण (घ) संक्षेपण

8. 'परहित सरिस धरम नहिं भाई' किसकी उक्ति है?

(क) रहीमदास (ख) रसखान

(ग) तुलसीदास (घ) कबीरदास

3.6 अपनी प्रगति जाँचिए प्रश्नों के उत्तर

1. (घ)
2. (ख)
3. (क)
4. (ग)
5. (ख)
6. (क)
7. (घ)
8. (ग)

3.7 सारांश

टिप्पणी

पूरी दुनिया में भारत का परचम लहराने वाले विवेकानंद एक बहुत बड़े दार्शनिक और चिंतक हैं। दर्शन और चिंतन रचनात्मक लेखन की जमा–पूँजी है। चिंतन से लेखन में भाव पक्ष समृद्ध होता है। स्वामी विवेकानंद के लेखन की भाषा शैली सरल, सुबोध और प्रवाहपूर्ण है क्योंकि उनका ज्यादातर लेखन भाषण का ही लिपिबद्ध रूपांतर है।

'भगवान बुद्ध' निबन्ध वस्तुतः स्वामी विवेकानंद द्वारा अमेरिका के डेट्रॉएट नगर में दिए गए भाषण का एक अंश है जिसे निबन्ध की श्रेणी के अंतर्गत रखा गया है। यह लिखने की दृष्टि से नहीं लिखा गया है, तथापि इसमें निबन्ध की समूची विशेषताएँ बखूबी दृष्टव्य है।

'लोकतंत्र एक धर्म है' निबन्ध भारत के भूतपूर्व राष्ट्रपति, महान शिक्षाविद् एवं दार्शनिक डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन द्वारा रचित है। इस निबन्ध के माध्यम से वे न केवल अच्छी लोकतंत्रात्मक व्यवस्था स्थापित करने की आकांक्षा रखते हैं, बल्कि उसकी सफलता के लिए आत्मत्यागी नेतृत्व और कुशल नागरिक सेवा की आवश्यकता पर भी जोर देते हैं।

इस निबन्ध में दार्शनिकता की छटा कई स्थलों पर दृष्टव्य है क्योंकि लेखक स्वयं एक प्रसिद्ध दार्शनिक रहे हैं। इसलिए अनेक स्थलों पर दार्शनिकता का सौन्दर्य बिखरा पड़ा है।

'नहीं रुकती है नदी' नर्मदा परिक्रमा पर केन्द्रित यात्रा वृत्तान्त है जिसके लेखक डा. हीरालाल बाछोतिया हैं जो एक प्रतिष्ठित शिक्षाविद्, कवि एवं लेखक हैं। इस वृत्तान्त में लेखक ने नर्मदा के उद्गम स्थल अमरकंटक से लेकर कपिलधारा तक की यात्रा का जीवन्त वर्णन किया है। इस यात्रा में नर्मदा नदी की भौगोलिक स्थिति, प्राकृतिक सौन्दर्य और सांस्कृतिक वैशिष्ट्य का कलात्मक दृष्टि से अंकन है।

भौगोलिक एवं ऐतिहासिक बोध–यात्रा वृत्तान्त कोई कल्पित कथा–कहानी नहीं होती। उसका वर्ण्य विषय पात्र, देशकाल एवं वातावरण– सब कुछ यथार्थ एवं वास्तविक होता है। लेखक देश–विदेश के जिस भी स्थान की यात्रा का वृत्तान्त लिखता है उस स्थल की भौगोलिक स्थिति का यथातथ्य वर्णन उसमें होना ही चाहिए, साथ ही ऐतिहासिक सन्दर्भों का भी उल्लेख वांछनीय होता है।

भारत एक सांस्कृतिक देश है। नदी, पहाड़ों में अटूट आस्था सर्वविदित है और बात यदि गंगा, यमुना, नर्मदा जैसी पुण्यशीला नदियों की हो तो यह आस्था चरम पर पहुँच जाती है। लेखक डॉ. हीरालाल बाछोतिया का यह यात्रा वृत्तांत ऐतिहासिक कम और सांस्कृतिक अधिक है।

'नहीं रुकती है नदी' यात्रा वृत्तान्त वर्ण्य विषय, वर्णन शैली, विम्बात्मकता आदि सभी दृष्टियों से कलात्मक बन पड़ा है। दृश्यबिम्बों के साथ भाव–बिम्बों का सफल संयोजन पाठक वर्ग पर अपूर्व प्रभाव डालता है।

पल्लवन शब्द संक्षेपण का पूर्णतया विरोधी है क्योंकि 'संक्षेपण' में जहाँ विस्तार में वर्णित किसी भाव या विचार को संक्षिप्त रूप दिया जाता है, वहाँ 'पल्लवन' के अंतर्गत सूत्र रूप में वर्णित किसी भाव या विचार का विस्तार किया जाता है। इसी

कारण 'संक्षेपण' में जहाँ दृष्टांत, उदाहरण, विशेषण, अलंकार, मुहावरे, लोकोक्ति आदि को हटाकर मुख्य आशय पर जोर दिया जाता है, वहीं 'पल्लवन' में दृष्टांतों, उदाहरणों, प्रसंगों आदि का प्रयोग करके मुख्य आशय को विस्तारपूर्वक समझाया जाता है।

टिप्पणी

3.8 मुख्य शब्दावली

- **जल्पना** : व्यर्थ में तर्क–वितर्क करना, डींगें मारना।
- **पाश** : बंधन, रस्सी।
- **कोष** : भंडार, खजाना।
- **संघटन** : संयोग, मेल।

3.9 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास

लघु–उत्तरीय प्रश्न

1. स्वामी विवेकानंद द्वारा लिखी गई प्रमुख पुस्तकों के नाम बताइए।
2. डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन की दृष्टि में समाजवाद क्या है?
3. डॉ. हीरालाल बाछोतिया का संक्षिप्त परिचय दीजिए।
4. यात्रा वृत्तांत की शैली के अंतर्गत 'तथ्यात्मकता' के महत्व को संक्षिप्त में बताइए।

दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न

1. गौतम बुद्ध निबन्ध को दृष्टि में रखते हुए स्वामी विवेकानंद का व्यक्तित्व किस प्रकार प्रदर्शित हुआ है? विश्लेषण कीजिए।
2. 'भगवान बुद्ध' निबन्ध की निबन्ध की कसौटी पर समीक्षा कीजिए।
3. डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन का जीवन परिचय देते हुए 'लोकतंत्र एक धर्म है' निबंध का सार लिखिए।
4. नर्मदा को 'चिर–कुंआरी' क्यों कहा जाता है?
5. 'नहीं रुकती है नदी' यात्रा–वृत्तांत के मूल बिंदुओं का अपने शब्दों में विश्लेषण कीजिए।
6. पल्लवन के अर्थ और स्वरूप को स्पष्ट करते हुए उसके प्रकारों की चर्चा कीजिए।

3.10 सहायक पाठ्य सामग्री

1. 'प्रतिनिधि कविताएं', जयशंकर प्रसाद, राजकमल प्रकाशन, 2015
2. 'माखनलाल चतुर्वेदी रचना संचयन', चयन एवं संपादन– कृष्णदत्त पालीवाल, 2014.
3. 'आधुनिक हिन्दी व्याकरण और रचना', डॉ. वासुदेवनंदन प्रसाद, भारती भवन पब्लिशर एवं डिस्ट्रीब्यूटर, 2017

टिप्पणी

4. 'हिन्दी व्याकरण', कामता प्रसाद गुरु, वाणी प्रकाशन, 2014
5. 'प्रेमचंद का व्यक्तित्व', लक्ष्मण राव, भारतीय साहित्य कला प्रकाशन, 2019
6. 'भाषीय औदात्तय', डॉ. त्रिभुवन शुक्ल, वाणी प्रकाशन, 2016
7. 'व्यक्तित्व का संपूर्ण विकास', स्वामी विवेकानंद, प्रभात प्रकाशन, 2017
8. 'भगवान बुद्ध तथा उनके संदेश', स्वामी विवेकानंद, रामकृष्ण मठ, नागपुर, 2011
9. 'विवेकानंद साहित्य' (10 वाल्यूम), स्वामी विवेकानंद, अद्वैत आश्रम, 2017
10. 'हिन्दी भाषा प्रकृति, प्रयोग और शिक्षा', हीरालाल बाछोतिया, आर्यप्रकाशन मंडल, दिल्ली, 2012
11. 'डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन', आर.पी.एच. एडिटोरियल बोर्ड, रमेश पब्लिशिंग हाउस, 2016
12. 'डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन', बृजकिशोर, प्रभात प्रकाशन, 2018
13. 'व्यंग्य समय', शरद जोशी, किताब घर प्रकाशन, 2017
14. 'व्यंगर्षि शरद जोशी', वागीश सारस्वत, शिल्पायान, 2013
15. 'व्यक्तिगत निबन्ध और डायरी', रामधारी सिंह दिनकर, नेहा पब्लिशिंग एंड डिस्ट्रीब्यूटर, 2012
16. 'हमारी सांस्कृतिक एकता' (वाल्यूम 3 ऑफ 29), दिनकर ग्रंथालय, लोकभारती प्रकाशन, 2019
17. 'हिन्दी के प्रमुख निबन्धकार और उनका निबन्ध साहित्य', डॉ. जीवनभाई आर. डांगर, शांति प्रकाशन, 2016

इकाई 4 हिन्दी भाषा

टिप्पणी

संरचना

4.0 परिचय

4.1 उद्देश्य

4.2 अफसर (निबन्ध) : शरद जोशी

- 4.2.1 'अफसर' निबन्ध का मूल पाठ
- 4.2.2 'अफसर' निबन्ध का सार
- 4.2.3 व्याख्यांश
- 4.2.4 'अफसर' निबन्ध का समीक्षात्मक अध्ययन

4.3 हमारी सांस्कृतिक एकता : भारत एक है (निबन्ध) : रामधारी सिंह दिनकर (एक भारत श्रेष्ठ भारत के अंतर्गत)

- 4.3.1 'भारत एक है' निबन्ध का मूल पाठ
- 4.3.2 'भारत एक है' निबन्ध का सार
- 4.3.3 व्याख्यांश
- 4.3.4 'भारत एक है' निबन्ध का समीक्षात्मक अध्ययन

4.4 संक्षेपण

4.5 अपनी प्रगति जाँचिए प्रश्नों के उत्तर

4.6 सारांश

4.7 मुख्य शब्दावली

4.8 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास

4.9 सहायक पाठ्य सामग्री

4.0 परिचय

निबन्ध गद्य का निकस है। यह व्यक्ति की मानसिक चेतना और भावात्मक अनुभूति का लिखित रूप है। निबन्ध के कई प्रकारों में एक निबन्ध है– व्यंग्य। इस विधा में लेखक समाज की अव्यवस्थाओं, कुरीतियों, विद्रूपताओं आदि पर चुटीले अन्दाज में कटाक्ष करता है। इस विधा के सबसे प्रबल हस्ताक्षरों में से एक हैं– शरद जोशी। एक अभूतपूर्व व्यंग्यकार, अनेकानेक फिल्मों व टी.वी. धारावाहिकों के पटकथा लेखक शरद जोशी का जन्म 21 मई, 1931 को उज्जैन, मध्य प्रदेश में हुआ था। प्रखर प्रतिभा के धनी शरद जोशी ने 1953 से 'नई दुनिया' समाचार–पत्र में 'परिक्रमा' नाम से व्यंग्य कॉलम लिखना शुरू किया था। उसके बाद उनका रचनाकर्म जीवनपर्यन्त चलता रहा। 5 सितम्बर, 1991 को शरद जोशी का मुम्बई में निधन हो गया।

हिन्दी साहित्य के सूर्य रामधारी सिंह 'दिनकर' बिहार के मुंगेर जिले के सिमरिया गाँव में 23 सितम्बर 1908 को पैदा हुए। वीररस के यह कवि विद्रोह और पुरुषार्थ के प्रबल हस्ताक्षर हैं। राजनीति में रहते हुए भी राजधर्म और राजनीति की आलोचना से तनिक भी न घबराने वाले राष्ट्रकवि दिनकर का साहित्यिक उत्तरार्ध दर्शन की ओर ज्यादा झुका हुआ दिखता है।

इस इकाई में शरद जोशी का व्यंग्य विधा में योगदान बताते हुए उनके एक बहुचर्चित व्यंग्य 'अफसर' की व्याख्या व समीक्षा की गई है। रामधारी सिंह 'दिनकर'

के वैचारिक निबन्ध 'भारत एक है' को 'एक भारत श्रेष्ठ भारत' के अंतर्गत इस इकाई में सम्मिलित, व्याख्यायित व समीक्षा की कसौटियों पर तोला गया है। साथ ही संक्षेपण की परिभाषा, प्रकारों एवं प्रविधियों को उदाहरणों के माध्यम से स्पष्ट किया गया है।

टिप्पणी

4.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- शरद जोशी के साहित्यिक योगदान व उनके व्यंग्यात्मक निबन्ध 'अफसर' का अध्ययन कर उसकी समीक्षा कर पाएँगे;
- दिनकर के वैचारिक निबन्ध 'भारत एक है' का विवेचन कर पाएँगे;
- संक्षेपण की परिभाषा, प्रकार, नियमों एवं विधियों से अवगत हो पाएँगे।

4.2 अफसर (निबन्ध) : शरद जोशी

हिन्दी के सुप्रसिद्ध व्यंग्यकार शरद जोशी का जन्म 21 मई 1931 को उज्जैन मध्य प्रदेश में हुआ था। व्यंग्यकार होने के साथ–साथ वे फिल्मी जगत के मशहूर पटकथा लेखक एवं संवाद लेखक के रूप में जाने जाते हैं। उन्होंने होल्कर कॉलिज इन्दौर से बी.ए. की उपाधि प्राप्त की। इरफाना सिद्दीकी से उनका विवाह हुआ। शरद जोशी के पिता श्रीनिवास जोशी बेहद मिलनसार और सुरुचि सम्पन्न व्यक्ति थे।

उनकी लघु कहानियाँ और व्यंग्य प्रमुख हिन्दी पत्र–पत्रिकाओं में प्रकाशित होते थे। नयी दुनिया, धर्मयुग, साप्ताहिक हिन्दुस्तान, कादम्बिनी और ज्ञानोदय में उनकी अनेक रचनाएँ छपती थीं। 'प्रतिदिन' शीर्षक से वे नवभारत टाइम्स में अपना दैनिक कॉलम लिखते थे। यह बहुत लोकप्रिय कॉलम था। यहाँ तक कि लोग इसके लिए अखबार को पीछे से पढ़ना पसन्द करते थे। समाचार पत्र में कॉलम लेखक तथा आकाशवाणी इन्दौर में कार्य करते हुए उन्होंने अपनी आजीविका प्रारम्भ की। 5 सितम्बर 1991 को मुम्बई में शरद जी का निधन हो गया।

प्रखर प्रतिभा के धनी शरद जोशी ने व्यंग्य के माध्यम से सन् 1953 में इन्दौर के प्रसिद्ध दैनिक 'नई दुनिया' समाचार पत्र में 'परिक्रमा' से लेखन कार्य आरम्भ किया। इससे उन्हें हिन्दी जगत में युवा व्यंग्यकार का दर्जा प्राप्त हुआ। लेखन कर्म के विषय में शरद जोशी का आत्मकथन उल्लेखनीय है– ''जब गद्य लेखन में मेरी रुचि बढ़ी अर्थात् सन् 1948 के बाद अपेक्षाकृत तेजी से, उन दिनों मैंने जिन लेखकों को पढ़ा, वे थे– चेखव, यशपाल, गोर्की, मोपास, बालजक, प्रेमचन्द, ओ हेनरी, कृष्ण चन्दर, मंटो, शरत, रवीन्द्र, सामरसेट मॉम और टॉलस्टाय। इनमें टॉलस्टॉय को अपनी खानदानी जमीन से कुछ कमाई होती थी। शेष सारे लेखकों के विषय में मुझे यह सोच ठीक ही लगती थी कि उनकी जीविका लिखने से चलती है।

सन् 1955 में शरद जोशी ने आकाशवाणी इंदौर में पाण्डुलिपि लेखक के रूप में कार्य किया। सन् 1956 से 1966 के दौरान उन्होंने मध्य प्रदेश सूचना विभाग में नौकरी की। सरकारी नौकरी छोड़ने के बाद लेखन के सहारे ही उनका काम चला। सन् 1960 के दशक में उन्होंने साप्ताहिक 'धर्मयुग' में 'बैठे ठाले' स्तम्भ लिखना शुरू किया। यहीं

टिप्पणी

से व्यंग्य लिखने के क्षेत्र में उनका नाम चर्चित हो गया। शरद जोशी व्यंग्यकार होने के नाते समाज की रूढ़ियों, विसंगतियों, विद्रूपताओं को अपना विषय बनाया करते थे। शरद जी के व्यंग्यों में हास्य, कड़वाहट, मनोविनोद और चुटीलापन है। उन्होंने समसामयिक जीवन की विसंगतियों, त्रासदियों, भ्रष्ट व्यवस्था के खिलाफ अभिधा, लक्षणा और व्यंजना की तलवार को बखूबी प्रयोग किया। दफ्तरों में फाइलबाजी पर उनका व्यंग्य देखिये– 'महाभारत फाइलों में चलता तो आज तक न निपटता। कौरव–पाण्डव कबके रिटायर हो जाते... चौदह साल बीत जाने पर राम के वन–प्रवास के आदेश निकल नहीं पाते।'' स्वतन्त्रता के उपरान्त 'उधार का अनन्त आकाश' में जोशी जी ने भारत के उधार लेने की प्रवृत्ति पर व्यंग्य करते हुए लिखा है– "उधार लेने वाला अन्वेषी होता है और अन्वेषी ही उधार ले सकता है। हमारे देश के वित्त मंत्रालय को कोलम्बस की प्रतिमा लगानी चाहिए। वह अमेरिका नहीं खोजता, तो हम कहाँ से उधार लेते।'' शरद जोशी की सूक्ष्म अवलोकन शक्ति से कोई नहीं बच पाया है। उन्हीं में से 'अध्यक्ष महोदय भी होते हैं। इनके चरित्र पर प्रकाश डालते हुए शरद जोशी लिखते हैं– ''अच्छा अध्यक्ष महोदय हमेशा देर से आते हैं...अध्यक्ष बनने के कई तरीके होते हैं। कुछ चौंककर अध्यक्ष बनते हैं, कुछ सहज अध्यक्ष बन जाते हैं, कुछ दूल्हे की तरह लजाते–मुस्कराते अध्यक्ष बनते हैं। कुछ यों अध्यक्ष बनते हैं जैसे शहीद होने जा रहे हों कुछ हेडमास्टर की अदा से अध्यक्ष बनते हैं और और कुछ ऐसे सिर झुकाये बैठे रहते हैं कि जैसे मंडप में लड़की का बाप बैठा है।''

शरद जी के व्यंग्य इतने सशक्त, रोचक और पैने होते थे कि उन्होंने 25 साल तक कविता के मंच से गद्यपाठ किया और जनप्रियता प्राप्त की। उनके व्यंग्यालेख आकार में लघु होते हैं। वे बिहारी के दोहों की तरह अपने व्यंग्यों का विस्तार पाठक पर छोड़ देते हैं। उनके व्यंग्यों में पाठकों के लिए कोई न कोई प्रेरक सन्देश अवश्य होता था। अपने लेखन से उन्होंने इस उक्ति को चरितार्थ किया कि 'साहित्य समाज को मशाल दिखाता है।' चाटुकार लेखकों और मुफ्त–खोर शिक्षकों पर उनका एक पैना व्यंग्य देखिए ''जो विश्वविद्यालय की पीठ पर विराजमान हो बिना पढ़ाये मुफ्त का पैसा लेते हैं और साहित्य और साहित्यकार पर फतवे देते हैं।.... अपनी तुलना कबीर से करेंगे और अपनी चदरिया मुख्यमंत्री के चरणों में बिछाये रखेंगे। शिखर पुरस्कार लेने के लिए जमीन पर बिछ जाएँगे।'' अपने सत्य कर्म की प्रतिबद्धता को बताते हुए उनका कहना है– ''मेरा इरादा तो यह है कि जिसे मैं ठीक नहीं पाता हूँ उसे अपने लेखन के जरिये शर्म के उस बिन्दु तक ले जाऊँ कि वह अपना गलत स्वीकार कर ले और फिर पूरी निश्छलता के साथ लौट आए।'' सन् 1960 में सामाजिक विरोध के बावजूद उन्होंने शाजापुर में रहने वाली मुस्लिम लड़की इरफाना से विवाह किया। सन् 1980 में शरद जोशी हिन्दी एक्सप्रेस के सम्पादक बने, किन्तु यह पत्र चल नहीं पाया। 1985 में उन्होंने प्रसिद्ध दैनिक 'नवभारत टाइम्स' में प्रतिदिन शीर्षक से स्तंभ लेखन का कार्य शुरू किया जो मृत्युपर्यन्त चलता रहा। 1985 में भारतीय ज्ञानपीठ ने उनके सौ चुने हुए व्यंग्य लेखों का संग्रह 'यथा संभव' शीर्षक से छापा।

जितनी सफलता शरद जोशी को पत्र–पत्रिकाओं में लेखन से मिली, उतनी ही सफलता फिल्म और धारावाहिक लिखने में भी मिली। नौकरी छूटने के बाद उन्होंने मुम्बई जाने का संकल्प क्यों किया, इस सम्बन्ध में उनका कथन है– ''भोपाल में एक अफसर से झगड़ा होने के बाद मुझे झुकाने के लिए साजिश की तरह मेरी आय के सारे

टिप्पणी

दरवाजे बन्द कर दिये गए। मैंने तय किया कि चलो, बम्बई चलें। वहाँ लिखेंगे। अखबारों में लिखेंगे, फिल्मों के लिए लिखेंगे।'' शरद जोशी ने क्षितिज, चोरनी, छोटी–सी बात, गोधूलि, उत्सव जैसी फिल्मों के लिए संवाद और पटकथाएँ लिखीं। दूरदर्शन के लिए लिखने वालों में दो साहित्यकार विशेष रूपेण सफल हुए– एक मनोहर श्याम जोशी और दूसरे शरद जोशी। यह जो है जिन्दगी, विक्रम और बेताल जैसे सफल टी.वी. सीरियल लिखे। 'अनार के दाने' उनका अन्तिम टीवी सीरियल था, जो दूरदर्शन से प्रसारित हुआ था।

शरद जोशी बहुमुखी प्रतिभा के धनी लेखक थे। यद्यपि उनकी ख्याति व्यंग्य लेखक के रूप में अधिक रही है, तथापि उनका लेखन बहुआयामी रहा है। उनके द्वारा रचित कृतियाँ इस प्रकार हैं–

(1) परिक्रमा (2) किसी बहाने (3) तिलस्म (4) जीप पर सवार इल्लियाँ (5) रहा किनारे बैठ (6) मेरी श्रेष्ठ रचनाएँ (7) दूसरी सतह (8) यथासम्भव (9) यत्र तत्र सर्वत्र (10) हम भ्रष्टन के भ्रष्ट हमारे (11) यथासमय (12) प्रतिदिन (तीन भाग)

नाटक– 1. अन्धों का हाथी 2. एक था गधा उर्फ अदालत खान

फिल्म संवाद लेखन– (1) क्षितिज (2) छोटी सी बात, (3) साँच को आँच नहीं (4) गोधूलि (5) चोरनी (6) उत्सव (7) नाम (8) चमेली की शादी (9) मेरा दामाद (10) दिल है कि मानता नहीं (11) उड़ान

टीवी धारावाहिक– यह जो है जिन्दगी, विक्रम और बेताल, वाह जनाब, दाने अनार के, श्रीमती जी, सिंहासन बत्तीसी, यह दुनिया है गजब की, प्याले में तूफान, गुलदस्ता, लापतागंज, नीमच

शरद जोशी ने अपने व्यंग्यों में राजनीतिक समस्याओं, सामाजिक, धार्मिक कुरीतियों, तात्कालिक घटनाओं को इतनी कुशलता और इस अंदाज में उठाया कि उन्होंने सीधे पाठकों को दिल को छुआ। उनके व्यंग्य आज भी उतने ही प्रासंगिक हैं, जितने कि उस समय होते थे। डा. सुनील कुमार तिवारी के शब्दों में ''उनके लिखे व्यंग्यों में इतना गहरा कटाक्ष होता था जो पाठकों को अन्दर तक झकझोर देता था। ...उन्होंने जनता की समस्याओं को जनता की भाषा में जनता के सामने अनोखे अंदाज में रखा। उनके व्यंग्यों की सबसे खास बात थी, उनकी तात्कालिकता। वे किसी भी घटना पर तुरन्त व्यंग्य लिखते थे जिससे पाठक उससे आसानी से जुड़ जाता था। ये अपने व्यंग्यों में किसी को नहीं बख्शते थे, चाहे वह प्रधानमंत्री हो या निचले स्तर का कोई कर्मचारी। तत्कालीन राष्ट्रपति डॉ. शंकरदयाल शर्मा ने उनके विषय में लिखा– ''शरद जोशी को मैं एक अत्यंत संवेदनशील रचनाकार मानता हूँ। अपने समय की सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक विसंगतियों को उन्होंने अलग पैनी निगाह से देखा और उसे अत्यन्त सटीक शब्दों में व्यक्त किया। उनकी रचनाओं को मैं अपने समय की विसंगतियों पर की गई निर्भीक टिप्पणियाँ मानता हूँ। वे अत्यन्त साहसी तथा द्वन्द्व रहित रचनाकार थे। उनके सामने जीवन के उद्देश्य बिल्कुल स्पष्ट थे। अपने इस गुण के कारण वे सबके प्रिय लेखक बन गए थे।...छोटे छोटे विषयों को भी अपनी स्याही का स्पर्श देखकर बड़ा कर देने की गजब की चमत्कारिक शक्ति उनके पास थी मैं समझता हूँ जोशी जी में जो यह लेखकीय संवेदना थी, सामाजिक प्रतिबद्धता थी तथा

व्यवहार और विचारों का जो सामंजस्य था, वह हमारे देश के रचनाकारों के लिए एक अनुकरणीय बात है।''

टिप्पणी

सम्मान– अनेक प्रान्तीय सम्मानों के साथ 1990 में भारत सरकार ने उन्हें पद्मश्री से विभूषित किया। उत्कृष्ट सृजन को राष्ट्रीय स्तर पर सम्मानित करने की अपनी सुप्रतिष्ठित परम्परा का अनुसरण करते हुए मध्य प्रदेश शासन ने हिन्दी व्यंग्य, ललित निबन्ध, संस्मरण, रिपोर्ताज, डायरी, पत्र इत्यादि विधाओं में रचनात्मक लेखन के लिए स्थापित किया है। शरद जोशी मध्य प्रदेश के निवासी थे। अतः मध्य प्रदेश सरकार ने उनके नाम पर 'शरद जोशी सम्मान' भी आरम्भ किया है।

शरद जोशी व्यंग्य के ऐसे हस्ताक्षर थे जिनसे हिन्दी की व्यंग्य विधा सशक्त भी हुई और व्यंग्य की एक नवीन शैली चल निकली। दूरदर्शन एवं फिल्म जगत में लेखन से उनकी सर्जना को व्यापक जनाधार मिला। वे व्यंग्य के इतिहास में मील के पत्थर बन गए। उन्होंने व्यंग्य को नया तेवर और वैविध्य दिया तथा समय की विसंगति और विडम्बना को अपनी प्रखर लेखनी से उजागर करते हुए समाज को दृष्टि और दिशा प्रदान करने का उत्तरदायी रचना कर्म किया। उनकी व्यंग्य रचनाओं ने हिन्दी साहित्य की समृद्धि में अपना सुनिश्चित योगदान दिया है।

4.2.1 'अफसर' निबन्ध का मूल पाठ

नाव में अफसर के साथ बैठने से बेहतर है कि डूब मरिए, क्योंकि जब सुराख होगा, वह आपसे इसका स्पष्टीकरण माँगेगा। जब नाव हिचकोले ले तो इधर–उधर डोलेगी, वह आपको जलती आँखों से घूरेगा और डाँट लगाएगा और जब वह धीरे–धीरे सधी हुई लहरों पर बहती चली जाएगी तब? तब वह आपका आभारी नहीं होगा। यह अपने को सफल अफसर मानेगा, जिसके योग्य प्रशासन में नाव ठीक चल रही है।

चाँदनी रात है। हवा है। लहर है। चारों तरफ वही अमृत बिखरा है जिसमें रोमांस पनपता है और कविताएँ लिखी जाती हैं पर नाव में एक अफसर बैठा है। हो सकता है कि इस संगीतमय वातावरण में किसी फाइल का किस्सा छेड़ दे उस फाइल का जो इस समय मुख्य सचिव के पास है, जिसमें मूल टीप अफसर की है और जो कैबिनेट के सामने जाने वाली है।

मन करता है नाव से कूद पड़े, क्योंकि दुनिया की जिन झंझटों से मुक्ति पाने के लिए 'आप नाव में बैठे थे, वे इस काव्यमय वातावरण में भी ज्यों–की–त्यों हैं। गलती वास्तव में आपकी है। आप नाव में अफसर के साथ बैठे ही क्यों? अफसर अफसर होता है और वह जितना दफ्तर में अफसर होता है उतना ही नाव में होता है। वह बोर करता है, पर वह इतना सहज बोर है कि बेचारा नहीं जानता कि बोर है और वह यह भी नहीं जानता कि नाव में बैठा है, जब तक आप उसे 'मेमो' न थमा दें कि सर, यह चाँदनी रात है और जो यह ठण्डी हवा चल रही है, भगवान के बजट में इसका प्रावधान है और हुजूर, श्रीमान्, हेड आफिस से आर्डर हुए हैं कि आप पूनम की रात नाव पर बैठकर सैर को जाएँ।

लोग सोचते हैं, अफसर किस मिट्टी का बना है? मिट्टी तो देशी है, सिर्फ साँचा विदेशी है, जिसमें अफसर ढलता है। अफसर ढलकर तैयार होता है या जन्म से अफसर हो जाता है, यह बहस का विषय है। यह सच है कि कुछ लोग पैदायशी

टिप्पणी

अफसर होते हैं। अफसर से रिटायर होने के बाद भी आदमियों में अफसरत्व कायम रहता है, जो घर के लोगों को परेशान करता है। वह परम अवस्था जब पत्नी एक न सुलझने वाली चिर पेंडिंग साक्षात् फाइल की तरह नजर आती है और हर बच्चा अपने–आपमें एक केस लगता है, जो हमेशा अनुशासन भंग करता है, पर जिसे न 'सस्पेंड' किया जा सकता है और न उसका 'प्रमोशन' रोका जा सकता है। वे घर को एक दफ्तर की तरह चलाते हैं और जिस तरह दफ्तर वे कभी ठीक नहीं चला पाए, उसी तरह घर भी नहीं चला पाते। जब तक चार सब्जी वालों से मौखिक टेंडर न ले लें, वे कद्दू नहीं खरीदते और जब तक वे 'सेंक्शन' नहीं दें, प्यार नहीं करते।

वर्षों हो गए। कितने अफसर आए और चले गए। कितनी कुर्सियाँ उनके वजन से चरमराकर टूटीं और फेंक दी गयीं, पर वजन वही रहा। फाइलें उसी तरह बनती और विकसित होती रहीं। अफसर जाता है, पर अफसरी बनी रहती है। वह एक आत्मा है, एक शरीर के रिटायर होने के बाद नया शरीर ग्रहण कर लेती है। अफसर नहीं जाता, वह कायम रहता है। जिस तरह राजा नहीं मरता, उसी तरह अफसर भी नहीं मरता। वह विद्यमान रहता है। पेड़ उगते हैं और उनसे टेबल–कुर्सी बनती है। कागज का कारखाना चलता है और फाइलें तैयार होती रहती हैं। पता नहीं जब भोज–पत्र पर लिखा जाता था तब फाइलें कैसी होती होंगी अब उसका सवाल नहीं क्योंकि कागज की कमी नहीं और अफसरों की कमी नहीं। जैसे–जैसे कागज बढ़ेंगे, नए 'सेक्शन' खुलेंगे और नित नए अफसर कुर्सी पर यों शोभा देंगे जैसे गमले में पौधा, जो झूमता रहता है, खिलता भी रहता है, पर जड़ से मजबूत होता है, हिलता नहीं। देश का विकास होगा, यानी अफसरों का विकास होगा। एक गड्ढा भी बिना दस्तखत के नहीं खुद सकता, सो ज्यादा–से–ज्यादा अफसर चाहिए और वे आएँगे। विकास हो–न–हो, अफसर आएँगे।

हर नया अफसर अपने में गमक लिए रहता है। जब आता है चमन में बहार बनकर आता है और जब जाता है मर्तबान का अचार बनकर जाता है।

कभी अफसर को जाते हुए देखिए। तबादले का दृश्य बड़ा रोचक होता है। कहा जाता है कि इस मौके पर हम क्या कहें। एक तरफ हमें बड़ा अफसोस है कि वर्मा साहब आज हमारे बीच से जा रहे हैं और दूसरी तरफ हमें खुशी भी है कि शर्मा साहब हमारे बीच आ रहे हैं। विदाई का भाषण देने वाले के सामने धरम–संकट रहता है। नए अफसर को मक्खन लगाने और जाते हुए के लिए शाब्दिक अफसोस प्रकट करने की मिश्रित अभिव्यक्ति के लिए उसे शब्द नहीं सूझते। कुछ शब्द हैं जो कह दिए जाते हैं और जाता हुआ अफसर संतोष कर लेता है। एक प्लेट से चमचा कूदकर दूसरी प्लेट में आ जाता है। नया अफसर यानी सब कुछ नया। यहाँ की टेबल वहाँ और वहाँ की टेबल यहाँ। नए अफसर को क्रोटन पसन्द है, सो पुराने अफसर के कैक्टस गए भाड़ में। 'पंक्चुअलटी' पर विशेष जोर। साढ़े दस यानी साढ़े दस। बड़े बाबू की परेड और चपरासी का ओवरटाइम। नया अफसर आया है तो बिगड़ी दुरुस्त होगी, पर यह सारी चुस्ती शुरू के दो माह। बाद में वही ढर्रा। तब तक बड़े बाबू और अफसर में सूत्र जुड़ जाते हैं और दुरुस्त गाड़ी फिर उसी चाल से चलने लगती है जैसे बिगड़ी गाड़ी चलती है।

अफसर के शरीर की कोई रग सरकार के सूत्रों से अलग काम नहीं करती। फाइल, मीटिंग, दौरा, रिपोर्ट, डीओ, रिमाइण्डर, मेमो, आर्डर की दुनिया में बँधा वह सहानुभूति का पात्र है। सब कुछ 'रूटीन' है। सुबह सूर्य का उगना 'रूटीन' है और

टिप्पणी

देर रात चाँद का डूबना 'रूटीन' है। आँधी आती है, फाइल हो जाती है। फूल खिलता है, स्टोर में जमा हो जाता है। कुछ 'अर्जेन्ट' होता है, कुछ 'इमीजिएट' होता है। जो नहीं होना होता है, वह भी होता है, बशर्ते बजट में गुंजाइश हो। चार पैसे की मटकी ठोक–बजाकर ली जाती है पर मटकी ठोंकने–बजाने के सरकारी तरीके अलग ही हैं, जिन्हें अफसर जानता है।

अफसर से दोस्ती नहीं की जा सकती। उससे रिश्ता किया जा सकता है क्योंकि रिश्ते में नियम होते हैं, दोस्ती में नियम नहीं होते। अफसर के साथ नहीं चल सकते, उसके पीछे चलना होता है। कहावत है, अफसर के सामने और घोड़े के पीछे नहीं आना चाहिए। पुराने जमाने में जब अफसर घोड़े पर बैठकर दौरा करते थे तब पता नहीं लोग क्या करते होंगे क्योंकि तब आगे रहें या पीछे, हालत बिगड़ने का अन्देशा हरदम बना रहता है। तब किनारा काटकर बगल में रहना ही एक नीति रही।

अफसर डाँटता है, नेता सारे देश को एक साथ डाँटता है और अफसर हर व्यक्ति को अलग–अलग बुलाकर डाँटता है। हम डँटते हैं। हम डँटे हुए लोग हैं, जो डाँटने वालों के अधीन सटे हुए काम करते हैं। कुर्सी बनी रहेगी, पर कब खाट खड़ी हो जाएगी, कह नहीं सकते। वह गजटेड है यानी गजट में है और हम गजट के बाहर हैं, फिर भी फाइल में हैं और फीते से बँधे हैं। फीता हमारी आत्मा पर लिपटा है और लपेटने वाला है अफसर। अफसर सब जगह है। वह 'ऑन ड्यूटी' सर्वव्यापी है। वह 'रेडीमेड' मसीहा है, 'एक्टिव' शहीद है, फुर्तीला कछुआ है। वह ओखरी में सिर रख मूसलों को अनुशासन में रखता है। वह हाथ को बिना आरसी के नहीं देखता और सत्य के प्रमाण माँगता है। अफसर, अफसर है। वह अकेला अफसर है। आपके साथ अफसर है। सुबह अफसर है। शाम अफसर है। वह जीता नहीं, जीवन को 'डील' करता है, वह एक निश्चित तरीके से। वह सहज परिभाषित है और अनुमान से परे नहीं। फिर भी जिज्ञासा का केन्द्र है, क्योंकि प्रशासन के ब्रह्म में कार्य–कारण सम्बन्ध पहचानता है। उसके साथ रहकर क्या कीजिएगा? वह जहाँ है, जितना है, मेरी समझ में काफी है। उसे वहीं रहने दें।

अफसर अगर इस किनारे जा रहा है तो आप उस किनारे जाइए, इसी में आपकी खैर है।

4.2.2 'अफसर' निबन्ध का सार

शरद जोशी अपने समय के अनूठे व्यंग्य रचनाकार थे। उन्होंने अपने समय की सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक विसंगतियों को अत्यन्त पैनी निगाह से देखा और अपनी पैनी कलम से बड़ी साफगोई के साथ उन्हें सटीक शब्दों में व्यक्त भी किया। उनके व्यंग्य में हास्य कड़वाहट, मनोविनोद और चुटीलापन दिखाई देता है जो उन्हें जनप्रिय रचनाकार बनाता है। 'अफसर' एक बहुत लोकप्रिय व्यंग्य रचना है।

नाव में अफसर के साथ बैठने से डूब मरना अच्छा है क्योंकि नाव में सुराख होने अथवा हिचकोले लेने पर अफसर इसका स्पष्टीकरण माँग सकता है। चांदनी रात के काव्यमय वातावरण में अफसर के साथ नौका–विहार करने पर आनन्दानुभूति तो हो ही नहीं सकती क्योंकि हर समय अफसर की डांट अथवा किसी फाइल के जिक्र का डर लगा रहता है।

टिप्पणी

बहुधा कहने–सुनने में आता है कि अफसर किस मिट्टी का बना है। सच तो यह है कि मिट्टी तो देशी होती है, सिर्फ सांचा विदेशी होता है, जिसमें अफसर ढलता है। अफसर ढलकर तैयार होता है या जन्म से अफसर हो जाता है, यह वाद–विवाद का विषय हो सकता है। पर इतना तो निश्चित है कि रिटायर होने के बाद भी उनका अफसरत्व बरकरार रहता है और घर में पत्नी उन्हें साक्षात् पेंडिंग फाइल और हर बच्चा न सुलझने वाला केस दिखता है।

दफ्तर में अफसरों की अदला–बदली चलती रहती है। हर नया अफसर प्रायः पुरानी कुर्सी हटाकर अपने लिए भी कुर्सी लगवाता है। हर नया अफसर एक नया रंग–ढंग लेकर आता है। जब आता है तो बाग में बहार बनकर आता है और जब जाता है तो मर्तबान का अचार बनकर। अफसर के तबादले का दृश्य बड़ा रोचक होता है। इसमें एक अफसर की विदाई और दूसरे के स्वागत का दृश्य होता है। जाते हुए अफसर के लिए भावभीने शब्द स्टाफ के मुँह से बड़ी मुश्किल से निकलते हैं और नये अफसर का स्वागत काफी गर्मजोशी से किया जाता है। चाटुकार लोग जाने वाले से मुँह फेरकर आने वाले अफसर की खिदमत में लग जाते हैं। यानि एक प्लेट से चमचा कूदकर दूसरी प्लेट में आ जाता है। नये अफसर की रुचियाँ पुराने से भिन्न होने के कारण दफ्तर में हर चीज की रद्दोबदल कर दी जाती है। अनुशासन और नियमितता का डंका बजाया जाता है। पर यह सारा नया–नया खेल शुरू–शुरू के एक दो माह ही चलता है। बाद में सब कुछ पुराने ढर्रे में आ जाता है।

दफ्तर में अफसर सरकार के सूत्रों के हिसाब से ही काम करता है। वह दिन भर फाइल, मीटिंग, दौरा, रिपोर्ट, डी.ओ., रिमांडर, मेमो, आर्डर की दुनिया में बंधा रहता है। ईमानदारी की डींग हांकने वाला अफसर दफ्तर में हेरा–फेरी के सब नुक्ते सीख जाता है।

अफसर से दोस्ती नहीं की जा सकती है। उससे सिर्फ रिश्ता किया जा सकता है क्योंकि रिश्ते में नियम होते हैं, दोस्ती में नियम नहीं होते। एक पुरानी कहावत के अनुसार अफसर के आगे और घोड़े के पीछे नहीं चलना चाहिए। पुराने जमाने में अफसर लोग घोड़े पर बैठकर दौरा करते थे तब तो किनारा काटकर बगल में रहना ही एक नीति रही होगी।

अफसर और नेता में एक फर्क है। नेता सारे देश को एक साथ डाँटता है जबकि अफसर हर व्यक्ति को अलग–अलग बुलाकर डांटता है और कर्मचारियों की विवशता होती है। डाँटने वालों के अधीन सटे हुए काम करने की। अफसर अपने अधीनस्थ लोगों की आत्मा तक फीते से लपेट देता है। अफसर कहीं भी हो, वह हमेशा स्वयं को 'ऑन ड्यूटी' दर्शाता है। अफसरों की 'बू' उससे कभी नहीं छूटती। अतः अफसर से पर्याप्त दूरी बनाकर रखने में ही खैरियत है।

4.2.3 व्याख्यांश

- लोग सोचते हैं ..... प्रमोशन रोका जा सकता है

सन्दर्भ– प्रस्तुत अवतरण हिन्दी के सुप्रसिद्ध व्यंग्यकार शरद जोशी द्वारा लिखित निबन्ध से उद्धृत है। शरद जोशी बिहारी के दोहे की तरह अपने व्यंग्यों का विस्तार पाठक पर छोड़ देते हैं। वे व्यंग्य के ऐसे हस्ताक्षर हैं जिनसे हिन्दी की व्यंग्य विधा सशक्त भी हुई और व्यंग्य की एक नई शैली चल निकली। प्रस्तुत व्यंग्य 'अफसर' में

संस्थानों में व्याप्त चाटुकारिता की महामारी और लालफीताशाही पर करारा व्यंग्य किया गया है।

टिप्पणी

प्रसंग– नाव में अफसर के साथ बैठने से बेहतर स्वयमेव डूब मरना है क्योंकि नाव में सुराख होने अथवा हिचकोले लेने पर अफसर स्पष्टीकरण माँगकर परेशान कर सकता है। अफसर के साथ चांदनी रात में की गई नौका–यात्रा से अफसर न स्वयं आनन्द उठाता है और न अपने सहयात्री को उठाने देता है।

व्याख्या– अफसर की प्रवृत्ति अफसर वाली कुर्सी पर बैठकर बात–बात पर दूसरों को डांटने और दोष निकालने की हो जाती है। वह न स्वयं चैन से जीता है और न दूसरों को जीने देता है। ऐसे में लोग बहुधा सोचते हैं यह अफसर लोग न जाने किस मिट्टी के बने होते हैं। इस पर लेखक की टिप्पणी है कि निस्सन्देह मिट्टी तो स्वदेशी ही होती है। लेकिन उन्हें अफसरी में ढालने वाला साँचा विदेशी होता है। दूसरे शब्दों में आशय यह है कि जो कर्मचारी अब तक सहकर्मियों के साथ सहज जीवन जी रहा था, बॉस बनते ही वह कुर्सी पर बैठकर एकदम स्वयं को अंग्रेज और अधीनस्थ को दोयम दर्जे का प्राणी समझने लगता है। उन्हें नीचा दिखाने में अपनी शान समझता है। उसके रंग–ढंग विदेशियों जैसे हो जाते हैं। ऊँची कुर्सी पर बैठते ही बदले रंग–ढंग के मद्देनजर लेखक के मन में एक प्रश्न उठता है कि अफसर ढलकर तैयार होता है या जन्म से अफसर हो जाता है? वास्तव में इस प्रश्न पर तो अच्छी खासी बहस हो सकती है। कुछ लोग यह सिद्ध करेंगे कि कुर्सी पर बैठते ही सामान्य कर्मचारी भी अफसर के हाव–भाव में ढल जाता है। उसमें श्रेष्ठता और उच्चता का पदाभिमान आ जाता है। लेखक यह भी मानता है कि कुछ लोग पैदायशी अफसर होते हैं। दूसरों को बेवजह नियन्त्रित करना उनकी आदत में शामिल होता है। अफसर की कुर्सी पर बैठने पर तो उनकी अहममण्यता में असीम वृद्धि हो जाती है। अफसरी का नशा एक ऐसी चीज है जो अवकाश–प्राप्ति के बाद भी नहीं छूटता। रिटायर होने पर बाहर के लोगों को नियन्त्रित करने व उन पर रौब दिखाने का तो अधिकार छूट जाता है, किन्तु यह शौक वे अपने घर में पूरा करने की कोशिश करते हैं। अफसरी की लत आसानी से छूटती भी तो नहीं। अब उनका रौब–दाब घर में पत्नी और बच्चों पर चलने लगता है। उनकी छिद्रान्वेषण अर्थात् बात–बात पर मीन–मेख निकालने की आदत से घरवाले परेशान हो उठते हैं। अब वे पत्नी को सहचरी या सजीव प्राणी के रूप में न देखकर चिरपेंडिंग फाइल के रूप में देखने लगते हैं। नौकरी रहते हुए समय न मिलने के कारण उनका बच्चों पर ध्यान ही नहीं जाता था कि वे क्या कर रहे हैं? कैसे कर रहे हैं और उनका उठना–बैठना कहाँ है लेकिन अब फुर्सत ही फुर्सत होने पर उनका पूरा ध्यान पत्नी और बच्चों पर ही होता है। अब उनको महसूस होता है कि बच्चे बिगड़ गए हैं और अनुशासन से दूर हो गए हैं। आफिस में तो वे अपने सहकर्मियों के पास बॉस के रूप में काफी सख्त रहते थे। सस्पेंड और प्रमोशन ये दो उनके हथियार होते थे जिनसे वह कुछ को डराकर रखते थे और अपने चाटुकरों को प्रमोशन देकर अपना अहं तुष्ट करते थे। लेकिन परिवार में अपने बच्चों पर वे दोनों हथियार इस्तेमाल नहीं कर सके। यहाँ उनका कोई अर्थ नहीं रहता।

विशेष

1. ऊँची कुर्सी पर बैठते ही अफसर में एक श्रेष्ठता अहं आ जाता है एक बार इस तरह का इगो आने पर वह फिर जाता नहीं है। तुलसीदास जी ने इस बात को

टिप्पणी

कितने सुन्दर ढंग से कहा है– 'प्रभुता पाई केहि मद नाहीं' अर्थात् इस संसार में ऐसा कौन है जिसे अधिकार वाला पद पाकर अभिमान न होता हो।

2. भाषा शैली सरल, सुबोध और साथ ही बड़ी सजीव है। अफसर की अहममण्यता के बारे में बताते हुए कड़वाहट नहीं आने देते, अपितु मनोविनोद का वातावरण बन जाता है। दफ्तरी भाषा का नये सन्दर्भों में प्रयोग बहुत रोचक बन पड़ा है। पत्नी को चिरपेंडिंग फाइल बताना और बच्चों को न सुलझा केस एक सुन्दर प्रयोग है। भाषा मुहावरेदार है– 'किस मिट्टी का बना है'।

- जैसे जैसे कागज बढ़ेंगे ..... विकास हो न हो अफसर आएँगे।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– व्यंग्यकार शरद जोशी अफसर पर बात करते हुए कहते हैं कि दफ्तरों में अफसर आते हैं, जाते हैं। उनके स्थान पर दूसरे अफसर आते हैं पर कार्यशैली वही बनी रहती है। अफसरी जैसे एक आत्मा है जो एक शरीर के रिटायर होने के बाद नया शरीर ग्रहण कर लेती है। उनकी कुर्सी बदलती रहती है पर परिवेश वही रहता है। अफसर है तो दफ्तर में नई–नई फाइल तैयार होती रहती हैं। पहले तो भोजपत्रों पर लिखा जाता था लेकिन भोजपत्रों का स्थान तो अब कागजों ने ले लिया है।

व्याख्या– दफ्तरों में सारा कामकाज कागजों के सहारे ही चलता है। कागजों की संख्या दिनोंदिन बढ़ती जाती है क्योंकि अफसरों द्वारा एक बार में सुनवाई की नहीं जाती। बार–बार उन्हें अनुस्मारक (रिमाइन्डर) देने पड़ते हैं। गैर जरूरी कागजों से फाइलों का बोझ बढ़ता जाता है। देश में जैसे कागजों की कोई कमी नहीं, ऐसे ही अफसरों की भी कोई कमी नहीं। दफ्तरों में जब कागज बढ़ते जाते हैं तो नये–नये वर्ग और विभाग खुलते जाते हैं। प्रत्येक विभाग का एक अधिकारी भी रखा जाता है। नया अफसर नयी कुर्सी पर बैठकर ऐसे इतराता है जैसे नये गमले में पौधा। अफसररूपी पौधा अपनी जड़ें खूब मजबूत कर लेता है। इतनी मजबूत कि उसे कोई हिला न सके। देश अफसरों के बलबूते पर ही चलता है। सरकार की सारी योजनाएँ उनके माध्यम से ही क्रियान्वित कराई जाती हैं। देश के विकास से जनता का विकास हो न हो, अफसरों का विकास निश्चित है। समाज में छोटे से छोटा काम भी अफसर के हस्ताक्षर के बिना नहीं होता और अफसर आसानी से हस्ताक्षर करता नहीं। यदि आसानी से हस्ताक्षर कर दिये तो अफसर कैसा? एक गड्ढा भी खुदवाना हो तो कई अफसरों के हस्ताक्षरों की आवश्यकता रहती है। समय के साथ अफसरों की संख्या में वृद्धि होती जा रही है, लेकिन विकास का कहीं कुछ पता नहीं। अफसरों का काम विकास करना है भी नहीं, अफसरों का काम कुर्सी की शोभा बढ़ाना और पद लाभ प्राप्त करना है।

विशेष– सरकारी तंत्र पर बहुत चुटीला व्यंग्य किया है। अफसरों का काम है कि बिना कोई काम किए अपने पद पर स्वयं को विराजमान रखे रखना।

वाक्य बहुत छोटे–छोटे, किन्तु बड़े प्रभावी है, बिहारी के दोहों की भाँति। भाषा शैली बहुत सरल–सुबोध और बड़ी जीवन्त है 'नये अफसर कुर्सी पर यों शोभा देंगे जैसे गमले में पौधा' में उपमा अलंकार की छटां देखने को मिलती है।

• एक प्लेट से चमचा कूदकर ..... गाड़ी चलती है।

टिप्पणी

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– एक ही समय में एक अफसर की विदाई और दूसरे के स्वागत का दृश्य बड़ा रोचक होता है। विदाई का भाषण देने वाले के सामने धर्मसंकट रहता है कि वह क्या बोले? वास्तविक भाव ही प्रकट करने हों तो कोई दिक्कत न हो। लेकिन जब हृदय में कुछ और हो और शब्दों से कुछ अलग भाव प्रकट करने हो तो मिश्रित अभिव्यक्ति के लिए शब्द नहीं सूझते। जाता हुआ अफसर भी शक्तिहीन हो जाने के कारण कहे गए शब्दों से ही सन्तोष कर लेता है।

व्याख्या– एक की विदाई और दूसरे का स्वागत बड़ा अजीब होता है। चाटुकार लोग अब जाते हुए अफसर को छोड़कर आने वाले अफसर की जीहजूरी में लग जाते हैं। यह दृश्य देखकर ऐसा ही लगता है कि जैसे एक प्लेट से चमचा कूदकर दूसरी प्लेट में आ गया। वे नये अफसर की चमचागिरी में व्यस्त होकर अपनी निष्ठा दर्शाने का प्रयास करते हैं। नया अफसर कार्यालय में कुर्सी–मेज को इधर–उधर कराकर अपने नयेपन की धाक जमाना चाहता है। नियमितता पर जोर दिया जाने लगता है। शुरू–शुरू में लोग नये अफसर के डर के मारे दफ्तर में समय पर आने लगते हैं। नया अफसर इस दफ्तर की कार्यप्रणाली को समझने के लिए बार–बार अमुक अमुक फाइल मंगवाता रहता है। ऐसे में बड़े बाबू की परेड हो जाती है। वह बार–बार फाइल लाता ले जाता है। अफसर को सब कुछ समझाता है। अब तक कुर्सी पर बैठकर ऊँघने वाला चपरासी अब भागा–दौड़ी करता नजर आता है। कहाँ पहले समय से पहले खिसक लेने वाला चपरासी और कहाँ अब ओवरटाइम करने वाला चपरासी। नया अफसर शुरू–शुरू में अनुशासन और नियमितता का दम भरता है और बिगड़ी व्यवस्था को ठीक करने का दम भरता है पर यह सारी कवायद एक दो महीने ही रहती है। बाद में धीरे–धीरे सब कुछ पुराने ढर्रे पर चलने लगता है। फिर वही लेटलतीफी। देर से आना, जल्दी चले जाना और काम में कोताही बरतना। लेकिन अब अफसर कुछ नहीं कहता क्योंकि अब बड़े बाबू और अफसर में कुछ सांठ–गांठ हो जाती है। बड़ा बाबू कुछ ऐसी घुट्टी पिला देता है कि अब अफसर बिगड़ी व्यवस्था को सुधारने की बात दरकिनार कर अपनी स्वार्थसिद्धि में तल्लीन हो जाता है। वह भी व्यवस्था को उसी के हाल पर छोड़कर अपने निहित स्वार्थ पूरे करने में तल्लीन हो जाता है। दफ्तर की व्यवस्था बिगड़ी गाड़ी की तरह हो जाती है। वह धीरे–धीरे ही चलती है।

विशेष

(i) नये अफसर के आने पर कार्यालयों में बदलती व्यवस्था, थोड़े समय की उलटफेर और फिर पुराने ढर्रे पर चलती गाड़ी का रोचक वर्णन है। यह वर्णन वास्तविकता के बहुत नजदीक है।

(ii) भाषा सरल सुबोध और मिश्रित है। प्रसंगानुकूल अंग्रेजी शब्दों का भी प्रयोग यथा– 'ओवरटाइम, पंक्चुअलटी' आदि। उर्दू के शब्द भी हैं– दुरुस्त, ढर्रा, चुस्ती आदि। वाक्य बहुत छोटे छोटे हैं– नया अफसर यानी सब कुछ नया। पंक्चुअलटी पर विशेष जोर बाद में वही ढर्रा। ये छोटे–छोटे वाक्य ही नाविक के तीर की तरह हैं– 'देखन में छोटे लगे घाव करे गम्भीर।' 'भाड़ में जाना'

मुहावरे के प्रयोग से भाषा बड़ी जीवन्त हो गई है। भाषा शैली की सजीवता से ही सारा वर्णन जीवन्त और मनोविनोद से परिपूर्ण हो उठता है।

- अफसर डाँटता है ..... सर्वव्यापी है।

टिप्पणी

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– अफसर के साथ नौका–विहार करने से अच्छा है डूब मरना क्योंकि नौका में सुराख हो जाने अथवा हिचकोले लेने पर वह स्पष्टीकरण माँग सकता है। इसलिए लोक व्यवहार में प्रचलित है कि अफसर के आगे और घोड़े के पीछे नहीं आना चाहिए। किनारा काटकर बगल में रहना ही सुरक्षित है।

व्याख्या– अफसर की मूल प्रवृत्ति 'डाँटना' बन जाती है। कोई काम सही ढंग से चल रहा हो, तो इसका पूरा श्रेय वह अपने योग्य शासन को देता है और व्यवस्था में गड़बड़ी होने पर वह अपने मातहतों में से एक–एक को बुलाकर अलग–अलग डाँटता है। यहाँ अफसर और नेता में अन्तर है। नेता जनता के बीच बड़े से समूह में भाषण देता है। वह जनता को सामूहिक रूप से डाँट सकता है। अफसर व्यक्तिगत रूप से और नेता सामूहिक रूप से डाँट सकता है। अफसर को पूर्ण विश्वास होता है कि उसकी डाँट के बिना व्यवस्था चाक–चौबंद नहीं हो सकती अतः डाँटना उसका धर्म भी है और अधिकार भी। मातहतों की विवशता है कि अफसर से डँटकर भी वे उससे सटकर काम करते हैं। इसी में कर्मचारी अपनी भलाई समझते हैं क्योंकि अफसर कभी भी उनकी खाट खड़ी कर सकता है। अफसर के व्यवहार और मन में बहुत अन्तर होता है। दिल और जुबां पर भी, अलग–अलग बात होती है। जरा सा मूड़ खराब होते ही वह अपने किसी स्टॉफ मैम्बर के प्रति नकारात्मक कार्यवाही कर सकता है। कुर्सी बनी रहती है। अफसर बदलते रहते हैं। कब और किसके विरुद्ध कार्यवाही कर दे, कुछ कहा नहीं जा सकता। उसके पास पावर होती है, जिसका वह कभी भी दुरुपयोग कर सकता है। अतः उससे दूरी बनाकर रखने में ही समझदारी है। अफसर नं. 1 अधिकारी होता है, गजटेड ऑफिसर। स्टाफ गजट में नहीं आता। वह केवल फाइलों में रहता है। उनके नाम की फाइल रहती है उसकी फाइल में अफसर कोई भी और कैसी भी टिप्पणी लिख सकता है। अफसर अपने स्टाफ को प्रतिकूल प्रविष्टि का डर दिखाकर वह उन्हें अपने नियन्त्रण में रखता है। स्टाफ फाइल में फीते से बँधा रहता है। धीरे–धीरे यह फीतारूपी नियंत्रण आत्मा तक में व्याप्त हो जाता है। अफसर अपने लिए कोई नियम नहीं लगाता। वह दफ्तर में आए न आए, हमेशा ऑन ड्यूटी रहता है अर्थात् निजी काम से अन्यत्र रहने पर भी वह स्वयं को ऑन ड्यूटी दिखाता रहता है।

विशेष

1. अफसरी मनोवृत्ति पर बहुत चुटीले व्यंग्य किए गए हैं।
2. भाषा–शैली के सौन्दर्य का तो कहना ही क्या? प्रसंगानुरूप अंग्रेजी के गजटेड, ऑन ड्यूटी शब्दों का प्रयोग है तो 'खाट खड़ी होना' जैसे देशी मुहावरों का भी। वाक्य छोटे–छोटे और बड़े सधे हुए हैं। भाषा–शैली के सटीक प्रयोग से ही व्यंग्य उभरकर आता है। भाषा शैली पाठक के मन पर अद्‌भुत प्रभाव छोड़ने में सक्षम है।

4.2.4 'अफसर' निबन्ध का समीक्षात्मक अध्ययन

टिप्पणी

हिन्दी निबन्ध आधुनिक युग की अवधारणा है। प्राचीन काल में काव्य ही सब प्रकार के कलाशास्त्रों की अभिव्यक्ति का माध्यम था। निबन्ध आधुनिक हिन्दी साहित्य की श्रेष्ठ विधा है। गद्य यदि कवियों की कसौटी है तो निबन्ध गद्य की। निबन्ध व्यक्ति की मानसिक चेतना और भावात्मक अनुभूति का लिखित रूप है। लेखक और पाठक के बीच निबन्ध सबसे छोटा, सरल और सीधा राजपथ है। निबन्ध में लेखक की निजी अनुभूतियाँ, विचार और भावनाएँ रहती हैं। निबन्ध के द्वारा ही लेखक अपने पाठक के सामने यथार्थ रूप में बैठता है। निबन्ध में गद्य के सम्पूर्ण बल, तीव्रतम प्रवाह और अर्थ–विस्तार की परख होती है। निबन्ध किसी भी साहित्य के गद्य–विकास का मापदंड है। आधुनिक युग में गद्य की अनेक विधाओं का विकास हुआ– रिपोर्ताज, रेखाचित्र, संस्मरण, यात्रा–साहित्य, हास्य व्यंग्य आदि।

'अफसर हास्य–व्यंग्य की रचना है। हास्य–व्यंग्य का क्षेत्र बड़ा व्यापक है। सामाजिक और राजनीतिक जीवन की प्रत्येक विसंगति को अपने व्यंग्य एवं हास्य का लक्ष्य बनाना लेखक का उद्देश्य रहता है। इस विधा में जीवन में व्याप्त भ्रष्टाचार, आडम्बर, अवसरवादिता आदि विसंगतियों को विनोदपूर्ण शैली में परिहास करते हुए व्यंग्य के रूप में अभिव्यक्त करना होता है। व्यंग्य का उद्देश्य विसंगति को अभिव्यक्ति प्रदान करना होता है। व्यंग्य चेतना को झकझोर देता है, विद्रूप को सामने लाकर खड़ा कर देता है। आत्म–साक्षात्कार करता है, सोचने को बाध्य करता है और परिवर्तन की ओर प्रेरित करता है। व्यंग्यकार व्यापक जीवन–परिवेश में अनेक झरोखों में झाँकता है। उसकी विसंगतियों की तह में जाता है, उसके कारणों की खोज करता है, विश्लेषण करता है तथा उन्हें सही परिप्रेक्ष्य में देखता है। इसी से सही व्यंग्य बनता है। उल्लेखनीय बात यह है कि हास्य–व्यंग्य के पीछे लेखक का कोई दुष्प्रयोजन नहीं होना चाहिए। हिन्दी के लब्धप्रतिष्ठ व्यंग्यकार श्री हरिशंकर परसाई के शब्दों में– ''व्यंग्य एक ऐसी अभिव्यक्ति है जिसमें व्यक्ति तथा समाज की दुर्बलताओं, बुराइयों को कहने और करने की समीक्षा टेढ़े रूप में कभी–कभी पूर्णतः सीधे शब्दों में करते हैं। यह गंभीर न होते हुए भी गंभीर होता है, निर्मम होते हुए भी दयावान होता है अतिश्योक्तिपूर्ण और अतिरंजित होते हुए भी सत्य होता है।''

व्यंग्य निबन्ध 'अफसर' की समीक्षा हम निम्न आधारों पर कर सकते हैं–

वर्ण्यविषय : कार्यालय संस्कृति– इस समूचे व्यंग्य निबन्ध में कार्यालय संस्कृति को रोचक ढंग से उजागर किया गया है। कार्यालय में अफसर आते–जाते रहते हैं। अफसर के दस्तखत के बिना एक गड्ढा भी नहीं खुद सकता और दस्तखत सरलता से होते नहीं हैं। नये अफसर के आने पर ऊपरी व्यवस्था बदल जाती है, अफसर की नई कुर्सी आती है, पुरानी फेंक दी जाती है और अफसरी पूर्ववत् बनी रहती है– 'वर्षों हो गए। कितने अफसर आए और चले गए। कितनी कुर्सियाँ उनके वजन से चरमराकर टूटी और फेंक दी गई, पर वजन वही रहा। फाइलें उसी तरह बनतीं और विकसित होती रहीं। नये अफसर के आने पर थोड़े दिन के लिए ऊपर से बहुत कुछ बदलता है, लेकिन धीरे–धीरे सब कुछ पूर्ववत् हो जाता है– ''नया अफसर यानी सबकुछ नया। यहाँ की टेबल वहाँ और वहाँ की टेबल यहाँ। नए अफसर को क्रोटन पसन्द तो पुराने अफसर के कैक्टस जाएँ भाड़ में। पंक्चुअलटी' पर विशेष जोर। साढ़े दस यानी साढ़े

टिप्पणी

दस। बड़े बाबू की परेड और और चपरासी का ओवरटाइम। नया अफसर आया है तो बिगड़ी दुरस्त होगी पर यह सारी चुस्ती शुरू के दो माह। बाद में वही ढर्रा। तब तक बड़े बाबू और अफसर में सूत्र जुड़ जाते हैं और दुरुस्त गाड़ी फिर उसी चाल से चलने लगती है जैसे बिगड़ी गाड़ी चलती है।'' दफ्तरों में अफसर और हैडक्लर्क की मिलीभगत से बहुत से भ्रष्टाचार होते हैं'' ''चार पैसे की मटकी ठोक–बजाकर ली जाती है। पर मटकी ठोकने बजाने के सरकारी तरीके अलग ही हैं जिन्हें अफसर जानता है।''

अफसरी मनोवृत्ति का रोचक चित्रण– प्रस्तुत व्यंग्यात्मक निबन्ध 'अफसर' पर केन्द्रित है। व्यंग्य होने के कारण सारा चित्रण रोचक भाषा शैली में हुआ है। अफसर ऑनड्यूटी सर्वव्यापी है, रेडीमेड मसीहा है, फुर्तीला कछुआ है। वह फाइल, मीटिंग, दौरा, रिपोर्ट, डीओ, रिमाइण्डर, मेमो, आर्डर की दुनिया में बंधा वह सहानुभूति का पात्र है। वह ओखली में सिर रख मूसलों को अनुशासन में रखना चाहता है। वह हर समय सुबह–शाम, घर–बाहर, कार्यालय, कार्यालय के बाहर सब जगह अफसर बना रहता है। अहंकार के वशीभूत वह स्वयं को दुनिया का अकेला व एकमात्र अफसर समझता है। वह जीवन को जीता नहीं, जीवन को 'डील' करता है और वह भी एक निश्चित तरीके से।' अगर वह चांदनी रात में अपने किसी स्टाफ मैम्बर के साथ नौका–विहार करने निकले, तो भी उस रूमानी सैर का रसास्वादन करने के बदले फाइलों की बात छेड़ सकता है। नाव में सुराख होने अथवा हिचकोले लेने पर वह अपनी छिद्रान्वेषण की मनोवृत्ति के कारण स्पष्टीकरण माँग सकता है लेकिन नाव के ठीक ठाक चलने पर वह सारा श्रेय अपने स्टाफ मैम्बर्स को देने के स्थान पर स्वयं ले लेता है– 'जब नाव हिचकोले ले तो इधर–उधर डोलेगी, वह आपको जलती आँखों से घूरेगा और डांट लगायेगा और जब वह धीरे–धीरे सधी हुई लहरों पर बहती चली जाएगी तब? तब वह आपका आभारी नहीं होगा। वह अपने को सफल अफसर मानेगा जिसके योग्य प्रशासन में नाव ठीक चल रही है।'' स्टाफ मैम्बर्स को अफसर के साथ बैठे रहना बोरिंग लगता है लेकिन वे शिष्टाचार और स्वार्थ में नजदीकी बनाए रखते हैं। अफसर घर में भी अपनी अफसरी नहीं छोड़ पाता और रिटायरमेण्ट के बाद तो उसका अफसरत्व घर के लोगों को परेशान करने लगता है। वह पत्नी को जीवन–संगिनी के रूप में न देखकर चिरपैंडिंग साक्षात् फाइल के रूप में देखने लगता है और अपना बच्चा उसे केस लगता है जो हमेशा अनुशासन भंग करता है। अन्य लोगों पर वे अपनी अफसरी का रौब झाड़ना नहीं भूलते– ''पत्नी एक न सुलझने वाली चिरपैंडिंग साक्षात् फाइल की तरह नजर आती है और हर बच्चा अपने आपमें एक केस लगता है जो हमेशा अनुशासन भंग करता है, पर जिसे न सस्पैंड किया जा सकता है और न उसका प्रमोशन रोका जा सकता है। वे घर को एक दफ्तर की तरह चलाते हैं और जिस तरह दफ्तर वे कभी ठीक नहीं चला पाए, उसी तरह घर भी नहीं चला पाते। जब तक चार सब्जी वालों से मौखिक टेण्डर न ले लें, वे कद्दू नहीं खरीदते।''

विसंगतियों पर कटाक्ष– व्यंग्य निबन्ध का वास्तविक उद्देश्य मनोहारी ढंग से विनोदपूर्ण शैली में समाज के किसी भी हिस्से में व्याप्त विसंगतियों पर कटाक्ष करना ही होता है तो कहीं व्यवस्था पर। 'देश का विकास होगा, यानी अफसरों का विकास होगा।' एक गड्ढा भी बिना दस्तखत के नहीं खुद सकता, सो ज्यादा से ज्यादा अफसर चाहिए और वे आएँगे। विकास हो न हो, अफसर आएँगे। कार्यालयों व संस्थानों में

टिप्पणी

व्याप्त चाटुकारिता पर किया गया कटाक्ष कितना सटीक बन पड़ा है। जाते हुए अफसर की विदाई पर कोई भावपूर्ण व्याख्यान नहीं देना चाहता। बस औपचारिकता ही पूरी की जाती है। चाटुकार लोग अब उससे किनारा करके आने वाले अफसर की चाटुकारिता में लग जाते हैं– ''विदाई का भाषण देने वाले के सामने धरम–संकट रहता है। नए अफसर को मक्खन लगाने और जाते हुए के लिए शाब्दिक अफसोस प्रकट करने की मिश्रित अभिव्यक्ति के लिए उसे शब्द नहीं सूझते। कुछ शब्द हैं जो कह दिये जाते हैं और जाता हुआ अफसर सन्तोष कर लेता है। एक प्लेट से चमचा कूदकर दूसरी प्लेट में आ जाता है।''

देश और संस्थानों में व्याप्त भ्रष्टाचार पर भी शरद जोशी ने अपनी पैनी निगाह डाली है। ''कार्यालयों में नया आने वाला अफसर शुरू शुरू में परिवर्तन और अनुशासन की दुहाई देता है, लेकिन कुछ समय बाद ही जब बड़े बाबू और अफसर में सांठ–गांठ हो जाती है तो सब कुछ पुराने ढर्रे पर आ जाता है'' पर यह सारी चुस्ती शुरू के दो माह। बाद में वही ढर्रा। तब तक बड़े बाबू और अफसर में सूत्र जुड़ जाते हैं और दुरुस्त गाड़ी फिर उसी चाल में चलने लगती है जैसे बिगड़ी गाड़ी चलती है।''

अफसर के साथ–साथ लेखक देश की बिगड़ी चाल पर कटाक्ष करना नहीं भूलता। अफसर भी सरकारी तंत्र का एक हिस्सा है। वह सरकारी रंग–ढंग में ही काम करता है– ''एक गड्ढा भी बिना दस्तखत के नहीं खुद सकता, सो ज्यादा से ज्यादा अफसर चाहिए और वे आएँगे। विकास हो न हो, अफसर आएँगे।.....अफसर के शरीर की कोई रग सरकार के सूत्रों से अलग काम नहीं करती। फाइल, मीटिंग, दौरा, रिपोर्ट, डीओ, रिमाइण्डर, मेमो, आर्डर की दुनिया में बंधा वह सहानुभूति का पात्र है। सब कुछ 'रूटीन' है। .... (अफसर) प्रशासन के ब्रह्म में कार्य–कारण सम्बन्ध पहचानता है।'... अफसर डाँटता है, नेता सारे देश को एक साथ डाँटता है और अफसर हर व्यक्ति को अलग–अलग बुलाकर डाँटता है। हम डँटते हैं। हम डँटे हुए लोग हैं, जो डाँटने वालों के अधीन सटे हुए काम करते हैं... वह गजटेड है यानी गजट में है और हम गजट के बाहर हैं।''

हास्य और विनोद का पुट– हास्य व्यंग्य का एक अभिन्न अंग है। प्रारम्भ में व्यंग्य को हास्य का ही एक भेद माना गया था। उस समय आलोचकों का मत था कि हास्य और व्यंग्य दोनों एक ही विधा हैं। इस मत पर काफी बहस के बाद हास्य और व्यंग्य को अलग–अलग विधा के रूप में स्वीकार किया गया। हास्य और व्यंग्य में भेद करने वाली रेखाएँ इतनी सूक्ष्म हैं कि हास्य और व्यंग्य में अन्तर की समस्या का समाधान ही नहीं हो पाया। हास्य का लक्ष्य मात्र हँसना है, जबकि व्यंग्य दुर्बलताओं और दोषों का उद्घाटन कर उन पर प्रहार करता है। व्यंग्य का कोई न कोई उद्देश्य होता है। फिर इतना तो सच ही है कि व्यंग्य निबन्ध में हास्य का पुट अवश्य आ जाता है। 'अफसर' व्यंग्य निबन्ध में भी सर्वत्र हास्य विनोद का पुट विद्यमान है। इससे रचना में रोचकता की अभिवृद्धि हुई है। एक उदाहरण देखिए– 'मन करता है, नाव से कूद पड़े, क्योंकि दुनिया की जिन झंझटों से मुक्ति पाने के लिए आप नाव में बैठे थे, वे इस काव्यमय वातावरण में भी ज्यों की त्यों हैं। गलती वास्तव में आपकी है। आप नाव में अफसर के साथ बैठे ही क्यों?..... अफसर इतना सहज बोर है कि बेचारा नहीं जानता कि बोर है और वह यह भी नहीं जानता कि नाव में बैठा है, जब तक कि आप उसे 'मेमो' न

थमा दें कि 'सर, यह चांदनी रात है और जो यह ठण्डी हवा चल रही है, भगवान के बजट में इसका प्रावधान है और हुजूर श्रीमान् हेड ऑफिस से आर्डर हुए हैं कि आप पूनम की रात नाव पर बैठकर सैर को जाएँ।'

टिप्पणी

इसी तरह व्यंग्यकार शरद जोशी अफसर की विदाई के दृश्य में हास्य–विनोद का पुट डालकर उसे बड़ा रुचिकर बना देते हैं और सच तो यह है कि ये दृश्य बड़े स्वाभाविक और यथार्थपरक हैं– ''कभी अफसर को जाते हुए देखिए। तबादले का दृश्य बड़ा रोचक होता है। कहा जाता है कि इस मौके पर हम क्या कहें। एक तरफ हमें बड़ा अफसोस है कि वर्मा साहब आज हमारे बीच से जा रहे हैं और दूसरी तरफ हमें खुशी भी है कि शर्मा साहब हमारे बीच आ रहे हैं।'' विशेष बात यह है कि इस हास्य व्यंग्य के पीछे लेखक का कोई दुराग्रह या दुष्प्रयोजन नहीं है, इसे विसंगति के परिशोधन का दृष्टिकोण ही कहा जा सकता है। इस दृष्टि से भी विवेच्य निबन्ध कसौटी पर खरा उतरता है। डा. हजारी प्रसाद द्विवेदी का व्यंग्य विधा पर कहा गया यह कथन 'अफसर' व्यंग्य पर शतप्रतिशत सत्य सिद्ध होता है, ''व्यंग्य वह है, जहाँ कहने वाला अधरोष्ठ में हँस रहा हो और सुनने वाला तिलमिला उठा हो और फिर भी कहने वाले को जवाब देना अपने को और भी उपहासास्पद बना लेना हो जाता हो।''

यथार्थपरक अंकन– डॉ. हरिशंकर परसाई ने व्यंग्य के विषय में ठीक ही लिखा है कि व्यंग्य अतिशयोक्तिपूर्ण और अतिरंजित होते हुए भी सत्य होता है। यदि व्यंग्य निबन्ध में परिवेश, चरित्रांकन, कटाक्ष, विद्रूपताओं का वर्णन यथार्थ पर कल्पित व अतिरंजित मात्र होगा, तो वह अपना उद्देश्य खो बैठेगा। वह पाठकों को कदापि गुदगुदा नहीं सकता है। आनन्द तो तभी आता है जबकि विद्रूपताओं और मानवीय दुर्बलताओं का अंकन यथार्थ पर आधारित हो। तभी सृजन की सार्थकता है।

'अफसर' निबन्ध में अफसर की मनोवृत्ति, विदाई के दृश्य नये अफसर की मनोवृत्ति आदि के दृश्य बड़े सहज स्वाभाविक बन पड़े हैं। अफसर की मनोवृत्ति वास्तव में अच्छे का क्रेडिट स्वयं लेने और दोषों का बोझ अपने स्टाफ पर डालने की होती है। यह भी अनुभव सिद्ध सत्य है कि अफसर की कुर्सी पर बैठते ही नवनियुक्त पदाधिकारी में अहममण्यता आ जाती है, जिसके कारण दूसरों के कामों में कमी निकालना, सामने पड़ जाने वाले व्यक्ति को कटघरे में खड़ा करना, छल–बल से शोषण करना उसकी आदत बन जाती है। उसमें मानवीयता और निष्पक्षता का स्थान अवसरवादिता ले लेती है। इसीलिए उससे दोस्ती करना बहुत घातक सिद्ध होता है। लोकप्रसिद्ध कथन को भी लेखक ने सत्य मानते हुए लिखा है– 'अफसर से दोस्ती नहीं की जा सकती। उससे रिश्ता किया जा सकता है क्योंकि रिश्ते में नियम होते हैं, दोस्ती में नियम नहीं होते। अफसर के साथ नहीं चल सकते, उसके पीछे चलना होता है। कहावत है, अफसर के सामने और घोड़े के पीछे नहीं आना चाहिए। पुराने जमाने में जब अफसर घोड़े पर बैठकर दौरा करते थे, तब पता नहीं लोग क्या करते होंगे क्योंकि तब आगे रहें या पीछे, हालत बिगड़ने का अन्देशा हरदम बना रहता है। तब किनारा काटकर बगल में रहना ही एक नीति रही होगी।''

भाषा शैलीगत वैशिष्ट्य– किसी भी व्यंग्य रचना में भाषा–शैली का विशेष महत्व होता है क्योंकि व्यंग्य बात में नहीं अपितु बात को कहने के ढंग में होता है। भाषा–शैली को बदल देने पर रचना का सारा सौन्दर्य ही क्षीण हो जाता है। विवेच्य व्यंग्य निबन्ध

टिप्पणी

'अफसर' की इस दृष्टि से जितनी तारीफ की जाए, कम है। भाषा बड़ी सरल, सुबोध किन्तु सजीव व प्रभावशाली है। लेकिन कहीं भी तत्सम प्रधान बोझिल शब्दावली का प्रयोग नहीं किया गया। प्रयुक्त शब्दावली सर्वत्र अनायास है, सायास कहीं भी नहीं। आवश्यकतानुसार लेखक ने कार्यालयी संस्कृति में बहुतायत से प्रयोग होने वाले अंग्रेजी शब्दों– बोर, कैबिनेट, बजट, आर्डर, हेड ऑफिस, फाइल, सस्पेंड, प्रमोशन, टेंडर, रिटायर, सेक्शन, मीटिंग, रिपोर्ट, ओवरटाइम, कायम, रिमाइण्डर, मेमो, आर्डर, रूटीन पंक्चुअलटी, ओवरटाइम, डील आदि का प्रयोग किया है। कुछ उर्दू–फारसी के शब्द भी आ गए हैं– यथा अन्देशा, मर्तबान, दस्तखत, अफसोस, बशर्ते आदि। मुहावरों व लोकोक्तियों के प्रयोग ने भाषा–शैली को एक अलग ही आकर्षण प्रदान किया है।

1. चार पैसे की मटकी ठोंक–बजाकर ली जाती है।
2. वह ओखरी में सिर रख मूसलों को अनुशासन में रखता है।
3. वह हाथ को बिना आरसी के नहीं देखता और सत्य के प्रमाण माँगता है।
4. अफसर के सामने और घोड़े के पीछे नहीं आना चाहिए।
5. लोग सोचते हैं कि अफसर किस मिट्टी का बना है।

लेखक ने इस निबन्ध में प्रसंगानुरूप विविध शैलियों का प्रयोग किया है– काव्यात्मक शैली, वर्णनात्मक शैली, विनोदपूर्ण शैली

1. **काव्यात्मक शैली**– 'चाँदनी रात है। हवा है। लहर है। चारों तरफ वही अमृत बिखरा है जिसमें रोमांस पनपता है और कविताएँ लिखी जाती हैं।
2. **वर्णनात्मक शैली**– ''पेड़ उगते हैं और उनसे टेबल–कुर्सी बनती है। कागज का कारखाना चलता है और फाइलें तैयार होती रहती हैं। पता नहीं जब भोजपत्र पर लिखा जाता था तब फाइलें कैसी होती होंगी। अब उसका सवाल नहीं क्योंकि कागज की कमी नहीं और अफसरों की कमी नहीं?
3. **हास्य विनोदपूर्ण शैली**– ''हो सकता है इस संगीतमय वातावरण में वह किसी फाइल का किस्सा छेड़ दे। उस फाइल का जो इस समय मुख्य सचिव के पास है जिसमें मूल टीप अफसर की है और जो कैबिनेट के सामने जाने वाली है।
4. **प्रतीकात्मक शैली**– हर नया अफसर अपने में गमक लिए रहता है। जब आता है चमन में बहार बनकर आता है और जब जाता है मर्तबान का अचार बनकर जाता है।
5. **बिम्बात्मक शैली**– और दुरुस्त गाड़ी फिर उसी चाल से चलने लगती है जैसे बिगड़ी गाड़ी चलती है।
6. **मुहावरेदार शैली**– ''कुर्सी बनी रहेगी पर कब खाट खड़ी हो जाएगी कह नहीं सकते।''
7. **व्यंजक शैली**– वह गजटेड है यानी गजट में है और हम गजट के बाहर हैं, फिर भी फाइल में हैं और फीते से बँधे हैं। फीता हमारी आत्मा पर लिपटा है और लपेटने वाला है अफसर। अफसर सब जगह है। वह 'ऑन ड्यूटी' सर्वव्यापी है।

टिप्पणी

आकार की दृष्टि से व्यंग्य निबन्ध संक्षिप्त है। संक्षिप्त होना उसकी प्रभावशीलता को बढ़ाता है। जिस प्रकार गीत लघु आकार में ही प्रभावी होता है, उसी प्रकार व्यंग्य रचना की संक्षिप्तता उसकी रोचकता को बनाये रखती है। मनोरंजक ढंग से विसंगतियों पर प्रकाश डालना तो लेखक का उद्देश्य है। निबन्ध के अन्त में भी वह एक प्रयोजन को शब्दोचित कर देता है, ''अफसर अगर इस किनारे जा रहा है तो आप उस किनारे जाइए। इसी में आपकी खैर है।'' कुल मिलाकर यह एक उत्कृष्ट व्यंग्य रचना है।

अपनी प्रगति जाँचिए

1. निम्न में से कौन–से टी.वी. धारावाहिक की पटकथा शरद जोशी ने नहीं लिखी है?

   (क) वाह जनाब (ख) गुलदस्ता

   (ग) श्रीमती जी (घ) हम लोग

2. लेखक ने किसे 'रेडीमेड मसीहा' कहा है?

   (क) अफसर को (ख) चपरासी को

   (ग) बड़े बाबू को (घ) मंत्री जी को

4.3 हमारी सांस्कृतिक एकता : भारत एक है (निबन्ध) : रामधारी सिंह दिनकर (एक भारत श्रेष्ठ भारत के अंतर्गत)

रामधारी सिंह दिनकर का जन्म 23 सितम्बर, सन् 1908 ई. को बिहार राज्य के मुंगेर जिले के सिमरिया नामक ग्राम में एक साधारण परिवार में हुआ था। इनके पिता का नाम श्री रविसिंह और माता का नाम श्रीमती मनरूपा देवी था। उन्होंने इतिहास, दर्शनशास्त्र और राजनीति विज्ञान की पढ़ाई पटना विश्वविद्यालय से की। साहित्य के रूप में इन्होंने संस्कृत, बांग्ला, अंग्रेजी और उर्दू का गहन अध्ययन किया था। 1928 में मैट्रिक तथा 1932 में बी.ए. की परीक्षा उत्तीर्ण करने के पश्चात् उन्होंने कुछ समय के लिए उच्च माध्यमिक विद्यालय में प्रधानाध्यापक का कार्य सँभाला। इसके बाद उन्होंने सन् 1934 में सरकारी विभाग के सब रजिस्ट्रार की नौकरी की। सन् 1950 में इन्हें मुजफ्फरपुर के स्नातकोत्तर महाविद्यालय में हिन्दी विभाग का अध्यक्ष नियुक्त किया गया। कुछ समय तक दिनकर जी भागलपुर विश्वविद्यालय के कुलपति भी रहे। इसके पश्चात् भारत सरकार के गृह–विभाग में हिन्दी सलाहकार के रूप में दीर्घकाल तक कार्य किया और इसके साथ ही हिन्दी के संवर्धन और प्रचार–प्रसार में लगे रहे। इनकी मृत्यु 24 अप्रैल 1974 को चेन्नई में हुई।

रामधारी सिंह दिनकर को राष्ट्रीय भावनाओं से ओत–प्रोत, क्रान्तिकारी संघर्ष की प्रेरणा देने वाली ओजस्वी कविताओं के कारण असीम लोकप्रियता मिली। उन्हें 'राष्ट्र कवि' के रूप में विभूषित किया गया। दिनकर जी एक ओजस्वी राष्ट्रभक्ति से ओत–प्रोत कवि के रूप में जाने जाते हैं। वे छायावादोत्तर हिन्दी काव्यधारा के प्रमुख कवि, आलोचक, विचारक, निबन्धकार के रूप में हिन्दी जगत में विशिष्ट स्थान के

अधिकारी हैं। हिन्दी साहित्य के सूर्य 'दिनकर' जी छायावादोत्तर कवियों की पहली पीढ़ी के कवि हैं। एक ओर इनकी कविताओं में ओज, विद्रोह, आक्रोश व क्रान्ति की पुकार है तो दूसरी ओर शृंगारिक सौन्दर्य की अभिव्यक्ति।

टिप्पणी

दिनकर जी ने शुरू में भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम के दौरान क्रान्तिकारी आन्दोलन का समर्थन किया लेकिन बाद में वे गांधीवादी बन गए। हालाँकि वे अपने आपको 'बुरा गांधीवादी' कहते थे क्योंकि उन्होंने युवाओं के बीच आक्रोश और बदला लेने की भावनाओं का समर्थन किया। 'कुरुक्षेत्र' में उन्होंने स्वीकार किया कि युद्ध विनाशकारी था। लेकिन स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए आवश्यक था। आपातकाल के दौरान जयप्रकाश नारायण ने रामलीला मैदान में एक लाख लोगों की सभा में रामधारी सिंह दिनकर की कविता को शानदार ढंग से पढ़कर जनता का मन मोहा था। कविता का शीर्षक था 'सिंहासन खाली करो कि जनता आती है।'

दिनकर इकबाल, रवीन्द्रनाथ टैगोर, कीट्स और मिल्टन से काफी प्रभावित थे। उन्होंने रवीन्द्रनाथ टैगोर की कविताओं का बंगाली से हिन्दी में अनुवाद भी किया था। दिनकर को उनकी देशभक्तिपूर्ण रचनाओं के कारण राष्ट्र कवि के रूप में सम्मानित किया गया। कुंती कुरुक्षेत्र उन्होंने उस समय लिखा, जब द्वितीय विश्व युद्ध की यादें कवि के मन में ताजा थीं। इसमें उन्होंने महाभारत के शान्ति पर्व के मूल कथानक का ढांचा लेकर युद्ध और शान्ति के गम्भीर विषय पर अपने विचार भीष्म और युधिष्ठिर के संलाप के माध्यम से प्रस्तुत किए हैं। यह एक विचारात्मक काव्य है।

दिनकर का ज्यादातर काव्य वीररस में है। उर्वशी एक अपवाद है। भूषण के बाद उन्हें 'वीररस' का सबसे बड़ा हिन्दी कवि माना गया है। हिन्दी लेखक राजेन्द्र यादव जिनके उपन्यास 'सारा आकाश' में भी दिनकर की कुछ काव्य–पंक्तियाँ थी, ने कहा था कि वे हमेशा पढ़ने के लिए प्रेरक थे। उन्होंने हमेशा वीरता और विद्रोह व क्रान्ति का बिगुल बजाया– 'क्षमा शोभती उस भुजंग को, जिसके पास गरल हो।' उनकी देशभक्तिपरक कविताएँ उस समय जनसाधारण और नेताओं के भाषणों में उद्धृत की जाती थी–

कलम, आज उनकी जय बोल
जला अस्थियाँ बारी बारी
छिटकायी जिनने चिंगारी
जो मिट गए इस पुण्य धरा पर
लिए बिना गर्दन का मोल

एक प्रगतिवादी कवि के रूप में दिनकर साम्राज्य विरोधी राष्ट्रवादी कवि थे। उन्होंने सामाजिक, आर्थिक असमानताओं तथा वंचितों के शोषण के विरुद्ध लिखा। 'श्वानों को मिलता दूध वस्त्र भूखे बालक अकुलाते हैं, कविता खूब चर्चित हुई 'हिमालय' शीर्षक कविता में उन्होंने गांधीवादी अहिंसा की आलोचना की है–

रे रोक युधिष्ठिर को न यहाँ
जाने दे उनको स्वर्ग धीर
पर फिरा हमें गांडीव गदा
लौटा दे अर्जुन भीम वीर

टिप्पणी

दिनकर की कुछ प्रमुख रचनाएँ इस प्रकार हैं– प्रणभंग (1929), रेणुकार (1935), हुंकार (1936), कक्षवंत्री (1939), द्वन्द्वगीत (1940), कुरुक्षेत्र (1946), धूप–छांव (1946) सामधेनी (1947), बापू (1947), इतिहास के आँसू (1951), धूप और धुन (1951) रश्मिरथी (1952), उर्वशी (1961) आदि।

रामधारी सिंह दिनकर ने पद्य के साथ–साथ गद्य में भी समान अधिकार से लेखन कार्य किया। उनकी कुछ प्रमुख गद्य रचनाएँ इस प्रकार हैं–

मिट्टी की ओर (1946), चित्तौर का साका (1948), अर्धनारीश्वर (1952), रेती का फूल (1954), हमारी सांस्कृतिक एकता (1954), भारत की सांस्कृतिक कहानी (1955), राज्यभाषा और राष्ट्रीय एकता (1955), उजली आग (1956), संस्कृति के चार अध्याय (1956), काव्य की भूमिका (1958), पंत, प्रसाद और मैथिलीशरण गुप्त (1958), वेणुवान (1958), धर्म, नैतिकता और विज्ञान (1959), वटपीपल (1961), लोकदेव नेहरू (1965), शुद्ध कविता की खोज (1966) आदि।

जैसा कि देखा जा सकता है कि दिनकर द्वारा रचित गद्य कृतियों की सूची बहुत लम्बी है। गद्य कृतियों में इनका चिन्तक और मनीषी रूप प्रतिबिम्बित होता है। इनके गद्य में विषयों की विविधता एवं शैली की प्रांजलता स्पष्ट दिखाई देती है। इन्होंने काव्य, संस्कृति, समाज और जीवन आदि विविध विषयों पर अति उत्कृष्ट लेख लिखे हैं। 'अर्धनारीश्वर', 'वट–पीपल', 'उजली आग', 'मिट्टी की ओर', रेती के फूल इनके सुप्रसिद्ध निबन्ध ग्रन्थ हैं। भारत के स्वतन्त्र होने के पश्चात् दिनकर मुख्य रूप से गद्य सृजन की ओर उन्मुख हो गए। उन्होंने स्वयं कहा भी है– 'सरस्वती की जवानी कविता है और उसका बुढ़ापा दर्शन है। दिनकर के उत्तरवर्ती जीवन में यही दार्शनिकता तथा गूढ़ वैचारिकता गद्य में प्रकट हुई। शासकीय सेवा में रहकर राजनीति से संपृक्त रहते हुए भी वे निरन्तर स्वच्छन्द रूप से साहित्य–सृजन करते रहे। उनकी साहित्य–चेतना राजनीति से उसी प्रकार निर्लिप्त रही, जिस प्रकार कमल जल में रह कर भी जल से निर्लिप्त रहता है। अपितु राजनीति में संपृक्त रहने के कारण गद्य में अनेक ऐसे तथ्य पूर्ण निर्भीकता से प्रकट हुए हैं, जिनके माध्यम से तत्कालीन राजनीतिक परिदृश्य तथा राजनेताओं की प्रवृत्तियों का स्पष्ट परिचय प्राप्त हो जाता है। संस्मरण और श्रद्धांजलियाँ उनकी ऐसी ही पुस्तक हैं जिसके समकालीन साहित्यकारों के साथ–साथ राजनेताओं के संस्मरण भी संकलित हैं।

'अर्धनारीश्वर' आदि निबन्ध–संग्रह में दिनकर जी ने आधुनिकता और परम्परा, धर्म और विज्ञान, नैतिकता, राष्ट्रीयता और अन्तर्राष्ट्रीयता आदि विषयों के साथ काम, प्रेम और ईर्ष्या जैसी मनोवृत्तियों पर बड़ी गहराई से चिन्तन किया है। 'ईर्ष्या, तू न गई मेरे मन से' इनका प्रसिद्ध निबन्ध है जो प्रायः पाठ्यक्रमों में निर्धारित रहता है।

अपनी प्रारम्भिक कविताओं में, क्रान्ति का उद्घोष करने वाले दिनकर आगे चलकर राष्ट्रीयता का विसर्जन कर अन्तर्राष्ट्रीयता की भावना के विकास पर बल देते हैं। धर्म और विज्ञान के विषय में दिनकर का स्पष्ट मत है कि जीवन में विज्ञान का स्थान तो रहेगा किन्तु वह अभिनव रूप ग्रहण करके अधिभौतिकता से ऊपर उठकर धर्म के क्षेत्र में जीवन की सूक्ष्मताओं में प्रवेश करेगा। दिनकर आधुनिकता को कोई मूल्य न मानकर एक ऐसी शाश्वत प्रक्रिया मानते हैं जो अंधविश्वास से बाहर निकलकर

नैतिकता में उदारता बरतने के लिए बुद्धिवादी बनने के लिए प्रेरित करती है। 'चेतना की शिखा' दिनकर जी की ऐसी पुस्तक है जिसे पढ़कर सहज ही भारत के महान योगी महर्षि अरविंद के व्यक्तित्व तथा दार्शनिक चिन्तन के विभिन्न पहलुओं का पूर्ण परिचय प्राप्त हो जाता है।

टिप्पणी

'संस्कृति के चार अध्याय' एक ऐसा विशद, गम्भीर और खोजपूर्ण ग्रन्थ है, जो दिनकर को महान, दार्शनिक गद्यकार के रूप में प्रतिष्ठित करता है। उनकी स्पष्ट स्थापना है कि आध्यात्म, प्रेम, धर्म, अहिंसा, दया, सह–अस्तित्व आदि भारतीय संस्कृति के विशिष्ट गुण हैं। दिनकर जी स्पष्ट घोषणा करते हैं कि आज सारा विश्व जिस संकट के दौर से गुजर रहा है, उसका उत्तर बुद्धिवाद नहीं, अपितु धर्म और आध्यात्मवाद है। धर्म सभ्यता का सबसे बड़ा मित्र है। धर्म ही कोमलता है, धर्म दया है। धर्म विश्वबन्धुत्व है और शांति है।

युग–दृष्टा साहित्यकार दिनकर ने अपने समय की कठिनाइयों को बड़ी पैनी दृष्टि से देखा व पहचाना। राष्ट्रभाषा की समस्या पर उनका हृदय बहुत चिंतित था। इस विषय पर उन्होंने दो पुस्तकें लिखी हैं– 'राष्ट्रभाषा और राष्ट्रीय एकता तथा 'राष्ट्रभाषा आन्दोलन और गांधी जी।' दिनकर का कथन है कि हिन्दी को राष्ट्रभाषा इसलिए माना गया क्योंकि वही भारत की सांस्कृतिक एकता व राजनैतिक अखंडता को अक्षुण्ण बनाये रखने में समर्थ है।

'शुद्ध कविता की खोज' दिनकर का बहुचर्चित ग्रन्थ है। इसमें उन्होंने काव्य के प्रयोजन के आधार पर कविता के शुद्धतावादी आन्दोलन का शोधपूर्ण इतिहास प्रस्तुत किया है। 'मिट्टी की ओर', 'काव्य की भूमिका' 'पंत, प्रसाद और मैथिलीशरण उनके आलोचनात्मक ग्रन्थ हैं। इनमें उन्होंने समकालीन कवियों व काव्य–प्रवृत्तियों के विषय में अपने स्वतन्त्र विचार प्रकट किए हैं। इनसे हिन्दी आलोचना को नवीन दिशा व दृष्टि मिली है। रीतिकालीन काव्य के विषय में दिनकर का मत है ''चित्रकला की कसौटी रीतिकाल के साथ न्याय करने की सबसे अनुकूल कसौटी होगी।''

दिनकर स्वतन्त्रता पूर्व एक विद्रोही कवि के रूप में स्थापित हुए और स्वतन्त्रता के बाद राष्ट्रकवि के नाम से जाने गए। वे छायावादोत्तर कवियों की पहली पीढ़ी के कवि थे। एक ओर उनकी कविताओं में ओज, विद्रोह, आक्रोश और क्रान्ति की पुकार है तो दूसरी ओर कोमल श्रृंगारिक भावनाओं की अभिव्यक्ति है। इन दो विरोधी प्रवृत्तियों का चरमोत्कर्ष हमें उनकी 'कुरुक्षेत्र' और 'उर्वशी' नामक कृतियों में मिलता है।

एक गद्यकार व निबन्धकार के रूप में इनकी भाषा–शैली बड़ी ही प्रभावपूर्ण है। उनके निबन्धों की भाषा शुद्ध साहित्यिक खड़ी बोली है। 'संस्कृति के चार अध्याय' जैसी गम्भीर विवेचनात्मक रचनाओं में दिनकर जी की भाषा संस्कृतनिष्ठ है। तद्भव, तत्सम, देशज शब्दों एवं मुहावरे और लोकोक्तियों के सहज स्वाभाविक प्रयोग से समृद्ध भाषा अत्यन्त प्रांजल एवं प्रौढ़ है, किन्तु इसमें भी सुबोधता एवं स्पष्टता सर्वत्र विद्यमान है। इनकी भाषा का दूसरा रूप उर्दू–फारसी के शब्दों से युक्त है। निबन्धों में मुख्यतः चार शैलियों का प्रयोग दृष्टिगत होता है–

1. विवेचनात्मक शैली
2. समीक्षात्मक शैली

3. भावात्मक शैली

4. सूक्तिपरक शैली

टिप्पणी

इन शैलियों के अतिरिक्त दिनकर की रचनाओं में आत्मकथात्मक शैली (आत्मपरक निबन्धों में), वार्तालाप शैली, उद्धरण शैली, उद्‌बोधन आदि शैलियों के दर्शन भी यत्र–तत्र हो जाते हैं। 'मिट्‌टी की ओर' और 'अर्द्धनारीश्वर' में संगृहीत उनके विचारात्मक व समीक्षात्मक निबन्ध हिन्दी गद्य साहित्य की अमूल्य सम्पदा हैं। वे उच्च पदों पर आसीन रहकर भी हमेशा अपनी जड़ों से जुड़े रहे, लोक के प्रति समर्पित रहे। राष्ट्रीय आन्दोलनों, गांधीजी की विचारधारा और सामाजिक विषमताओं ने उनकी आत्मा को झकझोरा। इन भावों और विचारों के स्पन्दन उनके गद्य और पद्य दोनों ही साहित्य में मौजूद हैं। प्रतिनिधि लेखक और कवि के रूप में उन्होंने अनेक देशों की यात्राएँ भी की। उनका यात्रा–साहित्य 'देश–विदेश' शीर्षक से प्रकाशित है। गद्य और पद्य दोनों ही विधाओं में उनके कृतित्व को सामाजिक, साहित्यिक संस्थाओं व भारत सरकार द्वारा सम्मानित व पुरस्कृत किया गया।

सम्मान व पुरस्कार

दिनकर तीन बार राज्य सभा के सदस्य चुने गए। वे अप्रैल 1952 से 26 जनवरी, 1964 तक इस सभा के सदस्य थे। 1959 में उन्हें पद्‌मभूषण से सम्मानित किया गया। यह सम्मान उन्हें भारत के पहले राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्र प्रसाद द्वारा प्राप्त हुआ। भागलपुर विश्वविद्यालय के चांसलर डॉ. जाकिर हुसैन (जो बाद में भारत के राष्ट्रपति बने) ने उन्हें अपने करकमलों से डी. लिट् की उपाधि प्रदान की। गुरुकुल महाविद्यालय द्वारा उन्हें विद्या शास्त्री के रूप में सम्मानित किया गया। 8 नवम्बर, 1968 को 'साहित्य–चूड़ामणि' राजस्थानी विद्यापीठ, उदयपुर के रूप में सम्मानित किया गया। 1972 में 'उर्वशी' के लिए 'ज्ञानपीठ पुरस्कार' से सम्मानित किया गया। हरिवंशराय बच्चन ने कहा कि दिनकर को एक नहीं, चार ज्ञानपीठ पुरस्कार दिए जाने चाहिए– गद्य, पद्य, भाषा और हिन्दी के लिए अलग–अलग पुरस्कृत करना चाहिए।

30 सितम्बर, 1987 को भारत के तत्कालीन राष्ट्रपति शंकर दयाल शर्मा ने उनकी 79वीं जयंती के अवसर पर श्रद्धांजलि अर्पित की थी। 1999 में दिनकर भारत की 'भाषाई सद्‌भावना' का उत्सव मनाने के लिए भारत सरकार द्वारा जारी स्मारक डाक टिकटों के सेट में इस्तेमाल किए जाने वाले हिन्दी लेखकों में एक थे। उनके सम्मान के रूप में उनके चित्र को भारत के प्रधानमंत्री डॉ. मनमोहन सिंह द्वारा वर्ष 2008 में भारत की संसद के केन्द्रीय हॉल में लगाया गया।

उन्हें काशी नागरी प्रचारिणी सभा, उत्तर प्रदेश सरकार और भारत सरकार से उनके महाकाव्य 'कुरुक्षेत्र' के लिए पुरस्कार मिला। 1959 में उन्हें 'संस्कृति के चार अध्याय' के लिए साहित्य अकादमी पुरस्कार मिला।

अनेक प्रतिष्ठित पुरस्कारों से सम्मानित, छायावादोत्तर हिन्दी काव्यधारा के प्रमुख कवि, आलोचक, विचारक एवं निबन्धकार के रूप में दिनकर हिन्दी जगत में एक विशेष स्थान के अधिकारी हैं। उन्होंने अपने साहित्य में न सिर्फ वीररस के काव्य को एक नई ऊँचाई दी, बल्कि अपनी रचनाओं के माध्यम से राष्ट्रीय चेतना का भी सृजन किया। इस

सम्बन्ध में प्रेम जनमेजय का कथन है 'दिनकर ने गुलाम भारत और आजाद भारत दोनों में अपनी कविताओं के जरिये क्रान्तिकारी विचारों को विस्तार दिया। आजादी के समय और चीन के हमले के समय दिनकर ने अपनी कविताओं के माध्यम से लोगों के बीच राष्ट्रीय चेतना को बढ़ाया। कवि और गद्यकार दोनों ही रूपों में उनका कृतित्व विराट है।

टिप्पणी

4.3.1 'भारत एक है' निबन्ध का मूल पाठ

अकसर कहा जाता है कि भारतवर्ष की एकता उसकी विविधताओं में छिपी हुई है और यह बात जरा भी गलत नहीं है, क्योंकि अपने देश की एकता जितनी प्रकट है, उसकी विविधताएँ भी उतनी ही प्रत्यक्ष हैं।

भारतवर्ष के नक्शे को ध्यान से देखने पर यह साफ दिखाई पड़ता है कि इस देश के तीन भाग प्राकृतिक दृष्टि से बिल्कुल स्पष्ट हैं। सबसे पहले तो भारत का उत्तरी भाग है जो हिमालय के लगभग दक्षिण से लेकर विन्ध्याचल के उत्तर तक फैला हुआ है। उसके बाद, विन्ध्य से लेकर कृष्णा नदी के उत्तर तक का वह भाग है, जिसे हम दक्खनी प्लेटो कहते हैं। इस प्लेटो के दक्षिण, कृष्णा नदी से लेकर, कुमारी अन्तरीप तक का जो भाग है, यह प्रायद्वीप जैसा है। अचरज की बात है कि प्रकृति ने भारत के जो ये तीन खण्ड किए हैं, वे ही खंड भारतवर्ष के इतिहास के भी तीन क्रीड़ास्थल रहे हैं। पुराने समय में उत्तर भारत में जो राज्य कायम किए गए, उनमें से अधिकांश विंध्य की उत्तरी सीमा तक ही फैलकर रह गए। विंध्य को लाँघ कर उत्तर भारत को दक्षिण भारत से मिलाने की कोशिशें तो बहुत की गईं, मगर इस काम में कामयाबी किसी–किसी को ही मिली। कहते हैं, पहले–पहल अगत्स्य ऋषि ने विन्ध्याचल को पार करके दक्षिण के लोगों को अपना संदेश सुनाया था। फिर भगवान श्री रामचन्द्र ने लंका पर चढ़ाई करने के सिलसिले में विन्ध्याचल को पार किया। महाभारत के जमाने में उत्तरी और दक्षिणी भारत के अंश एक राज्य के अधीन थे या नहीं इसका कोई पक्का सबूत नहीं मिलता।

महाभारत–काल में भी कायम थी और दोनों भागों के लोग आपस में मिलते–जुलते रहते थे। महाराज युधिष्ठिर के राजसूय–यज्ञ में दक्षिण के राजा भी आए थे और कुरूक्षेत्र के मैदान में जो महायुद्ध हुआ था, उसमें भी दक्षिण के वीरों ने हिस्सा लिया था, इसका प्रमाण महाभारत में ही मौजूद है। इसी तरह चन्द्रगुप्त, अशोक, विक्रमादित्य और उनके बाद मुगलों ने भी इस बात के लिए बड़ी कोशिश की कि किसी तरह सारा देश एक शासन के अधीन लाया जा सके और उन्हें इस कार्य में सफलता भी मिली, लेकिन भारत के इतिहास की एक शिक्षा यह भी है कि इस देश को एक रखने के काम में यहाँ के राजाओं को जो भी सफलता मिली, वह ज्यादा टिकाऊ नहीं हो सकी। इस देश के प्राकृतिक ढांचे में ही कोई ऐसी बात थी, जो सारे देश को एक रहने देने के खिलाफ पड़ती थी। यही कारण था कि जब भी कोई बलवान और दूरदर्शी राजा इस काम में लगा, सफलता थोड़ी बहुत उसे जरूर मिली, लेकिन स्वार्थी, अदूरदर्शी और कमजोर राजाओं के आते ही देश की एकता टूट गई और जो कठिनाई विन्ध्य के उत्तर को विन्ध्य के दक्षिण से मिलाने में हुई, वही कठिनाई कृष्णा नदी से उत्तर के भाग को उसके दक्षिण के भाग से मिलाकर एक रखने में होती रही।

टिप्पणी

धरती की रूपरेखा और जलवायु का प्रभाव उस पर बसने वाले लोगों के शरीर और मस्तिष्क दोनों पर पड़ता है। पहाड़ और रेगिस्तान की जिन्दगी जरा मुश्किल होती है। यही कारण है कि उनमें बसने वाले लोग आजाद तबियत के होते हैं, क्योंकि प्रकृति की कठिनाइयों को झेलते–झेलते उनका शरीर कड़ा और मन साहसी एवं निर्भीक हो जाता है। भारतीय इतिहास में मराठों और राजपूतों की वीरता जो इतनी प्रसिद्ध हुई, उसका एक कारण यह भी है कि बचपन से ही मराठों को पहाड़ी तथा राजपूतों को पहाड़ी और रेगिस्तानी, दोनों ही प्रकार के जीवन से संघर्ष करने का मौका हासिल था। इसके विपरीत नदियों के पठारों में रहने वाले लोग, किसान–तबियत के हो जाते हैं, क्योंकि पठार की भूमि उपजाऊ होती है और वहाँ रहने वालों को जीने के लिए ज्यादा मेहनत करने की जरूरत नहीं होती यही कारण है कि जलवायु एवं क्षेत्रीय सुविधा के अनुसार ही लोगों के पहनावे, ओढ़ावे और खान–पान में भी भेद हो जाता है, जो भेद भारत में बहुत ही प्रत्यक्ष है। असल में, इन भेदों को मिटाकर अगर हम कोई एक राष्ट्रीय रूप में चलाना चाहें तो उससे अनेक लोगों को बहुत ज्यादा तकलीफ हो जाएगी। उदाहरण के लिए अगर हम रोटी और उड़द की दाल अथवा रोटी और माँस को देश का राष्ट्रीय भोजन बना दें, तो पंजाबी लोग तो मजे में रहेंगे, लेकिन बिहार और बंगाल के लोगों का हाल बुरा हो जाएगा। इसी तरह, अगर हम यह कानून बना दें कि हिन्दुस्तानी को चप्पल पहनना ही होगा– तो काश्मीर के लोग घबरा उठेंगे, क्योंकि पहाड़ पर चलने वालों के पाँव चप्पलों में ठीक–ठीक नहीं चल सकते। पहनावे–ओढ़ावे में भी जगह–जगह भिन्नता मिलती है और पोशाकें भी जलवायु एवं क्षेत्रीय सुविधा के अनुसार ही यहाँ तरह–तरह की फैली हुई है।

मगर, विविधता का सबसे बड़ा लक्षण यह है कि हमारे देश में अनेक प्रकार की भाषाएँ फैली हुई हैं और इनके कारण हम आपस में भी अजनबी के समान हो जाते हैं। उत्तर भारत में तो गुजरात से लेकर बंगाल तक की जनता के बीच संपर्क खूब हुआ है। इसलिए वहाँ भाषा–भेद की कठिनाई उतना नहीं अखरती। लेकिन अगर कोई उत्तर–भारतवासी दक्षिण चला जाए अथवा कोई दक्षिण भारतीय उत्तर चला आए और वह अपनी मातृभाषा के सिवा अन्य कोई भाषा नहीं जानता हो तो वह, सचमुच, बड़ी मुश्किल में पड़ जाएगा। भाषा–भेद की वह समस्या हमारी राष्ट्रीय एकता की सबसे बड़ी बाधा है। राष्ट्रीय एकता में पहले यह बाधा थी कि पहाड़ों और नदियों को लाँघना आसान नहीं था। मगर, अब विज्ञान के अनेक सुगम साधनों के उपलब्ध हो जाने से यह संभव है।

इसी प्रकार, पहले जब देश के एक कोने में विद्रोह होता था, तब दूसरे कोने में पड़ा हुआ राजा जल्दी से फौजें भेजकर उसे दबा नहीं सकता था और विद्रोह की सफलता से देश की एकता टूट जाती थी। लेकिन आज तो देश के चाहे जिस कोने में भी विद्रोह हो हम दिल्ली से फौज भेजकर उसे तुरन्त दबा सकते हैं। प्राकृतिक बाधाएँ अब खत्म हो गई हैं। यही कारण है कि आज हमारी एकता इतनी विशाल हो गई है जितनी विशाल वह रामायण, महाभारत, मौर्य और मुगल जमानों में कभी नहीं हुई थी। अब भी जो क्षेत्रीय जोश या प्रांतीय मोह बाकी है, वह धीरे–धीरे कम हो जाएगा, क्योंकि इस जोश को पालने वाली प्राकृतिक बाधायें अब शेष नहीं हैं। मगर, भाषा–भेद की

समस्या जरा कठिन है और उसका हल तभी निकलेगा जब हिन्दी भाषा क्षेत्र में अहिन्दी भाषाओं तथा अहिन्दी भाषी क्षेत्रों में हिन्दी भाषा का अच्छा प्रसार हो जाए। सौभाग्य की बात है कि इस दिशा में काम शुरू हो गए हैं और कुछ समय बीतते–बीतते हम इस बाधा पर भी विजय प्राप्त कर लेंगे।

टिप्पणी

यह तो हुई भारत की विविधता की कहानी। अब जरा यह देखने की कोशिश करनी चाहिए कि इस विविधता के भीतर हमारी एकता कहाँ छिपी हुई है। सबसे विचित्र बात तो यह है कि यद्यपि हम अनेक भाषाएँ बोलते हैं जिनमें 14 भाषाएँ (अब यह संख्या सत्रह से अधिक है सिन्धी, राजस्थानी आदि को भी भारत सरकार ने स्वीकृति दे दी है) तो ऐसी हैं, जिन्हें भारत सरकार ने स्वीकृति दे रखी है। ये भाषाएँ हैं– हिन्दी, उर्दू, बांग्ला, मराठी, काश्मीरी और संस्कृत। किन्तु भिन्न–भिन्न भाषाओं के भीतर बहने वाली हमारी भावधारा एक है तथा हम प्रायः एक ही तरह के विचारों और कथा–वस्तुओं को लेकर अपनी–अपनी बोली में साहित्य–रचना करते हैं। रामायण और महाभारत को लेकर भारत की प्रायः सभी भाषाओं के बीच अद्‌भुत एकता मिलेगी, क्योंकि ये दोनों काव्य सबके उपजीव्य रहे हैं। इसके सिवा, संस्कृत और प्राकृत में भारत का जो साहित्य लिखा गया था, उसका प्रभार भी सभी भाषाओं की जड़ में काम कर रहा है। विचारों की एकता जाति की सबसे बड़ी एकता होती है।

अतएव, भारतीय जनता की एकता के असली आधार भारतीय दर्शन और साहित्य हैं जो अनेक भाषाओं में लिखे जाने पर भी, अन्त में जाकर एक ही साबित होते हैं। यह भी ध्यान देने की बात है कि फारसी लिपि को छोड़ दें तो भारत की अन्य सभी लिपियों की वर्णमाला एक ही है, यद्यपि वह अलग–अलग लिपियों में लिखी जाती हैं। जैसे हम हिन्दी में क, ख, ग आदि अक्षर पढ़ते हैं, वैसे ही ये अक्षर भारत की अन्य लिपियों में भी पढ़े जाते हैं, यद्यपि उनके लिखने का ढंग और है।

हमारी एकता का दूसरा प्रमाण यह है कि उत्तर या दक्षिण, चाहे जहाँ भी चले जाएँ, आपको जगह–जगह पर एक ही संस्कृति के मन्दिर दिखायी देंगे, एक ही तरह के आदमियों से मुलाकात होगी जो चन्दन लगाते हैं, स्नान–पूजा करते हैं, तीर्थ–व्रत में विश्वास करते हैं अथवा जो नयी रोशनी को अपना लेने के कारण इन बातों को कुछ शंका की दृष्टि से देखते हैं। उत्तर भारत के लोगों का जो स्वभाव है, जीवन को देखने की जो उनकी दृष्टि है, वही स्वभाव और वही दृष्टि दक्षिण वालों की भी है। भाषा की दीवार के टूटते ही, उत्तर भारतीय और दक्षिण भारतीय के बीच कोई भी भेद नहीं रह जाता है और वे आपस में एक दूसरे के बहुत करीब आ जाते हैं। असल में भाषा की दीवार के आर–पार बैठे हुए भी वे एक ही हैं। एक धर्म के अनुयायी और संस्कृति की एक ही विरासत के भागीदार हैं, उन्होंने देश की आजादी के लिए एक होकर लड़ाई लड़ी और आज उनकी पार्लमेंट और शासन–विधान भी एक हैं।

और जो बात हिन्दुओं के बारे में कही जा रही है, वही बहुत दूर तक मुसलमानों के बारे में भी कही जा सकती है। देश के सभी कोनों में बसने वाले मुसलमानों के भीतर जहाँ एक धर्म को लेकर एक तरह की आपसी एकता है, वहाँ वे संस्कृति की दृष्टि से हिन्दुओं के भी बहुत करीब हैं। इसके सिवा अनेक सदियों तक हिन्दू–मुसलमान साथ रहते आए हैं और इस लम्बे संपर्क के फलस्वरूप उनके बीच संस्कृति और तहजीब की बहुत–सी समान बातें पैदा हो गयी हैं जो उन्हें दिनों–दिन आपस में नजदीक लाती जा रही है।

टिप्पणी

जो हिन्दू–समाज में मिलेगी, जो मुस्लिम समाज में मिलेगी, जो पारसी या क्रिस्तानी समाज में मिलेगी, लेकिन धर्म के केन्द्र से बाहर जो संस्कृति की विशाल परिधि है, उसके भीतर बसने वाले सभी भारतीयों के बीच एक तरह की सांस्कृतिक एकता भी है जो उन्हें दूसरे देशों के लोगों से अलग करती है। संसार के हर एक देश पर अगर हम अलग–अलग विचार करें तो पता चलेगा कि प्रत्येक देश की एक निजी सांस्कृतिक विशेषता होती है जो उस देश के प्रत्येक निवासी की चाल–ढाल, बातचीत, रहन–सहन, खान–पान, तौर–तरीके और आदतों से टपकती रहती है। चीन से आने वाला आदमी विलायत से आने वालों के बीच नहीं छिप सकता और यद्यपि अफ्रीका के लोग भी काले ही होते हैं, मगर वे भारतवासियों के बीच नहीं खप सकते। भारतवर्ष में भी यूरोपीय पोशाकें, खूब चली हुई हैं, लेकिन यूरोपीय लिबास में सजे हुए हिन्दुस्तानियों के बीच एक अँग्रेज को खड़ा कर दिया जाए, तो वह आसानी से अलग पहचान लिया जाएगा। इसी तरह भारत के हिन्दू ही नहीं बल्कि, हिन्दुस्तानी क्रिस्तान, पारसी और मुसलमान भी भारत से बाहर जाने पर आसानी से पहचान लिए जाते हैं कि वे हिन्दुस्तानी हैं और यह बात कुछ आज पैदा नहीं हुई है, बल्कि इतिहास के किसी भी काल में भारतवासी, भारतवासी ही थे तथा अन्य देशों के लोगों के बीच में वे खप नहीं सकते थे। यही वह सांस्कृतिक एकता या शक्ति है जो भारत को एक रखे हुए है। यही वह विशेषता है जो उन लोगों में पैदा होती है जो एक देश में रहते हैं, एक तरह की जिन्दगी बसर करते हैं और एक तरह के दर्शन और एक तरह की आदतों का विकास करके एक राष्ट्र के सदस्य हो जाते हैं।

भारत के भीतर, यद्यपि प्रांतीय भेदों के लिए हुए अनेक क्षेत्र मौजूद हैं, लेकिन इन तमाम भिन्नताओं को समेटकर भारत को एक पूर्ण देश बनाने का काम भी हमारे भूगोल ने ही किया है। भारत में जो एक समान भाव है, वह हमारे भूगोल की देन है। भीतर से कुछ–कुछ बँटा हुआ और बाहर से बिल्कुल एक भारत की यह विशेषता बहुत पुरानी है। यह ठीक है कि प्रांतीयता के जोश में आकर कोई–कोई क्षेत्र राष्ट्र की एकता से अलग होकर अपना स्वतंत्र अस्तित्व कायम करने के लिए जब–तब कोशिश करते रहे हैं, मगर यह भी ठीक है कि सारे देश को एकछत्र–शासन (चक्रवर्ती–राज्य) के अन्दर लाने का सपना भी यहाँ बराबर मौजूद रहा है। देश की इस मौलिक एकता के भाव ने प्रांतीयता के सामने कभी भी हार नहीं मानी। भारतीय इतिहास की सबसे बड़ी शिक्षा यह है कि इस देश में राष्ट्रीयता और प्रांतीयता के बीच बराबर संघर्ष चलता रहा है। कभी तो ऐसा हुआ कि किसी बलवान राजा के अन्दर देश एक हो गया और कभी ऐसा हुआ कि इस एकता में कहीं पर प्रांतीयता ने छेद कर दिया और फिर उस छेद को भरने की कोशिश की जाने लगी।

प्राचीन भारत में चक्रवर्ती सम्राट कहलाने के लिए यहाँ के राजे अक्सर, बड़ी–बड़ी लड़ाइयाँ लड़ा करते थे। मगर, इन लड़ाइयों के भीतर सिर्फ यही भाव नहीं था कि राजे अपना प्रभुत्व फैलाना चाहते थे। कुछ यह बात भी थी कि इस देश की भौगोलिक परिस्थिति ही सारे देश को एक देखना चाहती थी और भौगोलिक परिस्थिति की इसी प्रेरणा से देश के सभी बड़े राजे इस बात के लिए उद्योग खड़ा कर देते थे कि सारा देश उनके अधीन एक हो जाए।

भूगोल ने भारत की जो चौहद्दी बाँध दी है उसके साथ दस्तदाजी करने की कोशिश कभी भी कामयाब नहीं हुई। सीमा के बाहर की दुनिया से भारत को अलग

रखकर उसे भीतरी एकता के सूत्र में बाँधने की प्रेरणा यहाँ के भूगोल की सबसे बड़ी शिक्षा रही है और इसी प्रेरणा के कारण वे लोग बराबर असफल रहे जो देश के भीतर के किसी भाग को, प्रांतीयता के जोश में आकर, स्वतंत्र राज्य का रूप देना चाहते थे। भारत का कोई भी भाग समूचे भारत से अलग जाकर स्वतंत्र होने की चेष्टा करे यह अस्वाभाविक बात है।

टिप्पणी

जो भारत की चौहद्दी से बाहर पड़ता है और जिसे भारत का भूगोल अपने भीतर पचा नहीं सकता। दुनिया के हिस्से को काटकर उसे भारत के साथ मिलाए रखने का काम उतना ही अप्राकृतिक साबित हुआ है जितना कि हिन्दुस्तान के किसी अंग को काटकर उसे अलग जिन्दा रखने की कोशिश। मौर्यों ने एक समय कन्धार (अफगानिस्तान) को भारत में मिला लिया था, मगर उनकी भी कोशिश बेकार हुई और पंजाब भारत में वापस आ गया। महमूद गजनी ने काबुल में बैठकर भारत पर राज्य करना चाहा, लेकिन इस अस्वाभाविक कार्य में उसे सफलता नहीं मिली। पठान बादशाहों ने दिल्ली में बैठकर पश्चिमोत्तर सीमा के पार की जमीन पर हुकूमत करनी चाही, मगर वे भी नाकामयाब रहे। सिन्ध पर जब मुसलमानों ने पहले–पहल कब्जा किया, तब वे भी चाहते थे कि सिन्ध ईरान का अंग रहे और वे ईरान से ही उस पर हुकूमत चलाएँ, लेकिन यह भारत के भूगोल के खिलाफ बात थी, इसलिए उनकी कोशिश भी बेकार हुई है। असली बात यह है कि जैसे दुनिया के और भी कई देश दुनिया से अलग और अपने–आप में पूर्ण हैं, वैसे ही, प्रकृति ने भारतवर्ष को भी एक स्वतंत्र देश के रूप में सिरजा है, जो दुनिया से अलग और अपने–आप में पूर्ण हैं, तथा जिसके भीतर बसने वाले सब लोग भारतीय हैं।

4.3.2 'भारत एक है' निबन्ध का सार

भारत की एकता उसकी विविधताओं में छिपी हुई है। नक्शे पर भारत के तीन भाग प्राकृतिक दृष्टि से बिल्कुल स्पष्ट हैं। सबसे पहले तो भारत का उत्तरी भाग है जो हिमालय के लगभग दक्षिण से लेकर विन्ध्याचल के उत्तर तक फैला हुआ है। उसके बाद विन्ध्य से लेकर कृष्णा नदी के उत्तर तक का यह भाग है जिसे हम दक्खनी प्लेटो कहते हैं। विस्मयविमुग्ध कर देने वाली बात यह है कि प्रकृति ने भारत के जो ये तीन खण्ड किए हैं, वे ही खंड भारतवर्ष के इतिहास के भी तीन क्रीड़ास्थल रहे हैं। पुराने समय में विंध्य को लांघकर उत्तर भारत को दक्षिण भारत से मिलाने की कोशिशें तो बहुत की गई, परन्तु इस काम में सफलता किसी किसी को ही मिली। चन्द्रगुप्त, अशोक, विक्रमादित्य और उनके बाद मुगलों द्वारा सारे देश को एक शासन के अधीन लाने के प्रयास काफी हद तक सफल रहे किन्तु यह सफलता ज्यादा टिकाऊ नहीं हो सकी। स्वार्थी, अदूरदर्शी और कमजोर राजाओं के आते ही देश की एकता टूट गई।

धरती की रूपरेखा और जलवायु का प्रभाव उस पर बसने वाले लोगों के शरीर, मन, स्वभाव, मस्तिष्क तथा दिनचर्या, पर अनिवार्य रूप से पड़ता है। पहाड़, रेगिस्तान और नदियों के पठार पर जीवन–यापन करने वाले लोगों का शरीर और स्वभाव अलग अलग होता है। जलवायु एवं क्षेत्रीय सुविधा के अनुसार ही लोगों के पहनावे, ओढ़ावे और खान–पान में भी भेद हो जाता है। यह भेद भारत में बहुत ही प्रत्यक्ष, स्वाभाविक

तथा आवश्यक है। इन भेदों को मिटाकर यदि कोई खान–पान या पहनावे को राष्ट्रीय रूप में चलाना चाहें तो ऐसा सम्भव नहीं है।

टिप्पणी

विविधता का सबसे बड़ा लक्षण है भारत की भाषागत विविधता। उत्तर और दक्षिण की भाषाओं में भेद बहुत ज्यादा है। भाषा–भेद की यह समस्या हमारी राष्ट्रीय एकता की सबसे बड़ी बाधा है। राष्ट्रीय एकता में पहले प्राकृतिक बाधाएँ भी प्रभावी थी। पहाड़ों और नदियों को लांघना आसान नहीं था। मगर अब विज्ञान के अनेक सुगम साधनों ने इसे सुगम बना दिया है। आज हमारी राष्ट्रीय एकता इतनी विशाल हो गई है, जितनी विशाल वह रामायण, महाभारत, मौर्य और मुगलकाल में कभी नहीं हुई थी। प्रान्तीय मोह कभी–कभी इस राष्ट्रीय एकता में बाधक बनता है। प्राकृतिक बाधाएँ अब शेष नहीं हैं लेकिन भाषा–भेद की समस्या का निराकरण विज्ञान पर नहीं, अपितु मानवीय प्रयासों पर निर्भर है। भाषा–भेद की समस्या का हल तभी निकलेगा जब हिन्दी भाषा क्षेत्र में अहिन्दी भाषाओं तथा अहिन्दी भाषी क्षेत्रों में हिन्दी भाषा का अच्छा प्रसार हो जाए। इस दिशा में शुरू हुए प्रयास आश्वस्तकारी हैं।

अब विचारणीय है विविधता में एकता की बात। भारत वर्ष के विविध भूभागों में बोली जाने वाली हिन्दी, उर्दू, बांग्ला, मराठी, गुजराती, तमिल, तेलेगु, मलयालम, कन्नड़, उड़िया, असमी, पंजाबी, कश्मीरी और संस्कृत भाषाओं को भारत सरकार ने मान्यता दे रखी है। इस सम्बन्ध में महत्वपूर्ण बात यह है कि भिन्न–भिन्न भाषाओं के भीतर रहने वाली हमारी भावधारा एक है तथा हम प्रायः एक ही तरह के विचारों तथा कथा–वस्तुओं को लेकर अपनी–अपनी बोली में साहित्य–रचना करते हैं। रामायण, महाभारत, संस्कृत तथा प्राकृत में लिखित साहित्य सभी भाषा–भाषियों के लिए उपजीव्य ग्रन्थ रहे हैं। भाषा, खान–पान की एकता के स्थान पर भाषागत एकता ज्यादा जरूरी चीज हैं।

भारतीय जनता की एकता के असली आधार भारतीय दर्शन और साहित्य हैं जो अनेक भाषाओं में लिखे जाने पर भी अन्त में, एक ही साबित होते हैं। यह भी ध्यातव्य है कि फारसी लिपि को छोड़कर अन्य सभी लिपियों की वर्णमाला एक ही है यद्यपि यह अलग–अलग लिपियों में लिखी जाती है।

भारत की सांस्कृतिक और राष्ट्रीय एकता का दूसरा प्रमाण यह है कि उत्तर या दक्षिण चाहे जहाँ भी जाए, एक ही संस्कृति के मन्दिर एवं पूजा पाठ के एक ही ढंग हैं। वास्तव में भाषा की दीवार के आर–पार बैठे हुए उत्तर और दक्षिण वासी एक ही हैं। एक ही धर्म के अनुयायी और संस्कृति की एक ही विरासत के भागीदार हैं। उन्होंने देश की आजादी की लड़ाई भी एक होकर लड़ी थी और आज उनका शासन–विधान भी एक है। धर्मगत भिन्नता होते हुए भी मुसलमान संस्कृति की दृष्टि से हिन्दुओं के काफी निकट हैं। सदियों से एक साथ रहने और सम्पर्क के फलस्वरूप पनपी संस्कृति और तहजीब की समान बातें उन्हें एक दूसरे के नजदीक लाती हैं। भारत में रहने वाले सभी धर्म के अनुयायियों में एक प्रकार की सांस्कृतिक एकता मिलती है। और यह सांस्कृतिक एकता उन्हें दूसरे देशों के लोगों से अलग करती है। यह सांस्कृतिक एकता प्रत्येक भारतवासी के व्यक्तित्व में झलकती है और यह उनकी निजी पहचान बन जाती है। यह सांस्कृतिक एकता भारत को एक रखे हुए है।

भौगोलिक भिन्नताओं के बावजूद भारत एक है। भारतीय इतिहास की सबसे बड़ी विशेषता है कि इस देश में प्रान्तीयता और राष्ट्रीयता के बीच बराबर संघर्ष चलता रहा

टिप्पणी

है लेकिन देश की मौलिक एकता के भाव ने प्रान्तीयता के सम्मुख कभी हार नहीं मानी। प्राचीन काल में चक्रवर्ती सम्राट कहलाने के लिए यहाँ के राजा–महाराजाओं ने बड़ी–बड़ी लड़ाइयाँ लड़ीं। उनका मकसद विस्तृत भूभाग पर राज करने के साथ–साथ देश को एकसूत्रता में बाँधना भी होता था। हर्ष का विषय है कि आज भारत एकता के सूत्र में बंधा हुआ है। भारत में कभी–कभी प्रान्तीयता के जोश में आकर स्वतन्त्र होने की माँग उठती है जो कि कदापि उचित नहीं कही जा सकती है। इसके साथ ही यह भी सच है कि जो भारत की चौहद्दी से बाहर पड़ता है, उसे भारत का भूगोल अपने भीतर पचा नहीं सकता। मौर्यों, महमूद गजनी पठान और मुसलमान बादशाहों की नाकाम कोशिशें इस बात को प्रमाणित करती हैं कि दुनिया के किसी हिस्से को काटकर उसे भारत के साथ मिलाये रखने का काम उतना ही अप्राकृतिक सिद्ध हुआ है जितना कि हिन्दुस्तान के किसी अंग को काटकर उसे अलग रखकर जिन्दा रखने की कोशिश। यह बात भारत के भूगोल के खिलाफ पड़ती है। जैसे दुनिया के और भी कई देश दुनिया से अलग और अपने आप में पूर्ण हैं, वैसे ही प्रकृति ने भारतवर्ष को भी एक स्वतन्त्र देश के रूप में सृजित किया है जो दुनिया से अलग और अपने आप में पूर्ण है तथा जिसके ऊपर बसने वाले सब लोग भारतीय हैं।

4.3.3 व्याख्यांश

- अगर कोई उत्तर भारतवासी ..... उपलब्ध हो जाने से यह संभव है।

सन्दर्भ– प्रस्तुत अवतरण हिन्दी साहित्य के सूर्य राष्ट्रकवि रामधारी सिंह दिनकर द्वारा रचित 'भारत एक है' निबन्ध से व्याख्यार्थ उद्धृत है। यह निबन्ध दिनकर की पुस्तक 'हमारी सांस्कृतिक एकता' से अवतरित है जिसमें लेखक ने भारतीय संस्कृति की विविधता में एकता को रेखांकित किया है। दिनकर जी संस्कृति के अद्भुत व्याख्याता तथा भारत की एकता, अखंडता व सांस्कृतिक विरासत के प्रबल पक्षधर हैं।

प्रसंग– अकसर कहा जाता है कि भारतवर्ष की एकता उसकी विविधताओं में छिपी हुई है और यह बात जरा भी गलत नहीं है क्योंकि देश की एकता जितनी प्रकट है, उसकी विविधताएँ भी उतनी ही प्रत्यक्ष हैं, विविधता का सबसे बड़ा लक्षण यह है कि हमारे देश में अनेक प्रकार की भाषाएँ फैली हुई है और उत्तर तथा दक्षिण की भाषाओं में तो इतना अन्तर है कि इनके कारण हम आपस में भी अजनबी के समान हो जाते हैं। भाषा सम्पर्क से आती है। उत्तर भारत में तो गुजरात से लेकर बंगाल तक की जनता के बीच सम्पर्क खूब हुआ है, इसलिए वहाँ भाषा–भेद की कठिनाई उतनी नहीं अखरती।

व्याख्या– भारत के उत्तर और दक्षिण में प्राकृतिक बाधाएँ होने के कारण सम्पर्क कम हुआ है। इसलिए वहाँ भाषा भेद की कठिनाई बहुत अखरती है। दोनों क्षेत्र के निवासी एक दूसरे की भाषा से अनभिज्ञ हैं। यदि उत्तर भारत में रहने वाला दक्षिण में चला जाए और दक्षिण में रहने वाला उत्तर भारत में चला जाए और अपनी मातृभाषा के अलावा अन्य किसी सम्पर्क भाषा को नहीं जानता हो तो सचमुच उसे कठिनाई का सामना करना पड़ेगा। भाषा न जानने के कारण दूसरे क्षेत्र में कितनी दिक्कतों का सामना करना पड़ता है, यह एक भुक्तभोगी ही जान सकता है। एक दूसरे की भाषा न जानने–समझने के कारण वहाँ रहना, एक दूसरे से बातचीत करना, किसी बात की जानकारी अथवा सामान आदि खरीदना बहुत मुश्किल हो जाता है। इसलिए कुछ समय

टिप्पणी

जीवन–यापन करना भी बहुत मुश्किल हो जाता है। क्षेत्र की सम्पर्क भाषा को जाने बिना वहाँ कुछ समय जीवन–यापन करना भी बहुत दूभर हो जाता है। जहाँ कोई व्यक्ति न अपनी बात दूसरों को समझा सकता है और न दूसरों की कही बात स्वयं समझ सकता है तो उस क्षेत्र में वह स्वयं को बहुत अजनबी महसूस करता है। इसलिए लोग वहीं रहना अथवा आना–जाना पसन्द करते हैं, जहाँ की भाषा वे जानते–समझते हों। भाषा–भेद की यह समस्या राष्ट्रीय एकता में बहुत बड़ी बाधा है। भाषा–भेद के कारण अलगाववाद पैदा हो जाता है। इतना अलगाववाद आ जाता है कि लोग एक दूसरे की भाषा को स्वीकार ही नहीं करते। भाषा और भाषाविद् दोनों का विरोध करते हैं। पहले तो राष्ट्रीय एकता में बहुत बड़ी बाधा यह भी थी कि दोनों क्षेत्रों के बीच में जो नदियाँ और पहाड़ पड़ते हैं, उन्हें लाँघना आसान नहीं था। इसलिए लोगों के बीच सम्पर्क नहीं हो पाता था लेकिन आज विज्ञान के साधनों ने पहाड़ों और नदियों को लांघने वाली समस्या को दूर कर दिया है। अब आवागमन में तो कोई समस्या नहीं है।

विशेष

(i) उत्तर और दक्षिण की एकता में वास्तव में भाषा–भेद बहुत बड़ी समस्या है। दक्षिण के कुछ हिस्सों में उत्तर की भाषा हिन्दी का विरोध है।

(ii) लेखक ने संकेतित किया है कि भाषा–भेद और भाषागत वैमनस्य का मुख्य कारण सम्पर्क का अभाव है, हालाँकि आवागमन के वैज्ञानिक साधनों ने सम्पर्क को बहुत सुलभ कर दिया है।

(iii) भाषा सरल सुबोध और प्रवाहपूर्ण है।

- आज हमारी राष्ट्रीय एकता ..... इस बाधा पर भी विजय प्राप्त कर लेंगे।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– भारत का क्षेत्रफल बहुत विशाल है। इस विशाल भू–भाग में बहुत से राज्य हैं, जहाँ का रहन–सहन, भाषा आदि दूसरे राज्यों से अलग हैं। दो क्षेत्रों के बीच में पड़ने वाले पहाड़, नदी को लाँघना मुश्किल होने के कारण आपस में सम्पर्क भी कम होता है और सम्पर्क कम होने के कारण एक दूसरे की भाषा, संस्कृति आदि की जानकारी नहीं मिल पाती थी। आत्मीयता का विकास नहीं हो पाता था।

व्याख्या– आज हमारा समूचा देश एक शासन–विधान के अन्तर्गत है। सारे देश पर एक केन्द्रीय शासन चलता है। वैज्ञानिक साधनों के कारण देश के सुदूर क्षेत्रों में आवागमन भी सुगम हो गया है। एक शासन–विधान और प्रजातंत्रीय व्यवस्था के कारण आज हमारी राष्ट्रीय एकता में बहुत ज्यादा श्रीवृद्धि हो गई है। आज हमारे देश में जो राष्ट्रीय एकता का सुदृढ़ भाव देखने को मिलता है, वह रामायण, महाभारत, मौर्य और मुगल काल में नहीं था। आज पूरा देश एकसूत्रता के धागे में घिरा हुआ है। यह अवश्य है कि कभी–कभी एक प्रान्त के लोग अपने आपको श्रेष्ठ सिद्ध करने के लिए सहअस्तित्व का मार्ग छोड़कर एक दूसरे के प्रति असहिष्णुता का परिचय देने लगते हैं, जो कि कदापि उचित नहीं कहा जा सकता है। अब धीरे–धीरे प्रान्तीयतावाद भी कम हो रहा है। प्रान्तीयतावाद का एक कारण भाषागत समस्या है। जिन प्रान्तों की भाषा हिन्दी है, वहाँ तो कोई समस्या नहीं है, किन्तु दक्षिण के अहिन्दी भाषी क्षेत्र राष्ट्रभाषा

हिन्दी का विरोध करते हैं। उनका तर्क होता है कि जब उत्तर भारत के लोग दक्षिण की भाषा नहीं सीखते तो दक्षिण वाले उत्तर भारत की हिन्दी क्यों सीखें। इस समस्या का हल मानवीय प्रयासों पर है। निश्चय ही हिन्दी भाषी क्षेत्रों में अहिन्दी भाषाओं और अहिन्दी भाषी क्षेत्रों में हिन्दी का प्रचार–प्रसार होना चाहिए। एक दूसरे की भाषाओं को सीखने पर भी जोर देना चाहिए ताकि भाषागत भेद कम हो सके। हर्ष का विषय है कि इस प्रकार के प्रयास शुरू हो गए हैं और आशा है कि धीरे–धीरे भाषागत समस्या पर भी विजय प्राप्त कर ली जाएगी।

टिप्पणी

विशेष

(i) भारत की सुदृढ़ राष्ट्रीय एकता पर प्रकाश डाला गया है। राष्ट्रीय एकता में बाधाओं– प्राकृतिक बाधाओं और भाषागत बाधाओं की ओर भी संकेत किया गया है।

(ii) भाषागत भेद का समाधान भी प्रस्तुत किया गया है। एक दूसरे से सम्पर्क, भाषाओं के प्रचार–प्रसार तथा शिक्षण से ही यह समस्या दूर होगी।

(iii) भाषा शैली सरल, सुबोध व विचारात्मक है।

- भिन्न–भिन्न भाषाओं ..... सबसे बड़ी एकता होती है।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– भारत का भूभाग बहुत विस्तृत है। आजादी से पूर्व या उससे भी पहले समूचा देश एक शासन विधान के अन्तर्गत नहीं था, किन्तु आज भारत में एक शासन–विधान है। भारत और भारतवासी एक हैं। बहुधा कहा जाता है कि भारत विविधताओं का देश है और यह बात बिल्कुल सच भी है और इस सम्बन्ध में सबसे बड़ी विविधता है भाषाओं की। भारत सरकार ने हिन्दी, उर्दू, बांग्ला, मराठी, गुजराती, तमिल, तेलुगू, मलयालम, कन्नड़, उड़िया, असमी, पंजाबी, कश्मीरी और संस्कृत आदि भाषाओं को मान्यता दे रखी है।

व्याख्या– दिनकर जी का कहना है कि भारत के विविध प्रान्तों में बोली जाने वाली भाषाएँ अलग–अलग हैं। उनमें पर्याप्त भिन्नता भी है। किन्तु इसके साथ ही यह भी सच है कि भिन्न–भिन्न भाषाओं के भीतर बहने वाली हमारी भावधारा एक है क्योंकि हमारी मूल संस्कृति एक है। सभी भाषाओं की जननी संस्कृत है और प्राचीन भारतीय संस्कृति ही सबकी मूल संस्कृति है। इसलिए भारत के विभिन्न साहित्यकार प्रायः एक ही तरह के विचारों और कथा–वस्तुओं को लेकर अपनी–अपनी भाषा में साहित्य रचना करते हैं। उदाहरणार्थ रामायण और महाभारत सभी के उपजीव्य ग्रन्थ हैं। सभी भाषाओं में इसकी मुख्य कथा अथवा उपकथाओं पर पुस्तकें लिखी गई हैं। जब कथा का आधार एक है तो इस कथा पर आधारित पुस्तकों की भाव भूमि और कथानक में समरूपता मिलना बहुत स्वाभाविक बात है। रामायण और महाभारत की कथाओं पर सभी भाषाओं में प्रचुर साहित्य लिखा गया है और सबमें कथा–भूमि और विचारों की दृष्टि से अद्‌भुत समानता है। इसके अतिरिक्त हिन्दी से किसी प्रान्त को चिढ़ हो सकती है, किन्तु संस्कृत और प्राकृत के प्रति सब प्रान्तों में श्रद्धाभाव है। संस्कृत और प्राकृत से भी भारत की अन्य भाषाएँ न केवल प्रभावित हुई अपितु समृद्ध भी हुई हैं। प्राकृत और संस्कृत का सभी भाषाओं के साहित्य पर ऋण है। सबका साहित्य संस्कृत साहित्य, रामायण व महाभारत से प्रभावित है, इसमें कोई सन्देह नहीं है और इसके साथ ही यह भी सच

है कि वैचारिक एकता ही सबसे महत्वपूर्ण चीज है। वस्त्र, खान–पान और भाषागत भिन्नता तो ऊपरी चीजें हैं।

टिप्पणी

विशेष

(i) इस विचारात्मक निबन्ध में भारत की भिन्नता में एकता की बात पर सुन्दर ढंग से विचार किया है। एकता का कारण लेखक ने साहित्यिक जड़ों को बताया है। सभी भाषाओं की साहित्यिक जड़ें रामायण, महाभारत तथा संस्कृत साहित्य में विद्यमान हैं। इस कारण लेखक का कहना है– 'भिन्न–भिन्न भाषाओं के भीतर बहने वाली भावधारा एक है। यह वाक्य एक सूक्ति की तरह से बहुत सुन्दर बन पड़ा है।

(ii) लेखक ने सांस्कृतिक एकता के मूल कारण को स्पष्ट रूप से समझाया है। विचारों की एकता निश्चित ही बहुत मायने रखती है। यही सारे सम्बन्धों और सुख–शान्ति का आधार है।

(iii) भाषा–शैली सरल व विश्लेषणात्मक है।

- भाषा की दीवार के टूटते ही ..... शासन विधान भी एक है।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– 'भारत एक है' शीर्षक निबन्ध में दिनकर जी ने भारत की सांस्कृतिक एकता पर विचार किया है। भारत को विविधताओं का देश कहा गया है। विभिन्न प्रान्तों की वेशभूषा, खान–पान और भाषा आदि में भिन्नता देखने को मिलती है। इनमें सबसे बड़ी भिन्नता भाषा की है। उत्तर भारत और दक्षिण भारत में भाषा की भिन्नता और भाषागत वैमनस्य बहुत ज्यादा है। सांस्कृतिक दृष्टि से विचार करें तो उत्तर भारत और दक्षिण भारत की संस्कृति में कोई खास भेद नहीं है। सभी के मन्दिर, देवी–देवता और पूजन–विधि और पूजा के मन्त्र एक ही हैं।

व्याख्या– दिनकर जी का कहना है कि यदि उत्तर और दक्षिण भारत से भाषा का भेद हटा दिया जाए तो दोनों क्षेत्रों में कोई विशेष भेद नहीं बचेगा। संस्कृति तो दोनों क्षेत्रों की एक ही है। केवल भाषागत अन्तर है। भाषा का अन्तर हटा दिया जाए तो दोनों क्षेत्रों के लोगों का वैमनस्य स्वयमेव दूर हो जाएगा। दोनों में स्थानागत दूरी है लेकिन यदि भाव, विचार और भाषा की समानता हो तो वह दूरी कुछ मायने नहीं रखती। असली चीज है धर्म और संस्कृति। बाकी चीजें तो बहुत ऊपरी व सतही होती हैं। उत्तर और दक्षिण भारत के लोगों का धर्म एक ही है। सनातन धर्म और भारतीय संस्कृति को ही दोनों क्षेत्रों के लोग अपनाये हुए हैं। दोनों के आराध्य तथा पूजा–अर्चना का विधि–विधान एक ही है। संस्कृत भाषा ही दोनों क्षेत्रों की भाषाओं की जननी और संस्कृत साहित्य ही दोनों क्षेत्रों के साहित्य का आधार है। अतः दोनों ही क्षेत्रों के वासी एक ही महान संस्कृति की विरासत के भागीदार हैं। आजादी की लड़ाई में भी पूरा देश एक होकर लड़ा था और आजादी प्राप्त होने के बाद देश में एक ही केन्द्रीय सरकार का शासन है। सब पर एक ही संविधान के नियम कानून चलते हैं। सभी राज्यों की सरकारें एक ही विधान से चलती हैं।

टिप्पणी

विशेष

(i) उत्तर भारत और दक्षिण भारत में भाषा को लेकर जो विवाद है, उसका निराकरण मनोवैज्ञानिक ढंग से करने का प्रयास किया गया है। धर्म, संस्कृति, आजादी की लड़ाई और शासन विधान का हवाला देकर दोनों क्षेत्रों के लोगों को जोड़ने का प्रयास किया गया है क्योंकि राष्ट्रीय एकता के लिए विभिन्न प्रान्तों के लोगों में सद्भाव और मेल–मिलाप जरूरी है। लोगों को एकता के विधायक तत्वों का आईना दिखाना भी जरूरी है।

(ii) भाषागत विवाद देश की एकता में वास्तव में बहुत बाधक है। इसके कारण दो क्षेत्रों में वैमनस्य रहता है और कभी–कभी दंगे भी हो जाते हैं जो देश की सुरक्षा और समृद्धि के लिए बहुत बड़ा खतरा है।

(iii) भाषा–शैली सरल सुबोध व प्रवाहपूर्ण है। जनभाषा का प्रयोग किया गया है।

- यह भी ठीक है कि सारे देश को ..... कोशिश की जाने लगी।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– अनेक प्रान्तीय भेदों के बावजूद भारत एक है। भारत में विविधता या अनेकता का रूप भाषागत भिन्नता में दिखता है। भौगोलिक दृष्टि से भी तमाम भिन्नताएँ हैं। कहीं मैदान है तो कहीं पहाड़। कहीं सूखा पड़ता है तो कहीं बाढ़ आती रहती है। लेकिन इन तमाम भिन्नताओं को समेटकर भारत को एक पूर्ण देश बनाने का काम भी हमारे भूगोल ने ही किया है। भीतर से कुछ–कुछ बँटा होने पर भी भारत बाहर से बिल्कुल एक है।

व्याख्या– भारत एक प्राचीनतम देश है। इस विशाल भूभाग पर विभिन्न राजाओं का शासन रहा है। ऐसे उदाहरण कम ही हैं जब समूचे देश पर किसी एक सम्राट का शासन रहा हो। चन्द्रगुप्त, अशोक, विक्रमादित्य और मुगलों ने सारे भारत वर्ष को एकछत्र शासन के अन्दर लाने का प्रयास किया था और सफलता भी प्राप्त की थी लेकिन भारत का इतिहास इस बात का गवाह है कि इस देश को एक रखने के काम में यहाँ के राजाओं को जो भी सफलता मिली, वह ज्यादा टिकाऊ नहीं हो सकी। स्वार्थी अदूरदर्शी और कमजोर राजाओं के आते ही देश की एकता टूट गई लेकिन सारे देश को एकसूत्र में पिरोने का स्वप्न लगातार देखा जाता रहा। प्रांतीयता की प्रबल भावना के बावजूद वह कभी ओझल हुआ और न कभी पराजित। भारतीय इतिहास में ऐसे प्रसंग भरे पड़े हैं कि इस देश में राष्ट्रीयता और प्रांतीयता के बीच बराबर संघर्ष चलता रहा है, जिसमें कभी राष्ट्रीयता जीत गई तो कभी प्रान्तीयता। पराक्रमी और महत्वाकांक्षी राजा ने अपने पराक्रम व कूटनीति से समूचे भारत वर्ष को एकसूत्रता के धागे में पिरो दिया लेकिन किसी षड्यन्त्रकारी अथवा देशद्रोही ने द्वेष अथवा प्रलोभन में भारत की एकता को छिन्न–भिन्न कर डाला। उसके बाद फिर किसी सशक्त शासक ने समूचे भारत में एक शासन विधान लाने की कोशिश की। यह क्रम निरन्तर चलता रहा।

विशेष

(i) देश की इस मौलिक एकता के भाव ने प्रांतीयता के सामने कभी भी हार नहीं मानी वाक्य बहुत अर्थगर्भित व ऐतिहासिक रूप से सत्य है। जब अंग्रेजों ने भारत छोड़ा, तब यह देश 566 रियासतों में बँटा हुआ था, जिन पर छोटे–छोटे राजाओं

टिप्पणी

का शासन था। सरदार बल्लभ भाई पटेल ने अपने पराक्रम और कूटनीति से सारी रियासतों को भारत में मिलाया और पूरे देश में एक शासन विधान लागू हो गया। बहुत से राज्य भारत से अलग होकर स्वतन्त्र रूप में शासन करना चाहते थे लेकिन लौहपुरुष ने उनके कुप्रयत्नों को विफल कर दिया। आचार्य चाणक्य ने भी इसी तरह देश को एकसूत्र में बाँधा था।

(ii) भाषा–शैली सरल व बोधगम्य है।

4.3.4 'भारत एक है' निबन्ध का समीक्षात्मक अध्ययन

निबन्ध हिन्दी साहित्य की अद्यतन श्रेष्ठ विधा है। निबन्ध में ही गद्य की अभिव्यंजना शक्ति का पूर्ण चमत्कार दृष्टिगोचर होता है। इसमें सन्देह नहीं कि निबन्ध में गद्य के सौन्दर्य और माधुर्य का पूर्ण विकास होता है। पं. रामचन्द्र शुक्ल के कथनानुसार यदि पद्य कवियों की कसौटी है तो निबन्ध गद्य की कसौटी है। अंग्रेजी में निबन्ध के लिए 'ऐसे (Essay) शब्द मिलता है जिसका शाब्दिक अर्थ होता है 'प्रयास या प्रयत्न करना। निबन्ध के प्रवर्तक अंग्रेजी निबन्धकार मान्टेन ने निबन्ध की परिभाषा देते हुए लिखा है ''विचारों, उद्धरणों और आख्यानात्मक वृत्तों के सम्मिश्रण को निबन्ध कहते हैं।'' हिन्दी के विद्वान श्री कृष्णलाल का मत है ''भावों और विचारों की प्रधानता तथा शैली की रमणीयता के योग से जिस नवीन साहित्य का प्रचलन हुआ है, उसे ही निबन्ध साहित्य की संज्ञा प्रदान की गई है। भाव यह है कि निबन्ध साहित्य की एक ऐसी विधा है, जिसमें तर्कपूर्ण ढंग से किसी भी विषय के सभी अंगों का पूरा पूरा विवेचन किया जाता है, जिसमें लेखक के व्यक्तित्व की अमिट छाप होती है, जो वैयक्तिक आत्माभिव्यंजना का सरल एवं सुगम माध्यम होती है। अतः भावों और विचारों की स्वच्छन्द, रमणीय एवं कसावपूर्ण गद्यमयी विधा को निबन्ध कह सकते हैं।

निबन्ध के तत्वों के बारे में विद्वानों में मतैक्य नहीं है। तत्व वह मूल उपकरण होता है, जिससे किसी वस्तु का निर्माण होता है तथा जिसकी अनुपस्थिति में उस वस्तु का अस्तित्व ही सर्वथा असम्भव हो जाता है। डा. दशरथ ओझा ने निबन्ध के छह तत्व माने हैं, गद्य रचना, व्यक्तित्व, एकसूत्रता, रोचकता, भावों का पुट और औपचारिकता का अभाव। डॉ. दानबहादुर पाठक ने निबन्ध के सात तत्व बतलाए हैं व्यक्तित्व, विचार स्वातंत्र्य, लघु आकार, एकसूत्रता, निजी अनुभूति, सजीव भाषा–शैली और प्रभावोत्पादकता। 'भारत एक है' निबन्ध की समीक्षा हम इन बिन्दुओं के आधार पर कर सकते हैं–

विषय का सम्यक् प्रतिपादन– दिनकर जी इधर–उधर की भूमिका न बाँधकर सीधे–सीधे अपने विषय से प्रारम्भ करते हैं– 'अकसर कहा जाता है कि भारतवर्ष की एकता उसकी विविधताओं में छिपी है। उसके उपरान्त दिनकर भारत की भौगोलिक स्थिति को समझाते हैं। इस विषय पर ऐतिहासिक दृष्टि भी डालते हैं। तत्पश्चात् राष्ट्रीय एकता में बाधक तत्वों पर विचार करते हुए भाषागत विविधता को राष्ट्रीय एकता में सबसे बड़ी बाधा के रूप में देखते हुए लिखते हैं ''मगर भाषा–भेद की समस्या जरा कठिन है और उसका हल तभी निकलेगा जब हिन्दी भाषा क्षेत्र में अहिन्दी भाषाओं तथा अहिन्दी भाषी क्षेत्रों में हिन्दी भाषा का अच्छा प्रसार हो जाए। सौभाग्य की बात है कि इस दिशा में काम शुरू हो गए हैं और कुछ समय बीतते–बीतते हम इस बाधा पर भी विजय प्राप्त कर लेंगे।''

टिप्पणी

पौराणिक तथा ऐतिहासिक सन्दर्भ– हर निबन्ध में पौराणिक व ऐतिहासिक सन्दर्भ हों, यह आवश्यक नहीं है। यह विषय की आवश्यकता पर निर्भर करता है। 'भारत एक है' विवेच्य निबन्ध में आवश्यकतानुसार लेखक ने पौराणिक व ऐतिहासिक सन्दर्भ देकर अपनी बात को पुष्ट किया है। एक उदाहरण देखिये– "विंध्य को लांघकर उत्तर भारत को दक्षिण भारत से मिलाने की कोशिशें तो बहुत की गई, मगर इस काम में कामयाबी किसी–किसी को ही मिली।" कहते हैं– पहले पहल अगस्त्य ऋषि ने विन्ध्याचल को पार करके दक्षिण के लोगों को अपना सन्देश सुनाया था। फिर भगवान श्रीराम ने लंका पर चढ़ाई करने के सिलसिले में विन्ध्याचल को पार किया। महाभारत के जमाने में उत्तरी और दक्षिणी भारत के अंश एक राज्य के अधीन थे या नहीं इसका कोई पक्का सबूत नहीं मिलता...महाराज युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में दक्षिण के राजा भी आए थे और कुरुक्षेत्र के मैदान में जो महायुद्ध हुआ था, उसमें भी दक्षिण के वीरों ने हिस्सा लिया था, इसका प्रमाण महाभारत में ही मौजूद है।

ऐतिहासिक सन्दर्भों के अन्तर्गत दिनकर जी ने कुछ इतिहास प्रसिद्ध राजाओं का उल्लेख किया है– ''इसी तरह चन्द्रगुप्त, अशोक, विक्रमादित्य और उनके बाद मुगलों ने भी इस बात के लिए बड़ी कोशिश की कि किसी तरह सारा देश एक शासन के अधीन लाया जा सके और उन्हें इस कार्य में सफलता भी मिली, लेकिन भारत के इतिहास की एक शिक्षा यह भी है कि इस देश को एक रखने के काम में यहाँ के राजाओं को जो भी सफलता मिली, वह ज्यादा टिकाऊ नहीं हो सकी।....प्राचीन भारत में चक्रवर्ती सम्राट कहलाने के लिए यहाँ के राजे अकसर बड़ी–बड़ी लड़ाइयाँ लड़ा करते थे। ..... भारतीय इतिहास की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इस देश में राष्ट्रीयता और प्रान्तीयता के बीच बराबर संघर्ष चलता रहा है।" पौराणिक व ऐतिहासिक सन्दर्भों ने निबन्ध के ज्ञानात्मक पक्ष को समृद्ध किया है।

भौगोलिक, सांस्कृतिक व साहित्यिक सन्दर्भ– 'भारत एक है' इस वैचारिक निबन्ध में लेखक ने भारत की एकता पर विचार–विमर्श करने के साथ–साथ इसी सन्दर्भ में भारत का भौगोलिक परिचय भी दिया है और यह परिचय आरोपित न होकर सर्वथा प्रसंगानुकूल है और यह परिचय निबन्ध के प्रारम्भ में ही है– "भारतवर्ष के नक्शे को ध्यान से देखने पर यह साफ दिखाई पड़ता है कि देश के तीन भाग प्राकृतिक दृष्टि से बिल्कुल स्पष्ट हैं। सबसे पहले तो भारत का उत्तरी भाग है जो हिमालय के लगभग दक्षिण से लेकर विन्ध्याचल के उत्तर तक फैला हुआ है। उसके बाद, विन्ध्य से लेकर कृष्णा नदी के उत्तर तक का वह भाग है, जिसे हम दक्खनी प्लेटो कहते हैं। इस प्लेटो के दक्षिण, कृष्णा नदी से लेकर कुमारी अन्तरीप तक का जो भाग है, वह प्रायद्वीप जैसा है.....धरती की रूपरेखा और जलवायु का प्रभाव उस पर बसने वाले लोगों के शरीर और मस्तिष्क दोनों पर पड़ता है।" भारत की एकता को भूगोल से जोड़ते हुए दिनकर जी का आगे कहना था "भूगोल ने भारत की जो चौहद्दी बाँध दी है, उसके साथ दस्तदाजी करने की कोशिश कभी भी कामयाब नहीं हुई। सीमा के बाहर की दुनिया से भारत को अलग रखकर उसे भीतरी एकता के सूत्र में बाँधने की प्रेरणा यहाँ के भूगोल की सबसे बड़ी शिक्षा रही है। जो भारत की चौहद्दी से बाहर पड़ता है, उसे भारत का भूगोल अपने भीतर पचा नहीं सकता।"

राष्ट्रीय एकता को भारत की संस्कृति से जोड़ना भी लेखक के लिए आवश्यक था। जन्म भूमि को भारतवर्ष में स्वर्ग से भी बढ़कर माना गया है। राष्ट्रीय एकता का दूसरा

टिप्पणी

प्रमाण लेखक ने सांस्कृतिक एकता को ही बताया है। दिनकर के शब्दों में ''उत्तर या दक्षिण चाहे वह जहाँ भी चले जाएँ, आपको जगह–जगह पर एक ही संस्कृति के मन्दिर दिखाई देंगे, एक ही तरह के व्यक्तियों से मुलाकात होगी जो चन्दन लगाते, स्नान–पूजा करते हैं, तीर्थ–व्रत में विश्वास करते हैं। भाषा की दीवार टूटते ही, उत्तर भारतीय और दक्षिण भारतीय के बीच कोई भी भेद नहीं रह जाता है और वे आपस में एक दूसरे के बहुत करीब आ जाते हैं। असल में भाषा की दीवार के आर–पार बैठे हुए भी वे एक ही है। एक धर्म के अनुयायी और संस्कृति की एक ही विरासत के भागीदार हैं।''

साहित्यिक सन्दर्भ के अन्तर्गत लेखक ने विभिन्न भाषाओं की वर्णमाला और साहित्य की भावपक्षीय एकरूपता पर विचार किया है– ''भिन्न–भिन्न भाषाओं के भीतर बहने वाली हमारी भाव–धारा एक है तथा हम प्रायः एक ही तरह के विचारों तथा कथा–वस्तुओं को लेकर अपनी अपनी बोली में साहित्य रचना करते हैं। रामायण और महाभारत से लेकर भारत की प्रायः सभी भाषाओं के बीच अद्‌भुत एकता मिलेगी, क्योंकि ये दोनों काव्य सबके उपजीव्य रहे हैं....भारत की सभी लिपियों की वर्णमाला एक ही है, यद्यपि वह अलग–अलग लिपियों में लिखी जाती है जैसे हम हिन्दी में क, ख, ग आदि अक्षर पढ़ते हैं, वैसे ही ये अक्षर भारत की अन्य लिपियों में भी पढ़े जाते हैं, यद्यपि उनके लिखने का ढंग और है।''

समृद्ध वैचारिकता एवं तार्किक विश्लेषण– विचारात्मक निबन्धों में विचारों की सघनता पाया जाना स्वाभाविक–सी बात है। कवि होने के साथ–साथ वे भारतीय संस्कृति के बहुत बड़े जानकार व चिन्तक रहे हैं। बीसवीं शताब्दी के तीसरे दशक से सातवें दशक तक उनकी चेतना सांस्कृतिक, सामयिक एवं राष्ट्रहित चिन्तन से निरन्तर प्रतिध्वनित होती रही है। 'भारत एक है' निबन्ध में प्रारम्भ से अन्त तक उनके विचारों का प्रवाह दृष्टिगत होता है। निबन्ध के प्रारम्भिक अनुच्छेद में दिनकर जी ने भारत की भौगोलिक स्थिति पर विचार किया है और दूसरे अनुच्छेद में ऐतिहासिक सन्दर्भों में अपने विवेच्य विषय पर विचार किया है। और साथ ही दिनकर जी उस विचार पर तार्किक विवेचना भी प्रस्तुत करते हैं। दिनकर जी किसी बात को सूत्र रूप में कहकर नहीं छोड़ देते। वे उस बात को अध्यापक की तरह उदाहरण देकर समझाते हैं यथा– 'धरती की रूपरेखा और जलवायु का प्रभाव उस पर बसने वाले लोगों के शरीर और मस्तिष्क दोनों पर होता है। पहाड़ और रेगिस्तान की जिन्दगी जरा मुश्किल होती है। यही कारण है कि उसमें बसने वाले लोग आजाद तबियत के होते हैं क्योंकि प्रकृति की कठिनाइयों को झेलते–झेलते उनका शरीर कड़ा और मन साहसी एवं निर्भीक हो जाता है। भारतीय इतिहास में मराठों और राजपूतों की वीरता जो इतनी प्रसिद्ध हुई, उसका एक कारण यह भी है कि बचपन से ही मराठों को पहाड़ी तथा राजपूतों को पहाड़ी और रेगिस्तानी, दोनों ही प्रकार के जीवन से संघर्ष करने का मौका हासिल था।'' इसी प्रकार राष्ट्रीय एकता की वर्तमान तथा पुरातन स्थिति पर विचार करते हुए दिनकर जी ने लिखा है– ''आज हमारी एकता इतनी विशाल हो गई है जितनी विशाल वह रामायण, महाभारत, मौर्य और मुगल जमानों में कभी नहीं हुई थी। अब भी जो क्षेत्रीय जोश या प्रान्तीय मोह बाकी है, वह धीरे–धीरे कम हो जाएगा क्योंकि इस जोश को पालने वाली प्राकृतिक बाधाएँ अब शेष नहीं हैं। मगर, भाषा भेद की समस्या जरा कठिन है और उसका हल तभी निकलेगा जब हिन्दी भाषा क्षेत्र में अहिन्दी भाषाओं तथा अहिन्दी भाषी क्षेत्रों में हिन्दी भाषा का अच्छा प्रसार हो जाए।''

टिप्पणी

भाषा–शैली की उपयुक्तता– दिनकर जी एक ओजस्वी कवि होने के साथ–साथ एक गद्यकार हैं। कवि के रूप में उनकी भाषा कुछ और है और निबन्धकार के रूप में कुछ और। 'भारत एक है' निबन्ध में उनकी भाषा सरल व साधारण बोलचाल की है। लेखक ने कहीं भी अपनी भाषा को प्रयत्नपूर्वक संस्कृत–निष्ठ बनाने का प्रयास नहीं किया है। भाषा में उर्दू–फारसी के शब्द सहजरूप से आ गए हैं, एक उदाहरण देखिये– ''इसके सिवा अनेक सदियों तक हिन्दू–मुसलमान साथ रहते आए हैं और इस लम्बे सम्पर्क के फलस्वरूप उनके बीच संस्कृति और तहजीब की बहुत सी समान बातें पैदा हो गई हैं जो उन्हें दिनोंदिन आपस में नजदीक लाती जा रही हैं।''

वैचारिक निबन्धों में वैचारिक पक्ष जितना मजबूत होता है, उसका तार्किक विश्लेषण–विवेचन भी उतना ही सशक्त होना चाहिए। इस निबन्ध में हमें भाव पक्ष और शैली पक्ष का सुन्दर समन्वय देखने को मिलता है। इस निबन्ध में कहीं पर लेखक पहले अपना एक विचार रखता है फिर बाद में उसको अध्यापकीय शैली में उदाहरण देकर समझाता है और कहीं पहले विवेचना करके फिर अनुच्छेद के अन्त में अपना वैचारिक निष्कर्ष दे देता है। दोनों के एक–एक उदाहरण दृष्टव्य हैं–

1. जलवायु एवं क्षेत्रीय सुविधा के अनुसार ही लोगों के पहनावे, ओढ़ावे और खान–पान में भी भेद हो जाता है, जो भेद भारत में बहुत ही प्रत्यक्ष है। असल में इन भेदों को मिटाकर अगर हम कोई एक राष्ट्रीय रूप चलाना चाहें तो उससे अनेक लोगों को बहुत ज्यादा तकलीफ हो जाएगी। उदाहरण के लिए अगर हम रोटी और उड़द की दाल अथवा रोटी और मांस को देश का राष्ट्रीय भोजन बना दें तो पंजाबी लोग तो मजे में रहेंगे लेकिन बिहार और बंगाल के लोगों का हाल बुरा हो जाएगा।''
2. यह तो हुई भारत की विविधता की कहानी। अब जरा यह देखने की कोशिश करनी चाहिए कि इस विविधता के भीतर हमारी एकता कहाँ छिपी है.... भिन्न–भिन्न भाषाओं के भीतर बहने वाली हमारी भाव–धारा एक है तथा हम प्रायः एक ही तरह के विचारों और कथा–वस्तुओं को लेकर अपनी–अपनी बोली में साहित्य रचना करते हैं....इसके सिवा संस्कृत और प्राकृत में भारत का जो साहित्य लिखा गया था, उसका प्रभाव भी सभी भाषाओं की जड़ में काम कर रहा है। विचारों की एकता जाति की सबसे बड़ी एकता होती है।

समूचे निबन्ध में लेखक ने इसी अध्यापकीय शैली का निर्वाह किया है। अपनी एक बात कहकर लेखक उसे विभिन्न उदाहरण देकर पुष्ट करना नहीं भूलता। उदाहरणों से बात सुगमता से हृदयंगम हो जाती है। उदाहरण विचारों को पुष्ट भी करते हैं और निबन्ध को बोझिलता से भी बचाते हैं। लेखक का मानना है कि ''प्रत्येक देश की एक निजी सांस्कृतिक विशेषता होती है जो उस देश के प्रत्येक निवासी की चाल–ढाल, बातचीत, रहन–सहन, खान, तौर–तरीके और आदतों से टपकती रहती है।'' इस बात को लेखक ने अनेकानेक उदाहरण देकर पुष्ट किया है– ''चीन से आने वाला आदमी विलायत से आने वालों के बीच नहीं छिप सकता और यद्यपि अफ्रीका के लोग भी काले ही होते हैं मगर वे भारतवासियों के बीच नहीं खप सकते। भारतवर्ष में भी यूरोपीय पोशाकें खूब चली हुई हैं, लेकिन यूरोपीय लिबास में सजे हुए हिन्दुस्तानियों के बीच एक अंग्रेज को खड़ा कर दिया जाए तो वह आसानी से अलग पहचान लिया जाएगा।"

टिप्पणी

उद्देश्य अथवा प्रयोजन की दृष्टि से भी निबन्ध पूर्णतः सफल है। लेखक भारत की अनेकता में छिपी एकता के भाव को उजागर करना चाहता था, जिसके लिए भौगोलिक, सांस्कृतिक, ऐतिहासिक व सामाजिक सन्दर्भों का प्रयोग करके अपने विचारों को सोदाहरण रूप में सरल–सुबोध भाषा–शैली में प्रकट किया है। राष्ट्रीय एकता में बाधक तत्वों भाषा भेद, स्थान भेद (उत्तर, दक्षिणी) तथा धर्म (हिन्दू–मुस्लिम) आदि पर सम्यक् विचार करके और उनका निराकरण करके स्थान–स्थान पर लेखक ने देशहित में भारत की एकता का भाव प्रकट किया है जो कि आज के युग की अनिवार्य आवश्यकता है– 'असल में भाषा की दीवार के आर–पार बैठे हुए भी वे एक ही हैं। एक ही धर्म के अनुयायी और संस्कृति की एक ही विरासत के भागीदार, उन्होंने देश की आजादी के लिए एक होकर लड़ाई लड़ी और आज उनकी पार्लियामेण्ट और शासन विधान भी एक है... अनेक सदियों तक हिन्दू मुसलमान साथ रहते आए हैं और इस लम्बे सम्पर्क के फलस्वरूप उनके बीच संस्कृति और तहजीब की बहुत सी समान बातें पैदा हो गई हैं जो उन्हें दिनोंदिन आपस में नजदीक लाती जा रही हैं। भारत दुनिया से अलग और अपने आप में पूर्ण है तथा जिसके भीतर बसने वाले सब लोग भारतीय हैं। अन्ततः हम कह सकते हैं कि 'भारत एक है' निबन्ध की कसौटी पर पूर्णतः खरा उतरता है।

अपनी प्रगति जाँचिए

3. भूषण के बाद किस कवि को 'वीर रस' का सबसे बड़ा कवि माना गया है?

(क) भवानी प्रसाद मिश्र (ख) सर्वेश्वर दयाल सक्सेना

(ग) रामधारी सिंह 'दिनकर' (घ) अज्ञेय

4. 'भारत एक है' शीर्षक निबन्ध में दिनकर ने किस पर विचार किया है?

(क) ग्रामीण संस्कृति (ख) सांस्कृतिक एकता

(ग) धार्मिक स्वरूप (घ) भाषाई

4.4 संक्षेपण

'संक्षेपण' शब्द अंग्रेजी के शब्द प्रेसी (Precis) का अनुवाद है। इसके लिए हिंदी में संक्षेपीकरण, संक्षिप्तीकरण, संक्षिप्त लेख, संक्षिप्त लेखन, सार लेखन आदि शब्दों का प्रयोग किया जाता है परंतु सर्वाधिक प्रचलित शब्द 'संक्षेपण' ही है। संक्षेपण करते समय मुख्य रूप से यह ध्यान रखना पड़ता है कि अनावश्यक एवं अप्रासंगिक अंशों को छोड़कर आवश्यक संबद्ध प्रासंगिक एवं उपयोगी तथ्यों का संकलन इस प्रकार किया जाए कि रचना का आकार तो एक तिहाई रह जाए, परंतु मूल रचना के कथ्य में किसी प्रकार का अंतर नहीं आना चाहिए। अतएव किसी विस्तृत व्याख्यान, वर्णन, पत्र, लेख, निबंध, अनुच्छेद आदि को सीमित या संक्षिप्त करना संक्षेपण के अंतर्गत आता है। इसी कारण 'संक्षेपण' की सर्वमान्य परिभाषा नहीं हो सकती है।

परिभाषा

किसी विस्तृत अवतरण, वक्तव्य, लेख, निबंध, अनुच्छेद आदि में व्यक्त भावों एवं विचारों को मूल की अपेक्षा बहुत कम शब्दों में सरल, स्पष्ट एवं क्रमबद्ध रूप से प्रकट करना 'संक्षेपण' कहलाता है।

संक्षेपण के प्रकार

टिप्पणी

प्रायः व्याख्यान, कहानी, समाचार, संदेश, पत्र, संवाद आदि विविध विषयों का संक्षेपण किया जाता है। अतः सुविधा की दृष्टि से सभी विषयों को तीन भागों में विभाजित कर सकते हैं–

(1) स्वतंत्र विषयों का संक्षेपण

(2) समाचारों का संक्षेपण

(3) पत्राचारों का संक्षेपण

(1) **स्वतंत्र विषयों का संक्षेपण**– इस भाग के अंतर्गत व्याख्यान, उपदेश, शिक्षा, साहित्य, दर्शन, लेख, कहानी आदि से संबंधित सभी विषय आ सकते हैं। इनमें कुछ विषय विचारात्मक होते हैं, कुछ भावात्मक होते हैं और कुछ वर्णनात्मक होते हैं। कहीं–कहीं संवादों का भी संक्षेपण किया जाता है। इस तरह इस भाग में सभी प्रकार के विषय आ जाते हैं।

(2) **समाचारों का संक्षेपण**– इस भाग के अंतर्गत वे समाचार आते हैं जो दैनिक, पाक्षिक या मासिक पत्रों में प्रकाशित होते हैं और जिनको आकर्षक शीर्षक देकर उपयुक्त ढंग से संक्षेप में इस तरह प्रस्तुत किया जाता है कि मूल घटना या तथ्य पूर्ण रूप से पाठकों की समझ में आ जाए और समाचार–पत्र का अधिक स्थान भी न घिरे।

(3) **पत्राचारों का संक्षेपण**– इस भाग के अंतर्गत सरकारी, अर्द्ध–सरकारी या गैर–सरकारी कार्यालयों में संदेश, आदेश, सहमति, विरोध, सुझाव, सम्मति, सूचना आदि देने के लिए जो पत्राचार होता है– वे सभी पत्र आ जाते हैं। यथा– पत्राचार का संक्षेपण और सूची–संक्षेपण। सामान्य संक्षेपण को 'प्रवाह संक्षेपण' भी कहते हैं। इसमें किसी पत्र के सभी संदर्भ तथा विषय को एक ही प्रवाह में सामान्य ढंग से संक्षिप्त रूप से प्रस्तुत किया जाता है। 'सूची संक्षेपण' को 'तालिका संक्षेपण' भी कहते हैं। इसमें पत्र या पत्रों की सूची अथवा तालिका संक्षेप में तैयार की जाती है। इस सूची का स्वरूप इस प्रकार होता है–

क्रम सं.	पत्र सं.	दिनांक	प्रेषक	प्रेषिती	पत्र का संक्षिप्त विषय
1	2	3	4	5	6

संक्षेपण के नियम/संक्षेपण की प्रविधि

1. सबसे पहले संक्षेपण के लिए दिए अनुच्छेद या अवतरण को अच्छी तरह ध्यानपूर्वक पढ़ना चाहिए। जब तक इस अनुच्छेद या अवतरण में विद्यमान भाव या विचार का ठीक–ठाक चित्र सामने न आए अथवा जब तक वह पूर्णतया स्पष्ट न हो, तब तक उसे बार–बार पढ़ना चाहिए। भले ही उस अनुच्छेद या अवतरण के प्रत्येक शब्द का अर्थ ज्ञात न हो, किंतु सर्वप्रथम विवेचित वस्तु, कथ्य या मूल विषय को पूर्णतया ग्रहण कर लेना आवश्यक होता है।
2. उस अनुच्छेद या अवतरण के केंद्रीय भाव या मूल विचार को जान लेने के उपरांत उसके शीर्षक का चुनाव करना चाहिए। शीर्षक सदैव भाव या मूल विचार

टिप्पणी

से संबद्ध होना चाहिए और वह आकर्षक होने के साथ–साथ कथ्य के साथ मेल खाने वाला एवं सार्थक होना चाहिए। इसी कारण पहले दो–तीन शीर्षकों को लिख लेना चाहिए और फिर उनमें जो अधिक उपयुक्त, समीचीन एवं तथ्यपूर्ण प्रतीत हो उसी को वास्तविक मान लेना चाहिए।

3. अनुच्छेद या अवतरण को पढ़ते समय यह सावधानी रखनी चाहिए कि उसमें से कौन सा अंश संक्षेपण की दृष्टि से प्रमुख है। ऐसे सभी अंशों को रेखांकित कर लेना चाहिए और यह देख लेना चाहिए कि कोई आवश्यक अंश छूट तो नहीं गया है।
4. संक्षेपण तैयार करने से पहले मूल अवतरण या अनुच्छेद में दिए गए शब्दों की गणना कर लेनी चाहिए क्योंकि इसके उपरांत ही यह निर्णय किया जा सकता है कि आपको कितने शब्दों में संक्षेपण तैयार करना है। प्रायः संक्षेपण के लिए यह नियम है कि यह मूल अवतरण या अनुच्छेद का एक तिहाई होना चाहिए। अतः यदि किसी अनुच्छेद या अवतरण में 180 शब्द हैं, तो आपको लगभग 60 शब्दों में अपना संक्षेपण तैयार करना चाहिए परंतु यह कोई अटूट सिद्धांत नहीं है कि उस संक्षेपण में केवल 60 शब्द ही हों अर्थात 65 या 58 शब्द भी हों तो कोई आपत्ति नहीं है।
5. शब्द गणना करने के बाद मूल अनुच्छेद या अवतरण में रेखांकित या गृहीत मूल तत्वों एवं विचारों को लेकर संक्षेपण का प्रारूप तैयार करना चाहिए। इस प्रारूप के अंतर्गत पहले तो समस्त विशृंखलित विचारों को रखा जा सकता है परंतु फिर उनमें संशोधन या परिवर्तन करके उन्हें क्रमबद्ध रूप में लिखना चाहिए जिससे उसमें विचारों या भावों का प्रवाह आ जाए और वह पूर्णतया व्यवस्थित हो जाए।
6. उस संक्षेपण को एक ओर रखकर एक बार मूल अवतरण या अनुच्छेद को पढ़ना चाहिए और यह देखना चाहिए कि तैयार संक्षेपण के मूल भाव या विचार में कोई अंतर तो नहीं आ गया है। संक्षेपण करते समय अपनी ओर से कुछ जोड़ने या परिवर्तन करने का अधिकार आपको नहीं है।
7. संक्षेपण को अंतिम रूप देने से पहले उसे एक बार पढ़कर फिर यह देखना चाहिए कि वह एक स्पष्ट, स्वतंत्र एवं सुव्यवस्थित अनुच्छेद के समान है अथवा नहीं। एक अच्छे संक्षेपण की सबसे बड़ी विशेषता यह होती है कि वह मूल अनुच्छेद या अवतरण से पूर्णतया संबद्ध हो और ऐसा न जान पड़े कि यह इधर–उधर से इकट्ठे किए गए तथ्यों का अव्यवस्थित संकलन है।
8. संक्षेपण में कदापि किसी भाव या विचार की पुनरावृत्ति नहीं होनी चाहिए।
9. संक्षेपण में मूल अवतरण या अनुच्छेद में दिए गए विचारों या भावों की आलोचना भी नहीं होनी चाहिए क्योंकि वह तो मूल विषय का संक्षेप में पुनः प्रस्तुतीकरण होता है।
10. संक्षेपण में स्पष्टता और सरलता का होना आवश्यक है क्योंकि इसके बिना मूल अवतरण या अनुच्छेद का स्पष्ट अर्थ समझ में नहीं आ सकता।
11. संक्षेपण की भाषा व्याकरण–सम्मत, शुद्ध, सरल एवं प्रवाहमयी होनी चाहिए। उसमें क्लिष्ट शब्द, लोकोक्ति, मुहावरे, कहावत, सूक्ति आदि का प्रयोग नहीं होना चाहिए और जहाँ तक संभव हो मूल अवतरण या अनुच्छेद में दिए गए

शब्दों का ही प्रयोग होना चाहिए। साथ ही संक्षेपण की भाषा अलंकारों, विशेषणों, भावुकतापूर्ण प्रयोगों से सर्वथा रहित होनी चाहिए।

12. संक्षेपण में उत्तम पुरुष तथा मध्य पुरुष के स्थान पर अन्य पुरुष का ही प्रयोग करना चाहिए।
13. पत्र, व्याख्यान, आदेश आदि में भूतकालिक क्रियाओं का ही प्रयोग होना चाहिए।
14. संवादों का संक्षेपण करते समय वर्णनात्मक शैली का प्रयोग करना चाहिए और संवादों के सभी वर्णन भी भूतकालिक ही होने चाहिए।
15. पत्राचार संबंधी संक्षेपणों में से अधिकारियों के नाम हटा देने चाहिए और केवल उन पदों का ही उल्लेख करना चाहिए।
16. समाचारों का संक्षेपण करते समय उनमें तिथि, स्थान तथा संबद्ध व्यक्तियों का उल्लेख अवश्य होना चाहिए और उन समाचारों का शीर्षक आकर्षक, उपयुक्त एवं तथ्यपूर्ण होना चाहिए क्योंकि समाचार–पत्रों में शीर्षक का सर्वाधिक महत्व होता है और उसी को पढ़कर पाठक समाचार पढ़ते हैं।
17. संक्षेपण में किसी प्रकार की भूमिका तथा उपसंहार का प्रयोग कदापि नहीं करना चाहिए और उसमें उदाहरणों एवं दृष्टांतों का प्रयोग भी नहीं होना चाहिए।

टिप्पणी

श्रेष्ठ संक्षेपण की विशेषताएँ

एक श्रेष्ठ संक्षेपण वही माना जाता है जिसमें निम्नलिखित विशेषताएँ होती हैं–

1. संक्षिप्तता
2. समाचार शक्ति
3. अभिव्यक्ति में स्पष्टता
4. विवेचनात्मकता
5. तारतम्यता
6. पूर्णता
7. प्रभावोत्पादकता

संक्षेपण के उदाहरण

किसी भी गद्यांश, अवतरण या अनुच्छेद का संक्षेपण करते समय दो बातों की ओर ध्यान देना परमावश्यक होता है– एक तो गद्यांश, अवतरण या अनुच्छेद का उपयुक्त शीर्षक देना तथा दूसरे उसका एक तिहाई में संक्षेपण करना। नीचे इसके कुछ उदाहरण दिए गए हैं–

उदाहरण 1

शिक्षा और परीक्षा के माध्यम के रूप में हिंदी को स्वीकार करने का प्रश्न दिनों–दिन जटिल होता जा रहा है। यद्यपि भारतीय संविधान में सार्वदेशिक आधार पर, विभिन्न राजकीय प्रयोजनों के लिए देवनागरी लिपि में लिखित हिंदी–भाषा के व्यवहार की व्याख्या की गई है, तथापि विभिन्न राज्यों को क्षेत्रीय भाषाओं के रूप में, स्थानीय प्रयोजनों के लिए अपने राज्य की भाषाओं के समुचित व्यवहार की सुविधा भी दी गई

टिप्पणी

है। इस वैधानिक व्यवस्था के अनुसार भारत के भिन्न–भिन्न राज्यों के विश्वविद्यालयों तथा अन्य प्रकार की शिक्षा संस्थाओं में, शिक्षा और परीक्षा के माध्यम के रूप में विभिन्न भाषाओं का व्यवहार किया जा रहा है। इसके अतिरिक्त कुछ ऐसे लोग अंग्रेजी को इन क्षेत्रों में बनाए रखना चाहते हैं, जो अंग्रेजी के जाने के बाद अपने आपको अनाथ अनुभव करने लगे हैं। संभवतः राष्ट्रीय विकास की दृष्टि से ये प्रवृत्तियाँ कदापि वांछनीय नहीं हैं। देश के स्वाभाविक विकास और एकता के लिए सभी शिक्षण–संस्थाओं में, सभी शिक्षार्थियों और परीक्षार्थियों के लिए, राष्ट्रभाषा हिंदी–भाषी क्षेत्रों में कतिपय अंग्रेजी पढ़े–लिखे लोगों द्वारा जो प्रचार और व्यापार हो रहे हैं, उनका अविलंब अंत होना राष्ट्रभाषा एवं अन्य प्रांतीय भाषाओं के विकास और राष्ट्रीय एकता की स्थापना के लिए अत्यंत आवश्यक है। यह तभी संभव है, जब इस प्रश्न पर राष्ट्रीय दृष्टि से सहानुभूति के साथ विचार हो। हमें ऐसा यत्न करना चाहिए कि सभी देशवासी, अपनी–अपनी मातृभाषा की समुचित शिक्षा के अतिरिक्त राष्ट्रभाषा हिंदी का यथेष्ट ज्ञानप्राप्त करना राष्ट्रहित की सिद्धि का साधन समझें।

संक्षेपण

शीर्षक–मातृभाषा और राष्ट्रभाषा के अध्ययन की अनिवार्यता

भारतीय संविधान में विभिन्न राजकीय प्रयोजनों के लिए देवनागरी लिपि में लिखित हिंदी के साथ–साथ क्षेत्रीय भाषाओं के व्यवहार की सुविधा दी गई है। इसी से विभिन्न प्रांतों में शिक्षा और परीक्षा के माध्यम के लिए विभिन्न भारतीय भाषाओं का व्यवहार हो रहा है परंतु कुछ अंग्रेजी पढ़े–लिखे व्यक्ति स्वार्थवश इसका विरोध कर रहे हैं जो राष्ट्रभाषा और क्षेत्रीय भाषा दोनों के विकास में बाधक है। अतः राष्ट्रहित में ऐसा यत्न होना चाहिए कि सभी देशवासी मातृभाषा के अतिरिक्त राष्ट्रभाषा का अध्ययन भी अनिवार्य रूप से करें।

उदाहरण 2

शिवाजी बहुत वीर और साहसी थे, यह तो उनकी विजय गाथाओं और सफलताओं से ही स्पष्ट है परंतु उनका सबसे अधिक महत्व इस कारण है कि उन्होंने भारत में एक नयी युद्धकला की शुरुआत की। शिवाजी से पहले राजपूत लोग यह समझते थे कि युद्ध में पीठ दिखाना कायरता की निशानी है इसलिए चाहे अपना बल कम और शत्रु का बल अधिक भी हो तो भी युद्ध में लड़ते–लड़ते मर जाना ही वीरता है परंतु शिवाजी ने इस बात को समझा कि युद्ध का अंतिम उद्देश्य विजय है, वीरता–प्रदर्शन अपने–आप में कोई उद्देश्य नहीं है।

संक्षेपण

शीर्षक– शिवाजी की युद्धकला

वीर और साहसी होते हुए भी शिवाजी का महत्व उनकी नई युद्धकला के कारण है। उनसे पहले राजपूत वीर युद्ध से भागने को कायरता और लड़ते हुए मरने को वीरता मानते थे, भले ही शत्रु उनसे कहीं अधिक बलवान क्यों न हो परंतु शिवाजी ने वीरता प्रदर्शन को महत्व न देकर विजय को ही युद्ध का अंतिम उद्देश्य समझा था।

उदाहरण 3

टिप्पणी

प्रेषक,

कुल सचिव,
चौ. चरण सिंह विश्वविद्यालय, मेरठ।

सेवा में,

समस्त प्राचार्य
आगरा विश्वविद्यालय से संबद्ध महाविद्यालय।

पत्रांक–ए/आ/आध्या/4015/2011 दिनांक 4–8–2011

महोदय/महोदया,

इस कार्यालय के परिपत्र संख्या ए/आ/आध्या/4001/2011 दिनांक जून 10, 2011 के संदर्भ में कहा गया है कि विश्वविद्यालय से संबद्ध महाविद्यालयों के अध्यापकों के सेवा–निवृत्त होने पर, सेवा–मुक्ति देने पर अथवा विद्यालयों की सेवाएँ त्यागने पर महाविद्यालय उनको पूरा वेतन, भविष्यनिधि, वेतन वृद्धि, संशोधित वेतनमान, संशोधित मंहगाई भत्ता आदि का शीघ्र ही भुगतान कर दें। यदि सेवानिवृत्त होने पर कोई अध्यापक नये नियमानुसार पेंशन लेना चाहे, तो उनके द्वारा जमा की गई भविष्य निधि ही दी जाए, जबकि महाविद्यालय द्वारा जमा की गई भविष्यनिधि सरकारी कोष में ही रहने दी जाए।

मुझे यह कहने का आदेश हुआ है कि उपर्युक्त तथ्य महामंत्री विश्वविद्यालय शिक्षक संघ के उत्तर प्रदेश के प्रस्ताव पर आधारित हैं। इसे केवल न्याय एवं सिद्धांत के आधार पर उचित समझा गया है। अतः आप इसे विश्वविद्यालय का साग्रह अनुरोध समझकर अपने महाविद्यालय में कार्यान्वित करें।

भवदीय,
राजकुमार
कुल सचिव

संक्षेपण

पत्र–संक्षेपण की सूची–पद्धति

क्रम संख्या	पत्रांक	दिनांक	प्रेषक	प्रेषिती	संक्षेप में विवरण
1	ए/आ/आध्या/4015/2011	4–8–2011	कुल सचिव चौ. चरण सिंह विश्वविद्यालय मेरठ	समस्त प्राचार्य चौ. चरण सिंह विश्वविद्यालय मेरठ से संबद्ध महाविद्यालय	विश्वविद्यालय शिक्षक संघ उ.प्र. के प्रस्ताव पर आधारित, अध्यापकों की सेवा–निवृत्ति, सेवा–मुक्ति या सेवायें त्यागने पर वेतन अदि का शीघ्र भुगतान तथा सेवा–निवृत्त अध्यापकों के नये नियमानुसार पेंशन लेने पर उनके द्वारा जमा भविष्य–निधि का भुगतान तथा महाविद्यालय द्वारा जमा की गई भविष्य–निधि को सरकारी कोष में ही रहने देने का अनुरोध।

टिप्पणी

पत्र–संक्षेपण की सामान्य पद्धति

पत्रांक ए/आ/आध्या/4015/2011 दिनांक 4–8–2011 के द्वारा कुल सचिव, चौ. चरण सिंह विश्वविद्यालय का, विश्वविद्यालय शिक्षक संघ उ.प्र. के प्रस्ताव पर आधारित विश्वविद्यालय से संबंधित महाविद्यालयों के प्राचार्यों से अनुरोध; जिसमें अध्यापकों को सेवानिवृत्ति, सेवा–मुक्ति या सेवाएँ त्यागने पर वेतन आदि के शीघ्र भुगतान हेतु कहा गया है और सेवानिवृत्त अध्यापकों के नये नियमानुसार पेंशन लेने पर उनके द्वारा जमा की गई भविष्यनिधि का भुगतान करने तथा महावविद्यालयों द्वारा जमा की गई भविष्य निधि की राशि को सरकारी कोष में रहने देने का आदेश दिया गया है।

अपनी प्रगति जाँचिए

5. संक्षेपण हेतु संक्षिप्त अवतरण में शब्द संख्या मूल अवतरण के कितनी होनी चाहिए?

   (क) एक चौथाई (ख) दो तिहाई

   (ग) आधी (घ) एक तिहाई

6. निम्न में से क्या संक्षेपण की विशेषता में सम्मिलित नहीं है?

   (क) संक्षिप्तता (ख) तारतम्यता

   (ग) भावुकता (घ) पूर्णता

4.5 अपनी प्रगति जाँचिए प्रश्नों के उत्तर

1. (घ)
2. (क)
3. (ग)
4. (ख)
5. (घ)
6. (ग)

4.6 सारांश

निबन्ध में गद्य के सम्पूर्ण बल, तीव्रतम प्रवाह और अर्थ–विस्तार की परख होती है। निबन्ध किसी भी साहित्य के गद्य–विकास का मापदंड है। आधुनिक युग में गद्य की अनेक विधाओं का विकास हुआ– रिपोर्ताज, रेखाचित्र, संस्मरण, यात्रा–साहित्य, हास्य व्यंग्य आदि।

'अफसर' शरद जोशी द्वारा लिखित एक व्यंग्यात्मक निबन्ध है। हास्य–व्यंग्य का क्षेत्र बड़ा व्यापक है। सामाजिक और राजनीतिक जीवन की प्रत्येक विसंगति को अपने व्यंग्य एवं हास्य का लक्ष्य बनाना लेखक का उद्देश्य रहता है।

टिप्पणी

इस समूचे व्यंग्य निबन्ध में कार्यालय संस्कृति को रोचक ढंग से उजागर किया गया है। कार्यालय में अफसर आते–जाते रहते हैं। अफसर के दस्तखत के बिना एक गड्ढा भी नहीं खुद सकता और दस्तखत सरलता से होते नहीं हैं। नये अफसर के आने पर ऊपरी व्यवस्था बदल जाती है, अफसर की नयी कुर्सी आती है, पुरानी फेंक दी जाती है और अफसरी पूर्ववत् बनी रहती है।

धरती की रूपरेखा और जलवायु का प्रभाव उस पर बसने वाले लोगों के शरीर, मन, स्वभाव, मस्तिष्क तथा दिनचर्या, पर अनिवार्य रूप से पड़ता है। पहाड़, रेगिस्तान और नदियों के पठार पर जीवन–यापन करने वाले लोगों का शरीर और स्वभाव अलग अलग होता है। जलवायु एवं क्षेत्रीय सुविधा के अनुसार ही लोगों के पहनावे, ओढ़ावे और खान–पान में भी भेद हो जाता है। यह भेद भारत में बहुत ही प्रत्यक्ष, स्वाभाविक तथा आवश्यक है। इन भेदों को मिटाकर यदि कोई खान–पान या पहनावे को राष्ट्रीय रूप में चलाना चाहें तो ऐसा सम्भव नहीं है।

विविधता का सबसे बड़ा लक्षण है भारत की भाषागत विविधता।

दिनकर भारत की भौगोलिक स्थिति को समझाते हैं। इस विषय पर ऐतिहासिक दृष्टि भी डालते हैं। तत्पश्चात् राष्ट्रीय एकता में बाधक तत्वों पर विचार करते हुए भाषागत विविधता को राष्ट्रीय एकता में सबसे बड़ी बाधा के रूप में देखते हुए लिखते हैं ''मगर भाषा–भेद की समस्या जरा कठिन है और उसका हल तभी निकलेगा जब हिन्दी भाषा क्षेत्र में अहिन्दी भाषाओं तथा अहिन्दी भाषी क्षेत्रों में हिन्दी भाषा का अच्छा प्रसार हो जाए। सौभाग्य की बात है कि इस दिशा में काम शुरू हो गए हैं ओर कुछ समय बीतते–बीतते हम इस बाधा पर भी विजय प्राप्त कर लेंगे।''

संक्षेपण करते समय मुख्य रूप से यह ध्यान रखना पड़ता है कि अनावश्यक एवं अप्रासंगिक अंशों को छोड़कर आवश्यक संबद्ध प्रासंगिक एवं उपयोगी तथ्यों का संकलन इस प्रकार किया जाए कि रचना का आकार तो एक तिहाई रह जाए, परंतु मूल रचना के कथ्य में किसी प्रकार का अंतर नहीं आना चाहिए।

4.7 मुख्य शब्दावली

- **पाण्डुलिपि** – हाथ से लिखी गई रचना का शुरुआती प्रारूप
- **सस्पेंड** – निलंबित
- **पंक्चुअलटी** – नियमितता
- **अक्षुण्ण** – अटूट, जिसका क्षय न हो।

4.8 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास

लघु–उत्तरीय प्रश्न

1. शरद जोशी द्वारा रचित किन्हीं चार कृतियों के नाम बताइए।
2. 'अर्द्धनारीश्वर' निबन्ध संग्रह में दिनकर ने किन वृत्तियों पर चिंतन किया है?
3. लेखक के अनुसार भारत की राष्ट्रीय एकता में सबसे बड़ी बाधा कौन–सी है?
4. संक्षेपण की परिभाषा दीजिए

टिप्पणी

दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न

1. व्यंग्यात्मक निबन्ध 'अफसर' की प्रासंगिकता पर प्रकाश डालिए।
2. शरद जोशी जी ने 'अफसर' निबन्ध में अफसरी मनोवृत्ति का चित्रण किस तरह से किया है। विश्लेषण कीजिए।
3. 'भारत एक है' निबन्ध का सार अपने शब्दों में लिखिए।
4. 'भारत एक है' निबन्ध में दिनकर ने किस तरह से भारत की भौगोलिक, सांस्कृतिक व साहित्यिक एकता के सन्दर्भ को प्रकाशित किया है? अपने विचार दीजिए।
5. संक्षेपण के प्रकारों का वर्णन करते हुए नियमों का उल्लेख कीजिए।

4.9 सहायक पाठ्य सामग्री

1. 'प्रतिनिधि कविताएं', जयशंकर प्रसाद, राजकमल प्रकाशन, 2015
2. 'माखनलाल चतुर्वेदी रचना संचयन', चयन एवं संपादन– कृष्णदत्त पालीवाल, 2014.
3. 'आधुनिक हिन्दी व्याकरण और रचना', डॉ. वासुदेवनंदन प्रसाद, भारती भवन पब्लिशर एवं डिस्ट्रीब्यूटर, 2017
4. 'हिन्दी व्याकरण', कामता प्रसाद गुरु, वाणी प्रकाशन, 2014
5. 'प्रेमचंद का व्यक्तित्व', लक्ष्मण राव, भारतीय साहित्य कला प्रकाशन, 2019
6. 'भाषीय औदात्तय', डॉ. त्रिभुवन शुक्ल, वाणी प्रकाशन, 2016
7. 'व्यक्तित्व का संपूर्ण विकास', स्वामी विवेकानंद, प्रभात प्रकाशन, 2017
8. 'भगवान बुद्ध तथा उनके संदेश', स्वामी विवेकानंद, रामकृष्ण मठ, नागपुर, 2011
9. 'विवेकानंद साहित्य' (10 वाल्यूम), स्वामी विवेकानंद, अद्वैत आश्रम, 2017
10. 'हिन्दी भाषा प्रकृति, प्रयोग और शिक्षा', हीरालाल बाछोतिया, आर्यप्रकाशन मंडल, दिल्ली, 2012
11. 'डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन', आर.पी.एच. एडिटोरियल बोर्ड, रमेश पब्लिशिंग हाउस, 2016
12. 'डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन', बृजकिशोर, प्रभात प्रकाशन, 2018
13. 'व्यंग्य समय', शरद जोशी, किताब घर प्रकाशन, 2017
14. 'व्यंगर्षि शरद जोशी', वागीश सारस्वत, शिल्पायान, 2013
15. 'व्यक्तिगत निबन्ध और डायरी', रामधारी सिंह दिनकर, नेहा पब्लिशिंग एंड डिस्ट्रीब्यूटर, 2012
16. 'हमारी सांस्कृतिक एकता' (वाल्यूम 3 ऑफ 29), दिनकर ग्रंथालय, लोकभारती प्रकाशन, 2019
17. 'हिन्दी के प्रमुख निबन्धकार और उनका निबन्ध साहित्य', डॉ. जीवनभाई आर. डांगर, शांति प्रकाशन, 2016

इकाई 5 नैतिक मूल्य

टिप्पणी

संरचना

5.0 परिचय
5.1 उद्देश्य
5.2 नैतिक मूल्य : परिचय एवं वर्गीकरण (आलेख) : डॉ. शशि राय
  5.2.1 'नैतिक मूल्य : परिचय एवं वर्गीकरण' का मूल पाठ
  5.2.2 'नैतिक मूल्य : परिचय एवं वर्गीकरण' का सार
  5.2.3 व्याख्यांश
  5.2.4 'नैतिक मूल्य : परिचय एवं वर्गीकरण' की समीक्षात्मक अध्ययन
5.3 आचरण की सभ्यता (निबन्ध) : सरदार पूर्णसिंह
  5.3.1 'आचरण की सभ्यता' (निबन्ध) का मूल पाठ
  5.3.2 'आचरण की सभ्यता' निबन्ध का सार
  5.3.3 व्याख्यांश
  5.3.4 'आचरण की सभ्यता' निबन्ध का समीक्षात्मक अध्ययन
5.4 अंतर्ज्ञान और नैतिक जीवन (लेख) : डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन
  5.4.1 'अंतर्ज्ञान और नैतिक जीवन' का मूल पाठ
  5.4.2 'अंतर्ज्ञान और नैतिक जीवन' का सार
  5.4.3 व्याख्यांश
  5.4.4 'अंतर्ज्ञान और नैतिक जीवन' का समीक्षात्मक अध्ययन
5.5 अप्प दीपो भव (लेख) : स्वामी श्रद्धानंद
  5.5.1 'अप्प दीपो भव' का मूल पाठ
  5.5.2 'अप्प दीपो भव' लेख का सार
  5.5.3 व्याख्यांश
  5.5.4 'अप्प दीपो भव' लेख का समीक्षात्मक अध्ययन
5.6 अपनी प्रगति जाँचिए प्रश्नों के उत्तर
5.7 सारांश
5.8 मुख्य शब्दावली
5.9 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
5.10 सहायक पाठ्य सामग्री

5.0 परिचय

मानव–समाज का निर्माण कुछ मूल्यों पर हुआ है। इन्हीं मूल्यों पर चलकर एक साधारण मानव, मनुष्य की श्रेणी में आ सकता है, अन्यथा मानव व सृष्टि के अन्य जीव–जन्तुओं में कोई विशेष अंतर नहीं रह जाता है। इन्हीं मूल्यों को नैतिक मूल्य कहा जाता है।

नैतिक मूल्यों की चर्चा करते हुए प्रसिद्ध शिक्षाविद् डॉ. शशि राय ने एक विस्तृत आलेख 'नैतिक मूल्य परिचय एवं वर्गीकरण' लिखा है। यह आलेख नैतिक मूल्यों का परिचय देते हुए उनके वर्गीकरण व उनकी आवश्यकता पर प्रकाश डालता है।

सरदार पूर्णसिंह हिन्दी निबन्ध के क्षेत्र में मात्र छह निबन्धों के साथ इतने प्रबल हस्ताक्षर के रूप में उपस्थित हैं कि इतनी अल्प मात्रा के बावजूद उनकी आवश्यकता हिन्दी साहित्य में कहीं कम नहीं लगती। उनके निबन्ध भावात्मकता के साथ वैचारिकता को समाये हुए हैं। 'आचरण की सभ्यता' उनका ऐसा ही एक निबन्ध है।

टिप्पणी

आधुनिक भारत के महानतम दार्शनिक, अध्यापक व राजनीतिज्ञ डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन भारत के पहले उपराष्ट्रपति व दूसरे राष्ट्रपति थे। दर्शन के क्षेत्र में इनका प्रमुख स्थान है। इनके लेख–निबन्ध आदि तर्कों एवं प्रमाणों के साथ भाव व विचार के मिश्रण को लेकर अपने आशय की पुष्टि करते हैं। नैतिक जीवन में अंतर्ज्ञान की क्या उपयोगिता है, इस विषय को लेकर उनका एक चर्चित लेख है– 'अंतर्ज्ञान और नैतिक जीवन'।

20वीं सदी में हिन्दुओं–मुसलमानों का यदि कोई साझा नेता उदित हुआ है, तो वह निश्चय ही स्वामी श्रद्धानंद हैं। आर्य समाज के प्रचारक व गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के संस्थापक स्वामी श्रद्धानंद एक महान शिक्षाविद्, स्वतंत्रता संग्राम सेनानी व सर्वधर्म समभाव के समर्थक थे।

इस इकाई में डॉ. शशि राय का आलेख 'नैतिक मूल्य परिचय एवं वर्गीकरण' सम्मिलित है। यह पाठ नैतिक मूल्यों की परिभाषा, उनके वर्गीकरण व उनकी प्रासंगिकता को समझने में सहायक है। सरदार पूर्णसिंह का निबन्ध 'आचरण की सभ्यता' मनुष्य के जीवन में सदाचरण की उपयोगिता पर आधारित है। डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन का लेख 'अंतर्ज्ञान और नैतिक जीवन' मनुष्य की नैतिकता की उसके अंतर्ज्ञान पर निर्भरता की ओर ध्यान दिलाता है। साथ ही स्वामी श्रद्धानंद का दीक्षान्त समारोह में दिया गया अध्यक्षीय भाषण लेख रूप में 'अप्प दीपो भव' नाम से सम्मिलित है। यह पाठ छात्रों को स्वयं के अंतर्मन से दीप्त होने का संदेश देता है।

5.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- नैतिक मूल्यों की परिभाषा, परिचय एवं वर्गीकरण के आधारों को जान पाएँगे;
- निबन्ध के रूप में 'आचरण की सभ्यता' निबन्ध की समीक्षा कर पाएँगे;
- अंतर्ज्ञान और नैतिक जीवन के परस्पर संबंधों पर डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन के विचारों से अवगत हो पाएँगे;
- 'अप्प दीपो भव' लेख के माध्यम से स्वामी श्रद्धानंद की दृष्टि पर विचार कर पाएँगे।

5.2 नैतिक मूल्य : परिचय एवं वर्गीकरण (आलेख) : डॉ. शशि राय

शिक्षाविद् डॉ. शशि राय का जन्म 11 अप्रैल, 1944 को महाराष्ट्र में हुआ। उन्होंने वनस्पति शास्त्र में एम.एससी. तथा पीएच.डी. की उपाधि प्राप्त की। 41 वर्षों की शासकीय सेवा के दौरान अध्यापन, अनुसंधान तथा प्रशासकीय सभी दायित्वों का निर्वाह किया। शासकीय महाविद्यालय की स्नातकोत्तर प्राचार्य पद से सेवानिवृत्ति के पश्चात उन्होंने 3 वर्ष विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की सदस्य के रूप में सेवाएँ दीं। वर्तमान में वे मध्य प्रदेश राज्य उच्च शिक्षा परिषद की सदस्य हैं। शिक्षा के क्षेत्र में योगदान हेतु उन्हें विभिन्न संस्थाओं द्वारा सम्मानित भी किया गया।

5.2.1 'नैतिक मूल्य : परिचय एवं वर्गीकरण' का मूल पाठ

टिप्पणी

सम्पूर्ण जीव जगत में मनुष्य जीवन को अन्य प्राणियों ओर वनस्पतियों से भिन्न माना जाता है। यह भी अवधारणा है कि मनुष्य जीव जगत की सर्वोच्च विकसित प्रजाति है। मनुष्य में समाजीकरण की प्रवृत्ति अधिकतम पायी जाती है इसलिये उसे एक सामाजिक प्राणी माना जाता है। समाजीकरण की इस प्रक्रिया में मनुष्य ने अपने लिए कुछ नियम बनाये और एक संयमित जीवन के लिए स्वयं को तैयार किया। मनुष्य के जीवन में इन नियमों और संयमों का बहुत महत्व है। इनसे ही मनुष्य की अपनी पहचान बनती है। इन्हें ही हम जीवन के मूल्य मानते हैं। मूल्य मानव जीवन को सार्थकता प्रदान करते हैं और उसे अन्य प्राणियों की तुलना में श्रेष्ठ साबित करते हैं।

मानव जीवन बहुत जटिल है। भारत जैसे देश में सबका जीवन एक समान नहीं है। आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और विषमताएँ हैं। भाषा, धर्म और जाति के आधार पर मनुष्य कई खेमों में बँटा हुआ है। वह अलग–अलग आस्थाओं में जीता है, परमेश्वर के भिन्न रूपों को पूजता है और अलग–अलग भाषाएँ बोलता है। उसमें एक ही बात समान रूप से लागू होती है और वह है उसके जीवन मूल्य जो हर परिस्थिति में एक समान है और जिनका निर्वहन प्रत्येक व्यक्ति के लिए उसी अनुपात में आवश्यक है।

मूल्यों की व्याख्या त्रिस्तरीय की जा सकती है– व्यक्तिगत, सामाजिक और राष्ट्रीय। इन स्तरों पर मूल्यों को निर्धारित करना और उनके निर्वहन के लिए समग्र प्रयास करना स्वस्थ समाज की मूलभूत आवश्यकता है। जीवन मूल्यों को परिभाषित करते हुए उनका विस्तार से अध्ययन करना किसी भी चिंतनशील समाज के लिए प्राथमिक कार्य होना चाहिए।

जैसे–जैसे इतिहास आगे बढ़ता है, सामाजिक परिवर्तन आते हैं, वैसे–वैसे मनुष्य की जीवनशैली भी प्रभावित होती है। लोगों की सोच, सामर्थ्य और दक्षताएँ बदलती रहती हैं। आर्थिक, सांस्कृतिक परिस्थितियाँ भी परिवर्तन की इस दौड़ में शामिल हो जाती हैं। ऐसे अवसरों पर जीवन मूल्य संक्रमण काल से गुजरते हैं। प्रत्येक व्यक्ति, समाज और राष्ट्र अपने परिवेश और अपनी आवश्यकताओं के अनुसार मूल्यों को परिभाषित करने लगता है। इस कारण मूल्यों का एक समान लोकव्यापीकरण संभव नहीं हो पा रहा है। चारों ओर एक विरोधाभास उत्पन्न हुआ है, जिसके कारण हमारे जीवन मूल्य संकट के दौर से गुजर रहे हैं। हमारा समाज भौतिक रूप से तो उन्नत हो रहा है, किन्तु नैतिक मूल्यों की दृष्टि से पतन की ओर अग्रसर है। यदि यह सिलसिला समाप्त नहीं हुआ तो आने वाला समय सामाजिक पतन की चरम सीमा का हो सकता है। फलस्वरूप मनुष्य के समाजीकरण के स्थान पर उसका असमाजीकरण होने लगेगा। मनुष्य के समक्ष एक विकट समस्या उत्पन्न हो जाएगी। स्वार्थी, स्वकेन्द्रित, असामाजिक और मूल्य रहित मनुष्य प्रजाति कैसे समाज और राष्ट्र का निर्माण कर पाएगी यह चिंता का विषय है। यह सही समय है कि हम ठोस कदम उठायें, मूल्यों को पुनः प्रतिष्ठापित करें और शिक्षा के माध्यम से समाज को उन्नत बनाने का प्रयास करें।

हमें यह याद रखना होगा कि व्यक्तियों से समाज और समाज से राष्ट्र बनता है। यदि हमें एक उन्नत राष्ट्र का निर्माण करना है तो उत्तम नागरिकों की आवश्यकता

टिप्पणी

होगी। उत्तम नागरिक वे होते हैं जिनमें मूल्यों के प्रति आस्था हो, जिनका मूल्यों की शृंखला को शाश्वत स्तर पर प्रतिष्ठित करने वाले धर्म में विश्वास हो, जो विहित कर्म को पूजा मानते हों और अपने राष्ट्र के प्रति निष्ठावान हों। ऐसे व्यक्तियों का निर्माण शिक्षा–व्यवस्था की पहली कसौटी है। शिक्षा पाठ्यचर्या में नैतिक मूल्यों के अध्ययन को समाहित करते हुए युवा पीढ़ी में इनकी प्रतिष्ठापना करना शिक्षा–व्यवस्था का प्रथम दायित्व है। यह बहुत बड़ी चुनौती भी है। आज के सामाजिक और राष्ट्रीय परिवेश में अनुकरणीय आदर्श व्यक्तित्व का अभाव हो रहा है। भौतिकवाद ने मानवीय संवेदनाओं को संकुचित कर दिया है, स्वहित के आगे राष्ट्रहित गौण हो गया है और बृहद समाजवाद के स्थान पर संकीर्ण व्यक्तिवाद का बोलबाला है। ऐसी स्थिति में नैतिक शिक्षा और जीवन मूल्यों की प्रतिष्ठापना को और अधिक टाला नहीं जा सकता।

नैतिक शिक्षा–एक राष्ट्रीय आवश्यकता

एक सशक्त राष्ट्र का निर्माण उस राष्ट्र में रहने वाले लोगों के माध्यम से ही संभव है। राष्ट्र के प्रति निष्ठा और प्रेम, आपसी सद्भाव, अनुशासन और स्थापित नियमों के अनुसार अपना आचरण रखना अच्छे नागरिक की पहचान है। ऐसे नागरिक ही राष्ट्रवाद के प्रति समर्पित होते हैं। इनका निर्माण नैतिक मूल्यों के परिपालन से ही संभव है।

सम्पूर्ण विश्व में शिक्षा को राष्ट्र निर्माण की चारित्रिक गतिविधि के रूप में मान्यता प्रदान की गई है। शिक्षाविद्ों का मानना है कि शिक्षा ज्ञान रूपी आलोक और आध्यात्मिक शक्ति का एक स्रोत है, जो हमारी शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक और आध्यात्मिक विकास यात्रा के लिए हमारी अंतरनिहित प्रकृति में आवश्यक परिवर्तन लाती है। इसके लिए समाज में शिक्षा का स्तर, उसकी गुणवत्ता और व्यवस्था का उत्तम होना अपरिहार्य है।

सही शिक्षा जीवन के प्रत्येक पहलू तक पहुँच रखती है। अच्छी शिक्षा वह होगी जो हमारे भूतकाल से उत्तम बातों को ग्रहण कर सके, वर्तमान का श्रेष्ठ उपयोग कर सके, साथ ही भविष्य की दिशा भी निर्धारित कर सके। यदि शिक्षा के उद्देश्यों की व्याख्या की जाए तो यह व्यक्ति को मुक्त करती है, जीवन को परिपूर्णता प्रदान करती है, सबके प्रति समभाव जगाते हुए व्यक्ति को उत्कृष्टता प्रदान करती है साथ ही सामूहिक आत्मनिर्भरता के साथ राष्ट्रीय सुसंगतता स्थापित करती है। अतः गुणवत्ता परक शिक्षा–व्यवस्था की स्थापना और संचालन राष्ट्र की महती आवश्यकता है।

नैतिक मूल्य– परिभाषा, अवधारणा और महत्व

जब भी मूल्यों की बात होती है, कई शब्द अलग–अलग संदर्भ में उपयोग में लाए जाते हैं, जैसे जीवन मूल्य और मानवीय मूल्य। संभवतः इन सभी शब्दों के अर्थ और अभिप्राय एक ही हैं। मूल्य को किसी भी नाम से क्यों न पुकारा जाए वे उन गुणों की ओर इंगित करते हैं जिन्हें व्यक्ति महत्वपूर्ण और उपयोगी मानता है तथा जिन मूल्यों के पालन करने से व्यक्ति अपने लिए सामाजिक मान्यता प्राप्त करता है।

भारतीय संस्कृति के अनुसार जीवन में मूल्य ही सत्य होते हैं। जीवन की शुद्ध क्रियाएँ धर्म कहलाती हैं, धर्म में शांति, प्रेम और अहिंसा समाहित रहते हैं। ये पाँच तत्व– सत्य, धर्म, शांति, प्रेम और अहिंसा– मानव मूल्य माने जाते हैं। यह भी माना जाता है कि इन मूल्यों का निर्धारण धर्म करता है।

मूल्यों की प्रमुख परिभाषाएँ

टिप्पणी

श्री राधाकमल मुकर्जी के अनुसार– "मूल्य समाज द्वारा अनुमोदित उन इच्छाओं और लक्ष्यों के रूप में परिभाषित किए जा सकते हैं, जिन्हें अनुबंधन, अधिगम या समाजीकरण की प्रक्रिया द्वारा आत्मसात किया जाता है और जो व्यक्तिगत मानकों तथा आकांक्षाओं के रूप में परिवर्तित हो जाते हैं।"

राधाकमल मुकर्जी ने अपनी इस परिभाषा में मूल्यों को समाज द्वारा अनुमोदित इच्छाओं एवं लक्ष्यों के रूप में विवेचित किया है।

जॉन डीवी के अनुसार– "मूल्य का संबंध आन्तरिक रुचियों से होता है, जिनका अनुमोदन समाज द्वारा किया जाता है और उनकी वस्तुनिष्ठ रूप में परख की जाती है।"

जॉन डीवी ने मूल्यों में मनुष्य की रुचियों को महत्व दिया है, परंतु उनके लिए सामाजिक मान्यता तथा अनुमोदन को भी आवश्यक बताया है। वे यह मानते हैं कि सभी रुचियाँ मूल्य नहीं हो सकती हैं।

उक्त परिभाषाओं से यह स्पष्ट है कि मूल्य हमारी आस्थाओं और सामाजिक मर्यादाओं पर आधारित आचरण के सिद्धांत हैं। जब हम अपने आचरण और व्यवहार को समाज के नीतिगत दायरे में लाते हैं तो हमारे मूल्य नैतिक मूल्य बन जाते हैं जो जीवन के आधारभूत मूल्यों के समकक्ष होते हैं और दोनों का आधार समान होता है। समाज के स्थापित नियमों और मानकों के अनुरूप अपने आचरण, व्यवहार और चरित्र को ढालना नैतिक मूल्यों के संदर्भ में एक सर्वमान्य अवधारणा है।

अब प्रश्न उठता है कि ऐसे मूल्यों का स्वरूप क्या है? किन गुणों के निर्वहन से हम स्वयं को नैतिक मूल्यों की कसौटी पर परख सकते हैं? इसे जानने के लिए हम अपने प्राचीनतम ग्रंथों का सहारा ले सकते हैं जो इस दिशा में हमारा मार्गदर्शन करते हैं।

1. भगवद्गीता, जिसे हम मानवीय संबंधों, दृष्टिकोण, दर्शन, ज्ञान और उपदेश का सर्वोत्कृष्ट और सर्वकालिक ग्रंथ मानते हैं, उसमें 26 मानवीय मूल्यों की विवेचना की गई है। इन गुणों में निर्भीकता, मन की पवित्रता, योग ज्ञान में परिपक्वता, देने की प्रवृत्ति, स्वयं पर नियंत्रण, त्याग, शास्त्रों का अध्ययन, स्पष्टवादिता, सत्य निष्ठा, क्रोध का अभाव, उत्सर्ग की अभिलाषा, शांतिप्रियता, छल कपटरहित व्यवहार, सभी के प्रति क्षमा का भाव, निस्पृहता का भाव, सभ्यता, विनम्रता, ऊर्जावान–क्षमाशील व्यक्तित्व, दृढ़ता, शुद्धता, घृणारहित–गर्वरहित स्वभाव तथा चुनौतियों का सामना करने की शक्ति– उत्तम व्यक्ति के प्रमुख गुण माने गए हैं और इन्हें मूल्यों के रूप में निरूपित किया गया है।
2. हमारे दूसरे सर्वमान्य ग्रंथ बाल्मीकि रामायण में मानवीय मूल्यों से परिपूर्ण सम्पूर्ण व्यक्तित्व निम्नलिखित गुणों से आभूषित होगा– व्यक्ति जिसमें सदगुण हो, सामर्थ्य हो, जो धर्म में आस्था रखता हो, जिसमें कृतज्ञता का भाव हो, जो सत्यवादी हो, जिसमें सशक्त समर्पण का भाव हो, जिसका व्यवहार उभय हो, जिसमें सभी के प्रति करुणा हो, विद्वान, योग्य और प्रसन्नचित्त हो, स्वयं को पूर्ण रूप से जानता हो, जिसने क्रोध पर काबू पा लिया हो, जिसका व्यक्तित्व शानदार हो और दूसरों से न जलता हो।

टिप्पणी

मनु ने धर्म के दस लक्षण बताए हैं जो आज भी भारतीय सदाचार के मूल तत्व हैं। इनमें धैर्य, क्षमा, संयम, अस्तेय, पवित्रता, इन्द्रियनिग्रह, बुद्धि, विद्या, सत्य एवं अक्रोध का उल्लेख है। यह माना गया है कि इनसे ही व्यक्ति उदात्त बनता है। भारतीय जीवन मूल्यों की एक और विशेषता है– आदर्श और यथार्थ, बाह्य और आंतरिक, धर्म और कर्म, भोग और त्याग, समाज और देश, बुद्धि और हृदय, लोक और परलोक, कर्तव्य और अधिकार, अर्थ और काम, मानव और प्रकृति में संतुलन और समन्वय का भाव रखना। उचित संतुलन और सही समन्वय जीवन में औचित्य का निर्धारण करता है। प्रकृति में सत्व, रज और तम का उचित अनुपात ही प्रकृति को नियमों से परिचालित करता है। इस अनुपात में अनावश्यक परिवर्तन आने पर प्रकृति विनाश की ओर जा सकती है।

भारतीय जीवन मूल्यों में कर्म की प्रधानता रही है। यह माना जाता है कि फल की कामना किए बिना कर्म करते रहना चाहिए। निष्काम कर्मयोग हमारे दर्शन का एक मुख्य वैचारिक क्षेत्र रहा है। माना जाता है कि निष्काम कर्मयोगी सामान्य दुर्गुणों से मुक्त होते हुए पूर्ण संतोष के साथ अपने उत्तरदायित्वों का निर्वहन करता है और संभवतः एक अच्छे मनुष्य में इस प्रकार की उदात्त भावना का जन्म लेना उसके सदाचारी होने का प्रमाण है।

मूल्यों का वर्गीकरण

मूल्यों का वर्गीकरण व्यापक रूप से चार वर्गों में किया जा सकता है–

1. दार्शनिक मूल्य– दार्शनिक मूल्यों का वर्गीकरण दो प्रकार से किया जा सकता है– (1) भारतीय दर्शन (व्यापक क्षेत्र) तथा (2) पाश्चात्य दर्शन (आदर्शवाद, प्रकृतिवाद, यथार्थवाद तथा प्रयोजनवाद)। पाश्चात्य दर्शन ने अपनी मूल्य मीमांसा में चार प्रकार के मूल्यों को सम्मिलित किया है– (अ) नैतिक मूल्य, (ब) सामाजिक मूल्य, (स) सौन्दर्यानुभौतिक मूल्य, (द) धार्मिक मूल्य।

2. सामाजिक मूल्य– राधाकमल मुकर्जी तथा जॉन डीवी ने सामाजिक मूल्यों को अधिक महत्व दिया है। मूल्यों के आकलन का सन्दर्भ बिन्दु समाज को ही माना जाता है। मुकर्जी ने सामाजिक मूल्यों के तीन प्रकार बताये हैं– (अ) जैविक मूल्य, (ब) सामाजिक मूल्य और (स) आध्यात्मिक मूल्य।

मुकर्जी ने इनके अतिरिक्त अन्य दो प्रकार के मूल्यों को बताया है–

(अ) सैद्धान्तिक या अमूर्त मूल्य अथवा आन्तरिक मूल्य तथा

(ब) यान्त्रिक या व्यावहारिक अथवा बाह्य मूल्य।

3. मनोवैज्ञानिक मूल्य– स्प्रैन्जर के अनुसार मनोवैज्ञानिक मूल्य सामान्यतः छह वर्गों में विभक्त किए जा सकते हैं–

(अ) सैद्धांतिक या बौद्धिक मूल्य, (ब) आर्थिक मूल्य, (स) सौन्दर्यानुभौतिक मूल्य, (द) राजनैतिक मूल्य, (य) धार्मिक मूल्य, (र) सामाजिक मूल्य।

स्प्रैन्जर के इस वर्गीकरण की पुष्टि आल्पोर्ट व वर्नन ने भी की है। इन्होंने मूल्यों को दो वर्गों में विभाजित किया है– (अ) आन्तरिक मूल्य, (ब) बाह्य मूल्य।

4. सार्वभौमिक अथवा मानव मूल्य– भारतीय दर्शन में पाँच सार्वभौमिक मूल्यों को महत्व दिया गया है। इन्हें मानव मूल्य भी कहते हैं क्योंकि ये शाश्वत मूल्य हैं और इन्हें पंच प्राणों से जोड़ा गया है– (अ) सत्य, (ब) धर्म, (स) शांति, (द) प्रेम, (इ) अहिंसा।

नैतिक मूल्यों के रोपण स्तर

टिप्पणी

किसी व्यक्ति के जीवन को सँवारने में तीन संस्थाओं की महत्वपूर्ण भूमिका होती है– परिवार, शिक्षण–संस्थाएँ और समाज। यह त्रिकोण बच्चों के समाजीकरण के साथ उनमें मूल्य स्थापित करने का कार्य भी करता है।

परिवार

परिवार व्यक्ति के जीवन का प्रथम पड़ाव है। परिवार में जन्म लेने के बाद भावनात्मक संबंधों का प्रारंभ होता है, मानवीय संबंधों का महत्व समझ में आता है, पारस्परिक संबंधों की ऊर्जा प्राप्त होती है और परिवार की जीवन–शैली को आत्मसात करते हुए बच्चे का विकास होता है। विकास की यह यात्रा मनुष्य के जीवन में सबसे महत्वपूर्ण और स्थायी भूमिका निभाती है। अपने परिवार के जीवन मूल्यों को बच्चा आत्मसात करता है। अपनी शैशवावस्था में बच्चा अपने पारिवारिक वातावरण से अपनी प्रारंभिक अनौपचारिक शिक्षा ग्रहण करता है। इस दौरान कई नैतिक मूल्यों से बच्चे का परिचय होता है, जैसे– सच बोलना, बड़ों का आदर करना, ईश्वर में विश्वास रखना, देश के प्रति श्रद्धा रखना, पारिवारिक संसाधनों का मिल बाँटकर उपयोग करना, दूसरों की सहायता करना, गलत काम करने से बचना आदि। परिवार द्वारा दिए गए संस्कार पूरी जिंदगी हमारे साथ दिखाई देते हैं। कहा गया है कि परिवार व्यक्ति की प्रथम पाठशाला है और बच्चे की माँ ही उसकी प्रथम गुरु होती है। प्रारंभ में मूल्यों की पहचान परिवार और माता–पिता के माध्यम से ही बच्चे तक पहुँचती है।

भारत एक परिवार प्रधान देश है। हमारे यहाँ सामाजिक व्यवस्था में परिवार को सबसे छोटी लेकिन महत्वपूर्ण इकाई माना गया है। परिवारों से ही समाज बनता है, अतः समाज के निर्माण में परिवार की भूमिका सर्वोपरि है। यदि परिवार अपने सदस्यों के व्यवहार और आचरण की जिम्मेदारी ले और इस राष्ट्रीय दायित्व को पूरी निष्ठा के साथ निभाए तो स्वस्थ समाज का निर्माण होगा जो स्वस्थ राष्ट्र की आधारशिला होगी।

शैक्षणिक संस्थाएँ

परिवार के बाद मनुष्य के समाजीकरण की दूसरी कड़ी के रूप में शैक्षणिक संस्थाएँ विशेष महत्व रखती हैं। यह मनुष्य के जीवन का दूसरा पड़ाव है जहाँ पारिवारिक अनौपचारिक शिक्षा के बाद व्यक्ति औपचारिक और संस्थागत शिक्षा की ओर कदम रखता है। परिवार के लोगों के अलावा उसका संपर्क अन्य संवर्ग के व्यक्तियों से होता है जिनमें शिक्षक और सहपाठी प्रमुख रूप से उसके जीवन को प्रभावित करते हैं। नैतिक मूल्यों को प्रदान करने में इन दोनों की भूमिका परिवार के समान ही बहुत अहम रहती है। विशेष रूप से बच्चों के मन पर शिक्षक का प्रभाव गहरा और लगभग स्थायी रहता है। एक अच्छा शिक्षक अपने विद्यार्थी के लिए एक अनुकरणीय आदर्श व्यक्ति रहता है। शिक्षक की कही हुई हर बात विद्यार्थी के लिए ग्राह्य और अंतिम होती है। यही कारण है कि जब भी नैतिक मूल्यों की बात होती है, शैक्षणिक संस्थाओं की उपयोगिता और उपादेयता की चर्चा आवश्यक होती है।

नैतिक मूल्य, कक्षा में पढ़ाई जाने वाली शिक्षा के माध्यम से बच्चों तक नहीं पहुँचाए जा सकते हैं। इनकी समझ प्रत्यक्ष उदाहरण और आसपास घटने वाली विभिन्न प्रकार की गतिविधियों के माध्यम से आती है। विद्यार्थी के संपर्क में आने वाले प्रत्येक

टिप्पणी

व्यक्ति का व्यवहार, आचरण और जीवन–शैली यदि मूल्यपरक है तो विद्यार्थी भी उन मूल्यों को अपने साथ आत्मसात करता जाता है। प्रधानाध्यापक, शिक्षक और सहपाठी इन सभी के आचरण व्यवहार का असर विद्यार्थी पर पड़ता है। कहा जाता है एक अच्छा शिक्षक हमारा जीवन बना देता है और एक खराब सहपाठी जीवन की दिशा बदल देता है।

नैतिक मूल्यों के माध्यम से राष्ट्र निर्माण की शिक्षा देना शिक्षा–व्यवस्था का प्रथम एवं महत्वपूर्ण उत्तरदायित्व है। निर्माण शब्द का शाब्दिक अर्थ है किसी रचना को बनाने के लिए एक खाका तैयार करना, आवश्यक संसाधन जुटाना और कठिन परिश्रम के साथ खाके के अनुसार संरचना तैयार करना। इस प्रक्रिया में समय लगता है, धैर्य, प्रतीक्षा और परिश्रम की आवश्यकता होती है। शिक्षा राष्ट्र निर्माण का एक उपक्रम है, जिसके माध्यम से हम अधिकतम सामर्थ्य तक निर्माण कर सकते हैं बशर्ते कि इसके लिए हमारे प्रयास और इच्छा शक्ति मजबूत हों। दूरदृष्टि और नियोजन के बिना रचनात्मक युवा मस्तिष्कों में राष्ट्र निर्माण का बीज नहीं डाला जा सकता। युवा उद्यमी और ऊर्जावान होते हैं, काम करने का जुनून भी रखते हैं, लेकिन सही दिशा–निर्देशों के अभाव में वे कहीं भटक जाते हैं। उनकी ऊर्जा को सही दिशा और गति देने के लिए सक्षम नेतृत्व की आवश्यकता है। 'उठो, जागो और तब तक न रुको जब तक अपना ध्येय न पा लो' का संदेश शिक्षा के माध्यम से उन तक पहुँचाना ही शिक्षा का मुख्य लक्ष्य है।

उच्च शिक्षा के छात्रों को शिक्षा–व्यवस्था, उसका आकार और संचालन के बारे में जानकारी होना आवश्यक है–

1. वैश्विक और राष्ट्रीय स्तर पर उच्च शिक्षा के स्वरूप की जानकारी।
2. सार्थक और उद्देश्यपूर्ण शिक्षा में निवेश।
3. उच्च शिक्षा की उपलब्धता और सकल प्रवेश अनुपात।
4. उच्च शिक्षा के पाठ्यक्रम और उनमें नैतिक मूल्यों का समावेश।
5. भारतीय संविधान, संविधान के मुख्य प्रावधान और आदर्श धर्म निरपेक्षता की शिक्षा।
6. शांति और सहअस्तित्व की शिक्षा।
7. प्रजातांत्रिक मूल्यों की शिक्षा।
8. नागरिकता की शिक्षा।
9. नेतृत्व और उद्यमिता की शिक्षा।
10. नैतिक शिक्षा।
11. समग्र शिक्षा।
12. निर्वहन की शिक्षा।
13. सभी के लिए निरंतर शिक्षा।

उक्त वर्णित सभी बिन्दुओं के लिए छात्रों के समक्ष विभिन्न घटनाएँ, वृत्तांत, वास्तविक जीवन से उदाहरण लेते हुए उनके अंदर संवेदनशीलता और समझ लाना

आवश्यक होगा। साथ ही प्रत्येक प्रसंग में एक नागरिक के रूप में उनकी अपनी भूमिका पर भी विचार करने हेतु प्रेरित किया जाए।

समाज और सामाजिक परिवेश

टिप्पणी

नैतिक मूल्यों के रोपण में समाज की बहुत महत्वपूर्ण भूमिका है। व्यक्ति अपने समाज और सामाजिक दायरे से बहुत कुछ सीखता है। समाज व्यक्तियों के जीवनयापन के लिए आधार तैयार करता है और व्यक्ति अपने क्रियाकलापों से समाज का निर्माण करते हैं।

उच्च शिक्षा के छात्र जो देश की युवा पीढ़ी का प्रतिनिधित्व करते हैं उनमें समाज के प्रति जवाबदेही होना अत्यन्त आवश्यक है। युवा पीढ़ी में समाज की ओर देखने का दृष्टिकोण निर्मित होना चाहिए। उनके आसपास का समाज किस प्रकार राष्ट्रहित के लिए कार्य करे इसकी योजना तैयार की जानी चाहिए। समाज की अपनी मान्यताएँ और नियम हैं साथ ही कई सामाजिक कुरीतियाँ भी हैं जो समाज को खोखला करती जा रही हैं। युवा पीढ़ी समाज को एक नया रूप प्रदान कर सकती है, समाज की उपयोगिता बढ़ा सकती है और समाज को सामाजिक कुरीतियों से मुक्त कर सकती है। इसके लिए युवाओं को अपना स्वयं का चारित्रिक निर्माण करना होगा, सामान्य नैतिक मूल्यों का पालन करना होगा तथा अपनी आत्मशक्ति द्वारा समाज में परिवर्तन लाने का प्रयास करना होगा। यह प्रक्रिया बहुत लंबी होगी, इसमें कई कठिनाइयाँ आएँगी और अनेक असामाजिक शक्तियाँ युवा पीढ़ी को इस प्रकार का रचनात्मक, क्रांतिकारी कार्य करने से रोकेंगी, लेकिन सामाजिक हित में और समाज को राष्ट्रपयोगी बनाने के प्रयास में इस प्रकार की रुकावटों का धैर्य से सामना करना होगा।

युवा पीढ़ी इस काम को अपने आसपास के परिवेश से प्रारंभ कर सकती है जो एक मोहल्ला या एक बसाहट हो सकती है। सबसे पहले अपने आसपास के परिवेश को समझिए, उसका एक खाका तैयार कीजिए– जैसे, आपके आसपास कितने परिवार रहते हैं, उनका क्या व्यवसाय है? किस जाति और धर्म के हैं और उनके आपसी संबंध कैसे हैं? यह भी पता लगाना होगा कि लोगों की मुख्य समस्याएँ क्या हैं, क्या मूलभूत सुविधाएँ उपलब्ध हैं? नैतिक मूल्य हमें उन परिवारों की समस्याओं के प्रति संवेदनशील होना सिखाते हैं। जिस परिवार को जैसी मदद की आवश्यकता हो उसकी व्यवस्था समाज द्वारा की जानी चाहिए।

समाज के लोग देश के विकास और अर्थव्यवस्था से कहाँ तक जुड़े हैं, इसकी भी जानकारी लेना आवश्यक है। क्या वे लोग देश के प्रबुद्ध नागरिक हैं? क्या उनकी प्रजातांत्रिक मूल्यों में आस्था है? क्या उन्हें अपने चारों ओर के वातावरण में आने वाले बदलावों के प्रति चिंता है? क्या वे अपना पर्यावरण बचाने के लिए वचनबद्ध हैं? ये महत्वपूर्ण प्रश्न हैं।

समाज में सभी धर्मों के लोगों के प्रति समभाव स्थापित हो और लोग एक–दूसरे के धर्मों का आदर करें, एक–दूसरे के धार्मिक आयोजनों में खुशी से भाग लें और धर्म को लेकर कभी भी विभाजित न हों– ऐसी स्थिति का निर्माण केवल युवा पीढ़ी ही कर सकती है। धार्मिक उन्माद और धर्मों की राजनीति से देश का काफी नुकसान हो चुका है। अब पूरा विश्व एक कुटुम्ब के समान माना जाता है, देशों के बीच की भौगोलिक

टिप्पणी

सीमाएँ घटती जा रही हैं, आवागमन आसान हो गया है और एक देश के लोग दूसरे देश में मुक्त होकर कार्य कर पा रहे हैं। ऐसी स्थिति में हमारा समाज जाति और धर्म के नाम पर विभाजित हो जाएगा तो यह हमारी आंतरिक कमजोरी होगी जिसका लाभ कोई भी शक्तिशाली देश ले सकता है। युवा पीढ़ी को इस वैश्विक परिदृश्य से सीख लेते हुए देशवासियों की संकुचित मनोवृत्ति से उन्हें मुक्त करने का बीड़ा उठाना चाहिए। धर्म को कोई नाम न देते हुए इसे जीवन जीने की कला के रूप में आत्मसात किया जाना चाहिये।

भारतीय समाज में अपने पर्यावरण के प्रति संवेदना कम हो गई है। प्राकृतिक संसाधनों का दोहन और दुरुपयोग, ऐसी गतिविधियों को संचालित करना जो पर्यावरण को दूषित करें तथा प्रकृति के प्रति अनुदार रवैया अपनाना पर्यावरण को बहुत क्षति पहुँचाता है। पर्यावरण का संरक्षण हमारी व्यक्तिगत, सामाजिक और राष्ट्रीय जिम्मेदारी है। इसे पूरा करना हमारे अपने अस्तित्व के लिए जरूरी है। पर्यावरण के प्रति सकारात्मक जागरूकता उत्पन्न करना और ऐसी सामाजिक गतिविधियों को आयोजित करना जिससे पर्यावरण को समृद्ध किया जा सके हमारा सामाजिक दायित्व है और यह नैतिकता का तकाजा भी है।

आए दिन समाचार–पत्रों के माध्यम से सामाजिक विकृति के कारण घटने वाली वीभत्स घटनाओं की जानकारी मिलती रहती है। आँकड़े बताते हैं कि ऐसी घटनाओं में दिन–प्रतिदिन वृद्धि होती जा रही है। युवा पीढ़ी हताशा के गर्त में विभिन्न प्रकार के असामाजिक कार्य करती है, दिशाहीनता और निश्चित लक्ष्य का न होना उनकी इस हताशा को और बढ़ाते हैं। युवा पीढ़ी को इस त्रासदी से बाहर निकालना, उनमें समाज के प्रति जवाबदेही का भाव पैदा करना, उनके सामाजिक दायित्वबोध से उन्हें अवगत कराना और समाज में सकारात्मक भूमिका निभाने के लिए उन्हें तैयार करना– यह शायद समाज की भी उतनी ही जिम्मेदारी है जितनी कि शिक्षण संस्थानों की। पहले परिवार और फिर समाज उन्हें नैतिक मूल्यों की उचित शिक्षा दे तभी शैक्षणिक संस्थाएँ भी अपनी भूमिका में सफल हो पाएँगी। दूषित समाज और प्रदूषित सामाजिक व्यवस्थाओं के बीच शिक्षा भी अपनी सार्थकता खोने लगती है। शिक्षा एक स्वस्थ समाज के लिए बहुत अच्छा ढाँचा खड़ा कर सकती है बशर्ते समाज शिक्षा–व्यवस्था के प्रति गंभीर हो और उसकी महत्ता को स्वीकार करे।

उपसंहार

नैतिक मूल्य मनुष्य के हित के सुखी संयमित समाजोपयोगी जीवन के लिए सशक्त आधार प्रदान करते हैं। नैतिक मूल्यों में कमी सामाजिक विघटन की ओर संकेत करती है। पीढ़ी–दर–पीढ़ी नैतिक मूल्यों की परिभाषाएँ बदलती रहती हैं लेकिन कुछ मूल्य ऐसे हैं जो शाश्वत हैं, प्रत्येक काल और समय में उनका अस्तित्व अनिवार्य है। ऐसे मूल्यों की रक्षा करना उनके संवर्धन के प्रयास करना और उनकी कमी को पूरा करने के लिए उन्हें पुनः प्रतिष्ठापित करना, प्रत्येक परिवार, समाज और राष्ट्र का कर्तव्य है। इस कर्तव्य के निर्वहन में शिक्षण संस्थाओं को अहम् भूमिका निभानी है। देश को संस्कारित, सभ्य, संवेदनशील और सशक्त नागरिक प्रदान करना शिक्षण संस्थाओं का मुख्य कर्तव्य है।

टिप्पणी

आने वाला युग युवा पीढ़ी का होगा। ऐसा अनुमान है कि हमारे देश की आबादी का लगभग 70 प्रतिशत अंश युवा पीढ़ी का है। युवा पीढ़ी ही देश का भविष्य निर्धारित करेगी। यदि युवा इस जिम्मेदारी को निभाने के लिए तैयार हैं तभी हम देश के भविष्य को सुरक्षित मान सकते हैं। यदि युवाओं में राष्ट्र के प्रति प्रेम ही न हो, देश भक्ति का जज्बा न हो, समाज के प्रति दायित्वबोध न हो और उनका अपना व्यक्तिगत आचरण व्यवहार संयमित न हो तो वे किस प्रकार अपना और राष्ट्र का हित कर पाएँगे, यह गंभीरता से सोचने की बात है। यदि अब हमने अधिक विलंब किया और युवाओं को कर्तव्यबोध कराने में सफल नहीं हुए, तो शायद इतिहास भी हमें क्षमा नहीं कर पाएगा।

5.2.2 'नैतिक मूल्य : परिचय एवं वर्गीकरण' का सार

जगत के समस्त प्राणियों में सर्वश्रेष्ठ माने जाने वाले मनुष्य ने समाजीकरण की प्रक्रिया में अपने जीवन के लिए जो नियम और संयम बनाये, उन्हें ही मूल्य कहा जाता है। मूल्य ही मानव जीवन को सार्थकता व श्रेष्ठता प्रदान करते हैं। विभिन्न आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक अंतरों तथा भाषा, धर्म, जाति तथा धार्मिक आस्थाओं की भिन्नताओं के बावजूद जीवन मूल्य हर परिस्थिति में सबके लिए समान हैं और जिनका निर्वहन भी प्रत्येक व्यक्ति के लिए उसी अनुपात में आवश्यक है।

बदलते समय में आए सामाजिक परिवर्तनों के कारण जीवन–शैली में आए परिवर्तन के फलस्वरूप आया नैतिक अवमूल्यन अब सबके लिए चिंता का विषय बना हुआ है। भौतिक समृद्धि के साथ–साथ समाज में राष्ट्र–निर्माण हेतु नैतिक मूल्यों की पुनर्प्रतिष्ठा अतिआवश्यक है। अतः शिक्षा पाठ्यक्रमों में नैतिक मूल्यों के अध्ययन को समाहित करते हुए युवा पीढ़ी में इनकी प्रतिष्ठापना करना शिक्षा–व्यवस्था का प्रथम दायित्व है, जो कि बहुत चुनौतीपूर्ण भी है। शिक्षा ही हमारी शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक और आध्यात्मिक विकास यात्रा के लिए हमारी अंतर्निहित प्रकृति में आवश्यक परिवर्तन लाती है।

विभिन्न विद्वानों ने मूल्यों को अपने–अपने ढंग से परिभाषित किया है, जिनसे यही स्पष्ट निष्कर्ष निकलता है कि मूल्य हमारी आस्थाओं और सामाजिक मर्यादाओं पर आधारित आचरण के सिद्धांत हैं। समाज के स्थापित नियमों और मानकों के अनुरूप अपने आचरण, व्यवहार और चरित्र को ढालना नैतिक मूल्यों के संदर्भ में एक सर्वमान्य अवधारणा है। अपने लिए मूल्यों का निर्धारण करते हुए हम अपने प्राचीनतम ग्रंथ श्रीमद्भगवदगीता और बाल्मीकि रामायण का आश्रय ले सकते हैं। मनु द्वारा बताये गए धर्म के दस लक्षण– धैर्य, क्षमा, संयम, अस्तेय, पवित्रता, इन्द्रियनिग्रह, बुद्धि, विद्या, सत्य एवं अक्रोध– आज भी भारतीय सदाचार के मूल तत्व हैं। निष्काम कर्म योग हमारे दर्शन का एक मुख्य वैचारिक क्षेत्र रहा है।

मूल्यों का वर्गीकरण व्यापक रूप से चार वर्गों में किया जा सकता है– दार्शनिक, सामाजिक, मनोवैज्ञानिक और सार्वभौमिक। इन सभी मूल्यों की स्थापना में तीन संस्थाओं– परिवार, शिक्षण संस्थाओं तथा समाज की अतिमहत्वपूर्ण भूमिका होती है। हमारे यहाँ की सामाजिक व्यवस्था में परिवार को सबसे छोटी लेकिन महत्वपूर्ण इकाई माना गया है। परिवार द्वारा अनौपचारिक रूप से दिए गए संस्कार सच बोलना, बड़ों का आदर करना, ईश्वर में विश्वास रखना, गलत काम करने से बचना आदि पूरी जिंदगी

टिप्पणी

हमारे साथ रहते हैं। परिवार के बाद मनुष्य के समाजीकरण की दूसरी कड़ी के रूप में शिक्षण संस्थाएँ औपचारिक शिक्षा के माध्यम से बालक के आचरण, चरित्र और व्यक्तित्व को प्रभावित करती हैं। प्रधानाध्यापक, शिक्षक और सहपाठी सभी के आचरण और व्यवहार का असर विद्यार्थियों पर पड़ता है। नैतिक मूल्यों के माध्यम से छात्रों को संस्कारित करना और राष्ट्र निर्माण की शिक्षा देना शिक्षा–व्यवस्था का प्रथम व महत्वपूर्ण दायित्व है।

नैतिक मूल्यों के रोपण में समाज की भी महती भूमिका है। समाज व्यक्तियों के जीवन–यापन के लिए आधार तैयार करता है और व्यक्ति अपने क्रियाकलापों से समाज का निर्माण करते हैं। युवा पीढ़ी में समाज की ओर देखने का दृष्टिकोण निर्मित होना चाहिए। उनके आस–पास का समाज किस प्रकार राष्ट्रहित के लिए कार्य करे इसकी योजना तैयार की जानी चाहिए। युवा पीढ़ी सामाजिक कुरीतियों के उन्मूलन, सर्वधर्म समभाव, पर्यावरण जागरूकता, स्त्री–सम्मान, राजनीति आदि क्षेत्रों में अपना सकारात्मक सहयोग दे सकते हैं। हमारे देश की आबादी का लगभग 70 प्रतिशत अंश युवा पीढ़ी का है। अतः आज की युवा पीढ़ी ही देश का भविष्य निर्धारित करेगी। अतः युवाओं को नैतिक मूल्य बोध एवं कर्तव्य–बोध कराना हमारा आवश्यक कर्तव्य है।

अंत में इतना ही कहना पर्याप्त है कि नैतिक मूल्य मनुष्य के सुखी संयमित समाजोपयोगी जीवन के लिए सशक्त आधार प्रदान करते हैं। नैतिक मूल्यों में कमी सामाजिक विघटन की ओर संकेत करती है।

5.2.3 व्याख्यांश

- हमारा समाज भौतिक रूप से तो ..... उत्पन्न हो जाएगी।

संदर्भ– प्रस्तुत अवतरण प्रसिद्ध शिक्षिका एवं शिक्षाविद् डॉ. शशि राय द्वारा लिखित 'नैतिक मूल्य : परिचय और वर्गीकरण' आलेख से व्याख्यार्थ अवतरित है। 41 वर्षों की शासकीय सेवा के दौरान शिक्षण अनुसंधान तथा प्रशासकीय सभी दायित्वों का निर्वाह किया। शिक्षा के क्षेत्र में योगदान हेतु उन्हें विभिन्न संस्थाओं द्वारा सम्मानित भी किया गया। डॉ. शशि राय द्वारा लिखित प्रस्तुत लेख 'नैतिक मूल्य : परिचय और वर्गीकरण' बहुत ही प्रेरक और समसामयिक दृष्टि से महतवपूर्ण है।

प्रसंग– समय के साथ–साथ समाज में बहुत से सामाजिक परिवर्तन आते हैं, उनसे मनुष्य की सोच और जीवन–शैली भी प्रभावित होती है। आर्थिक, सांस्कृतिक परिस्थितियाँ भी परिवर्तन की इस दौड़ में शामिल हो जाती हैं। ऐसे अवसरों पर जीवन–मूल्य संक्रमण काल से गुजरते हैं। आज चारों ओर एक विरोधाभास सा उत्पन्न हो गया है।

व्याख्या– लेखिका डॉ. शशि राय का कहना है कि आज हमारे समाज ने भौतिक रूप से तो काफी उन्नति कर ली है लेकिन नैतिक मूल्यों में बहुत ज्यादा गिरावट आ गई है। भौतिक सुख–सुविधाओं व धन–संपदा की दृष्टि से हम जितना ऊपर उठे हैं, आचरण व चारित्रिक दृष्टि से उतने ही नीचे गिरे हैं। यदि हमने इस चारित्रिक पतन पर तुरंत अंकुश नहीं लगाया तो परिणाम बहुत भयावह होंगे। जैसे एक–एक ईंट से भवन बनता है, वैसे ही एक–एक व्यक्ति से समाज बनता है। कुछ ही व्यक्तियों के भ्रष्ट हो जाने पर अन्य लोगों पर भी इसका दुष्प्रभाव पड़ता है और धीरे–धीरे पूरे समाज में आचारहीनता फैल जाती है। आज मनुष्य का जीवन–स्तर तो ऊपर उठ गया है लेकिन

टिप्पणी

मनुष्य अपनी मनुष्यता छोड़ता जा रहा है। उसमें दया, करुणा, परोपकार, सामाजिकता, निश्छलता जैसे गुणों का लोप होता जा रहा है। वह दिनोदिन अधिकाधिक स्वार्थी, अनैतिक और आत्मकेंद्रित होता जा रहा है। दूसरों को दुख पहुँचाना, छल–कपट, शोषण और भ्रष्टाचार उसकी आदत में शामिल होता जा रहा है। इस प्रकार के स्वार्थी और भ्रष्ट लोगों से स्वस्थ समाज और राष्ट्र का निर्माण कैसे हो पाएगा? पहले जमाने में लोगों का जीवन स्तर निम्न था लेकिन उनके नैतिक मूल्य ऊँचे थे। उनके पास ज्यादा धन नहीं होता था, लेकिन आचरण ऊँचा था। ऐसी स्थिति समाज में सर्वत्र थी, लेकिन अब स्थिति बिल्कुल उलट गई हैं।

विशेष

(i) एक कटु सामाजिक यथार्थ पर प्रकाश डाला गया है। इस स्थिति को हर कोई समझ रहा है लेकिन किसी के पास इसका निराकरण नहीं है। नगरों में यह स्थिति और भी विकट है। अज्ञेय ने अपनी एक लघु कविता में नगरवासियों में व्याप्त अविश्वासी प्रवृत्ति की ओर संकेत करते हुए लिखा है–

'साँप! तुम सभ्य तो हुए नहीं
नगर में बसना भी तुम्हें नहीं आया
एक बात पूछूँ (उत्तर दोगे?)
तब कैसे सीखा डसना
विष कहाँ पाया?'

(ii) भाषा–शैली सरल, सुबोध व विषयानुरूप है। इसमें कहीं भी दुरूहता नहीं है।

- शिक्षा पाठ्चर्या में ..... टाला नहीं जा सकता।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– अपनी बौद्धिक, भाषिक व अन्य विशेषताओं के कारण मनुष्य जगत के समस्त प्राणियों में श्रेष्ठ समझा जाता है। उसमें समाजीकरण की प्रवृत्ति अधिकतम पायी जाती है। इसलिए उसे एक सामाजिक प्राणी माना जाता है। समाजीकरण की इस प्रक्रिया में मनुष्य ने अपने लिए कुछ नियम बनाये और एक संयमित जीवन के लिए स्वयं को तैयार किया। इन्हें ही जीवन मूल्य कहा जाता है। लेकिन दुख का विषय है कि आज मनुष्य जैसे–जैसे भौतिक समृद्धि प्राप्त करता जा रहा है, वैसे–वैसे उसके जीवन मूल्यों में गिरावट आती जा रही है। वह स्वार्थी, स्वकेंद्रित और आचारहीन होता जा रहा है। ऐसे लोगों से स्वस्थ समाज और राष्ट्र का निर्माण किस प्रकार हो सकता है।

व्याख्या– लेखिका का कहना है कि व्यक्तियों से समाज और समाज से राष्ट्र बनता है। अतः राष्ट्र निर्माण के लिए नागरिकों का आचारवान और चरित्रवान होना बहुत जरूरी है। चरित्र ही व्यक्तित्व का सबसे जरूरी तत्व है। चरित्र का निर्माण नैतिक मूल्यों से ही हो सकता है। शिक्षा इसमें महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है। अतः शिक्षा पाठ्यचर्या में नैतिक मूल्यों को शामिल करना बहुत जरूरी है। परिवार के बाद मनुष्य पर अपने विद्यालय, शिक्षकों तथा शिक्षा–व्यवस्था का प्रभाव पड़ता है। शिक्षा–व्यवस्था का प्रथम दायित्व यही होना चाहिए कि वह अपने नागरिकों में नैतिक मूल्यों की प्रतिष्ठा

करे। इससे विद्यार्थी सुसंस्कारित होंगे। शिक्षा–व्यवस्था के लिए यह कार्य निश्चय ही बहुत चुनौतीपूर्ण भी है।

टिप्पणी

आजकल समाज और राष्ट्रीय पटल पर ऐसे महामानव दृष्टिगोचर नहीं हो रहे हैं जिनका व्यक्तित्व अनुकरणीय कहा जा सके। यदि समाज और राजनीति में आदर्श चरित्र होते हैं तो उनका समूचे समाज पर बहुत ही सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। लेकिन आजादी के बाद ऐसे अनुकरणीय चरित्रों का अभाव–सा हो गया है। ऐसा क्यों हो गया, यह भी विचारणीय है। इस प्रश्न पर विचार करने से उत्तर यही निकलकर आता है कि हर आदमी येन–केन प्रकारेण धन संग्रह को ही अपना उद्देश्य मान बैठा है। किसी को धोखा देकर, छल से, बल से अथवा शोषण से– अर्थात किसी भी प्रकार से पैसा आना चाहिए। किसी की भावनाओं और मजबूरियों का फायदा उठाने में आज का आदमी तनिक भी संकोच नहीं करता। दूसरे शब्दों में यही कह सकते हैं कि भौतिकवाद ने मानवीय संवेदनाओं को कुचल दिया है। इसके साथ ही मनुष्य बहुत स्वार्थी हो गया है। देशहित उसके लिए नगण्य हो गया है। तरह–तरह के भ्रष्टाचार और घोटाले इसी बात का प्रमाण हैं। आजादी से पूर्व जहाँ देश पर मर मिटने वाले महापुरुष आंदोलनों का नेतृत्व कर रहे थे और जनता भी उन पर सम्मोहित–सी उन्हीं के आदर्शों का अनुकरण कर रही थी, लेकिन अब तो चरित्रवान नायकों के स्थान पर घोटालेबाज नेताओं के ही दर्शन हो रहे हैं। अब सबकी सोच भी बड़ी संकुचित हो गई है। लोग अपने ही हित की सोच रहे हैं, समूचे समाज पर उनके कृत्यों का क्या प्रभाव पड़ेगा, इसकी कुछ परवाह नहीं कर रहे। आजादी से पूर्व देश और समाज के लिए अपना सर्वस्व न्योछावर कर देने वाले महापुरुष हुए, लेकिन अब समाज के स्थान पर स्वयं को ही प्रमुख रख रहे हैं। उस पर शिक्षा का यह हाल है कि उसमें कला, वाणिज्य और विज्ञान वर्ग के विषय तो सम्मिलित हैं लेकिन नैतिक शिक्षा को कोई स्थान नहीं दिया जा रहा। अब समय की पुकार है कि शिक्षा–व्यवस्था में नैतिक शिक्षा और जीवन मूल्यों की प्रतिष्ठा की जाए। इस मांग को बहुत लंबे तक टाला नहीं जा सकता क्योंकि पहले ही बहुत देर हो चुकी है।

विशेष

(i) शिक्षा का मनुष्य के संस्कारों पर निश्चित रूप से गहरा प्रभाव पड़ता है, इसलिए शिक्षा में नैतिक शिक्षा का शामिल किया जाना वांछनीय ही है।

(ii) निबन्धकार की भाषा–शैली सुबोध और प्रसंगानुरूप है। भाषा भावों को वहन करने में पूर्णरूपेण समर्थ है।

- सम्पूर्ण विश्व में ..... व्यवस्था का उत्तम वेग उपस्थित है।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– आज हमारा समाज भौतिक रूप से तो उन्नत हो रहा है, किंतु नैतिक मूल्यों की दृष्टि से पतन की ओर अग्रसर है। स्वार्थी, स्वकेंद्रित, असामाजिक तथा मूल्यविहीन मनुष्य प्रजाति स्वस्थ समाज और राष्ट्र का निर्माण नहीं कर सकती। अतः शिक्षा पाठ्यक्रमों में नैतिक मूल्यों का समावेश आवश्यक है। युवा पीढ़ी में नैतिक मूल्यों की प्रतिष्ठापना करना शिक्षा–व्यवस्था का प्रथम दायित्व है। यह बहुत बड़ी चुनौती है।

टिप्पणी

व्याख्या– समूचे विश्व में यह माना गया है कि उत्तम शिक्षा–व्यवस्था के द्वारा राष्ट्र निर्माण करने वाली युवापीढ़ी में चारित्रिक गुणों का विकास किया जा सकता है। किसी बालक पर परिवार के बाद शिक्षण संस्थाओं का ही सर्वाधिक प्रभाव पड़ता है। अतः शिक्षा पाठ्यक्रम में चरित्र–निर्माण से जुड़े पाठ्यक्रम का होना बहुत जरूरी है। बालक जो पढ़ता है, उससे उसके मन में संस्कारों के बीज पनपते हैं। शिक्षाविद्ों की राय है शिक्षा ज्ञान रूपी प्रकाश और आध्यात्मिक शक्तियों का कोष है जिससे हमारा शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक व आध्यात्मिक विकास होता है। इस विकास के लिए हमारी मूल प्रकृति में आवश्यक परिवर्तन होते हैं। ये परिवर्तन बहुत धीरे–धीरे होते हैं। धीरे–धीरे घटित होने वाले ये परिवर्तन ही स्थायी होते हैं। इसके लिए बहुत जरूरी है कि शिक्षा पाठ्यक्रम में गुणवत्ता हो। वह छात्रों का चारित्रिक विकास करने में सक्षम हो क्योंकि चरित्र और आचार–विचार ही सबसे बड़ी सम्पदा है। चरित्र–निर्माण में गुणवत्तापूर्ण शिक्षा की महती भूमिका है।

विशेष

(i) उत्तम शिक्षा–व्यवस्था के द्वारा बालकों में चरित्र निर्माण के संस्कार डाले जा सकते हैं, इससे किसी को किंचित् भी संदेह नहीं हो सकता। लेकिन आज की शिक्षा–व्यवस्था में नैतिक शिक्षा पाठ्यक्रम का अभाव दिख रहा है, जिसके कारण छात्रों में अनुशासनहीनता बढ़ती जा रही है। निबन्धकार स्वयं एक शिक्षाविद् है इसलिए उन्होंने शिक्षा की चरित्र विधायनीशक्ति पर जोर दिया है।

(ii) शिक्षा ज्ञान रूप आलोक और आध्यात्मिक शक्ति का एक स्रोत है– वाक्य बहुत अर्थगर्भित है। ज्ञान की तुलना प्रायः प्रकाश से ही की जाती है। शिक्षा रूपी आलोक में रूपक अलंकार है।

(iii) भाषा–शैली प्रसंगानुरूप विचारात्मक है, साथ ही लेखिका के भाव और विचारों को संप्रेषित करने में सक्षम भी।

- नैतिक मूल्य कक्षा में पढ़ाई ..... दिशा बदल देता है।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– समाजीकरण की प्रक्रिया में मनुष्य ने जो अपने संयमित जीवन के लिए नियम और संयम तैयार किए, उन्हें ही जीवन–मूल्य कहा जाता है। मूल्य मानव जीवन को सार्थकता प्रदान करते हैं और उसे अन्य प्राणियों की तुलना में श्रेष्ठ साबित करते हैं। आज के युग में हो रहे सामाजिक परिवर्तनों के फलस्वरूप मनुष्य की जीवन–शैली अत्यधिक रूप से प्रभावित हुई है। वह भौतिक रूप से तो समृद्ध हुआ है, लेकिन नैतिक मूल्यों की प्रतिष्ठा आवश्यक है।

व्याख्या– लेखिका डॉ. शशि राय का कहना है कि नैतिक मूल्य के रोपण में शिक्षा का बहुत महत्वपूर्ण योगदान है। लेकिन केवल पाठ्यक्रम के माध्यम से बालकों में नैतिक मूल्यों का अंकुरण संभव नहीं है क्योंकि बच्चा उपदेश से कम और उदाहरण से अधिक सीखता है। शिक्षण संस्थाओं में बच्चे के सम्मुख ऐसा परिवेश और प्रत्यक्ष उदाहरण प्रस्तुत किए जाने चाहिए, जिनसे कि बच्चे में नैतिक मूल्यों के संस्कारों का रोपण हो। बच्चा पढ़कर कम और देखकर ज्यादा सीखता है। विद्यार्थियों के संपर्क में प्रधानाध्यापक, शिक्षक और सहपाठी होते हैं। इन सभी के आचरण का प्रभाव विद्यार्थी पर पड़ता है।

टिप्पणी

यदि इन सबका व्यवहार और आचरण मूल्यपरक है तो बच्चों में बिना सिखाये स्वयं ही मूल्यों का अंकुरण व पल्लवन होता जाता है। बच्चा हर समय सहपाठियों के संपर्क में आता है और शिक्षक उसके सामने रहता है। इन दोनों के अच्छे–बुरे आचार–विचार का बच्चों पर निश्चित रूप से प्रभाव पड़ता है। एक अच्छे शिक्षक का अनुशासन, नियमितता, कर्तव्य–निर्वाह, मधुर वाणी आदि ऐसी बातें हैं जो बच्चे पर सकारात्मक प्रभाव डालती है और बच्चा उन्हें जाने–अनजाने ग्रहण करता रहता है। अच्छे–बुरे सहपाठियों का बच्चे पर अच्छा–बुरा प्रभाव अवश्य पड़ता है। बच्चा बुराई को जल्दी पकड़ लेता है। सहपाठियों की बुरी संगत में पड़कर बच्चों का बिगड़ जाना बहुत आम बात है। कक्षाएँ भंग करना, चोरी, जुआ आदि की लत प्रायः खराब सहपाठियों के माध्यम से ही लगती है और मासूम–नादान बच्चे का जीवन गलत दिशा में मुड़ जाता है। इसलिए शिक्षा–व्यवस्था में प्रत्येक बालक पर पैनी नजर रखना जरूरी है ताकि एक भी बच्चा बिगड़ने न पाए।

विशेष

(i) नैतिक शिक्षा के रोपण में शिक्षण संस्थाओं की भूमिका को रेखांकित किया गया है। निश्चित रूप से शिक्षक के प्रभाव के साथ–साथ सहपाठियों का भी अच्छा–बुरा प्रभाव बच्चे पर पड़ता है। इसलिए माता–पिता अपने बच्चे के सहपाठियों के आचार–व्यवहार पर नजर रखते हैं कि कहीं वे तो बिगड़े हुए नहीं हैं। उपदेश से आचरण का प्रभाव अधिक होता है।

(ii) भाषा–शैली बहुत सरल–सुबोध है। लेखिका स्वयं एक शिक्षिका रही है। इसलिए उन्होंने सरल भाषा में ही अपने भाव और विचार पाठकों के सम्मुख व्यक्त किए हैं।

- दूरदृष्टि और नियोजन के बिना ..... शिक्षा का मुख्य लक्ष्य है।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– नैतिक मूल्यों के माध्यम से राष्ट्र निर्माण की शिक्षा देना शिक्षा–व्यवस्था का प्रथम व महत्वपूर्ण दायित्व है। शिक्षा राष्ट्र निर्माण का एक महत्वपूर्ण उपक्रम है, जिसके माध्यम से बालकों में सही आचार–विचार के संस्कार रोपित किए जा सकते हैं। लेकिन जरूरी बात यह है कि इसके लिए सक्षम अधिकारियों के प्रयास सच्चे और इच्छा शक्ति मजबूत हो।

व्याख्या– लेखिका का कहना है कि शिक्षा–व्यवस्था में नैतिक मूल्यों को समाविष्ट करने के लिए सक्षम अधिकारियों, दूरदृष्टि और नियोजन का होना बेहद जरूरी है। पाठ्यक्रम में नैतिक शिक्षा पर कुछ कहानियाँ अथवा मूल्यपरक आलेख शामिल कर देने से काम नहीं चलेगा। उनके लिए कुछ सक्रियताओं का भी आयोजन करना होगा, जिससे कि वे अपनी ऊर्जाओं का सही दिशा में उपयोग कर सकें। युवा उद्यम व ऊर्जा के भण्डार होते हैं। उनकी ऊर्जा का सही दिशा में प्रयोग करना बहुत जरूरी है। वह संचित ऊर्जा खर्च होने के लिए मचलती रहती है। यदि उसका रचनात्मक कार्यों में उपयोग कर लिया जाए, तो युवा भटकने से भी बच जाते हैं, साथ ही रचनात्मक कार्यों से अद्‌भुत शांति भी मिलती है। युवा शक्ति में काम करने का अद्‌भुत जुनून भी होता है, जिसे कल्याणकारी दिशा में उपयोग करना बहुत

जरूरी है। अतः युवाओं के उद्यम, ऊर्जा और जुनून को रचनात्मक दिशा में मोड़ने के लिए शिक्षा निदेशालय, शिक्षा मंडल और साथ विद्यालय–महाविद्यालय स्तर पर भी इस प्रकार की कार्ययोजना बनाई जानी चाहिए। युवा शक्ति को शैक्षिक भ्रमण, भाषण, वाद–विवाद प्रतियोगिता, खेल कूद तथा विभिन्न खेल–कूद व पौधरोपण जैसे कार्यक्रमों में प्रयुक्त किया जा सकता है। युवाओं के अंदर विवेकानंद का यह संदेश कूट–कूटकर भरा जाना चाहिए– 'उठो, जागो और तब तक न रुको जब तक कि अपना ध्येय न पा लो।' यह एक बहुत ही प्रेरक संदेश है अद्‌भुत उत्साह से भरा हुआ। इस मूल मंत्र को अपनी शिक्षा के माध्यम से छात्रों में कूटकूट कर भर देना ही शिक्षा–व्यवस्था का लक्ष्य होना चाहिए।

टिप्पणी

विशेष

(i) वास्तव में हमारी शिक्षा पद्धति अपूर्ण, पुस्तकीय व परीक्षा केंद्रित है। इसे अधिकाधिक सर्वांगपूर्ण, व्यावहारिक व जीवन केंद्रित बनाना आवश्यक है। इसे राष्ट्र निर्माण से जोड़ना भी बहुत जरूरी है।

(ii) युवा शक्ति को सही दिशा और गति देने के लिए सक्षम नेतृत्व की आवश्यकता बताई गई है। लेकिन दूसरी ओर यह बात भी सच है कि नेतृत्व में आज सच्ची प्रेरणा और दूर दृष्टि का अभाव है।

(iii) 'उठो, जागो और तब तक न रुको जब तक कि अपना ध्येय न पा लो'– यह प्रसिद्ध कथन स्वामी विवेकानंद का है और यह प्रायः महाविद्यालयों/विद्यालयों की दीवारों पर अंकित रहता है। उनका चरित्र भी छात्रों के लिए आदर्श स्वरूप है।

(iv) भाषा–शैली बहुत सरल व प्रवाहपूर्ण है। उद्धरण शैली का प्रयोग प्रभावी बन पड़ा है।

5.2.4 'नैतिक मूल्य : परिचय एवं वर्गीकरण' का समीक्षात्मक अध्ययन

विषय–प्रकाशन : एक लेख और विशेष रूप से विचारात्मक लेख किसी न किसी गहन विषय पर लिखा जाता है और उसमें विषय का व्यवस्थित व क्रमिक ढंग से विकास किया जाता है। एक लेखक अपने शीर्षक में जो विषय ग्रहण करता है, उसके अनुरूप विषय का विस्तार करता है। प्रस्तुत आलेख में लेखिका ने लेख के शीर्षक के अनुरूप नैतिक मूल्यों का परिचय देते हुए उनका महत्व, वर्गीकरण तथा उनके रोपण पर अपने विचार व्यक्त किए हैं। विषय प्रकाशन इतना व्यवस्थित है कि लेखिका ने प्रस्तावना और अंत में उपसंहार जैसे शीर्षक भी प्रदान कर रखे हैं।

लेखिका प्रस्तावना में ही नैतिक मूल्यों की सामान्य चर्चा करते हुए उनको सरल शब्दों में समझा देती हैं कि समाजीकरण की प्रक्रिया में संयमित जीवन के लिए बनाये गए नियमों और संयमों को ही जीवन मूल्य कहते हैं। मूल्यों की व्याख्या त्रिस्तरीय की जा सकती है– व्यक्तिगत, सामाजिक और राष्ट्रीय। इन तीनों स्तरों पर मूल्यों को निर्धारित करना और उनके निर्वहन के लिए समग्र प्रयास करना स्वस्थ समाज की मूलभूत आवश्यकता है। आज समाज भौतिक रूप से तो उन्नत हो रहा है, किंतु नैतिक

टिप्पणी

मूल्यों की दृष्टि से पतन की ओर अग्रसर है। आज के सामाजिक और राष्ट्रीय परिवेश में अनुकरणीय आदर्श व्यक्तित्व का अभाव हो रहा है। शिक्षा पाठ्यचर्या में नैतिक मूल्यों के अध्ययन को समाहित करते हुए युवा पीढ़ी में इनकी प्रतिष्ठापना करना शिक्षा–व्यवस्था का प्रथम दायित्व है। संपूर्ण विश्व में शिक्षा को राष्ट्र निर्माण की चारित्रिक गतिविधि के रूप में मान्यता दी गई है। लेख में विषय विस्तार करते हुए लेखिका ने श्रीमद्भगवद्गीता और वाल्मीकि रामायण और मनु के धर्म के दस लक्षणों को मूल्य निर्धारण में मार्गदर्शक कसौटी के रूप में वर्णित किया है। मूल्यों का वर्गीकरण व्यापक रूप से चार वर्गों में किया है– दार्शनिक मूल्य, सामाजिक मूल्य, मनोवैज्ञानिक मूल्य और सार्वभौमिक मूल्य। इसके बाद नैतिक मूल्यों के रोपण स्तर के रूप में परिवार, शिक्षण संस्थाओं और समाज का विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। निबन्ध के उपसंहार शीर्षक के अंतर्गत लेखिका ने दो अनुच्छेदों में नैतिक मूल्यों की अनिवार्य आवश्यकता व उपादेयता पर बल देते हुए युवा पीढ़ी में इनके रोपण को चुनौतीपूर्ण कर्तव्य बताया है क्योंकि देश की आबादी का लगभग 70 प्रतिशत अंश युवा पीढ़ी का है। इस प्रकार स्पष्ट है कि इस लेख में लेखिका ने विषय पर विस्तारपूर्वक गहनता से प्रकाश डाला है। लेख के अंतर्गत व्यवस्थित प्रस्तुतीकरण हेतु शीर्षक भी प्रदत्त है।

वैचारिकता– विचारात्मक लेखों में वैचारिकता का पाया जाना स्वाभाविक सी बात है। इस संबंध में लेखक श्री शिवनाथ का कथन दृष्टव्य है– "बुद्धि के प्रकाश के लिए ही साहित्य के इस उपांग का ग्रहण हुआ है। बुद्धि अपना रूप साहित्य के अन्य अंगों में भली–भाँति नहीं दिखा सकती थी, विचारों का आदान–प्रदान, प्रतिपादन आदि साहित्य के दूसरे अंगों में भली प्रकार नहीं होता था जिसके द्वारा उपर्युक्त कार्य–सिद्धि हो जाए, इसी कार्य–सिद्धि के लिए निबन्ध का ग्रहण हुआ।"

प्रस्तुत लेख में वैचारिकता की छटा सर्वत्र विद्यमान है। लेखिका ने कहीं जीवन में मूल्यों की आवश्यकता पर विचार किया है तो कहीं समाज में हो रहे मूल्यों के क्षरण पर अपनी चिंता प्रकट की है– "यदि यह सिलसिला समाप्त नहीं हुआ तो आने वाला समय सामाजिक पतन की चरमसीमा का हो सकता है। फलस्वरूप मनुष्य के समाजीकरण के स्थान पर उसका असमाजीकरण होने लगेगा। मनुष्यता के समक्ष एक विकट समस्या उत्पन्न हो जाएगी। स्वार्थी, स्वकेंद्रित, असामाजिक और मूल्य रहित मनुष्य प्रजाति कैसे समाज और राष्ट्र का निर्माण कर पाएगी, यह चिंता का विषय है। यह सही समय है कि हम ठोस कदम उठायें, मूल्यों को पुनः प्रतिष्ठापित करें और शिक्षा के माध्यम से समाज को उन्नत बनाने का प्रयास करें।" शिक्षण संस्थाएँ अपने छात्रों में नैतिक मूल्यों की प्रतिष्ठा किस प्रकार कर सकती हैं, इस पर भी लेखिका ने अपने विचार अभिव्यक्त करते हुए लिखा है– "नैतिक मूल्य कक्षा में पढ़ाई जाने वाली शिक्षा के माध्यम से बच्चों तक नहीं पहुँचाये जा सकते हैं। इनकी समझ प्रत्यक्ष उदाहरण और आस–पास घटने वाली विभिन्न प्रकार की गतिविधियों के माध्यम से आती है। विद्यार्थी के संपर्क में आने वाले प्रत्येक व्यक्ति का व्यवहार, आचरण और जीवन–शैली यदि मूल्यपरक है तो विद्यार्थी भी उन मूल्यों को अपने साथ आत्मसात् करता जाता है।"

भावात्मक– विचारात्मक लेखों में वैचारिकता प्रमुख तत्व है लेकिन उनमें भावात्मकता का भी पूर्णतया अभाव नहीं होता। विषय क्योंकि नैतिक मूल्यों से जुड़ा है, इसलिए

टिप्पणी

उसमें भावात्मकता की स्थिति स्वाभाविक है। शाश्वत मूल्यों के प्रति लेखिका ने अपनी आस्था व्यक्त करते हुए उन्हें नयी पीढ़ी के लिए भी अनुकरणीय बताया है– 'उत्तम नागरिक वे होते हैं जिनमें शाश्वत मूल्यों के प्रति आस्था हो, जिनका मूल्यों की शृंखला को शाश्वत स्तर पर प्रतिष्ठित करने वाले धर्म में विश्वास हो, जो विहित कर्म को पूजा मानते हों ओर अपने राष्ट्र के प्रति निष्ठावान हों। ऐसे व्यक्तियों का निर्माण शिक्षा–व्यवस्था की पहली कसौटी है।' इस लेख में लेखिका के विचार भावात्मकता के साथ सम्पृक्त होकर अभिव्यक्त हुए हैं– "युवा पीढ़ी समाज को एक नया रूप प्रदान कर सकती है, समाज की उपयोगिता बढ़ा सकती है और समाज को सामाजिक कुरीतियों से मुक्त कर सकती है। इसके लिए युवाओं को अपना स्वयं का चारित्रिक निर्माण करना होगा, सामान्य नैतिक मूल्यों का पालन करना होगा... नैतिक मूल्य हमें उन परिवारों की समस्याओं के प्रति संवेदनशील होना सिखाते हैं। जिस परिवार को जैसी मदद की आवश्यकता हो, उसकी व्यवस्था समाज द्वारा की जानी चाहिए।"

एकान्विति– एक उत्कृष्ट लेख में एक सूत्रता का रहना परमावश्यक है। एकसूत्रता की अनुपस्थिति में लेख–रचना निर्जीव होती है। एकान्विति के आधार पर जब हम 'नैतिक मूल्य– परिचय और वर्गीकरण' की समीक्षा करते हैं तो हम पाते हैं कि इस कसौटी पर भी प्रस्तुत लेख शतप्रतिशत खरा उतरता है। लेखिका ने प्रारंभ से अंत तक जो भी बातें कही हैं, वे सब विषय से संबद्ध हैं। कहीं कुछ भी असंगत नहीं है। प्रथम अनुच्छेद में ही लेखिका सामान्य शब्दों में नैतिक मूल्यों का अर्थ समझाकर उनका महत्व बता देती है। उसके बाद विषय–विस्तार करते हुए मूल्यों की त्रिस्तरीय व्याख्या, मूल्यों की परिभाषा, मूल्यों के स्वरूप, मूल्यों के निर्धारण में आधारभूत सहायक ग्रंथ, मूल्यों का वर्गीकरण, नैतिक मूल्यों का रोपण करने वाली संस्थाएँ परिवार, शैक्षणिक संस्थाएँ, समाज और सामाजिक परिवेश पर अपनी लेखनी चलाई है। कहने का अभिप्राय यह है कि एक स्थल पर भी इसमें विषय से भटकाव दिखाई नहीं देता। उपसंहार में भी लेखिका विषय पर ही केंद्रित रहती है। अंत युवाओं में नैतिक मूल्यों की आवश्यकता से किया गया है– "यदि युवाओं में राष्ट्र के प्रति प्रेम ही न हो, देशभक्ति का जज्बा न हो, समाज के प्रति दायित्व बोध न हो और उनका अपना व्यक्तिगत आचरण व्यवहार संयमित न हो तो वे किस प्रकार और राष्ट्र का हित कर पाएँगे, यह गंभीरता से सोचने की बात है। यदि अब हमने अधिक विलंब किया और युवाओं को कर्तव्य बोध कराने में सफल नहीं हुए तो शायद इतिहास भी हमें क्षमा नहीं कर पाएगा।

व्यक्तित्व–सापेक्षता– व्यक्तित्व का अंश सभी साहित्य रूपों में कम या अधिक मात्रा में रहता है, किंतु लेखों में उसकी उपस्थिति सर्वाधिक रहती है। लेखक जो कुछ लिखता है उसे अपने निजी मत के रूप में अथवा अपने निजी दृष्टिकोण से देखता है। इसके पीछे उसके निजी अनुभव की प्रेरणा दिखाई देती है। एक लेख तभी सफल होगा जब वह लेखक के निजी दृष्टिकोण से लिखा गया हो।"

विवेच्य लेख में लेखिका ने विषय का प्रतिपादन निजी दृष्टिकोण से किया है। उन्होंने नैतिक मूल्यों के रोपण में शिक्षा पाठ्चर्या की महत्वपूर्ण भूमिका बताते हुए लिखा है– "शिक्षा पाठ्यचर्या में नैतिक मूल्यों के अध्ययन को समाहित करते हुए युवा पीढ़ी में इसकी प्रतिष्ठापना करना शिक्षा–व्यवस्था का प्रथम दायित्व है। यह बहुत बड़ी चुनौती भी है। आज के सामाजिक व राष्ट्रीय परिवेश में अनुकरणीय आदर्श व्यक्तित्व

टिप्पणी

का अभाव हो रहा है। भौतिकवाद ने मानवीय संवेदनाओं को संकुचित कर दिया है, स्वहित के आगे राष्ट्रहित गौण हो गया है और वृहद समाजवाद के स्थान पर संकीर्ण व्यक्तिवाद का बोल–बाला है। ऐसी स्थिति में नैतिक शिक्षा और जीवन मूल्यों की प्रतिष्ठापना को और अधिक टाला नहीं जा सकता।" समूचे लेख में इस प्रकार के उदाहरण देखने को मिल जाते हैं।

भाषा–शैली– लेख रचना में यदि कलात्मक मौलिकता का समावेश न हो और भाषा विषयानुरूप परिवेश उपस्थित न कर सके तो लेखन सफल नहीं हो सकता। लेख के विषयानुरूप लोकोक्ति, मुहावरे, चित्रात्मक, सहज सरल, सारगर्भित शब्दावली ही लेख सार की सफलता की कुंजी है।

विवेच्य लेख की भाषा सर्वत्र सुबोध है। कहीं–कहीं कुछ तत्सम शब्दों का प्रयोग अवश्य है– 'प्रतिष्ठापित, उत्कृष्टता, सौन्दर्यानुभूति, समाजोपयोगी, संस्कारित आदि।' विषय की गंभीरता के बावजूद लेखिका ने कहीं भी कठिन शब्दावली का प्रयोग नहीं किया। वाक्य–योजना भी जटिल नहीं है। विषय की आवश्यकता के अनुरूप मूल्यों को समझाने के लिए दो विद्वानों की परिभाषा दी है। लेख के मध्य में लेखिका ने विवेकानंद के सुप्रसिद्ध उद्‌बोधन का प्रयोग भी किया है– 'उठो, जागे और तब तक न रुको जब तक अपना ध्येय न पा लो।' लेखिका स्वयं शिक्षिका रही हैं, अतः विषय का प्रतिपादन करते हुए उन्होंने आदर्शों की प्रतिष्ठा की है– "देश को संस्कारित, सभ्य, संवेदनशील और सशक्त नागरिक प्रदान करना शिक्षण संस्थाओं का मुख्य कर्तव्य है।"

संक्षिप्तता– इस संबंध में कोई निश्चित मत नहीं है। लेखक जो भी सोचता है, उसकी छोटी–छोटी युक्तियाँ कहीं थोड़ी और कहीं अधिक संबद्ध होकर उसका आकार बढ़ाती हैं। अतः निबन्ध की सीमा उतनी ही होनी चाहिए जिसमें वह अपने कथ्य को सुचारू रूप से प्रस्तुत कर सके। इस दृष्टि से हम इस लेख पर विचार करते हैं तो हम पाते हैं कि लेख का आकार अपेक्षाकृत विस्तृत है लेकिन यह विस्तार अनावश्यक नहीं है। पूरा लेख शीर्षकों में विभाजित है, अतः कथ्य सरलता व व्यवस्थित रूप से संप्रेषित हो जाता है।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि प्रस्तुत लेख सभी कसौटियों पर खरा उतरता है। उद्देश्य की दृष्टि से भी यह लेख बहुत सफल है। युवाओं में नैतिक मूल्यों की प्रतिष्ठा आज की बहुत बड़ी चुनौतपूर्ण आवश्यकता है। यह इस लेख का बहुत बड़ा संदेश है।

अपनी प्रगति जाँचिए

1. भारतीय मूल्यों में किसकी प्रधानता रही है?

   (क) धार्मिक कर्म (ख) निष्काम कर्म

   (ग) स्वार्थ कर्म (घ) व्यावसायिक कर्म

2. मनु द्वारा इंगित धर्म के लक्षणों में निम्न में से कौन–सा लक्षण सम्मिलित नहीं है?

   (क) क्षमा (ख) संयम

   (ग) सत्य (घ) क्रोध

5.3 आचरण की सभ्यता (निबन्ध) : सरदार पूर्णसिंह

टिप्पणी

सरदार पूर्णसिंह द्विवेदी युग के श्रेष्ठ निबन्धकार हैं। उन्होंने भावात्मक तथा लाक्षणिक शैली के निबन्धों की रचना करके इस क्षेत्र में एक नयी रचना का सूत्रपात किया। इसके साथ ही वे पंजाबी के जाने–माने कवि भी थे। आधुनिक पंजाबी काव्य के संस्थापकों में उनकी गणना होती है। पंजाबी में आपकी तीन पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं– खुले मैदान, खुले घुंड और खुले खेल।

पूर्णसिंह का जन्म 17 फरवरी, 1881 ई. को एबटबाद (अब पाकिस्तान) जनपद के एक गाँव रीलहद में हुआ था। इनकी माता जी बड़ी सात्विक धर्मसंपन्न महिला थीं। पिता सरदार करतार सिंह भागर सरकारी कर्मचारी थे। हाईस्कूल करने के बाद वे लाहौर चले गए। लाहौर से इंटरमीडिएट परीक्षा उत्तीर्ण करके वे रसायनशास्त्र का विशेष अध्ययन करने हेतु जापान चले गए। वहाँ इंपीरियल यूनिवर्सिटी में उन्होंने तीन वर्ष तक रसायनशास्त्र का अध्ययन किया। वहाँ उनकी भेंट 1902 में स्वामी रामतीर्थ से हुई। स्वामी जी से प्रभावित होकर उन्होंने संन्यास ले लिया और उन्हीं के साथ भारत लौट आए। बाद में अपनी माता जी के दबाव में उन्होंने माया देवी से विवाह करके गृहस्थ जीवन व्यतीत करना आरंभ किया और 1907 में देहरादून के फॉरेस्ट इंस्टीट्यूट में नौकरी कर ली। इस कार्यकाल में उन्होंने अंग्रेजी में वैज्ञानिक विषयों से संबंधित 50 से ऊपर शोधपूर्ण लेख लिखे। स्थिति अनुकूल न होने के कारण उन्होंने 1918 में नौकरी से त्यागपत्र दे दिया और ग्वालियर चले गए। वहाँ भी अधिक दिन न रहकर पंजाब लौट आए तथा जडावाला (पंजाब) नामक स्थान पर रहकर कृषि कार्य करने लगे।

सरदार पूर्णसिंह देशभक्त, शिक्षाविद् और लेखक के रूप में प्रसिद्ध हैं। इन्होंने हिंदी, पंजाबी, अंग्रेजी तथा उर्दू में लेखन कार्य किया। पंजाबी तो इनकी मातृभाषा थी ही, मस्जिद के मौलवी से उन्होंने उर्दू पढ़ी और सिक्ख धर्मशाला के भाई बेलासिंह से गुरुमुखी सीखी। इन्होंने सिक्खों के 10 गुरु और स्वामी रामतीर्थ की जीवनी अंग्रेजी में लिखी। इनके नाम के साथ अध्यापक शब्द जुड़ा रहता है। इसका कारण यह है कि इन्हें देहरादून की एक बहुत अच्छी यूनिवर्सिटी में अध्यापक की नौकरी मिल गई। 700 रु. तनख्वाह मिल रही थी। यहीं से इनके नाम के आगे अध्यापक जुड़ गया। लेकिन स्वतंत्र प्रवृत्ति के व्यक्ति होने के कारण ये नौकरी नहीं निभा सके थे और ग्वालियर लौट गए थे। 25 मार्च, 1931 को उनकी मृत्यु हो गई।

पूर्णसिंह जी के हिन्दी में केवल छह निबन्ध ही उपलब्ध हैं–

1. सच्ची वीरता
2. आचरण की सभ्यता
3. मजदूरी और प्रेम
4. अमेरिका का मस्त योगी वॉल्ट व्हिट्मैन
5. कन्यादान
6. पवित्रता

टिप्पणी

आपके इन निबन्धों को पुस्तकाकार रूप में श्री प्रभात शास्त्री ने प्रकाशित कराया। इन्होंने पंजाबी में भी एक नवीन शैली का प्रवर्त्तन किया जो वार्तक कविता–शैली अथवा 'कथोपकथन शैली' कहलाती है। इन्होंने अंग्रेजी में अनेक निबन्ध लिखे तथा पंजाबी से भी कई चीजों का अनुवाद अंग्रेजी में किया। इनका नानकदेव के 'जपजी' का अंग्रेजी अनुवाद अत्यधिक प्रसिद्ध है। इस प्रकार पूर्णसिंह जी ने बहुत अधिक तो नहीं लिखा है, किंतु वे उन प्रतिभाशाली लेखकों में से हैं जिनकी रचनाएँ परिमाण में तो कम होती हैं, फिर भी वे अधिक महत्वपूर्ण एवं गरिमामयी होती हैं।

हिन्दी में इन्होंने इन छह निबन्धों के बल पर ही गद्य साहित्य में अपना महत्वपूर्ण स्थान बना लिया है। इन्होंने निबन्ध रचना के लिए मुख्यतः नैतिक विषय को चुना। उनके निबन्ध विचारात्मक होते हुए भी भावात्मक कोटि में आते हैं। ये निबन्ध द्विवेदी युग की सर्वश्रेष्ठ पत्रिका 'सरस्वती' में प्रकाशित हुए थे।

सरदार पूर्णसिंह की भाषा शुद्ध एवं साहित्यिक खड़ी बोली है। उनके निबन्धों में उर्दू–फारसी के शब्दों का भी प्रचुर प्रयोग हुआ है। उनके विचार भावुकता से ओत–प्रोत हैं, कहीं वे कवित्व की ओर मुड़ जाते हैं और कहीं उपदेशक के समान प्रतीत होते हैं। उनके निबन्धों में भावों की गतिशीलता मिलती है, उसी के अनुसार उनकी शैली भी परिवर्तित हो जाती है। उनकी भाषा विषय तथा भावों के अनुकूल है। उसमें लक्षणा तथा व्यंजना शब्द शक्तियों का चरमोत्कर्ष द्रष्टव्य है। हिन्दी में उन्होंने बहुत थोड़ा लिखकर ही अक्षय स्थान बना लिया। उन्होंने हिन्दी में भावात्मक निबन्ध ही लिखे हैं, जिनमें मधुमती कल्पना के साथ–साथ गहन अनुभूति भी विद्यमान है और जो गद्य होकर भी पद्य की सी रमणीयता से ओत–प्रोत है। वर्ण्य विषय की दृष्टि से इनके सभी छह निबंध सामाजिक ही हैं क्योंकि सभी निबन्ध सामाजिक जीवन की विविध गतिविधियों से परिपूर्ण हैं। रचना शैली की दृष्टि से सभी निबन्ध भावात्मक हैं, क्योंकि इनमें विचारों की अपेक्षा भावों की प्रधानता है, किंतु भावों की अविरल धारा में विचारों की मणियाँ भी स्पष्ट दैदीप्यमान हो रही हैं। इनके छह निबन्धों का विश्लेषणात्मक परिचय इस प्रकार है–

1. **सच्ची वीरता**– यह निबन्ध 1909 में प्रकाशित हुआ था। इसमें सच्चे वीर पुरुष के गुणों का निरूपण करते हुए लेखक ने उसके मन की गंभीरता, हृदय की विशालता, परोपकार–प्रियता, उदारता, सात्विकता, परदुःखकातरता, त्याग, बलिदान, निर्भीकता, कर्तव्यपरायणता आदि का उल्लेख किया है। आपने शंकराचार्य, अकबर, महात्मा बुद्ध, महाराजा रणजीत सिंह, ईसा मसीह, गुरुनानक आदि के उदाहरणों द्वारा वीरता के कितने ही कारनामों का विवरण प्रस्तुत किया है। साथ ही आपने वीरता के विविध रूप स्वीकार किए हैं।
2. **कन्यादान**– अक्टूबर 1909 में प्रकाशित यह निबन्ध पाँच उपशीर्षकों में विभक्त है– नयनों की गंगा, यूरोप में गृहस्थों की बेचैनी, सच्ची स्वतंत्रता, आर्य आदर्श के भग्नावशिष्ट अंश और भारत में कन्यादान की रीति। इसमें 'भारत में कन्यादान की रीति' नामक उपशीर्षक में आपने भारत में प्रचलित कन्यादान की रीति का अत्यंत मर्मस्पर्शी वर्णन किया है जिसमें विवाह की पद्धति, बारात का आगमन, यज्ञग्नि के चारों ओर घूमकर वर–कन्या के भांवर की प्रथा, विदा की करुण बेला आदि का निरूपण करते हुए भारतीय कन्यादान की पद्धति को कल्याणकारी और गरिमामयी सिद्ध किया है।

टिप्पणी

3. **पवित्रता**– 1910 में प्रकाशित यह निबन्ध उपशीर्षकों में विभक्त है। इस निबंध में लेखक ने पवित्रता के साधनों का उल्लेख करते हुए त्याग, वैराग्य, ब्रह्मचर्य, दान, तप, ज्ञान प्राप्ति पर जोर दिया है और अंत में सबसे अधिक पवित्रता के लिए मनुष्य बनने पर जोर दिया है तथा लिखा है– 'इस वास्ते बनो पहले साधारण मनुष्य, जीत जागते मनुष्य, हँसते–खेलते मनुष्य, नहाये–धोये मनुष्य, प्राकृतिक मनुष्य, जानने वाले मनुष्य, पवित्र हृदय, पवित्र बुद्धि वाले मनुष्य, प्रेम भरे, रस भरे, दिल भरे, जान भरे, प्राण भरे मनुष्य, हल चलाने वाले...'
4. **आचरण की सभ्यता**– 1912 ई. में प्रकाशित यह निबन्ध उपशीर्षकों में विभक्त नहीं है। इसमें लेखक ने विद्या, कला, कविता, साहित्य, धन और राजस्व आदि सभी से अधिक शुद्ध आचरण को महत्व दिया है। इसके लिए लेखक ने नम्रता, दया, प्रेम और उदारता को हृदय में स्थान देना आवश्यक बताया है। अच्छे आचरण वाले व्यक्तियों के संपर्क से सभी को सुख, शक्ति एवं आनंद की प्राप्ति होती है। सच्चा आचरण हिमालय की तरह होता है और इसके रूप का निर्माण शनैः–शनैः होता है।
5. **मजदूरी और प्रेम**– 1912 में प्रकाशित यह निबन्ध उपशीर्षकों में विभक्त है। इसके एक उपशीर्षक 'मजदूर की मजदूरी में' लेखक कहता है कि एक मजदूर जो घोर परिश्रम करके सारे दिन काम करता है, उसे हम उसके परिश्रम के अनुकूल मजदूरी नहीं दे पाते। फिर हम केवल प्रेम–सेवा द्वारा ही सच्चे अर्थों में मजदूरी का ऋण चुका सकते हैं।
6. **अमेरिका का मस्त योगी वॉल्ट व्हिट्मैन**– 1913 में प्रकाशित यह निबन्ध अत्यंत लघु एवं विचित्र है। इस निबन्ध के अंतर्गत पूर्णसिंह ने वाल्ट व्हिट्मैन का एक भावात्मक रेखाचित्र प्रस्तुत किया है जिसे पढ़कर वाल्ट व्हिट्मैन का एक गत्यात्मक चित्र चित्रपट की तरह हमारी आँखों के सामने गतिमान हो उठता है।

पूर्णसिंह की निबन्ध शैली को निम्न प्रकार से समझ सकते हैं–

पूर्णसिंह के निबन्धों में भावों का प्राधान्य होते हुए भी बुद्धितत्व विद्यमान है। निबन्ध के बीच–बीच में आने वाले विचार खंड लेखक के मनन और चिंतन के द्योतक हैं। लेखक के बुद्धि कौशल का चमत्कार उन किस्से–कहानियों व प्रसंगों में विशेषरूपेण दृष्टव्य है, जो स्थान–स्थान पर बड़े कौशल के साथ लेखक के विचारों का समर्थन करने के लिए उद्धृत हुए हैं। 'मजदूरी और प्रेम' में गुरुनानक और लालो एवं भागो की कथा भी लेखक के बुद्धि कौशल की परिचायक है। बुद्धितत्व के द्वारा लेखक ने अपने निबन्धों को अधिकाधिक रोचक, मनोरंजक, तथ्यपूर्ण, चमत्कारपूर्ण और प्रभावोत्पादक बनाने का सराहनीय कार्य किया है।

जहाँ बुद्धि तत्व का संबंध विचारों से होता है, वहाँ अनुभूति तत्व का संबंध हृदय एवं भावों से होता है। पूर्णसिंह एक अत्यंत भावुक निबन्धकार थे, उन्होंने भावात्मक निबन्धों की एक उज्ज्वल परंपरा स्थापित की है। निबन्धों में लेखक की भावधारा का प्रवाह इतनी सरसता, सजीवता के साथ हुआ है कि नीरस गद्य में भी सरस पद्य का सा गुण आ गया है। निबन्ध की उबा देने वाली प्रकृति में काव्यात्मक आनंद की सृष्टि हो गई है। पूर्णसिंह जी की अनुभूति बड़ी प्रखर थी। इसी कारण उनके निबन्धों में

टिप्पणी

विविध भावों की सरिता कल–कल विनोद करती हुई मंद मंथर गति से प्रवाहित हुई है। 'मजदूरी और प्रेम' निबंध का एक भाव दृश्य दृष्टव्य है 'किसान मुझे अन्न में, फूल में आहुति हुआ सा दिखाई पड़ता है। कहते हैं, ब्रह्माहुति से जगत् पैदा हुआ है। अन्न पैदा करने में किसान भी ब्रह्मा के समान है। खेती उसके ईश्वरी प्रेम का केंद्र है। उसका सारा जीवन पत्ते–पत्ते में, फूल–फूल में, फल–फल में बिखर रहा है।' इस प्रकार अनुभूति तत्व द्वारा पूर्णसिंह ने अपने निबन्धों में सरसता, सजीवता, साहित्यिकता व रमणीयता की सृष्टि की है।

पूर्णसिंह ने कल्पना तत्व के द्वारा अपने निबन्धों में कितने ही स्थलों पर रमणीय शब्द–चित्र व अद्‌भुत दृश्य उपस्थित किए हैं। 'पवित्रता' निबन्ध में ब्रह्मकान्ति की दिव्यता का प्रत्यक्षीकरण कराने के लिए उन्होंने अपनी प्रखर कल्पना का प्रयोग इस प्रकार किया है– "अनेक सूर्य आकाश के महामंडल में घूम रहे हैं, अनन्त ज्योति इध र–उधर और हर जगह बिखर रही है। सफेद सूर्य, पीले सूर्य, नीले सूर्य और लाल सूर्य, किसी के प्रेम में अपने–अपने घरों में दीपमाला कर रहे हैं।" लेखक ने अपनी प्रखर कल्पना को आधार बनाकर 'मजदूरी और प्रेम' नामक निबन्ध में भी एक गड़रिये के प्राकृतिक जीव, सिलाई करके जीवन–यापन करने वाली एक मजदूर अनाथ विधवा आदि के अत्यंत सजीव विवरण दिए हैं। कल्पना–तत्व के प्रयोग से उन्होंने अपने निबन्धों को अधिकाधिक मार्मिक, सजीव एवं प्रभावशाली बनाने का प्रयास किया है।

यह अहं तत्व ही है जो निबन्ध में एक ऐसे व्यक्तित्व की छाप छोड़ देता है जिसके फलस्वरूप किसी भी लेखक के निबन्ध में उसकी अपनी विशेषताएँ स्वतः आ जाती हैं। पूर्णसिंह के निबन्धों में भी अहं तत्व ने उनके व्यक्तित्व की ऐसी अमिट छाप अंकित की है जिसके आधार पर पूर्णसिंह के निबन्ध स्वयं बोल उठते हैं कि हम किसी अन्य के नहीं, अपितु एक देशभक्त भावुक और संवेदनशील लेखक के निबन्ध हैं। 'कन्यादान' निबन्ध लेखक भारत की विवाह–पद्धति एवं कन्यादान की रीति को विश्व की सभी वैवाहिक रीतियों से श्रेष्ठ मानते हैं और वे इसे कन्या की गुलामी न मानकर कन्या की स्वतंत्रता और साधिकार जीने की पद्धति मानते हैं– "ऐसी स्वतंत्रता प्राप्त करना हर एक आदर्श कन्या का अधिकार है। सच्चे आर्य पिता की पुत्री गुलामी, कमजोरी और कमीनेपन के लालचों से सदा मुक्त है। वह देवी तो संसार रूपी सिंह पर सवारी करती है।"

पूर्णसिंह के निबन्धों में शैली तत्व अपनी प्रखरता, प्रांजलता एवं प्रौढ़ता के साथ विद्यमान है और इसके फलस्वरूप उनके निबन्ध–संख्या में अत्यल्प होते हुए भी अमिट गुणों से परिपूर्ण हैं। यह तो निर्विविवाद सत्य है कि पूर्णसिंह के निबन्ध भावात्मक हैं। भावात्मक निबन्ध प्रायः तीन शैलियों में लिखे जाते हैं– धारा शैली, तरंग शैली और विक्षेप शैली। इनमें से धारा शैली में भावों का प्रवाह आदि से अंत तक एक सा रहता है, तरंग–शैली में भावों का उतार–चढ़ाव देखा जाता है और विक्षेप शैली में भावों की गति कुछ उखड़ी–उखड़ी रहती है, किंतु उनमें तारतम्यता और नियंत्रण बराबर बना रहता है। पूर्णसिंह के निबन्धों पर दृष्टिपात करने से यही ज्ञात होता है कि वे प्रायः धारा शैली में लिखे गए हैं, उनमें भावों का प्रवाह आदि से अंत तक एक सा बना हुआ है, वे उतार–चढ़ाव से सर्वथा रहित हैं तथा उनकी गति भी उखड़ी–उखड़ी सी दिखाई नहीं देती। उन्होंने अपनी धारा शैली को लाक्षणिक पदावली से अधिकाधिक चमत्कारपूर्ण

व उक्तिवैचित्र्यपूर्ण बनाया है। शुक्ल जी ने ठीक ही लिखा है कि "उनकी लाक्षणिकता हिन्दी गद्य साहित्य में एक नई चीज थी।" पूर्णसिंह ने अपनी धारा शैली को अधिकाधिक रोचक एवं अलंकृत बनाने के लिए गद्यात्मक खंडों में पद्य की तरह अलंकारों का प्रचुर प्रयोग किया है। 'सच्ची वीरता' निबन्ध में उपमा और रूपक की छटा दिखाता यह अंश देखिए– "वीरों के बनाने के कारखाने कायम नहीं हो सकते। ये तो देवदारू के दरख्तों की तरह जीवन के अरण्य में खुद–ब–खुद पैदा होते हैं।"

लेखक ने अपनी भाव प्रधान धारा शैली को अधिकाधिक प्रभावशाली बनाने के लिए सूक्तियों का प्रयोग अत्यधिक मात्रा में किया है, यथा– 'अपने आपको गंवाकर ही सच्ची स्वतंत्रता नसीब होती है, मजदूरी करना जीवन यात्रा का आध्यात्मिक नियम है।' लेखक ने सूक्तियों के अतिरिक्त कटूक्तियों एवं व्यंग्योक्तियों के द्वारा भी अपने हृदय के उद्‌गार व्यक्त किए हैं– 'आजकल के कुछ मनुष्य कन्यादान को गुलामी की हँसली मान बैठे हैं'। लेखक की भावात्मक धारा शैली में ओज, माधुर्य और प्रसाद नामक तीनों गुण भी अधिकाधिक सजीवता, मार्मिकता और सरसता के साथ विद्यमान हैं।

भाषा की बात करें तो पूर्णसिंह अंग्रेजी, संस्कृत, उर्दू–फारसी, हिन्दी आदि कई भाषाओं के ज्ञाता थे और उनके निबन्धों में इन सभी भाषाओं के शब्द प्रचुर मात्रा में आए हैं। इसके अतिरिक्त उन्होंने अपने निबन्धों को अधिकाधिक अर्थवत्ता प्रदान करने के लिए संस्कृत, उर्दू–फारसी व अंग्रेजी के उद्धरणों का भी प्रयोग किया है, यथा– 'अहं ब्रह्मास्मि।' उर्दू के शेर का प्रयोग 'मजदूरी और प्रेम' निबन्ध में दृष्टव्य है–

जो खुदा को देखना हो तो मैं देखता हूँ तुमको
मैं देखता हूँ तुमको जो खुदा को देखना है।

लेखक ने अपनी भाषा में धारावाहिता व गतिशीलता लाने के लिए छोटे–छोटे विलक्षण वाक्यों, विरोधात्मक उक्तियों, प्रश्नवाचक वाक्यों तथा मुहावरों एवं लोकोक्तियों का भी सफल प्रयोग किया है। इतना सब कुछ होते हुए भी पूर्णसिंह की भाषा में कहीं–कहीं व्याकरण की दृष्टि से कतिपय दोष भी मिल जाते हैं। सारांशतः कह सकते हैं कि पूर्णसिंह की भाषा प्रौढ़, प्रांजल एवं प्रवाहमयी है। उसमें काव्यात्मक चमत्कार कूट–कूट कर भरा है। मात्र छह निबन्ध लिखकर ही हिन्दी साहित्य में अपना विशिष्ट स्थान बना लेने वाले पूर्णसिंह सचमुच विलक्षण प्रतिभा के धनी हैं, इसमें कोई संदेह नहीं।

5.3.1 आचरण की सभ्यता (निबन्ध) का मूल पाठ

आचरण की सभ्यता भाषा सदा मौन रहती है। इस भाषा का निघण्टु शुद्ध श्वेत–पत्रों वाला है। इसमें नाममात्र के लिए भी शब्द नहीं। यह सभ्याचरण नाद करता हुआ भी मौन है, व्याख्यान देता हुए भी व्याख्यान के पीछे छिपा है, राग गाता हुआ भी राग के सुर के भीतर पड़ा है। मृदु वचनों की मिठास के आचरण की सभ्यता मौन रूप से खुली हुई है। नम्रता, दया, प्रेम और उदारता सब–के–सब सभ्याचरण की भाषा के मौन व्याख्यान हैं। मनुष्य के जीवन पर मौन व्याख्यान का प्रभाव चिरस्थायी होता है और उसकी आत्मा का एक अंग हो जाता है।

न काला, न नीला, न पीला, न सफेद, न पूर्वी, न पश्चिमी, न उत्तरी, न दक्षिण, बेनाम, बेनिशान, बेमकान, आत्मा के आचरण से मौन रूपिणी, सुगंधि सदा प्रसारित हुआ

करती है। इसके मौन से प्रसूत प्रेम और पवित्रता धर्म सारे जगत का कल्याण करके विस्तृत होते हैं।

टिप्पणी

इसकी उपस्थिति से मन और हृदय की ऋतु बदल जाती है। तीक्ष्ण गर्मी से जले–भुने व्यक्ति आचरण के काले बादलों की बूँदा–बाँदी से शीतल हो जाते हैं। मानसोत्पन्न शरद् ऋतु के आनंद का पान करते हैं। आचरण के नेत्र के एक अश्रु से जगत भर के नेत्र भीग जाते हैं। आचरण के आनंद नृत्य से उन्मदिष्णु होकर वृक्षों और पर्वतों तक के हृदय नृत्य करने लगते हैं। आचरण के मौन व्याख्यान से मनुष्य को एक नया जीवन प्राप्त होता है। नए–नए विचार प्रकट होने लगते हैं। सूखे काष्ठ सचमुच ही हरे हो जाते हैं। सूखे कूपों में जल भर आता है। नए नेत्र मिलते हैं। कुछ पदार्थों के साथ एक नया मैत्री भाव फूट पड़ता है। सूर्य, जल, वायु, पुष्प, पत्थर, घास, पात, नर, नारी और बालक तक में एक अभूतपूर्व सुंदर मूर्ति के दर्शन होने लगते हैं।

मौनरूपी व्याख्यान की महत्ता इतनी बलवती, इतनी अर्थवती और इतनी प्रभावती होती है कि उसके सामने क्या मातृभाषा, क्या साहित्यभाषा और क्या अन्य देश की भाषा सब–की–सब तुच्छ प्रतीत होती हैं। अन्य कोई भाषा दिव्य नहीं, केवल आचरण की मौन भाषा ही ईश्वरीय है। विचार करके देखो, मौनव्याख्यान किस तरह आपके हृदय की नाड़ी–नाड़ी में सुंदरता को पिरो देता है। वह व्याख्यान ही क्या, जिसने हृदय की धुन को, मन के लक्ष्य को ही न बदल दिया। चन्द्रमा की मंद–मंद हँसी का तारागण से कटाक्षपूर्ण प्राकृतिक मौन व्याख्यान का प्रभाव किसी कवि के दिल में घुसकर देखो। सूर्यास्त होने के पश्चात् श्री केशवचंद्र सेन और महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर ने सारी रात एक क्षण की तरह गुजार दी, यह तो कल की बात है। कमल और नरगिस में नयन देखने वाले नेत्रों से पूछो कि मौन व्याख्यान की प्रभुता कितनी दिव्य है।

प्रेम की भाषा शब्द रहित है। नेत्रों की, कपोलों की, मस्तक की भाषा भी शब्द रहित है। जीवन का तत्व भी शब्द से परे है। सच्चा आचरण प्रभाव, शील, अचलस्थित संयुक्त आचरण– न तो साहित्य के लंबे व्याख्यानों से गढ़ा जा सकता है, न वेद की श्रुतियों के मीठे उपदेश से, न इंजील से, न कुरान से, न धर्म चर्चा से, न केवल सत्संग से। जीवन के अरण्य में धँसे हुए पुरुष के हृदय पर प्रकृति और मनुष्य के जीवन के मौन व्याख्यानों के यत्न से सुनार के छोटे हथौड़ों की मंद–मंद चोटों की तरह आचरण का रूप प्रत्यक्ष होता है।

बर्फ का दुपट्टा बाँधे हुए हिमालय इस समय तो अति सुंदर, अति ऊँचा और अति गौरवान्वित मालूम होता है, परंतु प्रकृति ने अगणित शताब्दियों के परिश्रम से रेत का एक–एक परमाणु समुद्र के जल में डुबो–डुबोकर और उनको अपने क्षितिज हथौड़े से सुडौल करके इस हिमालय के दर्शन कराए हैं। आचरण भी हिमालय की तरह एक ऊँचे कलशवाला मंदिर है। यह वह आम का पेड़ नहीं, जिसको मदारी एक क्षण में, तुम्हारी आँखों में मिट्टी डालकर अपनी हथेली पर जमा दे। इसके बनने में अनंत काल लगा है। पृथ्वी बन गई, सूर्य बन गया, तारागण आकाश में दौड़ने लगे, परंतु अभी तक आचरण के सुंदर रूप के पूर्ण दर्शन नहीं हुए। कहीं–कहीं उसकी अत्यंत सुंदर छटा अवश्य दिखाई देती है।

पुस्तकों में लिखे हुए नुस्खों से तो और भी अधिक बदहजमी हो जाती है। सारे वेद और शास्त्र भी यदि घोलकर पी लिए जाएँ, तो भी आदर्श आचरण की प्राप्ति नहीं

टिप्पणी

होती। आचरण प्राप्ति की इच्छा रखने वाले को तर्क–वितर्क से कुछ भी सहायता नहीं मिलती। शब्द और वाणी तो साधारण जीवन के चोचले हैं। ये आचरण की गुप्त गुहा में नहीं प्रवेश कर सकते। वहाँ इनका कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता। वेद इस देश के रहने वालों के विश्वासानुसार ब्रह्मवाणी हैं, परन्तु इतना काल व्यतीत हो जाने पर भी आज तक वे समस्त जगत की भिन्न–भिन्न जातियों को संस्कृत भाषा न बुला सके– न समझा सके– न सिखा सके। यह बात हो कैसे? ईश्वर तो सदा मौन है। ईश्वरीय मौन शब्द और भाषा का विषय नहीं। यह केवल आचरण के कान में गुरुमंत्र फूँक सकता है। यह केवल ऋषि के दिल में वेद का ज्ञानोदय कर सकता है।

किसी का आचरण वायु के झोंके से हिल जाए तो हिल जाए, परन्तु साहित्य और शब्द की गोलन्दाजी और आँधी से उसके सिर के एक बाल तक का बाँका न होना एक साधारण बात है। पुष्प की कोमल पंखुड़ी के स्पर्श से किसी को रोमांच हो जाए, जल की शीतलता से क्रोध और विषय–वासना शांत हो जाए, बर्फ के दर्शन से पवित्रता आ जाए, सूर्य की ज्योति से नेत्र खुल जाएँ– परन्तु अंग्रेजी भाषा का व्याख्यान– चाहे वह कारलायल ही का लिखा हुआ क्यों न हो– बनारस में पंडितों के लिए रामरोला ही है। इसी तरह न्याय और व्याकरण की बारीकियों के विषय में पंडितों के द्वारा की गई चर्चाएँ और शास्त्रीय संस्कृत ज्ञान–हीन पुरुषों के लिए स्टीम इंजन के फुस–फुस शब्द से अधिक अर्थ नहीं रखते। यदि आप कहें कि व्याख्यानों द्वारा, उपदेशों द्वारा, धर्मप्रचार द्वारा कितने ही पुरुषों और नारियों के हृदय पर जीवन–व्यापी प्रभाव पड़ा है, तो उत्तर यह है कि प्रभाव शब्द का नहीं पड़ता– प्रभाव तो सदा सदाचरण का पड़ता है। साधारण उपदेश तो हर गिरजे, हर मंदिर और हर मस्जिद में होते हैं, परंतु उनका प्रभाव तभी हम पर पड़ता है जब गिरजे का पादरी स्वयं ईसा होता है, मंदिर का पुजारी स्वयं ब्रह्मर्षि होता है, मस्जिद का मुल्ला स्वयं पैगम्बर और रसूल होता है।

यदि एक ब्राह्मण किसी डूबती कन्या की रक्षा के लिए– चाहे वह कन्या जिस जाति की हो, जिस किसी मनुष्य की हो, जिस किसी देश की हो, अपने आप को गंगा में फेंक दे, चाहे उसके प्राण यह काम करने में रहें चाहे जाएँ– तो इस कार्य में प्रेरक आचरण की मौनमयी भाषा किस देश में, किस जाति में और किस काल में, कौन नहीं समझ सकता? प्रेम का आचरण, दया का आचरण, क्या पशु क्या मनुष्य–जगत के सभी चराचर आप–ही–आप क्या समझ लेते हैं? जगत भर के बच्चों की भाषा इस भाष्यहीन भाषा चिह्न के इस शुद्ध मौन का नाद और हास्य भी सब देशों में एक ही–सा पाया जाता है।

मनुष्य का जीवन इतना विशाल है कि उसके आचरण को रूप देने के लिए नाना प्रकार के ऊँच–नीच और भले–बुरे विचार, अमीरी और गरीबी, उन्नति और अनवति इत्यादि सहायता पहुँचाते हैं। पवित्र–अपवित्र, उतनी ही बलवती है, जितनी कि पवित्र, पवित्रता। जो कुछ जगत में हो रहा है वह केवल आचरण के विकास के अर्थ में हो रहा है। अन्तरात्मा वही काम करती है जो बाह्य पदार्थों के संयोग का प्रतिबिम्ब होता है। जिनको हम पवित्रात्मा कहते हैं, क्या पता है, किन–किन कूपों से निकलकर वे अब उदय को प्राप्त हुए हैं, जिनको हम धर्मात्मा कहते हैं, क्या पता है, किन–किन अधर्मों को करके वे धर्म ज्ञान को पा सके हैं, जिनको हम सभ्य कहते हैं और जो अपने जीवन में पवित्रता को ही सब कुछ समझते हैं, क्या पता है, वे कुछ काल पूर्व बुरी और अधर्म

टिप्पणी

पवित्रता में लिप्त रहे हों। अपने जन्म–जन्मान्तरों के संस्कारों से भरी हुई अन्धकारमय कोठरी से निकलकर ज्योति और स्वच्छ वायु से परिपूर्ण खुले हुए देश में जब तक अपना आचरण अपने नेत्र न खोल चुका हो, तब तक धर्म के गूढ़ तत्व कैसे समझ में आ सकते हैं। नेत्र–रहित को सूर्य से क्या लाभ? हृदय–रहित को प्रेम से क्या लाभ? बहरे को राग से क्या लाभ? कविता, साहित्य, पीर, पैगम्बर, गुरु, आचार्य, ऋषि आदि के उपदेशों से लाभ उठाने का यदि आत्मा में बल नहीं तो उनसे क्या लाभ? जब तक वह खाद की गर्मी से अंकुरित नहीं हुआ और प्रस्फुटित होकर उससे दो नए पत्ते ऊपर नहीं निकल आए तब तक ज्योति और वायु उसके किस काम के?

वह आचरण को धर्म–सम्प्रदायों के अनुच्चरित शब्दों को सुनाता है, हम में कहाँ जब वही नहीं, तब फिर क्यों न ये सम्प्रदाय हमारे मानसिक महाभारतों के कुरुक्षेत्र बनें? क्यों न अप्रेम, अपवित्र, हत्या और अत्याचार इन सम्प्रदायों के नाम से हमारा खून करें। कोई भी सम्प्रदाय आचरण रहित पुरुषों के लिए कल्याणकारक नहीं हो सकता और आचरण वाले पुरुषों के लिए सभी धर्म, सम्प्रदाय कल्याणकारक हैं। सच्चा साधु धर्म को गौरव देता है, धर्म किसी को गौरवान्वित नहीं करता। आचरण का विकास जीवन का परमोद्देश्य है। आचरण के विकास के लिए नाना प्रकार की सामग्रियों का, जो संसार–संभूत शारीरिक, प्राकृतिक, मानसिक और आध्यात्मिक जीवन में वर्तमान है, उन सबकी (सबका?) क्या एक पुरुष और क्या एक जाति के आचरण के विकास के साधनों के सम्बन्ध में विचार करना होगा। आचरण के विकास के लिए जितने कर्म हैं उन सबको आचरण के संघटनकर्ता धर्म का अंग मानना पड़ेगा। चाहे कोई कितना ही बड़ा महात्मा क्यों न हो, वह निश्चयपूर्वक यह नहीं कह सकता कि यों ही करो और किसी प्रकार नहीं। आचरण की सभ्यता की प्राप्ति के लिए वह सबको एक पथ नहीं बता सकता। आचरणशील महात्मा स्वयं भी किसी अन्य के बनाए हुए रास्ते पर चलकर अपने आचरण को आदर्श के ढांचे में नहीं ढाल सकते। हमें अपना रास्ता अपने जीवन की कुदाली की एक–एक चोट से रात–दिन बनाना पड़ेगा और उसी पर चलना भी पड़ेगा। हर किसी को अपने देश, कालानुसार यह प्राप्ति के लिए अपनी नैया आप ही बनानी पड़ेगी और आप ही चलानी भी पड़ेगी।

यदि मुझे ईश्वर का ज्ञान नहीं तो ऐसे ज्ञान से क्या प्रयोजन? जब तक मैं अपना हथौड़ा ठीक–ठाक चलाता हूँ और रूपहीन लोहे को तलवार के रूप में गढ़ देता हूँ तब तक मुझे यदि ईश्वर का ज्ञान नहीं तो नहीं होने दो। उस ज्ञान से मुझे प्रयोजन ही क्या? जब तक मैं अपना उद्धार ठीक और शुद्ध रीति से किए जाता हूँ तब तक यदि मुझे आध्यात्मिक पवित्रता का ज्ञान नहीं होता, न होने दो। उससे सिद्धि ही क्या हो सकती है, जब तक किसी जहाज के कप्तान के हृदय में इतनी वीरता भरी हुई है कि वह महाभयानक समय में अपने जहाज को नहीं छोड़ता तब तक यदि वह मेरी और तेरी दृष्टि में शराबी और स्त्रैण है तो उसे वैसा ही होने दो। उसकी बुरी बातों से हमें प्रयोजन ही क्या? आँधी हो, बर्फ हो, बिजली की कड़क हो, समुद्र का तूफान हो, वह दिन–रात आँख खोले अपने जहाज की रक्षा के लिए जहाज के पाल पर घूमता हुआ अपने धर्म का पालन करता है। वह अपने जहाज के साथ समुद्र में डूब जाता है, परंतु अपना जीवन बचाने के लिए कोई उपाय नहीं करता। क्या उसके आचरण का यह अंश मेरे–तेरे बिस्तर और आसन पर बैठे–बिठाए कहे हुए निरर्थक शब्दों के भाव से कम महत्व का है।

टिप्पणी

न मैं किसी गिरजे में जाता हूँ और न किसी मंदिर में, न मैं नमाज पढ़ता हूँ और न रोजा ही रखता हूँ, न संध्या ही करता हूँ और न कोई देव–पूजा ही करता हूँ, न किसी आचार्य के नाम का मुझे पता है और न किसी के आगे मैंने सिर ही झुकाया है। तो इससे प्रयोजन ही क्या और इससे हानि भी क्या? मैं तो अपनी खेती करता हूँ, अपने हल और बैलों को प्रातःकाल उठकर प्रणाम करता हूँ, मेरा जीवन जंगल के पेड़ों और पत्तियों की संगति से गुजरता है। आकाश के बादलों को देखते मेरा दिन निकल जाता है। मैं किसी को धोखा नहीं देता, हाँ यदि मुझे कोई धोखा दे तो उससे मेरी कोई हानि नहीं। मेरे खेत में अन्न उग रहा है, मेरा घर अन्न से भरा है, बिस्तर के लिए मुझे एक कमली काफी है, कमर के लिए लँगोटी और सिर के लिए एक टोपी बस है। हाथ–पाँव मेरे बलवान हैं, शरीर मेरा आरोग्य है, भूख खूब लगती है, बाजरा और मकई, छाछ और दही, दूध और मक्खन मुझे और बच्चों को खाने के लिए मिल जाता है। क्या इस किसान की सादगी और सच्चाई में वह मिठास नहीं, जिसकी प्राप्ति के लिए भिन्न–भिन्न धर्म, सम्प्रदाय, लंबी–चौड़ी और चिकनी–चुपड़ी बातों द्वारा दीक्षा दिया करते हैं।

जब साहित्य, संगीत और कला की अति ने रोम को घोड़े से उतारकर मखमल के गद्दों पर लिटा दिया, जब आलस्य और विषय विकार की लम्पटता ने जंगल और पहाड़ की साफ हवा के असभ्य और उद्दण्ड जीवन से रोमवालों का मुख मोड़ दिया, तब रोम नरम तकियों और बिस्तरों पर ऐसा सोया कि अब तक न आप जागा और न कोई उसे जगा सका। ऐंग्लो सैक्सन जाति ने जो उच्च पद प्राप्त किया, बस उसने अपने समुद्र, जंगल और पर्वत से सम्बन्ध रखने वाले जीवन से प्राप्त किया। जाति की उन्नति लड़ने–भिड़ने, मरने–मारने, लूटने और लूटे जाने, शिकार करने और शिकार होने वाले जीवन का ही परिणाम है। लोग कहते हैं, केवल धर्म ही जाति की उन्नति करता है। यह ठीक है, परन्तु यह धर्मांकुर जो जाति को उन्नत करता है, इस असत्य, कमीने पापमय जीवन की गंदी राख के ढेर के ऊपर नहीं उगता है। मन्दिरों और गिरजों की मन्द–मन्द टिमटिमाती हुई मोमबत्तियों की रोशनी से यूरोप इस उच्चावस्था को नहीं पहुँचा। वह कठोर जीवन, जिसको देश–देशान्तरों में ढूँढ़ते फिरते रहने के बिना शान्ति नहीं मिलती जिसकी अन्तर्ज्वाला दूसरी जातियों को जीतने, लूटने, मारने और उन पर राज करने के बिना मन्द नहीं पड़ती, केवल वही विशाल जीवन समुद्र की छाती पर मूँग दलकर और पहाड़ों को फाँदकर उनकी उस महानता की ओर ले गया और ले जा रहा है। राबिनहुड की प्रशंसा में जो कवि अपनी सारी शक्ति खर्च कर देते हैं उन्हें तत्वदर्शी कहना चाहिए, क्योंकि राबिनहुड जैसे भौतिक पदार्थों से ही नेलसन और वेलिंगटन जैसे अंग्रेज वीरों की हड्डियाँ तैयार हुई थीं। लड़ाई के आजकल के सामान गोला, बारूद, जंगी जहाज और तिजारती बेड़ों आदि को देखकर कहना पड़ता है कि इनसे वर्तमान सभ्यता से भी कहीं अधिक उच्च सभ्यता का जन्म होगा।

धर्म और आध्यात्मिक विद्या के पौधे को ऐसी आरोग्यवर्द्धक भूमि देने के लिए, जिसमें वह प्रकाश और वायु में सदा खिलता रहे, सदा फूलता रहे, सदा फलता रहे, यह आवश्यक है कि बहुत से हाथ एक अनन्त प्रकृति के ढेर को एकत्र करते रहें। धर्म की रक्षा के लिए क्षत्रियों को सदा ही कमर बाँधे हुए सिपाही बने रहने का भी तो यही अर्थ है। यदि कुल समुद्र का जल उड़ा दो तो रेडियम धातु का एक कण कहीं हाथ लगेगा। आचरण का रेडियम– क्या एक पुरुष का और क्या जाति का और क्या

टिप्पणी

एक जगत का– सारी प्रकृति को खाद बनाए बिना, सारी प्रकृति को हवा में उड़ाए बिना भला कब मिलने का है? प्रकृति को मिथ्या करके नहीं उड़ाना, उसे उड़ाकर मिथ्या करना है? समुद्रों में डोरा डालकर अमृत निकाला है, सो भी कितना? जैसे– सारे संसार की खाक छानकर आचरण का स्वर्ण हाथ आता है। क्या बैठे–बिठाए भी वह मिल सकता है।

हिन्दुओं का सम्बन्ध यदि किसी प्राचीन असभ्य जाति के साथ रहा होता तो उनके वर्तमान वंश में अधिक बलवान श्रेणी के मनुष्य होते तो उनमें भी ऋषि, पराक्रमी, जनरल और धीरे–धीरे पुरुष उत्पन्न होते, आजकल तो वे उपनिषदों के ऋषियों के पवित्रतामय प्रेम के जीवन को देख–देखकर अहंकार में मग्न हो रहे हैं और दिन–पर–दिन अधोगति की ओर जा रहे हैं। यदि वे किसी जंगली जाति की संतान होते तो उनमें भी ऋषि और बलवान योद्धा होते। ऋषियों को पैदा करने के योग्य पृथ्वी का बन जाना तो आसान है, परन्तु ऋषियों को अपनी उन्नति के लिए राख और पृथ्वी बनाना कठिन है, क्योंकि ऋषि तो केवल अंतःप्रकृति पर सजते हैं, हमारी जैसी पुष्प शय्या पर मुरझा जाते हैं। माना कि प्राचीन काल में यूरोप में सभी असभ्य थे, परन्तु आजकल तो हम असभ्य हैं। उनकी असभ्यता के ऊपर ऋषि जीवन की उच्च सभ्यता फूल रही है और हमारे ऋषियों के जीवन के फूल की शैया पर आजकल असभ्यता का रंग चढ़ा हुआ है। सदा ऋषि पैदा करते रहना, अर्थात् अपनी ऊँची चोटी के ऊपर इन फूलों को सदा धारण करते रहना ही जीवन के नियमों का पालन करना है।

धर्म के आचरण की प्राप्ति यदि ऊपरी आडम्बरों से होती तो आजकल भारत के निवासी सूर्य के समान शुद्ध आचरण वाले हो जाते। भाई! माला से तो जप नहीं होता। गंगा नहाने से तो तप नहीं होता। पहाड़ों पर चढ़ने से प्राणायाम हुआ करता है, समुद्र में तैरने से नेती धुलती है। आँधी, पानी और साधारण जीवन के ऊँच–नीच गर्मी, सर्दी, गरीबी–अमीरी को झेलने से तप हुआ करता है। आध्यात्मिक धर्म के स्वप्नों की शोभा तभी भली लगती है जब आदमी अपने जीवन का धर्म पालन करे। खुले समुद्र में अपने जहाज पर बैठकर ही समुद्र की आध्यात्मिक शोभा का विचार होता है। भूखे को तो चन्द्र और सूर्य भी केवल आटे की बड़ी–बड़ी दो रोटियों से प्रतीत होते हैं। कुटिया में ही बैठकर धूप, आँधी और बर्फ की दिव्य शोभा का आनंद आ सकता है। प्राकृतिक सभ्यता के आने पर ही मानसिक सभ्यता आती है और तभी वह स्थिर भी रह सकती है। मानसिक सभ्यता के होने पर ही आचरण की सभ्यता की प्राप्ति संभव है और तभी वह स्थिर भी हो सकती है। जब तक निर्धन पुरुष पाप से अपना पेट भरता है तब तक धनवान पुरुष के शुद्धाचरण की पूरी परीक्षा नहीं होती। इसी प्रकार जब तक अज्ञानी का आचरण अशुद्ध है तब तक ज्ञानवान के आचरण की पूरी परीक्षा नहीं, तब तक जगत में आचरण की सभ्यता का राज्य नहीं। आचरण की सभ्यता का देश ही निराला है। उसमें न शारीरिक झगड़े हैं, न मानसिक, न आध्यात्मिक। न उसमें विद्रोह है, न जग ही का नामोनिशान है और न वहाँ कोई ऊँचा है, न नीचा। न कोई वहाँ धनवान है और न कोई वहाँ निर्धन। वहाँ प्रकृति का नाम नहीं, वहाँ तो प्रेम और एकता का अखण्ड राज्य रहता है। जिस समय आचरण की सभ्यता संसार में आती है उस समय नीले आकाश से मनुष्य को वेद–ध्वनि सुनाई देती है, नर–नारी पुष्पवत् खिलते जाते हैं, प्रभात हो जाता है, प्रभात का बजर बज जाता है। नारद की वीणा आलापने लगती है, ध्रुव

टिप्पणी

का शंख गूँज उठता है, प्रहलाद का नृत्य होता है, शिव का डमरू बजता है, कृष्ण की बाँसुरी की धुन प्रारम्भ हो जाती है। जहाँ ऐसे शब्द होते हैं, जहाँ ऐसे पुरुष रहते हैं, वहाँ ऐसी ज्योति होती है, वही आचरण की सभ्यता का सुनहरा देश है। वही देश मनुष्य का स्वदेश है। जब तक घर न पहुँच जाए, सोना अच्छा नहीं, चाहे वेदों में, चाहे इंजील में, चाहे कुरान में, चाहे त्रिपीटक (त्रिपिटक) में, चाहे इस स्थान में, चाहे उस स्थान में, कहीं भी सोना अच्छा नहीं, आलस्य मृत्यु है। लेख तो पेड़ों के चित्र सदृश होते हैं, पेड़ तो होते ही नहीं जो फल लदें।

5.3.2 'आचरण की सभ्यता' निबन्ध का सार

आचरण की सभ्यता सरदार पूर्णसिंह द्वारा रचित एक भावात्मक निबन्ध है। यह निबंध फरवरी 1912 ई. में प्रकाशित हुआ है। यह निबन्ध उपशीर्षकों में विभक्त नहीं है। यह लेखक का एक बहुचर्चित व बहुप्रशंसित निबन्ध है जो प्रायः निबन्ध की पाठ्यपुस्तकों में सम्मिलित रहता है।

लेखक के अनुसार विद्या, कला, कविता, साहित्य, धन और राजस्व से भी अधिक महत्वपूर्ण आचरण की सभ्यता है। इसके लिए लेखक ने नम्रता, दया, प्रेम और उदारता को हृदय में स्थान देना आवश्यक बताया है। आचरण की सभ्यता की महिमा बड़ी चमत्कारी है। अच्छे आचरण वाले व्यक्ति मुखर न होकर मौन रहते हैं। वास्तविक रूप में अच्छे आचरण वाले व्यक्ति चुपचाप अपने कर्तव्य के निर्वाह और जगत के कल्याण में लगे रहते हैं। इनके मौन व्याख्यान का प्रभाव चिरस्थायी होता है और जड़–चेतन, बालक–वृद्ध सभी पर अनिवार्य रूप से पड़ता है। अच्छे आचरण वाले व्यक्तियों से सभी को सुख–शांति एवं असीम आंतरिक आनंद की प्राप्ति होती है।

सच्चा आचरण हिमालय की तरह उन्नत और गौरवान्वित होता है लेकिन इसके रूप का निर्माण धीरे–धीरे होता है। यह एकाएक निर्मित होने वाली चीज नहीं है। इसका निर्माण वेद, शास्त्रों अथवा धार्मिक पुस्तकों के अध्ययन से नहीं होता। केवल सच्चा आचरण ही आचरण की सभ्यता का निर्माण कर सकता है। बड़े–बड़े व्याख्यानों, उपदेशों और धर्मचर्चाओं का मनुष्यों पर कभी भी स्थायी प्रभाव नहीं पड़ता, अपितु जब उपदेशक, पुजारी, पादरी, मुल्ला आदि स्वयं आचारवान होते हैं, तभी उनका प्रभाव पड़ता है। इस प्रभाव में उम्र, भाषा और स्थान की कोई भूमिका नहीं होती। प्रेम और दया के आचरण को मनुष्य तो क्या, पशु भी समझते हैं। सदाचरण के बिना धर्म के गूढ़ तत्व भी समझ में नहीं आते। कोई भी संप्रदाय आचरणरहित मनुष्यों के लिए कल्याणकारी नहीं हो सकता और आचारवान पुरुषों के लिए सभी धर्म–संप्रदाय कल्याणकारक हैं। सच्चा साधु धर्म को गौरव देता है। धर्म किसी को गौरवान्वित नहीं करता।

आचरण का विकास जीवन का परमोद्देश्य है। आचरण का विकास प्रयत्नपूर्वक किए गए अपने ही प्रयासों पर निर्भर है। किसी और के बनाये गए रास्ते पर चलकर अपने आचरण को आदर्श के ढांचे में नहीं ढाला जा सकता। कोई संत–महात्मा भी जीवन पर्यन्त शुद्धाचरण का दावा नहीं कर सकता। अच्छी–बुरी यथा ऊँच–नीच, उन्नति–अवनति आदि विरोधी प्रवृत्तियों के योग व संघर्ष से आचरण का निर्माण होता है। आचरण के निर्माण का दावा करने वाली बाहरी शक्तियाँ तभी प्रभावी हो सकती हैं जब उन्हें ग्रहण करने का आत्मा में बल हो। लेखक पूर्णसिंह आध्यात्मिक ज्ञान और

टिप्पणी

आडम्बरपूर्ण पूजा पाठ के मुकाबले कर्तव्य कर्म को आचरण की सभ्यता के लिए जरूरी मानते हैं। ईश्वरीय पूजा से विमुख किसानी करके अपने परिवार का पेट भरने वाला और प्रकृति के सान्निध्य में जीवन गुजारने वाला किसान किसी धर्मदीक्षित व्यक्ति की अपेक्षा अधिक आचारवान है। लेखक ने आध्यात्मिक पवित्रता धारण करने वाले को ही अच्छे आचरण वाला व्यक्ति नहीं माना है, अपितु आध्यात्मिक पवित्रता से रहित अपने काम में सतत् लीन लुहार को एवं शराबी तथा स्त्रैण होते हुए भी कर्तव्य परायण जहाज के कप्तान को अच्छे आचरण वाला स्वीकार किया है। लेखक का स्पष्ट विचार है कि केवल साहित्य, कलाएँ व धर्म किसी जाति को उन्नत नहीं बनाता अपितु कठोर जीवन, परिश्रम, अन्वेषण एवं सतत् प्रयत्न ही किसी जाति को उन्नत बनाते हैं, साथ ही संसार की खाक छानकर ही आचरण का स्वर्ण हाथ आता है। अकर्मण्यता और पुरातन ज्ञान के अहंकार के कारण भारत असभ्यता की ओर बढ़ रहा है, जबकि यूरोप कर्मठता के बलबूते पर असभ्यता की स्थिति से सभ्यता की ओर बढ़ रहा है।

धर्म के आचरण की प्राप्ति ऊपरी आडम्बरों से नहीं होती। इसकी प्राप्ति कृत्रिम वातावरण में नहीं अपितु प्राकृतिक वातावरण में ही संभव है। पहले प्राकृतिक सभ्यता प्राप्तव्य है, प्राकृतिक सभ्यता से मानसिक सभ्यता आएगी और मानसिक सभ्यता के प्राप्त होते ही आचरण की सभ्यता प्राप्त होगी। इस सभ्यता के प्राप्त होते ही शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक सभी प्रकार के झगड़े समाप्त हो जाएँगे। सर्वत्र आनन्द व उल्लास की स्वर्णिम आभा फैल जाती है।

5.3.3 व्याख्यांश

- आचरण की सभ्यता भाषा ..... आत्मा का एक अंग हो जाता है।

सन्दर्भ– प्रस्तुत अवतरण हिन्दी में मात्र छह निबन्ध लिखकर अपना अतिविशिष्ट स्थान बनाने वाले सरदार पूर्णसिंह द्वारा लिखित निबन्ध 'आचरण की सभ्यता' से व्याख्यार्थ उद्धृत है। यह एक प्रसिद्ध भावात्मक निबन्ध है और इसमें भावात्मक पद्धति का चरमोत्कर्ष विद्यमान है। पूर्णसिंह ने हिन्दी में लिखा तो बहुत कम है, किंतु वे उन प्रतिभाशाली लेखकों में से है, जिनकी रचनाएँ परिमाण में तो कम होती है फिर भी वे अधिक महत्वपूर्ण एवं गरिमामयी होती हैं।

प्रसंग– विद्या, कला, साहित्य, धन और राजस्व से भी अधिक महत्व आचरण की सभ्यता का है। इसके प्रभाव से कला, साहित्य और संगीत को अद्भुत सिद्धि प्राप्त होती है। आचारवान व्यक्ति सबको प्रभावित कर सबका प्रिय बन जाता है।

व्याख्या– निबन्धकार का कहना है कि सच्चे अर्थों में आचारवान व्यक्ति बड़बोले नहीं होते और न ही वे आत्म–श्लाघा के शिकार होते हैं। वे तो मौन रहकर अपने कर्तव्य का पालन करते रहते हैं। इनका व्यवहार एवं चरित्र श्वेत पत्र की भाँति सफेद व उज्ज्वल होता है। ये अपनी प्रशंसा में या अपने बारे में कुछ नहीं कहते। लेकिन इनका मौन भी मुखर होता है। अन्य शब्दों में ये स्वयं अपने बारे में बतायें या न बतायें लोगों को एक न एक दिन इनकी अच्छाइयों का आभास हो ही जाता है और लोग इनके प्रति श्रद्धावनत होते ही हैं। इनकी बोली कभी कर्कश नहीं होती क्योंकि कटु वचनों से दूसरों का दिल दुखता है और ये कभी किसी का दिल नहीं दुखा सकते। आचरण का अर्थ है मनुष्य में नम्रता, यथा प्रेम और उदारता का समावेश होना। ये ऐसे गुण हैं जिनका

टिप्पणी

संबंध व्यवहार से होता है और व्यवहार दूसरों के प्रति किया जाता है। व्यक्ति के अच्छे–बुरे व्यवहार का दूसरों पर अच्छा–बुरा प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है। चिल्लाकर कही गई बात और तेज स्वर में दिया गया व्याख्यान दूसरों पर असर नहीं डालता। वह दिल को छू नहीं पाता। वह तो बस शोर बन जाता है और कानों के लिए भी असह्य हो जाता है। मौन के व्याख्यान का प्रभाव कहने से लेखक का अभिप्राय है कि शब्दों से अधिक आचरण का स्वयं में प्रभाव पड़ जाता है। और साथ ही यह प्रभाव चिरस्थायी भी होता है। मौन उसके लिए कोई आडंबर नहीं बल्कि उसकी आत्मा की प्रवृत्ति बन जाती है।

विशेष

(i) आचरण को व्याख्यान आदि किसी भी चीज के मुकाबले अधिक प्रभावी बताया गया है।

(ii) लेखक ने आचरण के अंतर्गत नम्रता, दया, प्रेम और उदारता जैसे गुण समाहित होना बताया है।

(iii) 'मौन व्याख्यान' में विरोधाभास अलंकार है।

(iv) शब्द–योजना बहुत सुबोध व तत्सम प्रधान है। शैली की दृष्टि से भावात्मक शैली का प्रयोग किया गया है।

- आचरण भी हिमालय की तरह ..... अत्यल्प छटा दिखाई अवश्य देती है।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– आचरण समस्त कलाओं, विधा, साहित्य, धन और राजस्व से भी अधिक महत्वपूर्ण है। आचरण की सभ्यतामय भाषा सदा मौन रहती है। नम्रता, दया, प्रेम और उदारता– ये सब आचरण के विधायक तत्व हैं। अच्छे आचार वाले व्यक्ति अपने सद्‌गुणों का खुद ढिंढोरा नहीं पीटते। वे तो अपने विषय में मौन रहते हैं। उनका मौन भी मुखर होता है। मनुष्य के जीवन पर मौन व्याख्यान का प्रभाव चिरस्थायी होता है और यह प्रभाव मानव तो क्या जड़ प्रकृति पर भी पड़ता है।

व्याख्या– पूर्णसिंह आचरण की तुलना हिमालय से करते हुए कहते हैं कि आचरण हिमालय की भाँति मनुष्य को ऊँचा और गौरवान्वित कर देता है। जिस प्रकार हिमालय का निर्माण प्रकृति ने एक दिन में नहीं किया, उसी प्रकार आचरण का निर्माण भी एक दिन में नहीं होता। आचरण हिमालय की तरह एक ऊँचे कलश वाला मंदिर है। यह मंदिर सबको दूर से अलग ही दिख जाता है और देखने वाले को आनंद और ज्ञान से भर देता है। यह कोई ऐसा पदार्थ नहीं है, जिसे मदारी दर्शकों को भ्रमित करके अपनी हथेली पर जमा कर दिखा दे। मदारी अपनी हथेली पर आम का पेड़ भी जमा कर दिखा सकता है परंतु आचरण की सभ्यता उसके लिए भी दुर्लभ वस्तु है। दूसरे शब्दों में आचरण कोई खेल नहीं है जिसे खेल–खेल में सीखा जा सके अथवा जिसका हजारों लोगों के सामने प्रदर्शन किया जा सके। यह प्रदर्शन की नहीं अपितु अपनाने की वस्तु है। इसके बनने में अनंत समय लगता है। जिस प्रकृति के उपादान सूर्य, चंद्रमा और तारे एक दिन में नहीं बने उसी प्रकार आचरण भी हाथों हाथ निर्मित नहीं होता, एक उत्कृष्ट आचरण का निर्माण करने में बहुत समय और श्रम लगता है। और अभी तक

टिप्पणी

यह दावा नहीं किया जा सकता कि किसी ने आचरण के चरमोत्कर्ष को प्राप्त कर लिया है। सुंदर आचरण की थोड़ी बहुत छटा अवश्य दिख जाती है लेकिन पूर्णता अभी दुर्लभ ही है। कहने का अभिप्राय यह है कि श्रेष्ठ आचार के कुछ लक्षण जरूर कुछ महामानवों में मिल जाते हैं लेकिन आचरण की सभ्यता का पूर्ण सौंदर्य किसी एक में अभी दिखाई नहीं पड़ा है।

विशेष

(i) लेखक ने आचरण को हिमालय की तरह एक ऊँचे कलश वाला मंदिर बताया है। जैसे हिमालय एक ही है, वैसे ही श्रेष्ठतम आचरण वाला कोई विरला ही होता है।

(ii) प्रकृति के उपादानों– सूर्य, चन्द्र, तारा की भाँति आचरण की निर्मिति एक दीर्घकालिक प्रक्रिया है।

(iii) भाषा–शैली बहुत सुंदर व प्रवाहपूर्ण है। निबन्ध पढ़ते समय काव्य अथवा गद्य गीत का–सा आनंद प्राप्त होता है। शैली की रमणीयता देखते ही बनती है।

- नेत्र रहित को सूर्य से क्या लाभ ..... तब ज्योति और वायु किस काम की।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– आचरण की सभ्यता समस्त विधाओं और धन आदि से भी महत्वपूर्ण है। इसका प्रभाव चिरस्थायी होता है। लेकिन इसका निर्माण एक दिन में और अनायास नहीं होता। यह तो हिमालय की भाँति है, जिसका निर्माण प्रकृति सदियों में करती है। आचरण की सभ्यता का भी पूर्ण सौंदर्य अभी तक दृष्टिगोचर नहीं हुआ है, हां उसकी अत्यल्प छटा अवश्य दिख जाती है।

व्याख्या– लेखक का कहना है कि किसी के श्रेष्ठ आचरण और व्यक्तित्व का प्रभाव तभी पड़ता है जब आत्मा में उस प्रभाव को ग्रहण करने का बल हो। निर्बल आत्मा वाला व्यक्ति नेत्रहीन की तरह है जिसे सूर्य की रोशनी से कोई लाभ नहीं मिल सकता। बहुत बार कविता और साहित्य के असीम प्रभाव की चर्चा की जाती है। धर्मोपदेशकों के चमत्कारिक प्रभाव और आशीर्वाद की बात की जाती है, लेकिन इनका स्थायी प्रभाव निर्बल आत्मा वाले व्यक्ति पर नहीं पड़ता। साधु–संतों का सत्संग, व्याख्यान, ऋषि–मुनियों द्वारा लिखित पुस्तकों का पाठन–श्रवण सबको आचारवान नहीं बना पाता। सब इन्हें पढ़ते–सुनते हैं और अधिक से अधिक इन पर सराहनात्मक टिप्पणी कर देते हैं, लेकिन उन संदेशों आदि को अपने आचरण में नहीं ढाल पाते। उनके संकल्पों में दृढ़ता ही नहीं होती। धर्मोपदेशों को सुनना मात्र फलदायी नहीं है। उनको व्यवहार में लाना महत्वपूर्ण है। क्षीणकाय, क्षीणबल वाले व्यक्ति के लिए तो सारे धर्मोपदेश प्रभावहीन हैं। लेखक अपनी बात को समझाने के लिए पृथ्वी में बीज वपन का उदाहरण देते हुए कहता है कि पृथ्वी पर मल–मूत्र के ढेर में पड़ा हुआ बीज समय के प्रभाव और सूर्य की रोशनी, हवा की ऑक्सीजन और खाद की गरमी से संयुक्त होकर यदि प्रस्फुटित हो जाता है तो सूर्य की रोशनी और हवा का पोषण सार्थक हो जाता है। लेकिन यदि बीज जमीन में ही गल सड़ गया तो सूर्य व वायु की शक्तियां निष्फल हो जाती हैं। जिस तरह सूर्य की रोशनी और वायु की शक्ति धरती पर विद्यमान हर बीज को पौधा बनने के लिए

प्रस्फुटित नहीं कर पाती, उसी प्रकार धार्मिक उपदेश और उपनिषद् आदि पुस्तकें भी अपने हर पाठक को आचारवान नहीं बना पातीं।

विशेष

टिप्पणी

(i) दाता और गृहीता दोनों में आत्मबल का होना जरूरी है। तभी सकारात्मक परिणाम सामने आते हैं। इस बात को लेखक ने धरती पर पड़े बीज का उदाहरण देकर सुंदर ढंग से समझाया है।

(ii) निश्चित रूप से आचार्य अथवा धर्मोपदेशक पूरी सभा में एक ही प्रवचन करते हैं लेकिन उससे कोई–कोई ही प्रभावित हो पाता है। अधिकांश लोग तो उसे सुनकर और सराह कर ही अपनी–अपनी राह पर निकल पड़ते हैं। किसी किसी का ही जीवन बदल पाता है। उदाहरणार्थ स्वामी श्रद्धानंद बचपन में बुरी संगति के कारण बुराइयों में लिप्त हो गए थे लेकिन स्वामी दयानंद सरस्वती के प्रवचन सुनकर और उनके विराट व्यक्तित्व में आकर उनकी समस्त आचारहीनता दूर हो गई और धीरे–धीरे वे पूर्ण त्यागी और वीतरागी स्वामी श्रद्धानंद के रूप में निर्मित हो गए।

(iii) भाषा–शैली अत्यंत प्रभावी है। रमणीयता और लाक्षणिकता इसकी विशेषता है। प्रश्नात्मक शैली का सौंदर्य इस अवतरण में देखते ही बनता है।

- आचरणशील महात्मा ..... अपनी नैया आप ही बनानी पड़ेगी और चलानी पड़ेगी।

सन्दर्भ एवं प्रसंग– पूर्ववत्।

व्याख्या– आचरण की सभ्यता के लिए सबको एक पथ नहीं बताया जा सकता। बड़े से बड़ा महात्मा भी सबको एक निश्चित राह चलने के लिए नहीं बता सकता क्योंकि चलना चलने वालों की शक्ति पर भी निर्भर है। आचारवान महात्मा स्वयं अपने अंतर्ज्ञान से ही आध्यात्मिक पवित्रता की राह पर चला है। अपने चलने के लिए उसने अपनी सड़क स्वयं ही निर्मित की है। उसकी बनायी सड़क दूसरों के चलने के लिए काम में नहीं आ सकती क्योंकि सबके चलने की शक्ति और मनोवृत्ति अलग–अलग होती है। सबको एक ही आदर्श के सांचे में नहीं ढाला जा सकता और न ही हर कोई ढल सकता है। महात्मा के अनुयायी भक्तों को भी अपने चलने का रास्ता अपनी ही कुदाली की चोट से दिन–रात एक करके स्वयं बनाना पड़ेगा। जब उनकी यात्रा में शारीरिक श्रम भी शामिल हो जाता है तो उनका संकल्प भी पक्का हो जाता है और यात्रा पर उनके कदम भी दृढ़ता के साथ आगे बढ़ने लगते हैं। किसी एक देश के महात्मा के धर्मोपदेश दूसरे देश वासियों को सुनने में रमणीय तो हो सकते हैं, किंतु उनके आचरण के लिए संभव है कि व्यावहारिक न हो। ऐसी स्थिति में यही कहा जा सकता है कि यदि ईश्वर को प्राप्त करने के लिए भवसागर से पार उतरना चाहते हैं तो अपनी नैया स्वयं ही बनानी पड़ेगी और स्वयं ही चलानी भी पड़ेगी। कोई आचार्य किसी को सही राह पर चलने के लिए प्रेरित तो कर सकता है लेकिन हाथ पकड़कर चला नहीं सकता। चलना तो व्यक्ति को स्वयं ही पड़ता है।

विशेष

(i) पूरे अवतरण की भावभूमि गौतम बुद्ध के उपदेश 'अप्प दीपो भव' से मेल खाती है। अप्प दीपो भव का अभिप्राय है कि हर किसी को अपना दीपक स्वयं ही बनना

होगा। अपना पर्थ प्रदर्शन स्वयं ही करना होगा। अपने चलने की राह स्वयं ही बनानी होगी।

टिप्पणी

(ii) अपने आचरण और व्यक्तित्व निर्माण के लिए सतत् परिश्रम, लगन व दृढ़ संकल्प पर बल दिया गया है। दूसरों को उपदेश देना तो बहुत सरल होता है, किंतु अपना निर्माण स्वयं करना बहुत कठिन होता है–

सबसे अधिक कठिन है जग में–
अपना ही निर्माण
क्योंकि अपने आपसे लड़ते रहना
काम नहीं आसान।

(iii) भावात्मक भाषा–शैली का प्रयोग बहुत रमणीय बन पड़ा है।

- आचरण का रेडियम ..... क्यों बैठे बिठाये भी वह मिल सकता।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– 'आचरण की सभ्यता' निबन्ध में लेखक ने आचरण के प्रभाव और निर्माण पर कलात्मक ढंग से रमणीय भाषा–शैली में चर्चा की है। अपने आचरण का निर्माण स्वयं करना पड़ता है। अपने चलने के लिए सड़क स्वयं ही बनानी पड़ती है। आचारवान महात्मा भी इसी पथ के राही रहे हैं। प्रस्तुत अवतरण में लेखक आचरण के निर्माण में श्रमशीलता के योग पर चर्चा कर रहा है।

व्याख्या– आचरण का निर्माण स्वयमेव या अनायास नहीं हो पाता। उसके निर्माण में सारा जीवन ही निकल जाता है। निबन्धकार आचरण को रेडियम से उपमित करते हुए कह रहे हैं कि रेडियम का एक कण भी बड़ा प्रभावशाली होता है– 'यदि कुल समुद्र का जल उड़ा दो तो रेडियम धातु का कुल एक कण हाथ लगेगा। फिर आचरण रूपी रेडियम इतनी आसानी से कहाँ मिलने वाला है। उसके लिए सारी प्रकृति को खान बनाना पड़ेगा। अर्थात अंदर की दुष्प्रवृत्तियों को निकालकर बाहर करना होगा। संसार को हमारे बहुत सारे लोगों ने मिथ्या कहा है। संसार असार तो है लेकिन उससे दूर नहीं भागना है। उसमें रहकर निर्लिप्त हो जाना है। समुद्र मंथन करके उसमें से अमृत तत्व निकालना है। यह सच है कि इतने विशाल समुद्र का मंथन करना कितना दुष्कर कार्य है और दुष्कर कार्य को करने के बाद अत्यल्प मात्रा में ही अमृत हाथ आता है। जिस प्रकार देव–देवताओं द्वारा समुद्र–मंथन में अमर कर देने वाले अमृत की प्राप्ति हुई थी, ऐसे ही पूरे संसार की खाक छानने के बाद ही आचरण का स्वर्ण हाथ आता है। पूरे संसार का भ्रमण करने से मनुष्य अपनी बहुत–सी रूढ़ परंपराओं और जड़ताओं से मुक्त होते हैं। इसीलिए साधु–संतों के भ्रमण करते रहने को अच्छा बताया गया है। ठहरा हुआ साधु नहीं, अपितु रमण करता हुआ साधु अच्छा रहता है। अवतरण के अंत में निबंधकार अपने पाठकों से एक प्रश्न पूछ लेता है कि यात्रा आलस्यवश घर में हाथ पर हाथ धरे भी आचरण का स्वर्ण मिल सकता है? अर्थात निठल्लेपन से तो कुछ नहीं मिल सकता।

विशेष

(i) भ्रमणशीलता और श्रमशीलन की प्रतिष्ठा की गई है। संस्कृत में उद्यमशीलता का महत्व इन पंक्तियों में इस प्रकार बताया गया है–

उद्यमेन हि सिध्यन्ति कार्याणि न मनोरथैः।
न हि सुप्तस्य सिंहस्य प्रविशन्ति मुखे मृगाः।

(ii) आचरण का स्वर्ण में रूपक अलंकार है।

टिप्पणी

(iii) आचरण और पुरुषार्थ एक–दूसरे के पूरक व सहायक हैं। कबीर ने भी कहा है–

'जिन ढूंढा तिन पाइयाँ गहरे पानी पैठि।
मैं बपुरी डूबन डरी, रही किनारे बैठि।।

(iv) भाषा–शैली रमाणीय व लाक्षणिक है। भावात्मक शैली का चरमोत्कर्ष पूरे निबंध की भाँति इस अवतरण में द्रष्टव्य है।

5.3.4 'आचरण की सभ्यता' निबन्ध का समीक्षात्मक अध्ययन

'आचरण की सभ्यता' सरदार पूर्णसिंह द्वारा लिखित एक भावात्मक निबन्ध है। यह एक बहुचर्चित व बहुप्रशंसित निबन्ध है जो देश के प्रायः सभी स्कूलों में निबन्ध की पाठ्य पुस्तकों में पठन–पाठन हेतु निर्धारित रहता है। सरदार पूर्णसिंह द्वारा हिन्दी में लिखित छह निबन्धों में 'आचरण की सभ्यता' तथा 'मजदूरी और प्रेम' विशेष रूप से लोकप्रिय हैं।

निबन्ध आधुनिक गद्य की एक महत्वपूर्ण विधा है। बाबू गुलाबराय ने निबन्ध को परिभाषित करते हुए कहा है कि "निबन्ध उस गद्य रचना को कहते हैं जिसमें एक सीमित आकार के भीतर किसी विषय का वर्णन या प्रतिपादन एक विशेष निजीपन, स्वच्छन्दता, सौष्ठव और सजीवता तथा आवश्यक संगीत और सम्बद्धता के साथ किया गया है।" बाबू गुलाबराय की यह परिभाषा सरदार पूर्णसिंह द्वारा लिखित 'आचरण की सभ्यता' पर पूर्णरूपेण चरितार्थ होती है। निबन्ध मुख्यतः दो प्रकार के होते हैं– विचारात्मक तथा भावात्मक निबन्ध। विचारात्मक निबन्धों में बुद्धि तत्व की प्रधानता रहती है। इनमें तर्कपूर्ण विवेचन विश्लेषण एवं गवेषणा का आधिपत्य रहता है। इनके लेखक के लिए चिंतन, मनन तथा अध्ययन की अधिक अपेक्षा होती है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल तथा महावीर प्रसाद द्विवेदी के अधिकांश निबन्ध इसी श्रेणी के अंतर्गत आते हैं। भावात्मक निबन्धों में हृदय तत्व अथवा रागात्मकता का प्राधान्य रहता है। इनका लक्ष्य पाठक की बुद्धि की अपेक्षा उसके हृदय को प्रभावित करना होता है। भावों को उत्कर्ष प्रदान करने के लिए इनमें कल्पना तथा अलंकारों का भी समुचित प्रयोग किया जाता है। इनका वाक्य–विन्यास सरल तथा शैली कवित्वपूर्ण होती है। इस विवेचन से स्पष्ट है कि 'आचरण की सभ्यता' निबन्ध भावात्मक निबन्ध की श्रेणी में आता है। निम्न तत्वों के आधार पर निबन्ध की समीक्षा इस प्रकार है–

1. **बुद्धि तत्व :** पूर्णसिंह के निबन्ध प्रायः भावात्मक हैं। लेखक के निबन्धों में बुद्धि का चमत्कार देखना हो तो उनके निबन्ध में किस्से–कहानियों एवं प्रसंगों को दृष्टि में रखना होता है जो स्थान–स्थान पर बड़े कौशल के साथ लेखक के विचारों का समर्थन करने के लिए उद्धृत हुए हैं– 'यदि एक ब्राह्मण किसी डूबती कन्या की रक्षा के लिए चाहे वह कन्या जिस जाति की हो, जिस किसी मनुष्य की हो, जिस किसी देश की हो– अपने आपको गंगा में फेंक दे– चाहे उसके प्राण यह काम करने में रहें चाहे जाए तो इस कार्य में प्रेरक आचरण की मौनमयी भाषा

टिप्पणी

किस देश में, किस जाति में और किस काल में, कौन नहीं समझ सकता।" लेखक के बुद्धि तत्व का कमाल वहाँ और भी अधिक कुशलता के साथ दिखाई देता है, जहाँ वह विविध पौराणिक संकेतों के द्वारा अपनी भावधारा प्रवाहित करता हुआ विचार प्रकट करता है, जैसे– 'आचरण की सभ्यता' के आगमन की स्थिति बताता हुआ लेखक उस समय के वातावरण का चित्र ही अंकित कर देता है जिस समय आचरण की सभ्यता संसार में आती है, उस समय नीले आकाश से मनुष्य को वेद–ध्वनि सुनाई पड़ती है... नारद की वीणा अलापने लगती है, ध्रुव का शंख गूँजने लगता है, प्रहलाद का नृत्य होता है, शिव का डमरू बजता है, कृष्ण की बाँसुरी की धुन प्रारंभ हो जाती है। इस प्रकार पूर्णसिंह ने बुद्धि तत्व के द्वारा 'आचरण की सभ्यता' निबन्ध को अधिकाधिक रोचक व सारगर्भित बनाया है।

2. **अनुभूति तत्व :** पूर्णसिंह एक अत्यंत भावुक निबन्धकार थे। उन्होंने भावात्मक निबन्धों की एक उज्ज्वल परंपरा स्थापित की थी। अतएव उनके निबन्धों में अनुभूति तत्व की प्रखरता, प्रबलता व बहुलता का होना स्वाभाविक है। उनके अन्य निबंधों की भाँति 'आचरण की सभ्यता' में भी भावों के अनेक रंग बिखरे हुए हैं' इनकी उपस्थिति से मन और हृदय की ऋतु बदल जाती है। तीक्ष्ण गर्मी से जले–भुने व्यक्ति आचरण के काले बादलों की बूंदा–बांदी से शीतल हो जाते हैं। मानसोत्पन्न शरद ऋतु से क्लेशातुर हुए पुरुष इसकी सुगन्धमय अटल बसंत ऋतु के आनंद का पान करते हैं। आचरण के नेत्र के एक अश्रु से जगत भर के नेत्र भीग जाते हैं। आचरण के आनंद नृत्य से उन्मदिष्णु होकर वृक्षों तथा पर्वतों तक के हृदय नृत्य करने लगते हैं।' इस प्रकार पूर्णसिंह ने 'आचरण की सभ्यता' निबन्ध में अनुभूति तत्व द्वारा सजीवता, स्वाभाविकता, साहित्यिकता, रमणीयता एवं चमत्कारप्रियता की सृष्टि की है।

3. **कल्पना तत्व :** लेखक ने कल्पना तत्व के द्वारा अपने निबन्धों में कितने ही स्थलों पर अप्रत्यक्ष विचारों एवं भावों का प्रत्यक्षीकरण कराने के लिए रमणीय शब्द चित्र एवं अद्‌भुत दृश्य उपस्थित किए हैं। लेखक ने कल्पना लोक में विचरण करके कितने ही भावों, विचारों, अनुभूतियों एवं पदार्थों का मानवीकरण करने में अद्‌भुत कौशल प्रदर्शित किया है। 'आचरण की सभ्यता' निबन्ध के प्रथम अनुच्छेद में ही यह कल्पना चित्र देखिए– "इस सभ्यता के दर्शन से कला, साहित्य और संगीत को अद्‌भुत सिद्धि प्राप्त होती है। राग अधिक मृदु हो जाता है। विद्या का तीसरा शिव नेत्र खुल जाता है, चित्रकला का मौन राग अलापने लगता है, वक्ता चुप हो जाता है, लेखक की लेखनी थम जाती है और मूर्ति बनाने वाले के सामने नये कपोल, नये नयन और नयी छवि का दृश्य उपस्थित हो जाता है।" कल्पना तत्व का दिग्दर्शन इस निबन्ध में अलंकृत शैली में भी होता है। मानवीकरण अलंकार में तो कल्पना तत्व ही मुख्य रहता है "बर्फ का दुपट्टा बाँधे हुए हिमालय इस समय तो अति सुन्दर, अति ऊँचा और अति गौरवान्वित मालूम होता है, परंतु प्रकृति ने अगणित शताब्दियों के परिश्रम से रेत का एक–एक परमाणु समुद्र के जल में डुबो–डुबोकर और उनको अपने विचित्र हथौड़े से सुडौल करके इस हिमलाय के दर्शन कराये हैं। आचरण भी हिमालय

की तरह एक ऊँचे कलश वाला मंदिर है।' इस प्रकार 'आचरण की सभ्यता' निबन्ध कल्पना तत्व के प्रयोग से अत्यधिक मार्मिक, सजीव एवं प्रभावशाली बन गया है।

टिप्पणी

4. **अहं तत्व :** वैसे तो व्यक्तित्व का अंश साहित्य के सभी रूपों में कम या अधिक मात्रा में रहता है, किंतु निबन्ध में उसकी उपस्थिति सर्वाधिक रहती है। निबन्ध में व्यक्तित्व की प्रधानता को सभी श्रेष्ठ आलोचकों ने मान्यता दी है। बाबू गुलाबराय के अनुसार– "निबन्ध में व्यक्तिगत को छिपाया नहीं जा सकता। लेखक जो कुछ लिखता है, उसे अपने निजी मत के रूप में अथवा निजी दृष्टिकोण से देखता है। इसके पीछे उसके निजी अनुभव की प्रेरणा दिखाई देती है। निबन्ध तभी होगा जब वह लेखक के निजी दृष्टिकोण से देखा गया हो।" जयनाथ 'नलिन' की दृष्टि में "व्यक्तिहीन रचना निबन्ध नहीं, और चाहे जो कुछ हो।" पूर्णसिंह के सभी निबन्धों में उनके व्यक्तित्व की अमिट छाप दिखाई देती है। उनके निबन्ध स्वयं ही बोल पड़ते हैं कि हम किसी अन्य के नहीं, अपितु एक ऐसे भावुक लेखक के निबन्ध हैं जिसके हृदय में देशभक्ति है, राष्ट्रोन्नति की भावना भरी हुई है, समाजोत्थान की ललक, किसानों एवं मजदूरों के प्रति संवेदना है, निकम्मों के लिए घृणा है, अकर्मण्यों के प्रति नफरत है, वीरों के प्रति अटूट आस्था है और सभी धर्मों के प्रति गहन आस्था। लेखक के ये भाव एवं विचार निबन्धों के बीच में यथास्थान फूट पड़ते हैं और लेखक का निजी एवं सहज संबंध भी उनके साथ प्रतीत होता है। लेखक ज्ञान, भक्ति, उपासना आदि की अपेक्षा शुद्ध आचरण का अत्यधिक पक्षपाती है– "यदि मुझे ईश्वर का ज्ञान नहीं तो ऐसे ज्ञान का क्या प्रयोजन? जब तक मैं अपना हथौड़ा ठीक–ठाक चलाता हूँ और रूपहीन लोहे को तलवार के रूप में गढ़ लेता हूँ... न मैं किसी गिरजे में जाता हूँ और न किसी मन्दिर में, न मैं नमाज पढ़ता हूँ और न रोजा रखता हूँ, न संध्या ही करता हूँ और न कोई देव पूजा ही करता हूँ, न किसी आचार्य के नाम का मुझे पता है और न किसी के आगे मैंने सिर ही झुकाया है। तो इससे प्रयोजन ही क्या और इससे हानि भी क्या? मैं तो अपनी खेती करता हूँ। अपने हल और बैलों को प्रातः काल उठकर प्रणाम करता हूँ.... मैं किसी को धोखा नहीं देता... क्या इस किसान की सादगी और सच्चाई में वह मिठास नहीं जिसकी प्राप्ति के लिए भिन्न–भिन्न धर्म और संप्रदाय लंबी चौड़ी और चिकनी–चुपड़ी बातों के द्वारा दीक्षा दिया करते हैं।" इस तरह 'आचरण की सभ्यता' निबन्ध लेखक के 'अहं तत्व' के समावेश से अत्यधिक मर्मस्पर्शी एवं प्रभावूपर्ण बन गया है।

5. **शैली तत्व :** शैली का मुख्य संबंध अभिव्यक्ति से होता है। जिस लेखक की अनुभूति जितनी गहन एवं गंभीर होती है, उसकी अभिव्यक्ति भी उतनी ही सारगर्भित एवं अर्थपूर्ण होती है। यही कारण है कि पूर्णसिंह के निबन्धों में शैली तत्व अपनी प्रखरता, प्रांजलता एवं प्रौढ़ता के साथ विद्यमान है और इसके फलस्वरूप पूर्णसिंह के निबन्ध संख्या में अत्यल्प होते हुए भी अमित गुणों से परिपूर्ण हैं। विचार और भावों की एक अनूठी शैली के द्योतक भाषा की अनुपम

टिप्पणी

शक्ति एवं भावों की विभूति से सुसज्जित हैं तथा विविध प्रकार के साहित्यिक सौंदर्य एवं काव्य सौष्ठव से ओत–प्रोत हैं। अन्य निबन्धों की भाँति 'आचरण की सभ्यता' निबन्ध भी धारा शैली में लिखा गया है। एक उदाहरण देखिए– "जिस समय आचरण की सभ्यता संसार में आती है उस समय नीले आकाश से मनुष्य को वेद ध्वनि सुनाई देती है, नर–नारी पुष्पवत् खिलते जाते हैं, प्रभात हो जाता है, प्रभात का गजर–बज जाता है, नारद की वीणा अलापने लगती है, ध्रुव का शंख गूँज उठता है, प्रहलाद का नृत्य होता है, शिव का डमरू बजता है, कृष्ण की बाँसुरी की धुन प्रारंभ हो जाती है। जहाँ ऐसे पुरुष रहते हैं, जहाँ ऐसी ज्योति होती है, वहीं आचरण की सभ्यता का सुनहरा देश है।" जैसा कि इस अनुच्छेद से भी स्पष्ट है कि उन्होंने अपनी निबन्ध शैली को लाक्षणिकता से अधिकाधिक चमत्कारपूर्ण बनाया है। अन्यत्र भी ऐसे ही प्रयोग दृष्टव्य हैं– "आचरण के मौन व्याख्यान से मनुष्य को एक नया जीवन प्राप्त होता है। नये–नये विचार स्वयं ही प्रकट होने लगते हैं। सूखे काष्ठ सचमुच हरे हो जाते हैं। सूखे कूपों में जल भर जाता है। नये नेत्र मिलते हैं।"

लेखक की शैली की एक अन्य विशेषता अलंकारों का प्रचुर प्रयोग है। उन्होंने गद्यात्मक खंडों में भी पद्य की तरह अलंकारों का प्रचुर प्रयोग किया है। उपमा, रूपक और मानवीकरण के प्रयोग से 'आचरण की सभ्यता' निबन्ध में प्रभविष्णुता आ गई है। आचरण के आनंद नृत्य से उन्मदिष्णु होकर वृक्षों और पर्वतों तक के हृदय नृत्य करने लगते हैं। उपमा अलंकार का एक उदाहरण देखिए– 'आचरण भी हिमालय की तरह एक ऊँचे कलश वाला मंदिर है। रूपक अलंकार की नूतन छटा 'बर्फ का दुपट्टा बाँधे हुए हिमालय'.... में दृष्टव्य है। कहीं उन्होंने आचरण को रेडियम कहा है तो कहीं 'स्वर्ण'।

शैली का प्रमुख साधन है भाषा। भाषा अभिव्यक्ति का प्रमुख साधन होती है और भाषा के माध्यम से हृदयस्थ भाव बड़ी सजीवता से अभिव्यक्त होते हैं। पूर्णसिंह एक भावुक निबन्धकार हैं। उनके भाव–रत्न अन्य निबन्धों की भाँति 'आचरण की सभ्यता' निबन्ध में भी स्थान–स्थान पर बिखरे पड़े हैं। अन्य निबन्धों की भाँति प्रस्तुत निबन्ध में भी संस्कृत के तत्सम् व उर्दू–फारसी के शब्दों का प्रयोग किया है। लेखक ने अपनी भाषा में धारावाहिता व गतिशीलता लाने के लिए छोटे–छोटे वाक्यों का प्रयोग किया है– "जिस समय आचरण की सभ्यता संसार में आती है, उस समय नीले आकाश से मनुष्य को वेद ध्वनि सुनाई देती है, नर–नारी पुष्पवत् खिलते जाते हैं, प्रभात हो जाता है, प्रभात का गजर बजने लगता है, नारद की वीणा अलापने लगती है, ध्रुव का शंख गूँज उठता है, प्रहलाद का नृत्य होता है, शिव का डमरू बजता है, कृष्ण की बाँसुरी की धुन प्रारंभ हो जाती है।"

'आचरण की सभ्यता' में चित्रोपमता सर्वत्र विद्यमान है– "वक्ता चुप हो जाता है, लेखक की लेखनी थम जाती है। मूर्ति बनाने वाले के सामने नये कपोल, नये नयन और नयी छवि का दृश्य उपस्थित हो जाता है।" लेखक ने कहीं–कहीं प्रश्नवाचक वाक्यों की झड़ी लगाकर भाषा को अधिकाधिक रोचक ओर आकर्षक बनाने का प्रयास किया

है– "नेत्र रहित को सूर्य से क्या लाभ? हृदय–रहित को प्रेम से क्या लाभ?.... जब तक जीवन का बीज पृथ्वी के मल–मूत्र के ढेर में पड़ा है अथवा जब तक खाद की गरमी से अंकुरित नहीं हुआ और प्रस्फुटित होकर उनसे दो नये पत्ते ऊपर नहीं निकल आए, तक तक ज्योति और वायु उसके किस काम के?"

टिप्पणी

लेखक ने मुहावरे एवं लोकोक्तियों के प्रयोग द्वारा भी भाषा को अत्यधिक लाक्षणिक, मार्मिक एवं अर्थव्यंजक बनाने का प्रयास किया है। 'आचरण की सभ्यता' निबन्ध में मुहावरों का प्रयोग दृष्टव्य है–

1. राग अलापना– 'चित्रकला का मौन राग अलापने लग जाता है'।
2. हरे हो जाना– सूखे काष्ठ सचमुच हरे हो जाते हैं।
3. चिकनी चुपड़ी बातें– चिकनी–चुपड़ी बातों द्वारा शिक्षा दिया करते हैं।
4. मूंग दलना– समुद्र की छाती पर मूंग दलकर.... महानता की ओर ले गया।

पूर्णसिंह की भाषा में कहीं–कहीं व्याकरण की दृष्टि से कतिपय दोष मिल जाते हैं। 'आचरण की सभ्यता' निबन्ध में उन्होंने बोल–चाल के आधार पर 'उन सबका क्या?' के स्थान पर 'उन सबकी क्या' लिख दिया है।

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि पूर्णसिंह हिन्दी निबन्ध की भावात्मक शैली के उन्नायक हैं। 'आचरण की सभ्यता' निबन्ध में भावात्मक शैली का प्रकर्ष विद्यमान है। दार्शनिकता, भावुकता, व्यक्तित्व–प्रकाशन, नैतिकता, सामाजिकता, भाषागत लाक्षणिकता एवं काव्यात्मक गुरुता से ओत–प्रोत होने के कारण यह हिन्दी निबन्ध साहित्य की अमूल्य निधि है।

अपनी प्रगति जाँचिए

3. सच्चे साधु का परम गुण क्या होता है?

(क) उपदेश देना (ख) तपस्या करना

(ग) रमण करना (घ) मौन रहना

4. त्रिपिटक किस सम्प्रदाय के ग्रन्थ हैं?

(क) जैन (ख) बौद्ध

(ग) सिख (घ) हिन्दू

5.4 अंतर्ज्ञान और नैतिक जीवन (लेख) : डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन

सर्वपल्ली राधाकृष्णन का जन्म 5 सितंबर, 1888 को तमिलनाडु में हुआ। वे स्वतंत्र भारत के प्रथम उपराष्ट्रपति थे। वे उच्चकोटि के शिक्षाविद् थे। उनका जन्मदिन 5 सितंबर शिक्षक दिवस के रूप में मनाया जाता है। वे महान दार्शनिक, भारतीय संस्कृति के संवाहक और आस्थावान तथा विज्ञानी हिंदू विचारक थे। वे संविधान निर्मात्री सभा के सदस्य भी थे। शिक्षा और राजनीति में उत्कृष्ट योगदान के लिए उन्हें देश के सर्वोच्च

अलंकरण 'भारत रत्न' से विभूषित किया गया। बुराइयों को हटाने के लिए वे शिक्षा को बहुत उपयोगी मानते थे। उनकी मृत्यु 17 अप्रैल, 1975 को हुई।

टिप्पणी

5.4.1 'अंतर्ज्ञान और नैतिक जीवन' का मूल पाठ

हमारे नैतिक जीवन में भी उच्चतम स्थिति पर पहुँचने के लिए अन्तर्ज्ञानात्मक दृष्टि अनिवार्य है। साहसपूर्ण पथ का अनुसरण करने वाला वीर उस अनुसन्धान करने वाले आविष्कारक के समान है, जो किसी विज्ञान के बिखरे हुए तत्वों को क्रमबद्ध कर संश्लिष्ट करता है या वह उस कलाकार के सदृश है जो एक संगीत की रचना करता है या किसी भवन का डिजाइन तैयार करता है। केवल नियमों के यन्त्रवत् पालन और नमूनों की नकल से हम कहीं नहीं पहुँच सकते। जीवन की कला पुराने बोसीदा अभिनयों का रिहर्सल नहीं है। ब्लेक ने अपनी एक आकर्षक विरोधाभासपूर्ण उक्ति में कहा था, 'जो व्यक्ति कलाकार नहीं है, वह ईसाई भी नहीं है।'' जीवन एक ऐसा खेल है जो तभी समाप्त होता है जब व्यक्ति उससे अवकाश ग्रहण करता है। उसके लिए दक्षता और साहस की आवश्यकता होती है। साहसी खिलाड़ी तकनीक में निपुण होता है। जब वह स्थिति को समझ लेता है तो वह सुनिश्चित अन्तर्बुद्धि से आगे बढ़ता है। जीवन की शतरंज की फड़ पर अलग–अलग मोहरों की अलग–अलग ताकतें हैं और उनके जोड़े अनेक तरह से बन सकते हैं और उनका भविष्य कथन पहले से ही किया जा सकता है। अच्छे खिलाड़ी में कार्य की भावना होती है और वह यह अनुभव करता है कि यदि वह उस भावना के अनुसार कार्य नहीं करता है तो वह अपने प्रति ही झूठा होगा। किसी भी नाजुक स्थिति में आगे चाल चलना एक सृजनात्मक कार्य है। वह अपनी प्रकृति के अनुसार आत्मा के भीतर से उद्भूत होता है। इसमें एक प्रकार की गुप्त और सजीव अनिवार्यता होती है।

नैतिक वीर अपने अन्तर की ताल और लय का अनुसरण करता है, जो उसे आगे की ओर चलने के लिए अनुप्रेरित करती है और उसमें अपनी नियति के आदेश का अनुगमन करने और अपनी आत्मा को पूर्णता प्रदान करने का संतोष रहता है। अपनी गहरी आन्तरिक प्रकृति का अनुसरण करने से वह हममें से उन लोगों को, जो परम्परागत पैमानों का इस्तेमाल करते हैं या तो मूर्ख प्रतीत होता है या अनैतिक किन्तु स्वयं उसके लिए आध्यात्मिक उत्तरदायित्व और कर्त्तव्य सामाजिक परम्परा से अधिक महत्वपूर्ण है। बाहर से थोपे गए नियम की अपेक्षा आन्तरिक संयम अधिक कीमती है। यह परम्परागत रिवाजी औचित्य के बजाय आन्तरिक सत्यता, पूर्ण गम्भीरता और ईमानदारी के लिए लालायित रहता है। वह अपने समाज को अधिक सुदृढ़ बुनियाद पर नये सिरे से ढालने के लिए संघर्ष करता है। यह हो सकता है कि उसका व्यवहार सतर्क परम्परावादियों की शिष्टता की भावना को चोट पहुँचाये और यह देखकर दुःख होता है कि गहरी दृष्टि और सृजन–शक्ति वाले लोगों को समाज के नेताओं के हाथों से उत्पीड़न सहन करना पड़ा है, हालाँकि यह ठीक है कि उत्पीड़न हमेशा अकारण ही नहीं हुआ। ऐसे लोग अपने उदाहरण से इस दुःखद सत्य को सिद्ध करते हैं कि जब कोई व्यक्ति अपने साथियों से अधिक अच्छा हो जाता है तो वह उनकी घृणा का पात्र हो जाता है। हम अपने महान पथ–प्रदर्शकों और उपदेष्टाओं का सम्मान सूली पर लटकाकर करते हैं। सम्भव है कि दुनियादारी का हिसाब–किताब करके चलने वाले लोग, जो बाहरी प्रदर्शन और आडम्बर में विश्वास करते हैं, बहुत नीचे स्तर पर न उतरें,

टिप्पणी

किन्तु वे ऊँचाई पर भी कभी नहीं उठ सकते। केवल अत्यन्त गंभीर व्यक्ति ही अपने–आपको मूर्ख बना सकते हैं। ईसा का सन्देश पुराने यहूदी फारसी लोगों की मान्यताओं के मुकाबले रूढ़ि–विरोधी है। 'प्रेम करो और फिर जो चाहे सो करो।' प्रेम हमें जीवन के अधिक गूढ़ रहस्यों की ओर ले जाता है और सूक्ष्म बौद्धिक ज्ञान तथा थोड़े से स्पष्टवादी नैतिक नियम हमें जीवन की जो अखंड दृष्टि प्रदान कर सकते हैं, उससे अधिक अखंड दृष्टि देता है। यद्यपि नैतिकता का तकाजा होता है कि हम उसके नियमों का पालन करें, किन्तु संसार की समस्त नैतिक प्रगति का श्रेय नैतिक रूढ़ियों को तोड़ने वालों को ही है।

समाज सब कार्यों को सुविज्ञात सामान्य पैमानों से नापता है। यह मानकर चलता है कि हर वस्तु पर वैज्ञानिक या अवैयक्तिक दृष्टि से विचार और आचरण किया जा सकता है। वह इन्सानों को मशीनें समझता है, हर व्यक्तिगत समस्या को सामान्य में परिणत कर देता है और प्रत्येक व्यक्तिगत कार्य के नैतिक मूल्य का निर्णय तत्सदृश विशिष्ट परिस्थितियों और नैतिक सूत्रों के अनुसार करता है। हम विचारों की एक यान्त्रिक प्रणाली के दास हैं। नैतिकता के तर्कवादी बौद्धिक नियम लचीलेपन और उच्चता को शुद्धता और संगतता के आगे बलिदान कर देते हैं। जब हमारे बुद्धिवादी यह दावा करते हैं कि वे सिद्धान्तों पर चलते हैं, तब वे प्राण और ओज के गहरे स्रोतों से अपना सम्बन्ध–विच्छेद कर लेते हैं और उनके अन्तःकरण उनके मन के साथ संघर्ष करने लगते हैं। जीवन–प्रेम और आत्म–बलिदान ऐसी चीजें नहीं हैं कि उनकी इस तरह सहज में उपेक्षा कर दी जाए। संसार में कोई भी दो घटनाएँ या दो घटनाओं का परस्पर सम्मिलन एक जैसा नहीं होता। हमें हर एक घटना को एक अद्वितीय स्थिति में, रूप में परिस्थितियों के साथ एक सर्वथा स्वतंत्र और समंजन के रूप में देखना चाहिए, न कि एक पूर्व कल्पित उद्देश्य के साथ यांत्रिक समंजन के रूप में। केवल प्रभावग्राही संवेदनशील अन्तःकरण और गहरे प्रेम से युक्त मानव ही, जिन्होंने अपने–आपको एक उच्चतर स्तर पर पाया है, जिनके मन यथार्थताओं की गहरी भावना से निर्देशित हैं और जिन्होंने सत्य और उचित की विवेक–बुद्धि विकसित कर ली है, दूसरों की भावनाओं और समस्याओं को समझ और महसूस कर सकते हैं, वहीं ऐसे लोग हैं जिनमें अत्याचार को दूर करने में सफल न होने पर भी उसे सहज करने की क्षमता होती है। उन्हें बुनियादी सत्यों का ज्ञान होता है, उन्होंने काल के बीजों को अपनी रहस्यभेदिनी दृष्टि से देख लिया होता है।

सर्वोच्च मुक्ति और आनन्द के क्षणों में ही हम अपनी आत्मा की अधिकतम गहराई में या उसके निकट होते हैं। दैनिक जीवन में हम उन उपयोगी परम्पराओं और रिवाजों के अनुसार चलते हैं जिन्हें हमने सामान्य परिस्थितियों के लिए बनाया होता है और महान् संकट के क्षणों में भी हममें से बहुत से लोग अपनी सम्पूर्ण आत्मा के साथ अवसर को पकड़ने में असमर्थ रहते हैं, किन्तु संसार का कोई भी निकृष्टतम कार्य, कोई भी अप्रिय श्रम, कोई भी जघन्यतम आवेश ऐसा नहीं है जो हमारे अन्तर में विद्यमान आत्मा को आविष्ट करके हममें यह शान्त संतोष पैदा न कर सके, उसके लिए आवश्यकता सिर्फ इस बात की है कि व्यक्ति आध्यात्मिक चेतना से सजीव हो। सुकरात ने कहा था, 'सत्कर्म ही ज्ञान है।' यह ठीक है कि वह बौद्धिक ज्ञान नहीं है जो दूसरों को सिखाया जा सके। यह ऐसा ज्ञान है जिसका निर्झर मनुष्य की सत्ता के अधिक

टिप्पणी

गहरे स्तर से फूटता है। यह मनुष्य के मन को उदात्त बनाकर, उसकी चेतना को प्रबुद्ध कर प्राप्त किया जा सकता है। मनुष्य आत्मा में जितनी गहराई तक जाता है, उतना ही उसका ज्ञान अपरोक्ष होता है। जिस व्यक्ति में नैतिक चेतना है, उसके लिए कर्त्तव्य का पथ उतना ही स्पष्ट है जितना कि कोई भी दूसरा ज्ञान। उसके सम्बन्ध में हमारा ज्ञान यथासम्भव पूर्ण सुनिश्चित होता है। नैतिक सत्य का ज्ञान भी हमें एक प्रकार से अन्तर्ज्ञान के रूप में प्राप्त होता है। यह ठीक है कि बाद में हम विचार–विमर्श से उस सत्य के लिए कारण और तर्कों को खोजते हैं। जिसका जीवन–पथ अन्तर्दृष्टि से निर्देशित होता है वह अपनी गहरी चेतना को कवि या कलाकार की भाँति कविताओं और चित्रों में अभिव्यक्त नहीं करता, बल्कि एक उच्चतर किस्म के जीवन में अभिव्यक्त करता है। वह दावों और जवाबी दावों की दुनिया को पीछे छोड़ जाता है। वह ऐसी नैतिकता के प्रति उदासीन रहता है जो प्रतिबन्धों और सन्तुलनों का विषय है। कारण, उसकी सत्ता के लिए उच्चतम किस्म की नैतिकता की आवश्यकता होती है, जो नियम या कानून के रूप में नहीं, बल्कि प्रेम–स्वरूप हो। बुद्ध और ईसा जैसे महापुरुषों के जीवन न केवल सत्यमय और संयमी हैं, बल्कि उनमें कल्पनातीत सौंदर्य भी है।

धार्मिक चेतना और अन्य मूल्य

धार्मिक चेतना न तो बौद्धिक क्रिया है, न नैतिक, न सौन्दर्य–बोधात्मक और न इन सब क्रियाओं का योग। यदि यह आध्यात्मिक जीवन का एक ऐसा स्वतंत्र रूप है, जो इन सब तत्वों का समावेश करते हुए भी इन सबसे ऊपर है, तो धर्म का उद्देश्य न सिर्फ सत्य है, न अच्छाई, न सौन्दर्य और न इन सबका मिश्रण, बल्कि उसका उद्देश्य ईश्वर है जिसमें ये सब मूल्य तो निहित हैं ही, साथ ही वह इनसे ऊपर भी है। मानव–मन मूल्यों की खोज करता है। वह ऐक्य और सामंजस्य, सहस्वरता और सौन्दर्य, योग्यता और अच्छाई को पाने के लिए उद्योग करता है। यह दुर्भाग्य की बात है कि हमें वैज्ञानिक प्रतिभा, कवि की अन्तर्दृष्टि, नैतिक अन्तःकरण और धार्मिक विश्वास, इन सभी के लिए अंग्रेजी में एक ही शब्द 'इण्ट्यूशन' (अन्तर्ज्ञान) का प्रयोग करना पड़ता है। यद्यपि ये सभी विभिन्न गतियाँ मन की अखंड क्रियाएँ हैं तो भी उनमें से कुछ का सम्बन्ध ज्ञान से होता है और कुछ का आनन्दोपयोग या सृजन से। हिन्दू दर्शन में 'प्रतिभा' शब्द सृजनात्मक अन्तर्ज्ञान को और 'आर्षज्ञान' ऋषियों के धार्मिक अन्तर्ज्ञान को प्रकट करने के लिए व्यवहार में लाया जाता है। (संदर्भ– 'इंडियन फिलासफी' भाग 2, द्वितीय संस्करण, 1961, पृष्ठ 68)।

सत्य, अच्छाई और सौन्दर्य इन सभी मूल्यों के अपने विशिष्ट स्वरूप और लक्षण होते हैं। हम उनमें कोई पूर्वापर या ऊँच–नीच का क्रम नहीं बाँध सकते और न एक–दूसरे की श्रेणी में रख सकते हैं। हमारे पास इस बात के स्पष्ट प्रमाण और साक्ष्य हैं कि ये मूल्य निरपेक्ष और पूर्ण हैं और इसका अर्थ है ईश्वर में विश्वास। ये ईश्वर के विचार हैं और हम उसी के विचार के अनुसार सोचते हैं। इन मूल्यों को हम इन्द्रियों और तर्क–बुद्धि से नहीं जानते, बल्कि धर्म–शास्त्रकारों के शब्दों में हम उन्हें अन्तर्ज्ञान या विश्वास से जानते हैं। सत्य, सौन्दर्य और अच्छाई इस अन्तर्ज्ञान के फलस्वरूप सर्वोच्च यथार्थ सत्ता नहीं रहते, बल्कि ईश्वर के अस्तित्व और तत्व अंग बन जाते हैं। इस प्रकार वे मूल्य एक ईश्वरीय चेतना में अवस्थित रहने के कारण गतिहीन आदर्श नहीं रहते, बल्कि गतिशील शक्तियाँ बन जाते हैं।

टिप्पणी

हमारे जीवन के संज्ञानात्मक, सौन्दर्यबोधात्मक और नैतिक पक्ष चाहे कितने ही सप्राण और महत्त्वपूर्ण हों, किन्तु हैं वे अलग–अलग पक्ष। परन्तु धर्म में उन सबका समावेश और अन्तर्भाव हो जाता है। विज्ञान उस नियम के सम्बोध का प्रयत्न करता है जो सारे विश्व को थामे हुए है, कला विश्व की रचना से गुँथे हुए सौन्दर्य को अनावृत्त करने का प्रयत्न करती है और नैतिकता उस अच्छाई (शिव) को साकार करने का प्रयत्न करती है, जिसकी प्राप्ति के लिए यह ब्रह्माण्ड उद्योग कर रहा है। अपनी पूर्ण अवस्था में ये सभी विभिन्न आकांक्षाएँ एक–दूसरे में विलीन हो जाती हैं, तो भी प्रक्रिया की दशा में इनमें से हरेक अपूर्ण प्रतीत होती है, हालाँकि यह सच है कि सच्ची कला, सच्चा दर्शन और सच्ची नैतिकता को अकेले प्राप्त नहीं किया जा सकता, सभी कुछ–न–कुछ मात्रा में परस्पर मिले रहते हैं। मनुष्य की प्रकृति अलग–अलग हिस्सों से बनी हुई नहीं है जो एक–दूसरे से बिलकुल स्वतंत्र हों। सत्य के लिए हमारी सहजात वृत्ति, हमारी नैतिक बुद्धि और कलात्मक स्पृहा, सब परस्पर एक अंगी के रूप में बँधे हुए हैं, किन्तु जब तक वे अंगी के रूप में आबद्ध नहीं होते, जब तक वे एक पूर्ण अवयवी नहीं होते, तब तक विचार निरर्थक होता है, भावना क्षुद्र रहती है और क्रिया अपरिष्कृत होती है। कला जिस समस्वरता को अभिव्यक्त करती है वह अस्थायी और क्षणिक हो सकती है, एक स्वप्न हो सकती है, सम्भव है, वह आकांक्षा न हो और आत्मार्पण तो हो ही नहीं। हो सकता है कि कलाकार बौद्धिक दृष्टि से दुर्बल और नैतिक दृष्टि से क्षुद्र हो, किन्तु महानतम कलाकार के सम्बन्ध में यह बात नहीं है। इतिहास के महापुरुष अपने सौन्दर्य–बोध के लिए विख्यात नहीं हैं और न ही महान् कलाकार नैतिकता के आदर्श नमूने रहे हैं।

ठीक–ठीक कहा जाए तो हम कह सकते हैं कि जो कला नैतिकता से पूर्णतः रहित है, जिसकी जड़ें हमारी गम्भीरतम नैतिक वृत्ति में नहीं हैं, जो संसार में विद्यमान दिव्यता की ओर प्रवृत्त नहीं होती, वह सच्ची कला नहीं है। यह हो सकता है कि दर्शन की अन्तर्दृष्टि स्थायी और सुनिश्चित न हो, यह भी हो सकता है कि दर्शन के सत्य कला के विचारों से किसी भी तरह जीवन को अधिक प्रोत्साहन और प्रेरणा न दे सकते हों। इसलिए हमें तीनों की इकट्ठी आवश्यकता है, संज्ञानात्मक प्रकाश, भावनात्मक स्थिरता और क्रियात्मक शक्ति, आन्तरिक ज्योति, अवर्णनीय सौन्दर्य और उत्साह की तीव्र आग, एक ऐसा जीवन हमें चाहिए जिसमें ये तीनों आपस में सम्बद्ध हों, जिसमें जो कुछ हम देखते हैं, जो हमारी श्रद्धा का विषय है और जो जीवन हम व्यतीत करते हैं, वे सब एक हो जाएँ। यही धर्म का सार है, जिसे हम जीवन का संश्लिष्ट रूप कह सकते हैं। धार्मिक मनुष्य को यह ज्ञान होता है कि संसार में सभी कुछ अर्थपूर्ण है, उसमें यह अनुभूति रहती है कि विग्रहों और विरोधों की तह में भी एक समस्वरता और एकता अन्तर्निहित है। साथ ही उसमें उस अर्थवत्ता और समस्वरता को साकार करने की शक्ति भी रहती है। वह सत्य, शिव और सुन्दर तीनों की पृष्ठभूमि में एक ईश्वर को ही, जो अन्दर भी है और बाहर भी देखता है। जिस सत्य को हम जानते हैं, जिस सौन्दर्य को हम अनुभव करते हैं और जिस शिव की हम साधना करते हैं, वह ईश्वर ही है जिसे हम आस्तिक न होकर विश्वासपूर्वक जानते हैं। कला या सौन्दर्य या अच्छाई अकेले हममें धार्मिक अन्तर्दृष्टि पैदा न कर सके, परन्तु परस्पर संश्लिष्ट होकर वे हमें अपने से एक ऊँची चीज की ओर ले जाते हैं। धार्मिक व्यक्ति एक नयी दुनिया में रहता है जो उसके जीवन को प्रकाश

से, उसके हृदय को आनंद से और उसकी आत्मा को प्रेम से भर देती है। ईश्वर को वह प्रकाश, प्रेम और जीवन के रूप में देखता है।

टिप्पणी

धार्मिक अन्तर्ज्ञान सर्व समावेशी ज्ञान होता है, जो समस्त जीवन को व्याप्त कर लेता है। मनुष्य में विद्यमान आत्मा अनेक प्रकार से अपने आपको पूर्णत्व की ओर ले जाती है, किन्तु सबसे अधिक पूर्णत्व धार्मिक जीवन के रूप में होता है। इसी में मनुष्य की चेतना पूर्ण रूप में और एक साथ उद्‌बुद्ध होती है। यद्यपि हरेक प्रतिभाशाली व्यक्ति अपने–अपने ढंग से आत्मा के उत्थान और विकास के क्षेत्र में अग्रणी होता है, तथापि धार्मिक प्रतिभा में हम आंतरिक जीवन की विभिन्न शक्तियों को एक साथ उदात्त और विकसित रूप में पाते हैं। धार्मिक व्यक्ति समस्त या अधिकतर उच्च और गहन शक्तियों, काल्पनिक दृष्टि, बौद्धिक शक्ति, भावनात्मक उत्साह और क्रियात्मक ऊर्जा का परस्पर सम्मिश्रण करता है। एक अखंड पूर्ण जीवन, जो किसी भी प्रकार के भ्रम, भूल या विकृति से मुक्त हो, सर्वथा अनासक्त, निष्काम और अवैयक्तिक जीवन होगा। कुछ लोग अत्यधिक स्पष्ट और जीवन्त रूप में रचनात्मक होते हैं, जिस समाज में वे रहते हैं, उसे वे अपनी कल्पना और दृष्टि के अनुसार नये सिरे से ढाल सकते हैं।

ये व्यक्ति ऐसी आत्माएँ होती हैं जिनका कायाकल्प हो गया है, नया रूपान्तर हो गया है, जिनकी हरेक शक्ति अपने उच्चतम विकास की दशा में पहुँच गई है। ईश्वर के नशे से उनकी मुखाकृतियों की रेखाओं में ब्रह्मतेज की दीप्ति होती है। वे बिल्कुल अलग किस्म के ही आदमी होते हैं, इस संसार की माया और मोहिनी से बिल्कुल विमुक्त। जन–साधारण के साथ उनका संबंध नहीं होता है, जो कला के पारखियों और प्रेमियों के भारी समुदाय के साथ महान् सृष्टाओं का होता है। जब कोई प्रतिभाशाली कलाकार किसी सुन्दर कलाकृति की रचना करता है तो वह कोई व्यक्तिगत अंतरंग रहस्य नहीं रहती, बल्कि समस्त मानव–जाति द्वारा समादृत सर्वसामान्य थाती बन जाती है। जब ईश्वर के साथ साक्षात्कार करने वाले धर्मप्रवर्तक प्रतीकों के द्वारा उन सत्यों को उद्‌घाटित करते हैं जिनको उन्होंने आविष्कृत किया होता है, तो हम स्वयं आहिस्ता–आहिस्ता और धैर्य से उन्हें पुनः अपने लिए आविष्कृत करते हैं। वे धन्य आत्माएँ जो समस्त मानव–जाति का पथ–निर्देश करने के लिए पहला कदम उठाती हैं या दैनिक जीवन में सौंदर्य लाती हैं, वे अपने ये मूल्य दूसरों को देने का भी प्रयत्न करती हैं और धर्म की भाषा में ईश्वर की महानता और कृपा के अनुरूप जीवन–यापन का प्रयत्न करती हैं।

जिस प्रकार वैज्ञानिक, प्रतिभा और लड़खड़ाकर भारी कदमों से चलने वाला बुद्धि में काव्यात्मक ऊर्जा और तुकबंदी की योग्यता में नैतिक साहस और परम्परागत अच्छी प्रथा या रूढ़ि में अंतर होता है, उसी प्रकार आध्यात्मिक अन्तर्दृष्टि और धार्मिक बुद्धिवादिता में भी अंतर होता है। धार्मिक बुद्धिवादिता की मान्यता यह है कि ईश्वर के अस्तित्व के प्रमाणों से ही धर्म में दिलचस्पी पैदा होती है, जबकि आध्यात्मिक अन्तर्दृष्टि हमें अपनी चेतना को उस स्तर तक ऊँचा उठाने की प्रेरणा देती है जहाँ पहुँचकर वह ईश्वर को देख सकती है। अन्तर्ज्ञानी ऋषि और दृष्टा नपी–तुली निश्चित बातें नहीं कहते और न बिल्कुल स्पष्ट परिभाषाएँ और लक्षण देते हैं। वे प्रतीकों और अलंकारों, कथात्मक उपदेशों और चमत्कारों की भाषा में बातें करते हैं। किन्तु यह मानवीय मन का नियम है कि वचनों की भावना खत्म हो जाती है और उनके शब्दों को महत्त्व मिल

जाता है, बाह्य सामग्री कायम रहती है और अर्थ लुप्त हो जाता है। अन्तर्ज्ञान सैद्धान्तिक मान्यता नहीं है। दोनों में मात्रा का ही नहीं, किस्म का भी अंतर है। यह अंतर ईश्वर को अनुभव करने और उसे जानने का अंतर है।

टिप्पणी

हमें ईश्वर का अन्तर्ज्ञान (साक्षात्कार) तब तक नहीं हो सकता जब तक कि हम अपनी सम्पूर्ण सत्ता से उसके लिए प्रयत्न न करें। अनुभव को अर्जित करना पड़ता है, प्रयत्न, आकांक्षा और तपस्या, विश्वास और संघर्ष की कीमत चुकाकर। लेकिन बुद्धिजीवी लोग उसे बहुत सस्ते में प्राप्त करना चाहते हैं। हर धर्म में उसके अनुयायियों की बहुसंख्या यह चाहती है कि सच्चे अर्थों में धार्मिक बने बिना धर्म के आश्वासन और फल का उपभोग कर सकें। वे लोग धार्मिक होते हैं, किन्तु अपने सर्वांग से या अपनी आत्मा से नहीं, बल्कि अपने दिमाग से और कभी–कभी केवल अपने मेरुदण्ड से ही। धर्म–प्रचारक और पुजारी लोग मानव–प्रकृति की कमजोरी का लाभ उठाकर हमें यह उपदेश देते हैं कि यदि हम अपनी रक्षा चाहते हैं तो हमें ईश्वर के अस्तित्व में विश्वास रखना चाहिए। भावनाहीन यंत्र के समान ईश्वर को सिद्ध करने वाले धार्मिक दर्शन–शास्त्र और जड़ कर्मकाण्ड में वे बहुत व्युत्पन्न होते हैं और अपने क्षेत्र में उनकी क्षमता काफी होती है, परन्तु नाजुक घड़ी आ जाने पर पर्याप्त सक्षम सिद्ध नहीं होते, किन्तु धर्म–प्रवर्तक ब्रह्मज्ञानियों में सृजनात्मक भावना होती है। उनका धर्म–प्रचारकों और पुजारियों के साथ इस बात को लेकर संघर्ष चलता रहता है कि वे पुरानी बातों की अतिरंजनापूर्ण पुनरावृत्ति करते रहते हैं। उनका कहना है कि मनुष्य की आत्मा और भावना तभी जीवित होकर व्याप्त होती है, जबकि जिस साँचे में वह ढली है, उसे तोड़ दिया जाए। यही कारण है कि वे रूढ़िवादी होने की बजाय रूढिभंजक अधिक होते हैं। उन्हें अधार्मिक और समाजद्रोही समझ लिया जाता है। प्रायः उन्हें बहिष्कार और मृत्यु का शिकार बनना पड़ता है, किन्तु धर्म के क्षेत्र में होने वाली समस्त प्रगति इन उत्पीड़ित आत्माओं के कारण ही होती है। वे संसार में ईश्वर के जीवन को अधिक गहरा और समृद्ध बनाते हैं और जहाँ धर्म–प्रचारक और पुजारी ईमानदार और जिज्ञासु मन को संतुष्ट नहीं कर सकते हैं, वहाँ ब्रह्मज्ञानी लोग उसे अपनी ओर आकृष्ट कर लेते हैं।

कट्टर सिद्धान्तवाद एक बौद्धिक धर्म का खतरा है जो एक ऐसे संसार के लिए, जिसमें हर वस्तु का एक नियत प्रतिमान निश्चित करने की प्रवृत्ति और मात्रा की अधिकता को वैयक्तिकता और किस्म की श्रेष्ठता से अधिक महत्त्व दिया जाता है, बहुत आकर्षक है। जब कट्टर सिद्धान्तवादिता का ह्रास होने लगता है तो हम घबराने लगते हैं कि कहीं धर्म ही लुप्त न हो जाए। यदि हम धर्म–संबंधी आकारों और औपचारिकताओं को अंतिम और अपरिवर्तनीय मान लें तो उनकी जड़ें हिलती देखकर हमारा संशयालु और आशंकित होना स्वाभाविक है, किन्तु यह सौभाग्य की बात है कि धर्मों के महान् ऋषि और प्रवर्तक लोग किन्हीं निश्चित और अपरिवर्तनीय सिद्धान्तों या कर्म–काण्डों का विधान नहीं करते। वे आत्मा को अपनी एकाकी तीर्थ–यात्रा के पथ पर आमंत्रित करते हैं और उसे पूर्ण स्वाधीनता प्रदान कर देते हैं, क्योंकि उनका यह विश्वास है कि ईश्वर को अपनी प्रतिभा के अनुसार स्वतंत्र और निर्बाध रूप से अपनी आत्मा में पाना ही आध्यात्मिक जीवन के लिए अनिवार्य शर्त है। मानव–प्रकृति एक जीवन है जो बढ़ना और विकसित होना चाहता है। 'मिट्टी नहीं है जो यह इन्तजार करे कि कोई आकर उसे साँचे में ढाले'।

टिप्पणी

धार्मिक प्रतिभाशाली महापुरुषों के उदाहरण मोटे तौर पर मनुष्य के पथ–प्रदर्शन के लिए उपस्थित रहते हैं और जब उनका संबंध किन्हीं संगठनों से होता है तो भी वे महान् जीवन को ऐसे कट्टर और अपरिवर्तनीय नियम या सूत्र में परिणित करने की, एक गूढ़ रहस्य को एक ऐसी दार्शनिक प्रणाली में परिवर्तित करने की जल्दी नहीं होती, जिसे हर व्यक्ति रट सके। यदि हमारे मंदिर, मस्जिद और गिरजे यह समझें कि उनका मुख्य कार्य हमें पवित्र ज्ञान देने के बजाय हमारी आत्मा को उद्‌बुद्ध और सजग करना है तो वे ईश्वर के ऐसे मंदिर बन जाएँगे जिनमें व्यापकता और औदार्य का साहस होगा और जो अपने आध्यात्मिक वातावरण में विभिन्न धार्मिक विचारों और रुचियों के लोगों का स्वागत कर सकेंगे। वे एक ऐसे अदृश्य धार्मिक सम्प्रदाय की भूमिका तैयार करेंगे जो समस्त सद्‌भावनाशील मानवों का आलिंगन करेगा। जीवन और वातावरण मान्यता और बँधे हुए धार्मिक विधान की विरोधी वस्तुएँ हैं। जीवन या वातावरण की सम्भावनाएँ अगणित और अपरिमेय हैं और उसमें विभिन्न मतों के लोगों के विचार–भेद के लिए पूरी गुंजाइश रहती है। यदि हमारा यह विश्वास हो कि मनुष्य को उसके मन की कोमलता के लिए किसी सहारे की आवश्यकता है तो हम उसे प्रतीक और उदाहरण प्रदान कर सकते हैं, किन्तु उसके बाद शेष सब–कुछ हमें मनुष्य के अंतर में विद्यमान ईश्वर पर ही छोड़ देना चाहिए। सुकरात की भाँति सच्चा उपदेशक केवल दाई का काम करता है। हिन्दू धर्म के समान किसी धर्म में निश्चित आकार का जो अभाव है वह मुझे एक उच्चतर किस्म की निश्चितता का द्योतक प्रतीत होता है। धर्म का अर्थ है– ब्रह्माण्ड में ईश्वर के साथ चेतन ऐक्य और उसका मुख्य साधन है– प्रेम।

5.4.2 'अंतर्ज्ञान और नैतिक जीवन' का सार

'अन्तर्ज्ञान और नैतिक जीवन' लेख डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन द्वारा लिखित है। डॉ. राधाकृष्णन स्वतन्त्र भारत के प्रथम उपराष्ट्रपति, द्वितीय राष्ट्रपति तो थे ही, साथ ही महान दार्शनिक, भारतीय संस्कृति के संवाहक और वेदान्तवेत्ता तथा हिन्दू विचारक थे। शिक्षा और राजनीति में उत्कृष्ट योगदान के लिए उन्हें देश के सर्वोच्च अलंकरण 'भारत रत्न' से विभूषित किया गया।

नैतिक जीवन में उच्चतम स्थिति पर पहुँचने के लिए अन्तर्ज्ञानात्मक दृष्टि अनिवार्य है। इस पथ का साहसपूर्वक अनुसरण करने वाला वीर आविष्कारक वैज्ञानिक, संगीतकार, भवन–डिजाइनर की तरह सर्जक की श्रेणी में आएगा। सृजन में मौलिकता एक अनिवार्य तत्व है। नियमों के यन्त्रवत् पालन अथवा नमूनों की नकल से कोई लाभ नहीं होता। जीवन की शतरंज की फड़ पर अलग–अलग मोहरों की अलग–अलग ताकतें हैं। किसी भी नाजुक स्थिति में खेल भावना के साथ आगे चाल चलना एक सृजनात्मक कार्य है। ऐसे नैतिक पथ के राही आगे बढ़ने के लिए अपने अन्तर की ताल और लय का अनुसरण करते हैं। वे समाज के परम्परागत पैमानों का इस्तेमाल करने के स्थान पर अपने आध्यात्मिक उत्तरदायित्व और आन्तरिक सत्यता को अधिक महत्वपूर्ण मानते हैं कभी–कभी ऐसे प्रतिभाशाली व आध्यात्मिक वीर ईसा की भाँति सामाजिक उत्पीड़न के शिकार भी हो जाते हैं। ईसा का यह सन्देश 'प्रेम करो और फिर जो चाहे, सो करो' पुराने यहूदी फारसी लोगों की मान्यताओं के मुकाबले रूढ़ि विरोधी था। समाज की नैतिकता का यह तकाजा होता है कि उसके नियमों का सब लोगों

द्वारा पालन किया जाए, किन्तु संसार की समस्त नैतिक प्रगति का श्रेय नैतिक रूढ़ियों को तोड़ने वालों को ही है।

टिप्पणी

समाज सब कार्यों को सुविज्ञान सामान्य पैमानों से नापता वह विचारों की एक यान्त्रिक प्रणाली का दास है। इसलिए मनुष्यों की हर व्यक्तिगत समस्या को सामान्य में परिणत करके निर्णय विशिष्ट परिस्थितियों और नैतिक सूत्रों के अनुसार करता है। रूढ़ सिद्धान्तों पर चलना प्राण और ओज के गहरे स्रोतों से सम्बन्ध–विच्छेद कर लेना है। दूसरों की समस्याओं को समझ–बूझकर ही समस्याओं का समाधान सम्भव है। सामाजिक समस्याओं का समाधान वही कर सकते हैं जिन्हें बुनियादी सत्यों का ज्ञान होता है और जिन्होंने काल के बीजों को अपनी रहस्यभेदी दृष्टि से देख लिया होता है।

दैनिक जीवन में प्रायः सभी व्यक्ति उन उपयोगी परम्पराओं और रिवाजों के अनुसार चलते हैं, जिन्हें सामान्य परिस्थितियों के लिए बनाया गया होता है। सुकरात के अनुसार सत्कर्म ही ज्ञान है। बौद्धिक ज्ञान व्यक्ति के अन्तर्ज्ञान से स्वयं ही निर्झर की भाँति फूटता है, यह सिखाने की वस्तु नहीं है। नैतिक चेतना से कर्त्तव्य का पथ स्पष्ट हो जाता है। गहरी अंतश्चेतना वाला व्यक्ति सामान्य प्रचलित प्रतिबन्धों से उदासीन रहता है। बुद्ध और ईसा जैसे महापुरुषों के जीवन न केवल सत्यमय और संयमी हैं, बल्कि उनमें असीम सौन्दर्य भी है।

धार्मिक चेतना न तो बौद्धिक क्रिया है, न नैतिक, सौन्दर्य–बोधात्मक और न इन सब क्रियाओं का योग। मानव मन मूल्यों की खोज करता है और उन्हें पाने के लिए उद्योग भी करता है। वैज्ञानिक प्रतिभा, कवि की अन्तर्दृष्टि, नैतिक अन्तःकरण और धार्मिक विश्वास ये सभी विभिन्न गतियाँ मन की अखंड क्रियाएँ हैं। ये पृथक्–पृथक् रूप से ज्ञान, आनन्दोपयोग या सृजन से जुड़ी हैं लेकिन अंग्रेजी में इन सबके लिए एक ही शब्द 'इन्ट्यूशन' (अन्तर्ज्ञान) है। सत्य, अच्छाई और सौन्दर्य ये सभी मूल्य अपने आपमें पूर्ण, अविभाभ्य व निरपेक्ष हैं। बाद में ये ईश्वर के अस्तित्व और तत्त्व अंग बन जाते हैं और ईश्वरीय चेतना से संयुक्त होने के कारण गतिहीन आदर्श नहीं रहते, बल्कि गतिशील शक्तियाँ बन जाते हैं।

संज्ञानात्मक, सौन्दर्यबोधात्मक और नैतिक – ये तीनों ही जीवन के महत्वपूर्ण पक्ष हैं, किन्तु फिर भी तीनों अलग–अलग पक्ष हैं। धर्म में तीनों का समावेश और अन्तर्भाव हो जाता है। किन्तु फिर भी तीनों आपस में कुछ न कुछ मात्रा में अवश्य मिले हुए हैं। एक ही व्यक्ति में तीनों पक्षों का समावेश होना व्यावहारिक नहीं है। इतिहास के महापुरुष अपने सौन्दर्य–बोध के लिए विख्यात नहीं है और न ही महान कलाकार नैतिकता के आदर्श नमूने रहे हैं। नैतिकता से पूर्णतया रहित कला को सच्ची कला कहना उचित नहीं है। कला और जीवन में पूर्णता इन तीनों पक्षों की पारस्परिक सम्बद्धता से ही आती है। धार्मिक व्यक्ति सत्य, शिव और सुन्दर तीनों की पृष्ठभूमि में एक ईश्वर को ही, जो अन्दर भी है और बाहर भी, देखता है। धार्मिक अन्तर्ज्ञान सर्वसमावेशी ज्ञान होता है जो समस्त जीवन को व्याप्त कर लेता है। सबसे अधिक पूर्णत्व धार्मिक जीवन के रूप में होता है। ये संसार की माया और मोहिनी से बिल्कुल मुक्त होते हैं।

टिप्पणी

वैज्ञानिक प्रतिभा और बुद्धिवादिता, काव्यात्मक ऊर्जा और तुकबन्दी; अच्छी प्रथा और रुढ़ि में जो अन्तर होता है उसी प्रकार आध्यात्मिक अन्तर्दृष्टि और धार्मिक बुद्धिवादिता में भी अन्तर होता है। ईश्वर का अन्तर्ज्ञान तब तक नहीं हो सकता, जब तक कि हम अपनी सम्पूर्ण सत्ता से उसके लिए प्रयत्न न करें। अनुभव को प्रयत्न, आकांक्षा, तपस्या, विश्वास और संघर्ष की कीमत चुकाकर अर्जित करना पड़ता है, किन्तु बुद्धिवादी लोग उसे बहुत सस्ते में प्राप्त करना चाहते हैं। कट्टर सिद्धान्तवाद एक बौद्धिक धर्म का खतरा है। यह सौभाग्य की बात है कि धर्मों के महान ऋषि और प्रवर्तक लोग किन्हीं निश्चित और अपरिवर्तनीय सिद्धान्तों या कर्मकाण्डों का विधान नहीं करते। वे आत्मा को अपनी एकाकी तीर्थयात्रा के पथ पर आमंत्रित करके उसे पूर्व स्वाधीनता प्रदान कर देते हैं। यदि हमारे धार्मिक स्थल यह समझें कि उनका मुख्य कार्य हमें पवित्र ज्ञान देते के बजाय हमारी आत्मा को सजग करना है तो वे ईश्वर के ऐसे मन्दिर बन जाएँगे जहाँ विभिन्न धार्मिक विचारों और रूचियों के लोगों का स्वागत होगा। धर्म का अर्थ है ब्रह्माण्ड में ईश्वर के साथ चेतन ऐक्य और उसका मुख्य साधन है प्रेम।

5.4.3 व्याख्यांश

- जीवन की शतरंज की फड़ पर ..... सजीव अनिवार्यता होती है।

सन्दर्भ– प्रस्तुत अवतरण महान दार्शनिक, भारतीय संस्कृति के संवाहक और आस्थावान हिन्दू विचारक डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन द्वारा रचित लेख 'अन्तर्ज्ञान और नैतिक जीवन के प्रथम अनुच्छेद से व्याख्यार्थ उद्धृत है।

प्रसंग– नैतिक जीवन में उच्चतम स्थिति पर पहुँचने के लिए अन्तर्ज्ञानात्मक दृष्टि अनिवार्य है। नैतिक जीवन के पथ पर साहसपूर्वक चलने वाला व्यक्ति अनुसन्धानकर्ता वैज्ञानिक, संगीतकार या किसी भवन डिजाइनर की भाँति सर्जक है। उसमें रचनाशील और प्रगतिशील दृष्टिकोण होना बहुत जरूरी है। तभी कोई नयी सर्जना सम्भव है। केवल नियमों के यन्त्रवत् पालन और नमूनों की नकल से किसी उपलब्धि को प्राप्त नहीं किया जा सकता। जीवन एक खेल है, जिसे सफलतापूर्वक खेलने के लिए साहस और दक्षता की आवश्यकता होती है। साहसी खिलाड़ी तकनीक में भी निपुण होता है।

व्याख्या– लेखक का मानना है कि जीवन शतरंज के खेल की तरह है। जिस प्रकार शतरंज की बिसात पर अलग–अलग मोहरे खड़े रहते हैं और सब मोहरों की ताकत अलग–अलग होती है और उनके जोड़े अनेक प्रकार से बन सकते हैं, उसी प्रकार हमारे जीवन में अलग–अलग गुणात्मक शक्तियाँ हैं, उनमें हम अलग–अलग गुणों के जोड़े भी बना सकते हैं और उन्हें संयुक्त रूप से प्रभावी रूप में जीवन की बिसात पर चला सकते हैं। शतरंज के खेल में मोहरे चलने का भविष्य कथन पहले से ही किया जा सकता है। जीवन और शतरंज दोनों ही खेल हैं। दोनों के ही खिलाड़ी तभी अच्छा खेल सकते हैं जब खिलाड़ी में सही कार्य की भावना होती है और मन ही मन वह इस बात का दवाब अनुभव करता है कि यदि उसने सच्ची खेल–भावना से नहीं खेला, तो वह खेल–भावना के लिए हुए अपने संकल्प को ही झूठा करेगा और इससे अपराध–बोध भी पैदा होगा। असली खिलाड़ी तो वह है जो नाजुक स्थिति में भी घबराकर पराजय न मान ले और आगे चाल चलता रहे। सही ढंग से आत्म–विश्वासपूर्वक आगे चाल

चलना एक सृजनात्मक कार्य है। यह सृजनात्मकता सबके अन्दर एक सी मात्रा में नहीं होती। यह प्रकृति प्रदत्त होती है और आत्मा के भीतर से आती है। यह गुण किसी में बहुत अधिक होता है तो किसी में बहुत कम। जिसमें जितनी अधिक आत्म–विश्वास भरी यह सृजनात्मकता होगी, उसे उतनी ही अधिक सफलताएँ प्राप्त होंगी।

टिप्पणी

विशेष

(i) 'किसी भी खेल को खेलते हुए खेल भावना की विद्यमानता बहुत जरूरी चीज है। भावनाओं का जीवन पर बड़ा गहरा प्रभाव पड़ता है।

(ii) किसी भी नाजुक स्थिति में आगे चाल चलना एक सृजनात्मक कार्य है। पंक्ति बहुत अर्थ–गर्भित व प्रेरक है। नाजुक स्थिति में अपना मनोबल सँभाले रखना और हार न मानते हुए आगे दांव चलना किसी खिलाड़ी के लिए बहुत आवश्यक होता है। क्रिकेट के मैदान में भी कभी–कभी देखा जाता है कि कभी–कभी दो तीन खिलाड़ियों के आउट होते ही खिलाड़ी बहुत असन्तुलित हो जाते हैं। फिर वे जल्दीबाजी और जोश से काम लेते हैं। फलतः मैदान में वे हार जाते हैं। इसलिए कहा गया है मन के हारे हार है, मन के जीते जीत।

(iii) जीवन की शतरंज में रूपक अलंकार है।

(iv) निस्संदेह भाषा–शैली बहुत प्रवाहपूर्ण है।

- नैतिक वीर अपने अंतर ..... अधिक कीमती है।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– जीवन एक शतरंज का खेल है जिसकी बिसात में मोहरें तैनात होते हैं। सब मोहरों की अलग–अलग ताकत होती है। खेल खेलते समय कई बार सम्भावित पराजय सामने दिखने पर भी हार नहीं मानते। वे सही समय पर सही चाल चलना जानते हैं और बहुत बार यह धैर्य और संबल उन्हें जीत की ओर ले जाता है। किसी भी नाजुक स्थिति में आगे चाल चलना एक सृजनात्मक कार्य है। ऐसे लोगों को नैतिक वीर कहा जाता है।

व्याख्या– ऐसे नैतिक वीर अपने अन्तर्मन की आवाज का अनुसरण करते हैं जो हमेशा उन्हें आगे चलने के लिए प्रेरित करती है। जैसे संगीत के गाने एक लय–ताल पर चलते हैं, ऐसे ही ये नैतिक वीर आत्मा की लय–ताल पर चलते हैं। इनकी अन्तरात्मा इन्हें जो कुछ करने का निर्देश देती है, ये वही काम करते हैं। काम करके इन्हें सफलता मिलती है या असफलता, इस बात पर ये ध्यान नहीं देते। ये कर्म पर विश्वास रखते हैं, फल पर नहीं। इन्हें तो सही राह पर चलने का सन्तोष ही पर्याप्त रहता है। अपनी आत्मा की आवाज का अनुसरण करने में कभी–कभी ये परम्परागत व स्थापित रीति–नियमों से बाहर चले जाते हैं। रूढ़ परम्पराओं को मानने वाले समाज के लोग इन्हें या तो मूर्ख समझते हैं या अनैतिक। परन्तु ऐसे नैतिक वीर लोगों की धारणाओं की परवाह नहीं करते। वे अपने आपमें ही मग्न रहते हैं। वे सामाजिक परम्परा से अधिक महत्वपूर्ण अपनी आत्मा द्वारा सौंपे गए कर्त्तव्य को मानते हैं। बाहरी नियम तो आरोपित होते हैं, उनसे अधिक महत्वपूर्ण तो आन्तरिक संकल्प व नियम हैं। समाज में परिवर्तन इन्हीं आन्तरिक नियमों से होता है।

टिप्पणी

विशेष

(i) नैतिक वीरों की अन्तःप्रेरणा का वर्णन किया गया है। उनके लिए बाहर से थोपे गए नियमों की अपेक्षा आन्तरिक संयम अधिक महत्वपूर्ण होता है। अन्तर की लय–ताल का अनुसरण करके परम्परागत पैमानों से विपरीत चलने वालों में गौतमबुद्ध, मीरा जैसे महान आध्यात्मिक वीरों का नाम परिगणित किया जा सकता है।

अपनी अन्तरात्मा की आवाज पर बाल विवाह और सती–प्रथा के विरुद्ध आवाज उठाने वाले ईश्वरचन्द्र विद्यासागर और राजा राममोहन राय को भी नैतिक वीरों में अग्रगण्य माना जाता है।

- यह देखकर दुःख होता है ..... लटकाकर करते हैं।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– अपनी अन्तर्रात्मा की आवाज पर अपनी राह स्वयं बनाकर उस पर चलने वालों को नैतिक वीर कहा जाता है। इनकी राह कभी कभी समाज के स्थापित नियमों के विपरीत होती है। ये परम्परागत रीति रिवाज को निभाने के स्थान पर आन्तरिक सत्य और संयम को अधिक महत्व देते हैं। वे अपने समाज को अधिक सुदृढ़ बुनियाद पर नये सिरे से ढालने के लिए संघर्ष करते हैं। परम्परावादी उन्हें और उनके कार्य को शंका की दृष्टि से देखते हैं।

व्याख्या– यह बड़े दुख का विषय है कि ऐसे नैतिक वीरों को सम्मानित करने के स्थान पर उनका उत्पीड़न किया जाता है। ये नैतिक वीर देश और समाज के लिए कुछ अनूठे काम करना चाहते हैं। उनके कामों के पीछे कोई सतही अन्तःप्रेरणा न होकर गहरी अन्तःदृष्टि होती है। उनमें मानवता के लिए कुछ अनूठा करने की अन्तःप्रेरणा होती है। लेकिन अफसोस का विषय है कि इनके अनूठे कार्यों के पीछे छिपी इनकी अन्तःप्रेरणा को समाज द्वारा ठीक प्रकार से समझा नहीं जाता और दुर्भावनावश ऐसे महान व्यक्तियों पर तरह–तरह का उत्पीड़न किया जाता है। अपने त्याग और समर्पण के लिए इन्हें पुरस्कार और प्रशंसा की अपेक्षा घृणा दण्ड और निन्दा ही मिलती है और यह घृणा बहुत अधिक बढ़ जाने पर इन्हें गोली से मार दिया जाता है और कभी ईसा मसीह की भाँति सूली पर लटका दिया जाता है। जो जिन्दगी भर समाज को सही राह दिखाने का प्रयास करते हैं। सामाजिक बुराइयों के प्रति सचेत करते हुए उनके निराकरण का उपदेश देते हैं, अंततः उन्हें उसी समाज के हाथों अपनी जान गंवानी पड़ती है, जिसकी हित चिन्ता में वे दिन–रात लगे हुए थे। यह बहुत बड़ी विडम्बना और अफसोस का विषय है।

विशेष

(i) गहरी दृष्टि और सृजन शक्ति वाले लोगों को समाज के हाथों उत्पीड़न सहना पड़ता है। यह बात जितना सत्य है उतनी ही हृदय विदारक भी। मीरा को जहर भरा प्याला पिलाया गया, तो कभी काँटों की सेज पर भी सुलाया गया। महात्मा कबीर को भी सिकन्दर लोदी द्वारा कई प्रकार से शारीरिक यातनाएँ दी गईं। इसी प्रकार 'हम अपने महान पथ प्रदर्शकों और उपदेष्टाओं का सम्मान सूली पर लटकाकर करते हैं' बात में एक गहरी संवेदना और सत्यता है।

(ii) 'उत्पीड़न हमेशा अकारण ही नहीं हुआ। समाज में ऐसे नैतिक वीरों के उत्पीड़न का कारण समाज की रूढ़ सोच और सबक सिखाने की प्रवृत्ति होती है।

(iii) भाषा–शैली प्रसंगानुकूल है।

टिप्पणी

• प्रेम हमें जीवन के ..... रूढ़ियों को तोड़ने वालों को ही है।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– गहरी दृष्टि और सृजन शक्ति वाले महानुभाव प्रायः सामाजिक हित में समाज की रूढ़ परम्पराओं के विरुद्ध अपनी बात कहते हैं, जो समाज को स्वीकार्य नहीं होती। फलतः ऐसे लोगों को समाज तरह–तरह से उत्पीड़ित करता है और कभी तो गोली मारकर अथवा सूली पर चढ़ाकर अपनी घृणा और अस्वीकार्यता का घृणित प्रमाण दे देता है। निबन्धकार ईसा मसीह का उदाहरण देते हुए कहते हैं कि ईसा का एक सन्देश 'प्रेम करो और फिर जो चाहे सो करो' पुराने यहूदी लोगों को रूढ़िविरोधी लगा।

व्याख्या– निबन्धकार प्रेम पर चर्चा करते हुए कहता है कि प्रेम हमें एक नई दृष्टि देता है, जिससे कि जीवन के अधिक गूढ़ रहस्यों को समझ पाते हैं लेकिन बुद्धिवादी और नैतिकता की दुहाई देने वाले सामाजिक नेता उनकी गहन और उदार सोच को समझ नहीं पाते और उन्हें अपना शत्रु समझकर कटघरे में खड़ा करके उन पर जुल्म करके अपना अहं तुष्ट करते हैं। समाज यह चाहता है कि हर आदमी बिना कोई प्रश्न किए उसके नियमों का यथावत् पालन करे लेकिन समय बदलता है तो समाज की रुढ़ परम्पराएँ कुछ हद तक बोझिल और अग्राह्य हो जाती हैं। उनमें परिष्कार और सुधार की आवश्यकता होती है। लेकिन समाज की नैतिकता के ठेकेदार इस बात का स्वयं तो संज्ञान लेते ही नहीं, अपितु समझाने पर भी नहीं समझते, बल्कि समाज के प्रति कुछ हटकर अनूठे काम करने वालों के प्रति एक घृणा पाल लेते हैं और उसी के वशीभूत इन आध्यात्मिक क्रान्तिकारों का तरह–तरह से उत्पीड़न करते हैं और कई बार तो जान ही ले लेते हैं और यह भी एक विरोधाभासी सत्य है कि जिन पर नैतिक रूढ़ियों को तोड़ने का आरोप लगाया जाता है, वे ही सच्चे अर्थों में नैतिकतावादी होते हैं और इनके बलिदान के बाद समाज में नैतिक प्रगति का श्रेय भी इन्हें ही दिया जाता है।

विशेष

(i) 'संसार की समस्त नैतिक प्रगति का श्रेय नैतिक रूढ़ियों को तोड़ने वालों को ही है' वाक्य बहुत अर्थगर्भित है।

(ii) निश्चय ही सच्चा प्रेम एक गहरी अन्तर्दृष्टि और व्यापक दृष्टिकोण देता है जिसके प्रकाश में सारा संसार 'वसुधैव कुटुम्बकम्' ही लगता है। कबीर ने कहा

पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुआ, पंडित भया न कोय
ढाई आखर प्रेम का पढ़ै सो पंडित होय।

(iii) समाज के हित के लिए समाज में रहकर रूढ़ परम्पराओं के विरुद्ध जाकर कुछ करने वाले बुद्धिजीवियों को अज्ञेय ने 'नदी के द्वीप' की संज्ञा दी जो समाज के रीति–नियमों की धारा में बहते नहीं हैं' क्योंकि 'बहना रेत होना है।'

• कला जिस समस्वर ..... आदर्श नमूने रहे हैं।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

टिप्पणी

प्रसंग– सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम्– ये तीनों जीवन, साहित्य और कलाओं के महत्वपूर्ण मूल्य रहे हैं। इनमें कोई पूर्वापर या ऊँच–नीच का क्रम नहीं बाँध सकते और न ही एक को दूसरे की श्रेणी में रख सकते हैं। ये मूल्य निरपेक्ष और अपने आप में पूर्ण होते हैं। फिर भी यह सच है कि सच्ची कला, सच्चा दर्शन और सच्ची नैतिकता को अकेले प्राप्त नहीं किया जा सकता, सभी कुछ न कुछ मात्रा में परस्पर मिले रहते हैं। मनुष्य की प्रकृति अलग–अलग हिस्सों से बनी हुई नहीं है जो एक–दूसरे से बिल्कुल स्वतंत्र हों। कला में भी यदि तीनों मूल्यों का समन्वय हो तो वह महानतम कला बन जाती है।

व्याख्या– कला जिन मूल्यों की अभिव्यक्ति करती है, वे अस्थायी और क्षणिक हों। शाश्वत मूल्य न हों। वे मूल्य या दृश्य स्वप्न की भाँति दूर की कौड़ी हों। व्यावहारिक और ठोस हो ही नहीं। वह बस भावावेश में कह दी गई बात हो, उसमें कवि की मूल भावना और आंतरिक आवेश न हो। यह भी संभव है कलाकार चाहे वह चित्रकला, संगीत, गायन, वादन, स्थापत्य, लेखन आदि किसी भी क्षेत्र का क्यों न हो बौद्धिक दृष्टि से दुर्बल हो और नैतिक दृष्टि से क्षीण। किंतु महान कलाकारों के लिए यह बात लागू नहीं होती। उनकी कला में तो सौंदर्य के साथ–साथ सत्य और शिवम् भी रहता है और उनके व्यक्तित्व में भी बुद्धि, नैतिकता और सौंदर्य–बोध तीनों का ही सम्यक् समन्वय देखने को मिलता है। लेकिन सब कलाकारों और महापुरुषों पर यह बात लागू नहीं होती। इतिहास में अपने महत्वपूर्ण कामों से चर्चित महापुरुषों में कवियों वाले सौंदर्य बोध का अभाव हो सकता है और अपनी कला के जरिये सुर्खियों में रहने वाले महान कलाकार नैतिकता के आदर्शों की दृष्टि से दुर्बल भी हो सकते हैं। उनकी कला और व्यक्तित्व में सत्यम् और सुन्दरम् हो सकता है, किंतु शिवम् नहीं। तीनों का सम्यक् समन्वय अंगुलीगण्य कलाकारों में ही दृष्टिगत होता है।

विशेष

(i) इस अनुच्छेद में निबन्धकार ने सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम् के मूल्यों पर बड़ी सार्थक चर्चा की है। कला और कलाकार भिन्न है। कलाकार की कला में जिन मूल्यों की स्थापना हो वह आवश्यक नहीं कि कलाकार के व्यक्तित्व में भी हो और इसके साथ ही यह भी संभव है कि कला में मात्र सौंदर्य हो, शिवम् के रूप में नैतिक मूल्यों की प्रतिष्ठा न हो। इस प्रकार का आरोप उर्दू के चर्चित साहित्यकार मंटो पर भी लगाया जाता है। आज उनकी कहानियाँ बहुत चर्चित हैं, उन पर फिल्म भी बन रही है लेकिन अपने समय में उन्हें बहुत विवादास्पद व अनैतिक मूल्यों को भड़काने वाला माना जाता था। सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम्– इन तीनों मूल्यों की प्रतिष्ठा कवि और कविता दोनों में ही बहुत दुर्लभ है। तुलसीदास और रवीन्द्रनाथ टैगोर जैसे कुछ महान साहित्यकारों में ऐसा विराट समन्वय द्रष्टव्य है।

(ii) प्रस्तुत विवेच्य अवतरण भाव पक्ष की दृष्टि से बहुत अधिक समृद्ध है। लेखक ने बहुत संक्षेप में बहुत प्रभावी ढंग से तीनों मूल्यों पर संक्षिप्त चर्चा की है और वह भी बिल्कुल निष्पक्ष ढंग से।

(iii) 'कला जिस समस्वरता ..... आत्मार्पण तो हो ही नहीं' में लेखक द्वारा कही गई बात हिन्दी के प्रगतिवादी साहित्य पर लागू होती है। इस दौर में बहुत से कवि प्रगतिवादी आंदोलन में एक फैशन की तरह बिना अंतःप्रेरणा के शामिल हो गए और पूँजीपतियों के शोषण और गरीबों की दीन दशा और शोषण आदि पर सतही कविता लिखते गए। इन कविताओं में उनकी अंतःप्रेरणा शामिल नहीं है ओर उनकी जीवनचर्या, करियर तथा व्यक्तित्व इस प्रकार के अभिव्यक्त मनोभावों का साक्ष्य देता है।

टिप्पणी

(iv) भाषा लेखक के भावों को संप्रेषित करने में पूर्णतया सक्षम है।

5.4.4 'अंतर्ज्ञान और नैतिक जीवन' का समीक्षात्मक अध्ययन

'अंतर्ज्ञान और नैतिक जीवन मूल्य' विचारात्मक श्रेणी का लेख है, जिसमें भाव तत्व की अपेक्षा बोध तत्व, चिंतन और विचार तत्व पर अधिक बल दिया गया है।

प्रस्तुत समीक्ष्य लेख एक आध्यात्मिक विषय 'अंतर्ज्ञान और नैतिक शिक्षा' पर लिखा गया है। डॉ. राधाकृष्णन एक महान दार्शनिक, भारतीय संस्कृति के व्याख्याता और हिन्दू विचारक थे। इसलिए उन्होंने अंतर्ज्ञान के स्वरूप, उपादेयता व अन्य भावों से संबद्ध विषयों आदि पर बड़ी सूक्ष्मता से विचार किया है।

बिना किसी भूमिका के यह लेख प्रथम पंक्ति से ही अपने विषय पर आ जाता है– हमारे नैतिक जीवन में भी उच्चतम स्थिति पर पहुँचने के लिए अंतर्ज्ञानात्मक दृष्टि अनिवार्य है। विषय पर अपने विचार रखते हुए लेखक कार्य–कारण संबंध पर भी विचार व्यक्त करता चलता है, यथा– "नैतिक वीर अंतर की ताल और लय का अनुसरण करता है जो उसे आगे की ओर चलने के लिए अनुप्रेरित करती है। उनमें अपनी नियति के आदेश का अनुगमन करने का संतोष रहता है। ये नैतिक वीर लीक से हटकर चलते हैं, इसलिए समाज पूर्वाग्रहवश इन पर उत्पीड़न करते हैं क्योंकि वे इन्हें अनैतिक समझते हैं। इतना ही नहीं कभी–कभी तो समाज अपने महान पथ प्रदर्शकों और उपदेष्टाओं का सम्मान सूली पर लटकाकर करता है। विस्मय की बात यह है कि संसार की समस्त नैतिक प्रगति का श्रेय नैतिक रूढ़ियों को तोड़ने वालों को ही है।"

लेखक नैतिक वीरों के प्रति समाज की रूढ़िवादी व पूर्वाग्रहपूर्ण सोच की भी जाँच–पड़ताल करता है। लेखक समाज की मनोवृत्ति का विश्लेषण करते हुए कहता है कि समाज 'सब कार्यों को सुविज्ञात सामान्य पैमानों से नापता है... वह इंसानों को मशीन समझता है.... जब हमारे बुद्धिजीवी यह दावा करते हैं कि वे सिद्धांतों पर चलते हैं, तब वे प्राण और ओज के गहरे स्रोतों से अपना संबंध विच्छेद कर लेते हैं।' यह समूचा निबन्ध लेखक के मौलिक विचारों की संपदा से ओत–प्रोत है। देखिए एक स्थल 'जीवन–प्रेम और आत्म–बलिदान ऐसी चीजें नहीं हैं कि उनकी इस तरह सहज में उपेक्षा कर दी जाए। संसार में कोई भी दो घटनाएँ या दो घटनाओं का परस्पर सम्मिलन एक जैसा नहीं होता। हमें हर घटना को एक अद्वितीय स्थिति में, रूप में परिस्थितियों के साथ एक सर्वथा स्वतंत्र और समंजन के रूप में देखना चाहिए, न कि एक पूर्वकल्पित उद्देश्य के साथ यांत्रिक समंजन के रूप में।' इस निबन्ध में अभिव्यक्त कुछ चिंतन मणियों को हम इस प्रकार उदृधृत कर सकते हैं–

1. सर्वोच्च मुक्ति और आनंद के क्षणों में ही हम अपनी आत्मा की अधिकतम गहराई में या उसके निकट होते हैं।

टिप्पणी

2. मनुष्य आत्मा में जितनी गहराई तक जाता है, उतना ही उसका ज्ञान अपरोक्ष होता है।
3. इतिहास के महापुरुष अपने सौंदर्य–बोध के लिए विख्यात नहीं हैं और न ही महान कलाकार नैतिकता के आदर्श नमूने रहे हैं।
4. धार्मिक अंतर्ज्ञान सर्व समावेशी ज्ञान होता है।
5. अनुभव को अर्जित करना पड़ता है, प्रयत्न, आकांक्षा और तपस्या, विश्वास और संघर्ष की कीमत चुकाकर।
6. कट्टर सिद्धांतवाद एक बौद्धिक धर्म का खतरा है।

अनुभूति तत्व– 'अंतर्ज्ञान और नैतिक जीवन' लेख में यों तो विचारों की ही प्रधानता है, किंतु इसमें अनुभूति तत्व भी उपेक्षित नहीं। कार्यों के पीछे छिपी अनुभूतियों के महत्व को लेखक ने स्वीकारते हुए कहा है– "अच्छे खिलाड़ी में सही कार्य करने की भावना होती है और वह यह अनुभव करता है कि यदि वह उस भावना के अनुसार कार्य नहीं करता है तो वह अपने प्रति ही झूठा होगा।" समाज में लीक से हटकर चलने वाले विद्रोहियों और नैतिक वीरों का सामाजिक उत्पीड़न भावुक लेखक को आहत करता है– 'यह देखकर दुःख होता है कि गहरी दृष्टि और सृजन शक्ति वाले लोगों को समाज के नेताओं के हाथों से उत्पीड़न सहन करना पड़ता है, हालाँकि यह ठीक है कि उत्पीड़न हमेशा अकारण नहीं होता। ऐसे लोग अपने उदाहरण से इस दुखद सत्य को सिद्ध करते हैं कि जब कोई व्यक्ति अपने साथियों से अधिक अच्छा हो जाता है तो वह उनकी घृणा का पात्र हो जाता है। हम अपने महान पथ–प्रदर्शकों और उपदेष्टाओं का सम्मान सूली पर लटकाकर करते हैं।' अन्यत्र भी अनुभूतियाँ विचारों से संयुक्त निबन्ध में दृष्टिगोचर हुई हैं–

1. मानव प्रकृति एक जीवन है जो बढ़ना और विकसित होना चाहता है। 'मिट्टी नहीं है जो यह इंतजार करे कि कोई आकर उसे सांचे में ढाले।'
2. धर्म का अर्थ है ब्रह्मांड में ईश्वर के साथ चेतन ऐक्य और उसका मुख्य साधन है– प्रेम।

एकान्विति– लेख में एकसूत्रता का रहना परम आवश्यक है। लेख का प्रथम से लेकर अंतिम वाक्य उसके केंद्रीय भाव से अनुबद्ध रहना चाहिए। कम से कम विचारात्मक लेख में एकसूत्रता अनिवार्य रूप से विद्यमान रहनी चाहिए। इसके अभाव में लेख रचना प्रलाप मात्र बनकर रह जाएगी।

इस दृष्टि से इस लेख पर विचार करें तो हम पाते हैं कि यह लेख पूर्णतया एक सूत्रता के धागे में पिरा हुआ है। लेख की पहली पंक्ति ही उसके शीर्षक से जुड़ी हुई है– "हमारे नैतिक जीवन में भी उच्चतम स्थिति पर पहुँचने के लिए अंतर्ज्ञानात्मक दृष्टि अनिवार्य है।" इसके उपरांत लेखक विषय से जुड़े विभिन्न पक्षों पर चर्चा करते हुए अपने निबन्ध का विषय–विस्तार करता है– "धार्मिक अंतर्ज्ञान सर्वसमावेशी ज्ञान होता है जो समस्त जीवन को व्याप्त कर लेता है। मनुष्य में विद्यमान आत्मा अनेक प्रकार से अपने आपको पूर्णत्व की ओर ले जाती है, किंतु सबसे अधिक पूर्णत्व धार्मिक जीवन के रूप में ही होता है ..... हमें ईश्वर का अंतर्ज्ञान (साक्षात्कार) तब तक नहीं हो सकता जब

टिप्पणी

तक कि हम अपनी संपूर्ण सत्ता से उसके लिए प्रयत्न न करें।... अनुभव को अर्जित करना पड़ता है प्रयत्न, आकांक्षा और तपस्या विश्वास और संघर्ष की कीमत चुकाकर लेकिन बंद्धिजीवी लोग उसे बहुत सस्ते में प्राप्त करना चाहते हैं। हर धर्म में उसके अनुगामियों की बहुसंख्या यह चाहती है कि सच्चे अर्थों में धार्मिक बने बिना धर्म के आश्वासन और फल का उपयोग कर सकें। वे लोग धार्मिक होते हैं, किंतु अपने सर्वांग से या अपनी आत्मा से नहीं, बल्कि अपने दिमाग से और कभी–कभी केवल अपने मेरुदंड से ही।" विषय से संबद्ध सभी पक्षों पर अपने भाव और विचार व्यक्त कर देने के बाद लेखक सार रूप में यही कहता है– "धर्म का अर्थ है– ब्रह्मांड में ईश्वर के साथ चेतना ऐक्य और उसका मुख्य साधन है प्रेम।" इस प्रकार स्पष्ट है कि इस निबन्ध में संपूर्ण रूप में एकान्विति का निर्वाह हुआ है। कहीं भी विषयांतर या विशृंखलता नहीं है।

व्यक्तित्व प्रकाशन– व्यक्तित्व का अंश सभी साहित्य रूपों में कम या अधिक मात्रा में रहता है, किंतु एक लेख में उसकी उपस्थिति सर्वाधिक रहती है क्योंकि लेख में लेखक अपने पाठकों से सीधे–सीधे बात करता है। लेखक किसी विषय पर जो कुछ लिखता है उसे अपने निजी मत के रूप में अपने निजी दृष्टिकोण से लिखता है। उसके निजी दृष्टिकोण में उसके निजी अनुभवों की प्रेरणा भी स्पष्ट दिखाई पड़ती है।

विवेच्य लेख एक अंतर्ज्ञान जैसे दार्शनिक व गूढ़ विषय पर लिखा गया है, लेकिन इसका प्रस्तुतीकरण और व्यक्त दृष्टिकोण लेखक का अपना निजी है। स्थान–स्थान पर इसमें लेखक के व्यक्तित्व की छाप दृष्टिगोचर होती है। लेखक का दृष्टिकोण और निजी मत बहुत व्यावहारिक और प्रगतिशील है– "केवल नियमों के यंत्रवत् पालन और नमूनों की नकल से हम कहीं नहीं पहुँच सकते। जीवन की कला पुराने बोसीदा अभिनयों की रिहर्सल नहीं है।... किसी भी नाजुक स्थिति में आगे चाल चलना एक सृजनात्मक कार्य है।... बाहर से थोपे गए नियम की अपेक्षा आंतरिक संयम अधिक कीमती है।... संभव है कि दुनियादारी का हिसाब–किताब करके चलने वाले लोग जो बाहरी प्रदर्शन और आडंबर में विश्वास करते हैं, बहुत नीचे स्तर पर न उतरें किंतु वे ऊँचाई पर भी कभी नहीं उठ सकते।"

कला और नैतिक मूल्यों पर विचार करते हुए लेखक ने अपना निजी मत पाठकों के समक्ष रखते हुए कहा है– "तो हम कह सकते हैं कि जो कला नैतिकता से पूर्णतः रहित है, जिसकी जड़ें हमारी गंभीरतम नैतिक वृत्ति में नहीं हैं, जो संसार में विद्यमान दिव्यता की ओर प्रवृत्त नहीं होती, वह सच्ची कला नहीं है।"

इस लेख के अंत में भी लेखक ने विषय से जुड़े अपने दार्शनिक विचार और निष्कर्ष प्रस्तुत करते हुए कहा है– "यदि हमारा यह विश्वास हो कि मनुष्य को उसकी कोमलता के लिए किसी सहारे की आवश्यकता है तो हम उसे प्रतीक और उदाहरण प्रदान कर सकते हैं, परंतु उसके बाद शेष सब कुछ हमें मनुष्य के अंतर में विद्यमान ईश्वर पर ही छोड़ देना चाहिए। सुकरात की भाँति सच्चा उपदेशक केवल दाई का काम करता है। हिन्दू धर्म के समान किसी धर्म में निश्चित आकार का जो अभाव है वह मुझे एक उच्चतर किस्म की निश्चितता का द्योतक प्रतीत होता है। धर्म का अर्थ है 'ब्रह्मांड में साथ चेतन ऐक्य और उसका मुख्य साधन है–प्रेम'।"

कला पक्ष– कला पक्ष के अंतर्गत भाषा, शैली, वाक्य–विन्यास, मुहावरे–लोकोक्तियाँ आदि पर विचार किया जाता है। लेखक की अभिव्यक्ति में यदि कलात्मक मौलिकता

का समावेश न हो सके और भाषा विषयानुरूप परिवेश उपस्थित न कर सके तो लेखक सफल नहीं हो सकता। निबन्ध के विषयानुरूप सहज–सरल, चित्रात्मक, परिवेशोचित सारगर्भित शब्दावली ही निबन्धकार की विशेषता है।

टिप्पणी

यदि लेख एक गहन गंभीर दार्शनिक विषय पर है तो इसकी शब्दावली भी गंभीर और प्रायः तत्सम प्रधान है। यंत्रवत्, उपदेष्टाओं, अनुगमन, अनुप्रेरित, अवैयक्तिक, अपरोक्ष, विच्छेद, जघन्यतम्, निकृष्टतम, उद्‌बुद्ध, समस्वरता, सौंदर्यबोधात्मक, अंतर्ज्ञान, समावेशी, पूर्णत्व, निष्काम, अखंड, अपरिमेय, उत्पीड़ित, अपरिवर्तनीय, आशंकित आदि। किंतु इनके साथ–साथ लेखक ने उर्दू–फारसी के कतिपय शब्दों का प्रयोग करने में भी कोई संकोच नहीं किया। यथा– इतंजार, खतरा, दिमाग, नाजुक, मोहर। इसके साथ ही रिहर्सल जैसे एकाध अंग्रेजी शब्द भी प्रयुक्त हो गए हैं। एक स्थल पर लेखक ने दाई जैसे देशज शब्द का भी प्रयोग किया है– 'सुकरात की भाँति सच्चा उपदेशक केवल दाई का काम करता है।' प्रायः इस लेख में विषयानुरूप दार्शनिक भाषा का प्रयोग किया है, यथा– "एक अखंड पूर्ण जीवन, जो किसी भी प्रकार के भ्रम, भूल या विकृति से मुक्त हो, सर्वथा अनासक्त, निष्काम और अवैयक्तिक जीवन होगा।.... सत्य के लिए हमारी सहजात वृत्ति, हमारी नैतिक बुद्धि और कलात्मक स्पृहा, सब परस्पर एक अंगी के रूप में बंधे हुए हैं, किंतु जब तक वे अंगी के रूप में आबद्ध नहीं होते, जब तक वे एक पूर्ण अवयवी नहीं होते, तब तक विचार निरर्थक होता है, भावना क्षुद्र रहती है और क्रिया अपरिष्कृत होती है।"

एक स्थल पर लेखक ने अंतर्ज्ञान के संदर्भ में एक उद्धरण का प्रयोग किया है और उसका संदर्भ भी दिया है। कहीं–कहीं लेखक ने कुछ अलंकृत वाक्यों का भी प्रयोग किया है–

1. जीवन की कला पुराने बोसीदा अभिनयों का रिहर्सल नहीं है।
2. जीवन एक ऐसा खेल है जो तभी समाप्त होता है जब व्यक्ति उससे अवकाश ग्रहण करता है।
3. जीवन की शतरंज की फड़ पर अलग–अलग मोहरों की अलग–अलग ताकतें हैं।

निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं विवेच्य लेख 'अंतर्ज्ञान और नैतिक जीवन' लेख चिंतन और अभिव्यक्ति दोनों ही दृष्टियों से बहुत सफल व समृद्ध लेख है।

अपनी प्रगति जाँचिए

5. 'सत्कर्म ही ज्ञान है।' किसका कथन है?

   (क) सुकरात (ख) वेद व्यास

   (ग) प्लेटो (घ) कौटिल्य

6. धार्मिक अंतर्ज्ञान ..... होता है?

   (क) प्रतिभासम्पन्न (ख) आर्षज्ञान

   (ग) सर्व समावेशी ज्ञान (घ) पूर्ण ज्ञान

5.5 अप्प दीपो भव (लेख) : स्वामी श्रद्धानंद

टिप्पणी

भारत के महान शिक्षाविद्, स्वतंत्रता संग्राम सेनानी तथा आर्य समाज के संन्यासी व स्वामी दयानंद के उत्तराधिकारी स्वामी श्रद्धानंद का जन्म 22 फरवरी, 1856 को पंजाब प्रांत के जालंधर जिले के तलवान ग्राम में एक कायस्थ परिवार में हुआ था। उनके पिता लाला नानकचंद ईस्ट इंडिया कंपनी द्वारा शासित यूनाइटेड प्रोविन्स (वर्तमान उत्तर प्रदेश) में पुलिस अधिकारी थे। बचपन में उन्हें दो नामों से पुकारा जाता था बृहस्पति और मुंशीराम किंतु मुंशीराम बोलने में सरल होने के कारण अधिक प्रचलित हुआ।

पिता का स्थानांतरण अलग–अलग स्थानों पर होने के कारण उनकी आरंभिक शिक्षा अच्छी प्रकार नहीं हो सकी। लाहौर और जालंधर उनके मुख्य कार्यस्थल रहे। एक बार आर्य समाज के संस्थापक स्वामीदयानंद सरस्वती वैदिक धर्म के प्रचारार्थ बरेली पहुँचे। पुलिस अधिकारी नानकचंद अपने पुत्र मुंशीराम को साथ लेकर स्वामी दयानंद का प्रवचन सुनने पहुँचे। युवावस्था तक मुंशीराम ईश्वर के अस्तित्व में विश्वास नहीं करते थे लेकिन स्वामी दयानंद के तर्कों और आशीर्वाद ने मुंशीराम को दृढ़ ईश्वर विश्वासी तथा वैदिक धर्म का अनन्य भक्त बना दिया।

मुंशीराम की बाल्यावस्था एवं किशोरावस्था अपने पिता के साथ व्यतीत होती रही। इन्होंने बनारस के क्वींस कॉलेज, जय नारायण कॉलेज और प्रयाग के मेयो कॉलेज में शिक्षा प्राप्त की थी। वंश परंपरा के अनुसार इन पर धर्म–कर्म और भक्ति का विशेष प्रभाव था। विश्वनाथ जी के दर्शन किए बिना ये जलपान तक नहीं करते थे। बांदा में ये नियमित रामचरितमानस का पाठ सुनाते थे और प्रत्येक रविवार को एक पैर पर खड़े होकर सौ बार हनुमान चालीसा का पाठ करते थे। लेकिन कुछ घटनाओं व स्वामी दयानंद सरस्वती के प्रभाव से इनकी समस्त धार्मिक कट्टरता तिरोहित हो गई। सन् 1879 में स्वामी दयानंद जी का बरेली आगमन हुआ। पिता को तो शांति व्यवस्था के नाते स्वामी जी के व्याख्यान सुनने थे। स्वामी दयानंद के महान व्यक्तित्व के दर्शन कर इनके मन में उनके प्रति श्रद्धा का समुद्र उमड़ पड़ा। वे आर्य समाज में बहुत ही सक्रिय रहते थे। व्यवसाय की दृष्टि से वे एक सफल वकील बने तथा काफी नाम और प्रसिद्धि प्राप्त की।

उनका विवाह शिवा देवी के साथ हुआ। दाम्पत्य सिद्धि के रूप में उन्हें दो पुत्र और दो पुत्रियाँ प्राप्त हुईं। जब आप 35 वर्ष के थे तो शिवा देवी स्वर्ग सिधार गई। 1917 में उन्होंने संन्यास ग्रहण कर लिया और स्वामी श्रद्धानंद के नाम से विख्यात हुए।

महर्षि दयानंद सरस्वती के उत्तराधिकारी– आर्य समाज के समर्थक होने के कारण उन्होंने आर्यसमाज के सिद्धांतों का पुरजोर प्रचार–प्रसार किया। लोक कल्याण के लिए उन्होंने अपनी सारी संपत्ति दानकर दी और 1902 में हरिद्वार में गंगा किनारे गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय की स्थापना कर वैदिक शिक्षा प्रणाली को महत्व दिया। आर्य शिक्षा पद्धति को पुनः स्थापित कर उन्होंने मैकाले की शिक्षा पद्धति को खारिज कर दिया।

उन्होंने अपना जीवन स्वाधीनता, स्वराज्य, शिक्षा और वैदिक धर्म के प्रचार–प्रसार के लिए समर्पित कर दिया। हिन्दू समाज को संगठित करने तथा 1920 के दशक में

टिप्पणी

शुद्धि आंदोलन चलाने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। गांधी जी जब अफ्रीका में संघर्षरत थे, श्रद्धानंद जी ने गुरुकुल के छात्रों से 1500 रु. एकत्र करके गांधीजी को भेजे थे। गांधी जी जब अफ्रीका से भारत लौटे तो गुरुकुल भी पहुँचे थे। उनके आगमन से श्रद्धानंद और राष्ट्रभक्त छात्रों के चेहरे गर्व से दीप्त हो उठे। स्वामी जी पक्के आर्य समाजी थे, किंतु सनातन धर्म के प्रति दृढ़ आस्थावान थे। उन्होंने पंडित मदन मोहन मालवीय तथा पुरी के शंकराचार्य स्वामी भारती कृष्ण तीर्थ को गुरुकुल में आमंत्रित कर उनका प्रवचन कराया था।

स्वतंत्रता सेनानी– स्वामी जी ने स्वतंत्रता आंदोलन में बढ़–चढ़कर भाग लिया था। सन् 1919 में उन्होंने दिल्ली में जामा मस्जिद क्षेत्र में आयोजित एक विशाल सभा में भारत की स्वाधीनता के लिए प्रत्येक नागरिक को आपसी मतभेद भुलाकर एकजुट होने का आह्वान किया था। आजादी के बाद दिल्ली टाउन हॉल के सामने रानी विक्टोरिया की मूर्ति की जगह उनकी मूर्ति को जगह दी गई थी। उनका राजनैतिक जीवन रोलेट एक्ट का विरोध करते हुए एक स्वतंत्रता सेनानी के रूप में प्रारंभ हुआ। अच्छी–खासी वकालत की कमाई छोड़कर उन्होंने 'दैनिक विजय' नामक समाचार पत्र में 'छाती पर पिस्तौल' नामक क्रांतिकारी लेख लिखे। जालियावाला बांग हत्याकांड और रोलेट एक्ट का विरोध वे हिंसा से करने में कोई बुराई नहीं समझते थे। जनसभा करते समय वे अंग्रेजी फौज व अधिकारियों का ऐसा साहसपूर्ण जवाब देते थे कि अंग्रेज भी उनसे डरा करते थे। स्वामी श्रद्धानंद कांग्रेस से अलग होने के बाद भी स्वतंत्रता के लिए लगातार कार्य करते रहे। हिन्दु–मुस्लिम एकता के लिए उन्होंने बराबर प्रयास किए। उन्होंने चाँदनी चौक में संगीनों के सामने सीना खोलकर अंग्रेजी पुलिस को गोली चलाने के लिए ललकारा था।

पत्रकारिता एवं हिन्दी सेवा– स्वामी जी ने पत्रकारिता में भी कदम रखा। वे हिन्दी और उर्दू दोनों भाषाओं में धार्मिक ओर सामाजिक विषयों पर लिखते थे, बाद में उन्होंने स्वामी दयानंद सरस्वती का अनुसरण करते हुए देवनागरी में लिखी हिन्दी को प्राथमिकता दी। उनका पत्र सद्धर्म पहले उर्दू में प्रकाशित होता था और बहुत लोकप्रिय हो गया था, किंतु बाद में उन्होंने इसे उर्दू की बजाय हिन्दी में निकालना प्रारंभ किया। उन्होंने हिन्दी में 'अर्जुन' और उर्दू में 'तेज' पत्र भी निकाला। जालियावाला कांड के बाद कांग्रेस का अधिवेशन अमृतसर में करने की हिम्मत दिखाई। स्वागत समिति के अध्यक्ष के रूप में उन्होंने अपना भाषण हिन्दी में दिया और हिन्दी को राष्ट्रभाषा घोषित किए जाने का मार्ग प्रशस्त किया। वे एक निर्भीक संपादक थे। उन्होंने भारतीय स्वामित्व में पहला राष्ट्रीय स्तर का दैनिक अखबार प्रकाशित किया था। स्वामी श्रद्धानंद के सुपुत्र इन्द्र विद्यावाचस्पति एक कुशल पत्रकार थे। अतः इनकी इतिहास विषयक रचनाएँ अत्यंत प्रामाणिक एवं उच्च श्रेणी की मानी जाती हैं।

शुद्धि अभियान के प्रणेता– स्वामी श्रद्धानंद ने जब कांग्रेस के कुछ प्रमुख नेताओं को 'मुस्लिम तुष्टिकरण की घातक नीति' अपनाते देखा तो उन्होंने समझ लिया कि आगे चलकर यह नीति राष्ट्र के लिए विघटनकारी बनेगी। दूसरी ओर कट्टरपंथी मुस्लिम और ईसाई हिन्दुओं का धर्म परिवर्तन कराने में लगे हुए थे। स्वामी जी ने असंख्य व्यक्तियों को आर्य समाज के माध्यम से पुनः वैदिक धर्म में दीक्षित कराया। उन्होंने गैर हिन्दुओं को पुनः अपने मूल धर्म में लाने के लिए 'शुद्धि' नामक आंदोलन

टिप्पणी

चलाया और बहुत से लोगों को पुनः हिन्दू धर्म में दीक्षित किया। सामाजिक क्षेत्र में उन्होंने बाल विवाह व पर्दा प्रथा उन्मूलन, विदेशी शिक्षा और सामाजिक समरसता के विशेष प्रयास किए। जब उन्होंने अपनी ही बेटी को मिशनरी संचालित स्कूल में पढ़ते हुए ईसाई धर्म के प्रभाव में आते हुए देखा तो उन्होंने भारतीय आदर्शों में निहित शिक्षा प्रदान करने का मन बनाया और अपने प्रयासों से जालंधर में पहला कन्या महाविद्यालय स्थापित कर दिया।

मुंशीराम से स्वामी श्रद्धानंद बनने तक का उनका सफर पूरे विश्व के लिए प्रेरक है। महर्षि दयानंद के महाप्रयाण के बाद उन्होंने स्वयं को स्वदेश, संस्कृति, नारी–कल्याण, दलितोत्थान, स्वदेशी, वेदोत्थान, धर्मोत्थान, पाखंड खंडन आदि कार्यों को आगे बढ़ाने में पूर्णतः समर्पित कर दिया। गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय की स्थापना, अछूतोद्धार शुद्धि अभियान, सद्धर्म प्रचार, पत्रिका द्वारा धर्म प्रचार, सत्य, धर्म के आधार पर साहित्य रचना, वेद पढ़ने व पढ़ाने की व्यवस्था करना, आर्य जाति की उन्नति के लिए हर प्रकार से प्रयास करना आदि ऐसे कार्य हैं, जिनके फलस्वरूप स्वामी श्रद्धानंद जी सदा–सदा के लिए अमर हो गए। वे बीसवीं सदी के चमत्कारी, प्रेरक व्यक्तित्व एवं दिल्ली के बेताज बादशाह थे। अपने समय के सर्वाधिक लोकप्रिय नेता थे। उन्हें स्वर्ण मन्दिर के अकाल तख्त साहब से प्रवचन करने का गौरव प्राप्त हुआ। डॉ. अंबेडकर ने उन्हें 'दलितों का सबसे बड़ा मसीहा' बताया था। इस महामानव के जीवन का हर प्रसंग एक बहुमूल्य मोती है। उनकी प्रेरणा से न जाने कितनों के जीवन बदले हैं और कितनों के बदल सकते हैं। देश, धर्म और समस्त समाज के लिए अपना घर, अपना परिवार, यहाँ तक कि स्वयं को भी बलिदान करने वाले स्वामी श्रद्धानंद का नाम भारतीय इतिहास में स्वर्णाक्षरों में अंकित है।

5.5.1 'अप्प दीपो भव' का मूल पाठ

पुत्रों! आज मैं तुम्हें उन बंधनों से मुक्त करता हूँ जिनके अनुसार गुरुकुल में चलना तुम्हारे लिए आवश्यक था। पर यह न समझना कि अब तुम्हारे लिए कोई बंधन नहीं है। प्राचीन काल से हमारे ऋषियों ने कुछ बंधन बाँध रखे हैं, उन्हें मैं आज तुम्हें सुनाना चाहता हूँ। इन बंधनों का पालन करने में किसी का तुम पर दबाव नहीं, इसलिए ये बंधन और भी कड़े हैं। ये बंधन उन उपनिषद् वाक्यों में वर्णित हैं जिन्हें आज से हजारों वर्ष पहले इस पवित्र भूमि में प्रत्येक आचार्य अपने स्नातकों को विद्या समाप्ति के समय सुनाया करता था। उन्हीं पुराने आचार्यों का प्रतिनिधि होकर मैं तुम्हें वे वाक्य सुनाता हूँ।

पुत्रों! परमात्मा सत्य स्वरूप है। उसका प्यारा बनने के लिए अपने जीवन को सत्यस्वरूप बनाओ। तुम्हारे मन में, तुम्हारी वाणी में और तुम्हारी क्रिया में सत्य हो।

धर्म–मर्यादा का उल्लंधन मत करो। इस मर्यादा का साक्षी अंतःकरण ही है, बाहर से कोई धर्म बतलाने वाला नहीं है। जो हृदय परमात्मा का आसन है, वही तुम्हें धर्म बतला देगा। अपनी आत्मा की वाणी को सुनो और उसके अनुसार चलो।

स्वाध्याय से कभी मुख न मोड़ो। वह तुम्हें प्रमाद से बचाएगा। जिस आचार्य ने तुम्हारी इतने दिनों तक रक्षा की, उसके प्रति तुम्हारा जो कर्तव्य है, उसे अपने हृदय से पूछो। यह कुल तुम्हारा आचार्य है। मैं नहीं जानता कि तुम इसे क्या दक्षिणा देना

चाहते हो। मैं तुमसे केवल एक ही दक्षिणा माँगता हूँ। मैं चाहता हूँ कि तुम्हारे से ऐसा कोई काम न हो जिससे तुम्हें अपनी आत्मा और परमात्मा के सामने लज्जित होना पड़े।

टिप्पणी

तुममें से अब कई गृहस्थ जीवन में प्रवेश करेंगे। उनसे मैं कहता हूँ कि पाँचों यज्ञों के करने में कभी प्रमाद न करना। माता–पिता, आचार्य और अतिथि, ये तुम्हारे देवता हैं, इनकी सदा सुश्रुषा करना धर्म समझो।

पुराने ऋषि बड़े उदार और निराभिमान थे। वे कभी पूर्ण या दोष रहित होने का दावा नहीं करते थे। उन्हीं का प्रतिनिधि होकर मैं तुम्हें कहता हूँ कि हमारे अच्छे गुणों का अनुकरण करो और दोषों को छोड़ दो। इस संसार की अंधियारी में किसी को अपना ज्योति–स्तम्भ बनाओ। पढ़ा–पढ़ाया कुछ अंश तक पथ–प्रदर्शक होता है। पर सच्चे पथ–प्रदर्शक वे ही महापुरुष होते हैं जो अपना नाम संसार में छोड़ जाते हैं। वे जीवन समुद्र में ज्योति–स्तूप का काम देते हैं। ऐसे आत्मत्यागी–सत्यवादी और पक्षपात रहित महापुरुषों के चाहे वे जीवित हों या ऐतिहासिक, पीछे चलो।

लेना तो सभी संसार जानता है, तुम इस योग्य हुए हो कि अपनी बुद्धि और विद्या में से कुछ दे सको। जो तुम्हारे पास है, उसे उदारता से फैलाओ। हाथ खुला रखो, मुट्ठी को बंद न होने दो। जो सरोवर भरता है वह फैलता है, यह स्वाभाविक नियम है।

जिस भूमि की मिट्टी से तुम्हारी देह बनी है, जिसकी गंगा का तुमने निर्मल जल पिया है और जिसके गौरव के सामने संसार का कोई देश ठहर नहीं सकता, उस पवित्र भारत–भूमि में रहते हुए तुम उसके यश को उज्ज्वल करोगे, यह मुझे पूरी आशा है। इसके साथ ही जिस सरस्वती की कोख से तुमने दूसरा जन्म लिया है, उसे मत भूलना। किसी भी काम को करते हुए सावित्री माता की उपासना से विमुख न होना।

यह मैंने संक्षेप में उन वाक्यों का सारांश सुना दिया है, जो कि सहस्त्रों वर्षों से इस पवित्र भूमि में गूँजते रहे हैं। इन्हें गुरु–मंत्र समझो और अपना पथ–प्रदर्शक बनाओ।

इसके अतिरिक्त मेरा भी तुम्हारे साथ कई वर्षों का संबंध रहा है। मैं तुमसे गुरु–दक्षिणा नहीं माँगता। गुरु–दक्षिणा देना तुम्हारा धर्म है, माँगना मेरा धर्म नहीं। मैं तुमसे यह भी नहीं पूछता कि तुम्हारे राजनैतिक, सामाजिक या मानसिक विचार क्या–क्या हैं? मैं केवल तुमसे यह पूछता हूँ कि क्या तुम्हारे सब काम सत्य पर आश्रित हैं या नहीं? स्मरण रखो, यह संसार सत्य पर आश्रित है। सत्य के बिना राजनीति धिक्कारने योग्य है, सत्य के बिना समाज के नियम पददलित करने योग्य हैं। यदि सत्य तुम्हारे जीवन का अवलंबन है तो मुझे न कोई चिंता है और न कुछ माँगना है।

(गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के दीक्षांत समारोह सन् 1914 ई. में स्वामी श्रद्धानंद का भाषण)

5.5.2 'अप्प दीपो भव' लेख का सार

यह लेख वस्तुतः गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के दीक्षांत समारोह सन् 1914 ई. में इसके संस्थापक स्वामी श्रद्धानंद का भाषण है। इस भाषण को शीर्षक दिया गया है 'अप्प दीपो भव' अर्थात अपना प्रकाश स्वयं बनो। यह बौद्ध दर्शन का एक सूत्र वाक्य है जो गौतम बुद्ध ने अपने प्रिय शिष्य आनंद से उसके यह पूछने पर कि जब सत्य का

मार्ग दिखाने के लिए आप या कोई आप जैसा पृथ्वी पर नहीं होगा, तब हम कैसे अपने जीवन को दिशा दे सकेंगे? तो भगवान बुद्ध ने यह जवाब दियाा था 'अप्प दीपो भव'। कोई भी किसी के पथ के लिए सदैव मार्ग प्रशस्त नहीं कर सकता। केवल आत्मज्ञान के प्रकाश से ही हम सत्य के मार्ग पर आगे बढ़ सकते हैं।

टिप्पणी

भारत के महान शिक्षाविद्, स्वतंत्रता संग्राम सेनानी, आर्य समाज के संन्यासी तथा गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के संस्थापक स्वामी श्रद्धानंद ने दीक्षान्त समारोह में छात्रों के सम्मुख अपना भाषण देते हुए कहा कि इस विश्वविद्यालय में उनकी शिक्षा पूर्ण हो गई और सभी छात्र अब अध्ययन के दौरान गुरुकुल कांगड़ी के बंधनों से मुक्त हैं, लेकिन कुछ नैतिक मूल्यों के बंधन उनके जीवन में सदा रहेंगे और रहने चाहिए। स्वामी जी ने प्राचीन ऋषि–मुनियों द्वारा उपनिषद् वाक्यों में वर्णित कुछ नैतिक शिक्षाएँ देते हुए कहा कि परमात्मा सत्य स्वरूप है। परमात्मा का प्रिय बनने के लिए मन–क्रम–वचन से सत्य का पालन करना चाहिए। स्वामी जी ने छात्रों को अपने जीवन में धर्म–मर्यादा का उल्लंघन न करने की भी शिक्षा दी। इस मर्यादा का साक्ष्य कोई बाहरी तत्व न होकर अपना अंतःकरण ही होता है। अपनी आत्मा की वाणी सुनकर उसके अनुसार चलना ही उनका धर्म होना चाहिए।

स्वामी श्रद्धानंद ने स्वाध्याय का संदेश देते हुए कहा कि यह प्रमाद से बचाता है। उन्होंने छात्रों से यही गुरु दक्षिणा माँगी कि वे अपने जीवन में कोई ऐसा काम न करें जिससे उन्हें अपनी आत्मा और परमात्मा के सामने में लज्जित होना पड़े। गृहस्थ जीवन में प्रवेश करने वाले छात्रों को पाँचों यज्ञ करने में प्रमाद न करने की सलाह दी। माता–पिता, आचार्य और अतिथि देवता सदृश हैं। इनकी सेवा सुश्रुषा करना धर्म है।

इस संसार में कोई भी प्राणी निर्दोष नहीं है। पुराने ऋषियों ने भी ऐसा दावा नहीं किया। अपने दोषों को समझकर उनका परिहार करते रहना तथा महापुरुषों और बड़ों के अच्छे गुणों को अपनाना चरित्र–निर्माण में सहायक होता है। पढ़ा–पढ़ाया कुछ हद तक ही राह दिखाता है, किंतु सच्चे महापुरुष, चाहे वह दिवंगत ही क्यों न हो, अपना पथ–प्रदर्शक बनाना व उनका अनुकरण करना वांछनीय है। मुक्त हाथों से विद्या दान करना छात्रों का परम कर्तव्य होना चाहिए। अपने देश के गौरव में अभिवृद्धि करना उनका पवित्र दायित्व होना चाहिए। अंत में स्वामी जी ने अपने वक्तव्य में सत्य पर जोर देते हुए राजनीति और समाज में तथा व्यक्तिगत में सत्य की अनिवार्य आवश्यकता पर बल दिया। यदि वे जीवनपर्यंत सत्य का आश्रय ग्रहण करेंगे तो यही उनकी गुरु दक्षिणा है।

5.5.3 व्याख्यांश

- प्राचीन काल में हमारे ऋषियों ..... तुम्हें ये वाक्य सुनाता हूँ।

सन्दर्भ– प्रस्तुत अवतरण स्वाधीनता, स्वराज, शिक्षा और वैदिक धर्म के प्रचार–प्रसार के लिए अपना सर्वस्व होम कर देने वाले स्वामी श्रद्धानंद द्वारा लिखित निबन्ध 'अप्प दीपो भव' (वस्तुतः स. 1914 ई. में गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के दीक्षांत समारोह में दिया गया भाषण) से व्याख्यार्थ उद्धृत है।

प्रसंग– यह अवतरण उनके भाषण का शुरुआती अंश है। पुत्रों के रूप में संबोधित करते हुए स्वामी श्रद्धानंद ने अपने विश्वविद्यालय में शिक्षा पूर्ण कर चुके छात्रों से दीक्षांत

भाषण के रूप में अपना आशीर्वचन देते हुए कहा कि अब वे लोग विश्वविद्यालय में विद्या प्राप्ति के कड़े बंधनों से मुक्त हो रहे हैं लेकिन ऐसा नहीं है कि यहाँ से निकलकर बाहर की दुनिया में जाने पर उनके लिए कोई बंधन नहीं रहेगा।

टिप्पणी

व्याख्या– स्वामी श्रद्धानंद जी ने छात्रों को बताया कि मनुष्य का पूरा जीवन ही नैतिक बंधनों से परिपूर्ण है। विश्वविद्यालय के छात्र जीवन के बंधन और बाहरी दुनिया के बंधनों में अंतर यह है कि छात्र जीवन के बंधन प्रशासन द्वारा लगाये जाते हैं और उन्हें मानने के लिए छात्रों पर हर प्रकार का दबाव भी होता है, किंतु बाहरी दुनिया के बंधनों का पालन करने के लिए बाहरी दबाव न के बराबर ही रहता है। उनका पालन स्वेच्छा से करना पड़ता है, इसलिए उनका पालन और भी कठिन हो जाता है। ये बंधन और कुछ नहीं भारत के प्राचीन ऋषि–मुनियों द्वारा बनाये गए नैतिक मूल्यों और आदर्शों के बंधन हैं। ये बंधन ऋषियों द्वारा उपनिषद् वाक्यों के रूप में वर्णित हैं। दीक्षांत अवसरों पर कुलपति द्वारा विदाई वक्तव्य देने की परंपरा है, जिसका निर्वाह उन्हें करना है। दीक्षांत समारोह में दिया कुलपति का भाषण छात्रों के लिए दिशा–निर्देश का काम करता है। अतः आज वे पुराने आचार्यों के प्रतिनिधि बनकर छात्रों को दिशा–निर्देश देने का कर्तव्य निर्वहन करने जा रहे हैं।

विशेष

(i) 'इन बंधनों का पालन करने में किसी का तुम पर दबाव नहीं, इसलिए ये बंधन और भी कड़े हैं' वाक्य बहुत अर्थगर्भित है।

(ii) भाषा बहुत सरल है। उपदेशात्मक शैली का प्रयोग है।

(iii) छात्रों की शिक्षा समाप्ति पर कुलपति द्वारा विश्वविद्यालय में दिया गया वक्तव्य दीक्षांत भाषण कहलाता है। यह एक प्राचीन परंपरा है। जैसे कन्या की विदाई पर उसे उसकी माँ द्वारा विदाई सीख दी जाती थी जो उसके लिए दिशा–निर्देश का काम करती थी, उसी प्रकार शिक्षा प्राप्त कर चुके छात्रों को कुलपति द्वारा वास्तविक जीवन में काम आने वाली कुछ जरूरी शिक्षाएँ प्रदान की जाती थीं।

- पुराने ऋषि बड़े उदार ..... जीवित हों या ऐतिहासिक, पीछे चलो।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के दीक्षांत भाषण में स्वामी श्रद्धानंद ने छात्रों को परंपरा के अनुरूप उपनिषद् वाक्यों में वर्णित ऐसे अवसरों पर आचार्यों द्वारा दिए गए कुछ उपदेश आशीर्वचन के रूप में प्रदान किए। सर्वप्रथम, परमात्मा सत्य स्वरूप है। इसलिए मन–क्रम–वचन में सत्य और धर्म मर्यादा का अनुपालन आवश्यक है। इसके अतिरिक्त, गृहस्थ जीवन में प्रवेश करने वाले छात्रों का पंच यज्ञ को करना तथा माता–पिता, आचार्य और अतिथि का देवता की भाँति सेवा–सत्कार करना परम धर्म होना चाहिए।

व्याख्या– श्रद्धानंद जी अपने वक्तव्य में कहते हैं कि पुराने ऋषि बड़े तपस्वी, ज्ञानी और उदार हृदय वाले थे। बहुत ज्ञानी होने पर भी उन्हें अपने ज्ञान का अहंकार नहीं था। उन्होंने अपने बारे में कभी अतिश्योक्ति या अंतिरंजनापूर्ण बातें नहीं कहीं। उन्होंने कभी स्वयं को संपूर्ण नहीं कहा। दोष और गुण की स्थिति सबमें होती है। बस मात्रा

का अंतर होता है। स्वामी श्रद्धानंद जी स्वयं को उन प्राचीन ऋषियों का प्रतिनिधि बताकर छात्रों को उपदेश देते हुए कहते हैं कि छात्रों को अपने श्रद्धेय आचार्यों के भी गुणों का ग्रहण करना चाहिए और दोषों को छोड़ देना चाहिए।

टिप्पणी

छात्रों को एक और निर्देश दिया जाना बहुत जरूरी है और वह यह कि संसार में नकारात्मकता का अंधकार व्याप्त है। सही राह पर चलने और भटकाव से बचने के लिए किसी सच्चे पथप्रदर्शक की महती आवश्यकता है। स्कूल, कॉलेज अथवा विश्वविद्यालय में पढ़ा–पढ़ाया कुछ समय तक ही राह दिखा पाता है। इसके बाद स्थायी प्रेरणा तो किसी सच्चे महापुरुष से ही मिल सकती है। ये महापुरुष जीवित हो या दिवंगत, इस बात से इनके जीवन से मिलने वाली प्रेरणा पर कोई अंतर नहीं पड़ता। सच्चे समर्पित महापुरुष जीवन में ज्योति पथ का काम करते हैं। ऐसे महापुरुषों की जीवनी अथवा उन पर लिखा साहित्य पढ़कर कोई भी छात्र अपने जीवन को संवार सकता है।

विशेष

(i) जीवन में अच्छे पथ प्रदर्शक ज्योति स्तंभ का काम करते हैं। बहुत से लोग कुछ महापुरुषों की जीवनी पढ़कर अथवा उनके भाषण सुनकर अपना जीवन सकारात्मक बना सकते हैं। उदाहरणार्थ स्वामी विवेकानंद का साहित्य पढ़कर बहुत से लोगों ने अपने जीवन की धारा बदल ली।

(ii) एक महत्वपूर्ण सत्य उद्घाटित किया गया है कि जीवन में कोई भी प्राणी पूर्ण अथवा निर्दोष नहीं है। बस गुण–दोषों की मात्रा का अंतर होता है। अच्छे गुणों की मात्रा अधिक होने पर अच्छा इंसान और बुरे गुणों की मात्रा अधिक होने पर बुरे इंसान की संज्ञा दे दी जाती है। विवेक बुद्धि यही कहती है कि दुर्गुणों को समझकर उन्हें दूर करने का निरंतर प्रयास किया जाए और अच्छे गुणों को समाहित किया जाय।

(iii) भाषा बहुत प्रांजल है। 'अंधकार' के स्थान पर 'अंधियारी' शब्द बहुत कर्णप्रिय है। शैली उपदेशात्मक है– पीछे चलो।'

- लेना तो सभी संसार जानता है ..... यह मुझे पूरी आशा है।

सन्दर्भ एवं प्रसंग– पूर्ववत्।

व्याख्या– स्वामी श्रद्धानंद जी अपने दीक्षांत वक्तव्य में स्नातक स्तर तक की शिक्षा पूर्ण कर चुके छात्रों को भावी जीवन के लिए दिशा–निर्देश देते हुए कह रहे हैं कि अब तक उन्होंने इस विश्वविद्यालय से शिक्षा एवं ज्ञान लिया है, अब उन्हें यह विद्या और ज्ञान समाज के बीच जाकर लोगों में बांटना है। उन्हें संसार के प्रति याचक का नहीं अपितु दाता का भाव अपनाना है। लेना तो सारे लोग जानते हैं, उसमें नयापन क्या है? सिर्फ लेते रहने वालों को यश व सम्मान की प्राप्ति नहीं होती। सम्मान की प्राप्ति तो देने वाले त्यागी पुरुषों को होती है। अतः उन्हें भी विश्वविद्यालय से सीखी विद्या और बुद्धि का वितरण पूरे समाज में मुक्त कंठ से करना चाहिए। विद्या वह धन है जो कभी भी बांटने से घटता नहीं है। इसके विपरीत इस धन का संचय करने से यह क्षीण हो जाता है। देने के लिए अपनी मुट्ठी को कभी बंद नहीं करना है। देने के लिए हाथ हमेशा खुला रखना है। इन बातों की पुष्टि करने के लिए निबन्धकार ने

सरोवर का उदाहरण दिया है। जो सरोवर भरा हुआ होता है, वही फैल पाता है। जो अल्प होता है वह दिनोंदिन सूखता–जूझता एक दिन निर्जल हो जाता है। यह प्रकृति का एक स्वाभाविक सा नियम है।

टिप्पणी

इसके साथ ही युवा वर्ग में अपने देश के प्रति अनुराग और सहयोग का भाव होना बहुत जरूरी है। जिस भूमि पर उन्होंने जन्म लिया है, जिस देश की मिट्टी में वे खेल–कूद कर बड़े हुए हैं, और जो देश पूरे विश्व में 'विश्व गुरु' के रूप में विख्यात है, उसके गौरव को आगे बढ़ाना छात्रों का प्रथम कर्तव्य होना चाहिए। यहाँ से शिक्षा प्राप्त सभी छात्र देश के प्रति अपना कर्तव्य भली भाँति निभाएँगे, ऐसी उन्हें पूरी आशा ही नहीं, अपितु विश्वास है।

विशेष

(i) परोपकार तथा देश भक्ति के भावों को प्रतिष्ठापित किया गया है। मैथिलीशरण गुप्त ने भी परोपकार व देश प्रेम पर बहुत सुंदर काव्य पंक्तियाँ लिखी हैं–

(अ) यही पशु प्रवृत्ति है कि आप आप ही चरे
वही मनुष्य है कि जो मनुष्य के लिए मरे।

(ब) जिसको न निज गौरव तथा निज देश का अभिमान है
वह नर नहीं, नर पशु निरा है और मृतक समान है।

संस्कृत में भारत का गौरव गान करते हुए कहा गया है–

गायन्ति देवः किल गीतकानि
धन्यास्तु ते भारत भूमि भागे।

(ii) भाषा सरल सुबोध है। वाक्य बहुत छोटे–छोटे व बहुत अधिक अर्थगर्भित हैं। सूत्र जैसे– 'हाथ खुला रखो, मुट्ठी को बंद न होने दो', वाक्य बहुत प्रेरक है, शैली उपदेशात्मक है।

- तुमसे यह भी नहीं पूछता ..... और न कुछ माँगना है।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के दीक्षांत समारोह में अध्यक्षीय भाषण करते हुए इसके संस्थापक स्वामी श्रद्धानंद जी छात्रों को सत्यनिष्ठा, आत्मानुशासन, स्वाध्याय, किसी महापुरुष को अपना प्रेरक बनाने, परोपकार और देशभक्ति का संदेश देते हुए कहते हैं– 'ये संदेश सहस्त्रों वर्षों से इस पवित्र भूमि में गूँजते रहे हैं। इन्हें गुरुमंत्र समझो और अपना पथ प्रदर्शक बनाओ।' प्रस्तुत व्याख्यार्थ उद्धृत अवतरण उनके भाषण का अंतिम अंश है।

व्याख्या– स्वामी जी छात्रों से कह रहे हैं कि वे उनसे उनके ज्ञान और विद्या प्राप्ति का प्रमाण नहीं चाहते। वे यह भी नहीं जानना चाहते कि उनके राजनैतिक, सामाजिक और मानसिक विचार क्या हैं? विचार या जानकारियाँ महत्वपूर्ण नहीं हैं, असली महत्वपूर्ण चीज है– सत्यनिष्ठा का आचरण में समावेश। आचरण विचारों से अधिक महत्वपूर्ण है। शुद्ध आचरण के अभाव में जानकारियों का कोई मूल्य नहीं। वह केवल रटंत विद्या बनकर रह जाती है। अतः सत्य का जो पाठ उन्हें इस विश्वविद्यालय में पढ़ाया गया है, वह उनके सब कार्यों में कसौटी का काम करे। उन्हें स्मरण रखना होगा कि संसार सत्य

पर आधृत है। थोड़े समय के लिए बुराई जीत भी जाए, किंतु अंत में तो सत्य की ही विजय होती है। सत्य ही समाज और राजनीति दोनों का पथ प्रदर्शन करता है। सत्य के बिना राजनीति भी त्याज्य है, गर्हित है और सत्य के अभाव में समाज भी निवास योग्य नहीं रह जाता है। यदि उन्होंने सत्य को पूरी तरह अपना लिया है तो वे उनके भविष्य के विषय में बिल्कुल निश्चिंत हो सकते हैं। उन्हें पूर्ण संतोष रहेगा कि उनके विश्वविद्यालय द्वारा प्रदत्त शिक्षा सफल हुई। यही उनकी गुरुदक्षिणा है। प्रायः दीक्षांत समारोह में शिक्षा पूर्ण होने के उपलक्ष्य में आचार्य द्वारा छात्रों से गुरुदक्षिणा माँगी जाती है। गुरुदक्षिणा दिए बिना छात्रों की शिक्षा पूर्ण नहीं मानी जाती। परंतु आचार्य उनसे सत्यनिष्ठ आचरण पर चलने की ही गुरुदक्षिणा चाहते हैं, कुछ और नहीं।

टिप्पणी

विशेष

(i) विचारों के स्थान पर सत्याचरण को अधिक श्रेष्ठ बताया गया है। आचरण ही व्यक्तित्व की असली पहचान है। बहुत विद्वान व्यक्ति यदि आचरण भ्रष्ट है तो वह त्याज्य है। आचारण का निर्माण जानकारियों से नहीं, अपितु संस्कारों से होता है। वह एक दिन में नहीं बनता, बल्कि शनैः–शनैः निर्मित होता है।

(ii) सत्य की प्रतिष्ठा की गई है। 'सत्यमेव जयते' यह भारत का अधिकारिक सूत्र वाक्य है जो 'कठोपनिषद्' से ग्रहण किया गया है। कबीर और महात्मा गांधी जैसे महापुरुषों ने इसे आजीवन अपनाया और हमेशा इसी का ही उपदेश दिया। गांधी ने सत्याग्रहों से ही देश को आजादी दिलायी। कबीर ने सत्य की महिमा का गुणगान करते हुए लिखा है–

सांच बराबर तप नहीं, झूठ बराबर पाप
जाके हिरदै साँच है, ताके हिरदै आप।"

निःसंदेह सत्य की महिमा अपरंपार है। कभी–कभी सत्य परेशान हो सकता है किंतु पराजित नहीं।

(iii) भाषा–शैली सरल है। आत्मपरक व उपदेशात्मक शैली का प्रयोग है

5.5.4 'अप्प दीपो भव' लेख का समीक्षात्मक अध्ययन

'अप्प दीपो भव' एक बहुत सुंदर, प्रेरक व संक्षिप्त लेख है, जिसके लेखक आर्यसमाज के महान संन्यासी, स्वतंत्रता सेनानी व शिक्षाविद् गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के संस्थापक स्वामी श्रद्धानंद हैं। वस्तुतः मौलिक रूप में यह एक भाषण है जो उन्होंने सन् 1914 में इस विश्वविद्यालय के दीक्षांत समारोह में दिया था।

निबन्ध के प्रमुख तत्वों के आधार पर इसकी समीक्षा इस प्रकार की जा सकती है–

1. **व्यक्तित्व–सापेक्षता :** व्यक्तित्व का प्रभाव साहित्य के सभी रूपों में कमोबेश मात्रा में पाया जाता है। लेखक जो कुछ लिखता है, उसे अपने निजी मत के रूप में अथवा अपने निजी दृष्टिकोण से देखता है। इसके पीछे उसके निजी अनुभव की प्रेरणा दिखाई पड़ती है। स्वामी श्रद्धानंद द्वारा लिखित यह लेख उनके व्यक्तित्व को पूर्णतः प्रकाशित करता है तथा मूलतः भाषण होने के कारण 'मैं' शैली वर्तमान है– "पुत्रों आज मैं तुम्हें उन बंधनों से मुक्त करता हूँ, जिनके अनुसार गुरुकुल में चलना तुम्हारे लिए आवश्यक था। पर यह न समझना कि अब तुम्हारे लिए कोई बंधन नहीं है। प्राचीन काल से हमारे ऋषियों ने कुछ बंधन बाँध रखे

टिप्पणी

हैं, उन्हें मैं आज तुम्हें सुनाना चाहता हूँ। इन बंधनों का पालन करने में किसी का तुम पर दबाव नहीं, इसलिए ये बंधन और भी कड़े हैं... उन्हीं पुराने आचार्यों का प्रतिनिधि होकर मैं तुम्हें ये वाक्य सुनाता हूँ।" लेख का प्रारंभ आत्मकथनात्मक शैली से होता है और समापन भी उसी से ही होता है– "मेरा भी तुम्हारे साथ कई वर्षों का संबंध रहा है। तुमसे गुरु दक्षिणा नहीं माँगता। गुरु दक्षिणा देना तुम्हारा धर्म है, माँगना मेरा धर्म नहीं... यदि सत्य तुम्हारे जीवन का अवलंबन है तो मुझे न कोई चिंता है और न कुछ माँगना है।" अतः इस दृष्टि से लेख शत–प्रतिशत खरा उतरता है।

2. **वैचारिकता** :इस लेख में लेखक ने शास्त्रों की वाणी को बहुत सरल शब्दों में अपने छात्रों तक उद्‌बोधनात्मक शैली में पहुँचाया है। स्वामी जी ने शास्त्रों में वर्णित छात्रोपयोगी बातों को छात्रों तक पहुँचाते हुए कहा है– "धर्म–मर्यादा का उल्लंघन मत करो। मर्यादा का साक्षी अंतःकरण ही है, बाहर से कोई धर्म बताने वाला नहीं है।.... माता–पिता आचार्य और अतिथि, ये तुम्हारे देवता हैं, इनकी सदा सुश्रुषा करना धर्म समझो।... हमारे अच्छे गुणों का अनुसरण करो और दोषों का छोड़ दो... इस संसार की अंधियारी में किसी को अपना पथप्रदर्शक बनाओ. .. तुमसे यह भी नहीं पूछता कि तुम्हारे राजनैतिक, सामाजिक या मानसिक विचार क्या–क्या हैं? सत्य के बिना राजनीति धिक्कारने योग्य है, सत्य के बिना समाज के नियम पददलित करने योग्य हैं।"

3. **भावात्मकता** : इस लेख में विचार और भाव सम्मिश्रित होकर प्रस्तुत हुए हैं। यह किसी राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक अथवा वैज्ञानिक विषय पर लिखा गया आलेख नहीं है। यह तो शास्त्रों में वर्णित कुछ नैतिक व जीवनोपयोगी बातों को छात्रों तक पहुँचाने का उपक्रम है। अतः इसमें प्रारंभ से अंत तक भावात्मकता का ही प्राधान्य है। इसमें शास्त्रोक्त बातों के साथ–साथ लेखक के भाव और अनुभव भी उद्‌बोधन के साथ व्यक्त हुए हैं।

   प्रस्तुत लेख में शास्त्रोक्त मूल्यों में स्वामी जी के निजी भाव व अनुभव संयुक्त होकर अभिव्यक्त हुए हैं। यथा– "मैं चाहता हूँ कि तुम्हारे से ऐसा कोई काम न हो जिससे तुम्हें अपनी आत्मा और परमात्मा के सामने लज्जित होना पड़े।.... हमारे अच्छे गुणों का अनुकरण करो और दोषों को छोड़ दो.... तुम इस योग्य हुए हो कि अपनी विद्या और बुद्धि में से कुछ दे सको। जो तुम्हारे पास है, उसे उदारता से फैलाओ। हाथ खुला रखो, मुट्‌ठी को बंद न होने दो।" देश भक्ति का भाव भी स्वामी जी ने बड़े भावपूर्ण ढंग से व्यक्त किया है– "जिस भूमि की मिट्‌टी से तुम्हारी देह बनी है, जिसकी गंगा का तुमने निर्मल जल पिया है और जिसके गौरव के सामने संसार का कोई देश ठहर नहीं सकता, उस पवित्र भारत–भूमि में रहते हुए तुम उसके यश को उज्ज्वल करोगे, यह मुझे पूरी आशा है। इसके साथ ही जिस सरस्वती की कोख से तुमने दूसरा जन्म लिया है, उसे मत भूलना।" इस प्रकार स्पष्ट है कि प्रस्तुत लेख में भावात्मकता कूट–कूट कर भरी हुई है।

4. **एकान्विति** : लेख में प्रारंभ से अंत तक एकसूत्रता का रहना परमावश्यक है। इस आधार पर यदि हम 'अप्प दीपो भव' की समीक्षा करते हैं तो इस कसौटी

टिप्पणी

पर भी यह लेख शत–प्रतिशत खरा उतरता है क्योंकि यह पूर्णतः दीक्षांत भाषण में आचार्य द्वारा दिए गए उपदेशों और उद्‌बोधन पर आधारित है। निबन्ध अथवा भाषण के प्रारंभ में ही स्वामी जी स्पष्ट कर देते हैं कि विश्वविद्यालय में अनुशासन के कड़े बंधन थे, आज वे उन बंधनों से मुक्त हैं लेकिन विद्यालय से बाहर भी उन्हें जीवन मूल्यों के बंधनों में बंधकर रहना होगा लेकिन ये बंधन स्वैच्छिक होंगे। और इसके बाद स्वामी जी सभी नैतिक मूल्यों– सत्यनिष्ठा, स्वाध्याय, यज्ञ करना, माता–पिता, आचार्य व अतिथि की देवता समझकर पूजा करना, किसी महापुरुष को अपना आदर्श बनाना, परोपकार, देश–प्रेम निभाना आदि सभी का उद्‌बोधन करते हुए अपने वक्तव्य का समापन सुचारू रूप से करते हुए कहते हैं– "इसके अतिरिक्त मेरा भी तुम्हारे साथ कई वर्षों का संबंध रहा है। मैं तुमसे गुरु दक्षिणा नहीं माँगता। गुरु दक्षिणा देना तुम्हारा धर्म है, माँगना मेरा धर्म नहीं. ... स्मरण रखो, यह संसार सत्य पर आश्रित है। सत्य के बिना राजनीति धिक्कारने योग्य है, सत्य के बिना समाज के नियम पददलित करने के योग्य हैं। यदि सत्य तुम्हारे जीवन का अवलम्बन है तो मुझे न कोई चिन्ता है और न कुछ माँगना है।"

5. **संक्षिप्तता :** 'अप्प दीपो भव' दो पृष्ठों का लेख है। इसमें लेखक ने सूत्र रूप में ही संदेश दिए हैं। उन सूत्रों का विस्तार नहीं किया। विस्तार की आवश्यकता भी नहीं थी। वाक्य भी प्रायः बहुत छोटे–छोटे हैं, यथा– बाहर से कोई धर्म बतलाने वाला नहीं है। .... जो हृदय परमात्मा का आसन है,वही तुम्हें धर्म बतला देगा। अपनी आत्मा की वाणी को सुनो और उसके अनुसार चलो। स्वाध्याय से कभी मुँह न मोड़ो। वह तुम्हें प्रमाद से बचायेगा... आदि। इन छोटे–छोटे सूत्र वाक्यों के बाद स्वामी जी छात्रों से स्वयं कहते हैं उन्होंने अपनी बात बड़ी संक्षेप में कही है– "यह मैंने संक्षेप में उन वाक्यों का सारांश सुना दिया है जो कि सहस्रों वर्षों से इस पवित्र भूमि में गूँजते रहे हैं। इन्हें गुरुमंत्र समझो और अपना पथ–प्रदर्शक बनाओ।"

6. **कलात्मकता :** प्रत्येक कलाकृति की भाँति लेख में भी कलात्मकता का समावेश अवश्य होना चाहिए। इसकी अभिव्यक्ति में यदि कलात्मक मौलिकता का समावेश न हो सके और भाषा विषयानुरूप परिवेश उपस्थित न कर सके तो लेखन सफल नहीं हो सकता। लेख के विषयानुरूप लोकोक्ति, मुहावरे, चित्रात्मकता, सारगर्भित शब्दावली ही लेखक की सफलता की कुंजी है। जैप्सन के अनुसार– "प्रत्येक कलात्मक वस्तु की भाँति इसका एक ढांचा होता है जो लेखक के व्यक्तित्व का बोध कराता है। इसे रुक्ष नहीं होना चाहिए।"

   कलात्मकता की दृष्टि से विचार करें तो इस लेख का सौष्ठव देखते ही बनता है। सर्वप्रथम तो इसका शीर्षक ही बहुत अर्थगर्भित और ऐतिहासिक संदर्भों को स्वयं में समाये हुए है। यह गौतम बुद्ध के उपदेश से जुड़ा हुआ है। गौतम बुद्ध ने अपने एक प्रिय शिष्य आनंद के एक प्रश्न–आपकी अनुपस्थिति में हमारा मार्गदर्शन कौन करेगा– के उत्तर में कहा था कि कोई किसी का सदा पथ प्रदर्शन नहीं कर सकता। अपना दीपक स्वयं ही बनना पड़ता है– अप्प दीपो भव। यह शीर्षक पूरे लेख में पुष्प में सुगंध की भाँति समाया हुआ है। इस शीर्षक में ही लेख का उद्देश्य भी समाहित है।

टिप्पणी

भाषा–शैली की बात करें तो भाषा सुबोध व परिष्कृत है। कहीं पर भी समासयुक्त बोझिल शब्दों का प्रयोग नहीं हुआ। क्योंकि यह लेख वस्तुतः एक भाषण है और भाषण भी दीक्षांत समारोह में दिया गया अध्यक्षीय भाषण, इसलिए यह उद्‌बोधन शैली मैं है। संस्कृत के प्रकांड पंडित होते हुए भी स्वामी जी ने इसमें कहीं भी भाषागत पांडित्य प्रदर्शन नहीं किया है। सर्वत्र बोल–चाल की सुबोध भाषा का प्रयोग है और वाक्य प्रायः छोटे हैं। सीधी सादी प्रेरक बात सरल भाषा–शैली में व्यक्त कर देना और कर्तव्य–अकर्तव्य (विध–निषेध) का बोध कराना लेख की बहुत बड़ी शैलीगत विशेषता है। कुछ वाक्य देखिए जिसमें सहज ढंग से छात्रों को समझाया जा रहा है कि उन्हें क्या करना चाहिए और क्या नहीं करना चाहिए–

विधि

1. जीवन को सत्यस्वरूप बनाओ।
2. अपनी आत्मा की वाणी को सुनो और उसके अनुसार चलो।
3. इस संसार की अंधियारी में किसी को अपना ज्योति स्तंभ बनाओ।
4. जो कुछ तुम्हारे पास है, उसे उदारता से फैलाओ।
5. ऐसे आत्म–त्यागी–सत्यवादी और पक्षपात रहित महापुरुषों के चाहे वे जीवित हों या ऐतिहासिक, पीछे चलो।

निषेध

1. धर्म–मर्यादा का उल्लंघन मत करो।
2. स्वाध्याय से कभी मुख न मोड़ो।
3. पाँचों यज्ञों के करने में कभी प्रमाद न करना।
4. सावित्री माता की उपासना से विमुख न होना।

इन विधि–निषेधात्मक वाक्यों के साथ–साथ इस निबन्ध में कुछ बहुत सारगर्भित व कलात्मक सूत्र वाक्यों का प्रयोग हुआ जो निबन्ध पढ़ने के बाद भी सुधी पाठक के मन–मस्तिष्क में घर कर जाते हैं। कुछ अर्थगर्भित सूत्र वाक्य द्रष्टव्य हैं–

1. इस मर्यादा का साक्षी अपना अंतःकरण ही है।
2. इस संसार की अंधियारी में किसी को अपना ज्योति स्तंभ बनाओ।
3. पढ़ा पढ़ाया कुछ अंश तक पथ–प्रदर्शक होता है।
4. वे (महापुरुष) जीवन–समुद्र में ज्योति स्तंभ का काम देते हैं।
5. हाथ खुला रखो, मुट्‌ठी को बंद न होने दो।
6. जो सरोवर भरता है, वही फैलता है, यह स्वाभाविक नियम है।

उक्त सूत्र वाक्य शिक्षा पूर्ण कर चुके छात्रों के लिए ही नहीं, अपितु समस्त जाति के लिए प्रेरक और अनुकरणीय है। निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि व्यक्तित्व प्रकाशन, वैचारिकता, भावात्मकता, एकान्विति, आकार व कलात्मकता तथा प्रयोजनशीलता आदि दृष्टियों से यह लेख बहुत ही उत्कृष्ट बन पड़ा है।

टिप्पणी

अपनी प्रगति जाँचिए

7. धर्म की मर्यादा का साक्षी कौन है?

(क) माता (ख) पिता

(ग) गुरु (घ) अंतःकरण

8. स्वामी श्रद्धानंद अपने छात्रों के मन, वाणी, क्रिया में किसकी उपस्थिति की कामना करते हैं?

(क) धर्म (ख) सत्य

(ग) पुरुषार्थ (घ) स्वार्थ

5.6 अपनी प्रगति जाँचिए प्रश्नों के उत्तर

1. (ख)
2. (घ)
3. (ग)
4. (ख)
5. (क)
6. (ग)
7. (घ)
8. (ख)

5.7 सारांश

जगत के समस्त प्राणियों में सर्वश्रेष्ठ माने जाने वाले मनुष्य ने समाजीकरण की प्रक्रिया में अपने जीवन के लिए जो नियम और संयम बनाये, उन्हें ही मूल्य कहा जाता है। मूल्य ही मानव जीवन को सार्थकता व श्रेष्ठता प्रदान करते हैं। विभिन्न आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक अंतरों तथा भाषा, धर्म, जाति तथा धार्मिक आस्थाओं की भिन्नताओं के बावजूद जीवन मूल्य हर परिस्थिति में सबके लिए समान हैं और जिनका निर्वहन भी प्रत्येक व्यक्ति के लिए उसी अनुपात में आवश्यक है।

नैतिक मूल्यों के रोपण में समाज की भी महती भूमिका है। समाज व्यक्तियों के जीवन–यापन के लिए आधार तैयार करता है और व्यक्ति अपने क्रियाकलापों से समाज का निर्माण करते हैं। युवा पीढ़ी में समाज की ओर देखने का दृष्टिकोण निर्मित होना चाहिए।

आचरण का विकास जीवन का परमोद्देश्य है। आचरण का विकास प्रयत्नपूर्वक किए गए अपने ही प्रयासों पर निर्भर है। किसी और के बनाये गए रास्ते पर चलकर

टिप्पणी

अपने आचरण को आदर्श के ढांचे में नहीं ढाला जा सकता। कोई संत–महात्मा भी जीवन पर्यन्त शुद्धाचरण का दावा नहीं कर सकता। अच्छी–बुरी यथा ऊँच–नीच, उन्नति–अवनति आदि विरोधी प्रवृत्तियों के योग व संघर्ष से आचरण का निर्माण होता है।

धर्म के आचरण की प्राप्ति ऊपरी आडम्बरों से नहीं होती। इसकी प्राप्ति कृत्रिम वातावरण में नहीं अपितु प्राकृतिक वातावरण में ही संभव है। पहले प्राकृतिक सभ्यता प्राप्तव्य है, प्राकृतिक सभ्यता से मानसिक सभ्यता आएगी और मानसिक सभ्यता के प्राप्त होते ही आचरण की सभ्यता प्राप्त होगी।

नैतिक जीवन में उच्चतम स्थिति पर पहुँचने के लिए अन्तर्ज्ञानात्मक दृष्टि अनिवार्य है। इस पथ का साहसपूर्वक अनुसरण करने वाला वीर आविष्कारक वैज्ञानिक, संगीतकार, भवन–डिजाइनर की तरह सर्जक की श्रेणी में आएगा। सृजन में मौलिकता एक अनिवार्य तत्व है। नियमों के यन्त्रवत् पालन अथवा नमूनों की नकल से कोई लाभ नहीं होता। जीवन की शतरंज की फड़ पर अलग–अलग मोहरों की अलग–अलग ताकतें हैं।

रूढ़ सिद्धान्तों पर चलना प्राण और ओज के गहरे स्रोतों से सम्बन्ध–विच्छेद कर लेना है। दूसरों की समस्याओं को समझ–बूझकर ही समस्याओं का समाधान सम्भव है। सामाजिक समस्याओं का समाधान वही कर सकते हैं जिन्हें बुनियादी सत्यों का ज्ञान होता है और जिन्होंने काल के बीजों को अपनी रहस्यभेदी दृष्टि से देख लिया होता है।

गौतम बुद्ध ने अपने प्रिय शिष्य आनंद से उसके यह पूछने पर कि जब सत्य का मार्ग दिखाने के लिए आप या कोई आप जैसा पृथ्वी पर नहीं होगा, तब हम कैसे अपने जीवन को दिशा दे सकेंगे? तो भगवान बुद्ध ने यह जवाब दियाा था 'अप्प दीपो भव'। कोई भी किसी के पथ के लिए सदैव मार्ग प्रशस्त नहीं कर सकता। केवल आत्मज्ञान के प्रकाश से ही हम सत्य के मार्ग पर आगे बढ़ सकते हैं।

5.8 मुख्य शब्दावली

- **उद्यम** : श्रम, मेहनत।
- **निघण्टु** : संस्कृत शब्दकोश।
- **उन्मदिष्णु** : उन्माद युक्त।
- **क्लेशातुर** : दुःख से व्याकुल।
- **बोसीदा** : सड़ा–गला।
- **ऐक्य** : एकता।
- **अप्प** : स्वयं का।
- **प्रमाद** : लापरवाही, भूल, दोष।

5.9 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास

टिप्पणी

लघु–उत्तरीय प्रश्न

1. नैतिक मूल्यों में परिवार की क्या भूमिका होती है?
2. 'आचरण की मौन भाषा ही ईश्वरीय है' कथन का आशय स्पष्ट कीजिए।
3. शब्द एवं वाणी में लेखक किस प्रकार अंतर करता है?
4. 'अप्प दीपो भव' शीर्षक की सार्थकता स्पष्ट कीजिए।
5. 'अप्प दीपो भव' लेख में स्वामी श्रद्धानंद ने छात्रों के लिए क्या विधि–निषेध सुझाए हैं।

दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न

1. किसी व्यक्ति में नैतिक मूल्यों का रोपण किन–किन स्तरों पर होता है? सविस्तार विवेचन कीजिए।
2. आचरण की मौन भाषा की व्याख्या कीजिए।
3. 'अंतर्ज्ञान और नैतिक जीवन' लेख के माध्यम से डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन समाज को क्या संदेश देना चाहते हैं। सविस्तार वर्णन कीजिए।
4. 'अप्प दीपो भव' लेख का सार अपने शब्दों में लिखिए।

5.10 सहायक पाठ्य सामग्री

1. 'प्रतिनिधि कविताएं', जयशंकर प्रसाद, राजकमल प्रकाशन, 2015
2. 'माखनलाल चतुर्वेदी रचना संचयन', चयन एवं संपादन– कृष्णदत्त पालीवाल, 2014.
3. 'आधुनिक हिन्दी व्याकरण और रचना', डॉ. वासुदेवनंदन प्रसाद, भारती भवन पब्लिशर एवं डिस्ट्रीब्यूटर, 2017
4. 'हिन्दी व्याकरण', कामता प्रसाद गुरु, वाणी प्रकाशन, 2014
5. 'प्रेमचंद का व्यक्तित्व', लक्ष्मण राव, भारतीय साहित्य कला प्रकाशन, 2019
6. 'भाषीय औदात्तय', डॉ. त्रिभुवन शुक्ल, वाणी प्रकाशन, 2016
7. 'व्यक्तित्व का संपूर्ण विकास', स्वामी विवेकानंद, प्रभात प्रकाशन, 2017
8. 'भगवान बुद्ध तथा उनके संदेश', स्वामी विवेकानंद, रामकृष्ण मठ, नागपुर, 2011
9. 'विवेकानंद साहित्य' (10 वाल्यूम), स्वामी विवेकानंद, अद्वैत आश्रम, 2017
10. 'हिन्दी भाषा प्रकृति, प्रयोग और शिक्षा', हीरालाल बाछोतिया, आर्यप्रकाशन मंडल, दिल्ली, 2012
11. 'डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन', आर.पी.एच. एडिटोरियल बोर्ड, रमेश पब्लिशिंग हाउस, 2016

टिप्पणी

12. 'डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन', बृजकिशोर, प्रभात प्रकाशन, 2018
13. 'व्यंग्य समय', शरद जोशी, किताब घर प्रकाशन, 2017
14. 'व्यंगर्षि शरद जोशी', वागीश सारस्वत, शिल्पायान, 2013
15. 'व्यक्तिगत निबन्ध और डायरी', रामधारी सिंह दिनकर, नेहा पब्लिशिंग एंड डिस्ट्रीब्यूटर, 2012
16. 'हमारी सांस्कृतिक एकता' (वाल्यूम 3 ऑफ 29), दिनकर ग्रंथालय, लोकभारती प्रकाशन, 2019
17. 'हिन्दी के प्रमुख निबन्धकार और उनका निबन्ध साहित्य', डॉ. जीवनभाई आर. डांगर, शांति प्रकाशन, 2016